नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

विधि पत्रिका

वर्ष २] मार्गशीर्ष (सौर) सं० २०१४ : शक १८७९ : नवंबर-दिसंबर १९५७ [अंक १

विधिविषयक लेखों, केंद्रीय-राज्य अधिनियमों आदि से युक्त, इलाहाबाद तथा भारत के अन्य उच्च न्यायालयों के महत्वपूर्ण अँगरेजी निर्णयों का हिंदी रूपांतर तथा विवरण प्रकाशित करनेवाली हिंदी जगत् की एकमात्र मासिक पत्रिका

विषय सूची

वार्षिक शुल्क १०) इस प्रति का १)

परामर्शदातृ समिति

(१) श्री कमलाकांत वर्मा, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(२) श्री बलराम उपाध्याय, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।
(३) श्री कन्हैयालाल मिश्र, महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
(४) श्री गोपालचंद्र सिंह, विशेष अधिकारी, सचिवालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।
(५) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

संपादक मंडल

(१) श्री गिरिजाभूषण जोशी, आचार्य ला कालेज, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।
(२) श्री ब्रजरत्नदास, वकील, वाराणसी।
(३) श्री प्रतापनारायण सिंह, राजकीय अधिवक्ता, वाराणसी।
(४) श्री गौरीनंदन उपाध्याय, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(५) श्री देवीनारायण, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(६) श्री कैलासपति त्रिपाठी, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(७) श्री गोपीकृष्ण, बार-ऐट-ला, वाराणसी।
(८) श्री चतुर्भुजदास पारिख, ऐडवोकेट, वाराणसी।
(९) श्री राघवराम वर्मा, वकील, वाराणसी।
(१०) चौधरी शुकदेव सिंह, वकील, वाराणसी।
(११) श्री मोतीलाल बापुली, ऐडवोकेट, वाराणसी।

श्री चंद्रभूषण मिश्र, एडवोकेट
श्री रामसुरत सिंह, एडवोकेट } प्रतिवेदक, इलाहाबाद

संपादक (संयोजक)—सिद्धनाथ सिंह बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील

सहायक संपादक { (१) भगवती प्रसाद
(२) पारसनाथ सिंह, बी० ए० एल-एल० बी०

विधि पत्रिका नवंबर-दिसंबर १६५७

शक संवत् १८७६

वादतालिका

—०—

विधि पत्रिका जून-जुलाई १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

विधि पत्रिका जुलाई-अगस्त १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

विधि पत्रिका अगस्त-सितंबर १९५८

(शक १८८०)

वाद तालिका

———

विधि पत्रिका सितंबर से नवंबर १९५८

(शक' १८८०)

वाद तालिका

———

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] (सौर) मार्गशीर्ष सं० २०१४ : शक १८७९ : नवंबर-दिसंबर १९५७ अंक १

संपादकीय

इस अंक के प्रकाशन के साथ हम अपने दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। विगत सौर वर्ष के मार्गशीर्ष मास से इस पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था और गत सौर कार्तिक मास में इसका प्रथम वर्ष समाप्त हो गया।

यह वर्ष हमारा परीक्षा काल था, हमने नाना विधि कठिनाइयों का सामना किया और, ईश्वर की कृपा से, सब को अतिक्रमण करते हुए तथा उनसे अनुभव लाभ करते हुए नव वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। हमने अपने अंतिम अंक में अपने आदरणीय पाठकों से अपने पथप्रदर्शन के लिये संमति भी मांगी है और जो उपादेय संमतियाँ हमें मिली हैं वा भविष्य में मिलेंगी उनका हम हृदय से स्वागत करेंगे और यथासाध्य पालन करेंगे। हमें कुछ ऐसी संमतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके संबंध में कुछ निवेदन करना हम आवश्यक समझते हैं—

पत्रिका के वर्तमान आकार के संबंध में कुछ लोगों को आपत्ति है। उन्हें पत्रिका का पूर्व रूप ही पसंद है। वर्तमान आकार में पत्रिका के प्रकाशन में हमारा व्यय पहले की अपेक्षा बढ़ गया है पर यह आकार परिवर्तन जिस दृष्टिकोण से किया गया है उसके सफल होने का समय अभी नहीं आया है। संकल्पित परिणाम के पहुँचने पर यही आकार उपयुक्त सिद्ध होगा।

पत्रिका की भाषा के संबंध में भी कुछ लोगों को आपत्ति है। साधारण जनता की तो बात ही क्या कतिपय विद्वान वकीलों ने भी यही विचार व्यक्त किया है किंतु जिन कारणों से हम भाषा सरल तथा सुबोध बनाने में असमर्थ हैं उन्हें प्रगट कर देना भी हम अपना भी कर्तव्य समझते हैं।

इस विषय में सभा की जो नीति है तदनुसार हम पत्रिका की भाषा को साधारण जनता के योग्य बनाने में असमर्थ हैं। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि साधारण जनता का लाभ हमारे दृष्टिपथ से बाहर है। सभा इस संबंध में विचार कर रही है और हमें पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में हम कोई नवीन योजना साधारण जनता के लाभार्थ प्रस्तुत कर सकेंगे। रही बात विधि व्यवसायियों की, जिनका आग्रह भाषा के सरल करने का है, उनसे हम नम्रतापूर्वक निवेदन करेंगे कि वे सज्जन विधिक अंग्रेजी शब्दावली के लिये हमारे हिंदी पर्याय का अभ्यास करावें। उन्हीं के थोड़ा कष्ट उठाने से हमारे इस प्रयास के सफलीभूत होने की संभावना है। आपने कानून अंग्रेजी में पढ़ी किंतु कचहरी में जाने पर देखा कि वहाँ अंग्रेजी का उतना प्रयोग नहीं होता जितना फारसी उर्दू के कठिन शब्दों का। 'मफकूदुलखबर' 'मुक्तजाय इंसाफ' 'तनकी' 'समाअत' 'मुद्दई' 'मुद्दालेह' 'सायल' 'मसऊलअलेह' आदि शब्द क्या जनसाधारण की

भाषा के शब्द हैं ? आपने स्वयं अभ्यास करके इन्हें हृदयंगम किया और तत्पश्चात् अपने मुअक्किलों को बतला कर जनता में प्रचार किया। निरंतर अभ्यासगत होने के कारण ये शब्द आज जनसाधारण के व्यवहार के शब्द हो गए हैं, इन्हें ही लोग हमें प्रयोग करने को कहते हैं। अस्तु हम उससे सहमत नहीं हैं प्रत्युत हम आपसे आग्रह करेंगे कि अब हमारे इस सत्प्रयास में सहायक हों और विधिक अंग्रेजी शब्दों के पर्याय, जिन्हें हम पत्रिका में बहुत शोध कर देते हैं, आप अपनाने का कष्ट करें और उनके विशुद्ध प्रयोग का व्रत लें और इस प्रकार जनसाधारण को भी हिंदी में कानूनी भाषा समझने में समर्थ बनावें।

इसी प्रसंग में हम दो शब्द अपने विद्वान अधिकारियों से भी निवेदन करना चाहेंगे। संविधान ने अंग्रेजी को केवल पंद्रह वर्ष तक चलने देने की अनुमति दी है जिसके पश्चात् न्यायालयों की भाषा हिंदी हो जानी चाहिए। किंतु जिस गति से हम इस ओर अग्रसर हो रहे हैं उससे यह प्रतीत नहीं होता कि इस अवधि में हम अपने को समर्थ बना लेंगे कि अवधि समाप्त होते ही अपना काम अपनी भाषा में करने लगेंगे। यदि ऐसा न हुआ तो फिर अवधि एकाध दशक के लिये बढ़ाई जा सकती है और, ईश्वर न करे, यदि हिंदी विरोधियों की चली तो, कदाचित् अंग्रेजी से पिंड छूटना भी कठिन है।

उसी समय के लिये हम अपना शब्द संग्रह पहले से आपके संमुख प्रस्तुत करने के लिये उद्यत हैं। वस्तुतः सर्वप्रथम आप ही प्रेरक होंगे और जनता को अपने अनुगमन के लिये बाध्य करेंगे। आज हमारे कहने से भले ही कोई न सुने पर आपकी लेखनी से निस्टत हो कर जो भाषा जनता के सामने आयेगी जनता उसे विवश होकर सीखेगी और अति शीघ्र सीखेगी। तब अवहेलना करने का किसी को समय न होगा। आपके शब्द अपनाने का ही प्रभाव है कि रिक्शेवाले को भी विदित है कि जिला 'नियोजन अधिकारी' का कार्यालय कहाँ है, कमीशन के लिये आयोग शब्द जनता को किसने सिखाया।

अस्तु विद्वान न्यायालयों तथा समस्त राजकीय पदाधिकारियों से हम प्रार्थना करेंगे कि वे इस प्रश्न के औचित्य पर विचार करें और समय रहते अपने को इस योग्य बना लें कि पंद्रह वर्ष की अवधि बीतने पर अपना कार्यकलाप हिंदी भाषा में योग्यतापूर्वक निबाह सकें और विद्रोहियों को अन्यथा चेष्टा करने का अवसर न प्रदान करें।

—सिद्धनाथ सिंह

उत्तर प्रदेश बृहत् जोत कर अधिनियम १९५७

[उ० प्र० अधिनियम संख्या ३१, १९५७]

(जैसा कि उत्तर प्रदेश विधान मंडल द्वारा पारित हुआ।)

बृहत् जोतों पर कर लगाने तथा उसकी वसूली की व्यवस्था करने का

अधिनियम

यह इष्टकर है कि बृहत् जोतों पर कर लगाने तथा उसकी वसूली करने की व्यवस्था की जाय;

अतएव भारतीग गणतंत्र के आठवें वर्ष में निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है :—

अध्याय १

प्रारंभिक

संक्षिप्त शीर्षनाम प्रसार तथा प्रारंभ।

१—(१) यह अधिनियम उत्तर प्रदेश बृहत्-जोत कर अधिनियम, १९५७ कहलायेगा।

(२) इसका प्रसार समस्त उत्तर प्रदेश में होगा।

(३) यह जुलाई, १९५७ के प्रथम दिनांक से प्रचलित हुआ समझा जायगा।

परिभाषाएँ

२—इस अधिनियम में विषय या प्रसंग में कोई बात प्रतिकूल न होने पर—

(१) 'जोत' (लैंड होल्डिंग) का अर्थ वही है जो उसे धारा ४ में दिया गया है;

(२) 'वार्षिक मूल्य' (ऐन्युअल वैल्यू) का वही अर्थ है जो उसे धारा ५ में दिया गया है;

(३) 'करदाता' (असेसी) का तात्पर्य ऐसे क्षेत्रपति (लैंड होल्डर) से है जिसके द्वारा जोतकर देय हो तथा उसकी मृत्यु हो जाने की दशा में, करदाता के अंतर्गत क्षेत्रपति का विधिक प्रतिनिधि (लीगल रिप्रजेंटेटिव) भी है;

'कर निर्धारक प्राधिकारी' (असेसिंग अथारिटी) का अर्थ वही है जो उसे धारा ६ में दिया गया है;

(५) 'असिस्टेंट कलेक्टर आफ दि फर्स्ट क्लास' का अर्थ वही है जो उसे यू० पी० लैंड रेवेन्यू ऐक्ट, १९०१ में दिया गया है;

(६) 'कलेक्टर' के अंतर्गत एडीशनल कलेक्टर भी है;

(७) 'कमिश्नर' के अंतर्गत एडीशनल कमिश्नर भी है;

(८) 'कंपनी' का तात्पर्य ऐसी कंपनी से है, जिसकी परिभाषा इंडियन इन्कमटैक्स ऐक्ट, १९२२ में की गई है;

(९) 'सहकारी फार्म' (कोआपरेटिव फार्म) का तात्पर्य ऐसे सहकारी फार्म से है जिस पर १९५० ई० के उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम के अध्याय ११ के उपबंध लागू हों;

(१०) 'सहकारी समिति' का तात्पर्य ऐसी कोआपरेटिव सोसाइटी से है जो कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट, १९१२ के अधीन रजिस्टर्ड हो और इसके अंतर्गत सहकारी फार्म (कोआपरेटिव फार्म) भी है;

(११) 'फर्म' का वही अर्थ है जो उसे इंडियन पार्टनरशिप ऐक्ट, १९३२ में दिया गया है।

(१२) हिस्सेदार' का वही अर्थ है जो कुमायूं डिवीजन में प्रवृत्त भौमिक अधिकारों (लैंड टेन्योर) से

संबद्ध वर्तमान विधि में उसे दिया गया है। तथा इसके अंतर्गत परगना असकोट के गुजारेदार तथा प्रतिबंध-रहित दाय से मिली संपत्तियों के गृहीता (होल्डर्स आफ फी सिंपुल इस्टेट्स) भी है।

(१३) 'जोतकर' (होल्डिंग टैक्स) का वही अर्थ है को उसे धारा ३ में दिया गया है।

(१४) 'मध्यवर्ती' (इंटरमेडियरी) का तात्पर्य किसी स्वामी (प्रोपराइटर), मातहतदार (अंडर प्रोपराइटर), अदना मालिक (सब प्रोपराइटर), ठेकेदार अवध का पट्टेदार दवामी या इस्तमरारी दवामी काश्तकार अथवा हिस्सेदार से है।

(१५) 'भूमि' (लैंड) का तात्पर्य ऐसी भूमि से है, चाहे उस पर मालगुजारी निर्धारित हो या न हो, जो किसी के अधिकार या अध्यासन में कृषि, उद्यानकरण (हर्टिकल्चर), पशुपालन, मत्स्य संवर्धन (पिस्कीकल्चर) अथवा कुक्कुट पालन (पाल्ट्री फार्मिंग) से संबद्ध किसी प्रयोजन के लिये हो और उसके अंतर्गत ऐसी भूमि भी है जिसमें खेती न होती हो (अनकल्टिवेटेड लैंड) और जो किसी व्यक्ति के अधिकार में क्षेत्रपति (लैंड होल्डर) के नाते हो।

(१६) 'क्षेत्रपति (लैंडहोल्डर) का तात्पर्य—

१—किसी मध्यवर्ती से है यदि भूमि उसकी खुद-काश्त (पर्सनल कल्टिवेशन) में हो अथवा उसके पास सीर, खुदकाश्त या बाग (ग्रोव) के रूप में हो, तथा

२—अन्य किसी ऐसे व्यक्ति से है जो निम्नलिखित से भिन्न हैसियत से भूमि पर अधिकार अथवा अध्यासन रखता हो—

(क) असामी,

(ख) शिकमी काश्तकार (सबटेनेंट),

(ग) सीर का काश्तकार, अथवा

(घ) सीरतान

और इसके अंतर्गत यथास्थिति प्रबंधक अथवा मुख्य अधिकारी हैं;

स्पष्टीकरण—इस खंड में असामी के अंतर्गत गाँव-समाज का आसामी नहीं है।

(१७) 'विधिक प्रतिनिधि' का वही अर्थ है जो शब्द 'लीगल रिप्रजेंटेटिव' को कोड आफ सिविल प्रोसीजर, १६०८ मेंदिया गया है।

(१८) किसी कंपनी या एसोसिएशन के संबंध में प्रयुक्त शब्द 'मुख्य अधिकारी' का तात्पर्य निम्नलिखित से है—

१—कंपनी या एसोसिएशन का सेक्रेटरी, खजांची, प्रबंधक अथवा अभिकर्ता अथवा

२—कंपनी या एसोसिएशन से संबद्ध कोई व्यक्ति जिस पर कर निर्धारक प्राधिकारी ने अपने इस इरादे का नोटिस तामील किया हो कि उसे उसका मुख्य अधिकारी माना जायगा।

(१६) 'नियत' का तात्पर्य इस अधिनियम के अधीन निर्मित नियमों द्वारा नियत से है।

(२०) 'सीरतान' का वही अर्थ है जो कुमायूं डिवीजन में प्रवृत्त भौमिक अधिकारों से संबद्ध विधि में उसे दिया गया है।

(२१) 'राज्य सरकार' का तात्पर्य उत्तर प्रदेश की सरकार से है।

(२२) 'सब डिवीजनल आफिसर' का तात्पर्य यू० पी० लैंड रेवन्यू ऐक्ट, १६०१ के अधीन नियुक्त सब-डिवीजन के इंचार्ज असिस्टेंट कलेक्टर आफ दि फर्स्ट क्लास से है तथा इसके अंतर्गत कलेक्टर द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के निमित्त निर्दिष्ट कोई दूसरा असिस्टेंट कलेक्टर आफ कि फर्स्ट क्लास भी है।

(२३) पद 'कृषि वर्ष', 'बाग', 'खुदकाश्त', 'दवामी काश्तकार' 'अवध का पट्टेदार दवामी या इस्तमरारी', 'स्वामी' 'स्वीकृत मौरूसी दरें', 'शिकमी काश्तकार',

'अदना मालिक' ठेकेकार तथा 'मातहतदार' के वही अर्थ हैं जो क्रमशः पद 'अग्रिकल्चरल ईयर', 'ग्रोव', 'खुदकाश्त', परमानेंट टेन्योर होल्डर', 'परमानेंट लेसी इन अवध', 'प्रोपराइटर', 'सैक्शंड हेरिडेटरी रेट्स', 'सब ट्रेनेंट', 'सब प्रोप्राइटर' 'ठेकेदार' एंड 'अंडर प्रोप्राइटर'। को, यू० पी० टेटेंसी ऐक्ट, १९३९ में दिए गए हैं, तथा

(२४) पद 'असामी' और 'गाँव समाज' के वही अर्थ हैं जो १९५० ई० के उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, में उन्हें दिए गए हैं।

अध्याय २

जोतकर का लगाया जाना

जोतकर का भारित किया जाना।

३—(१) उस दशा को छोड़कर जिसकी एतत्पश्चात् व्यवस्था की गई है, प्रत्येक जोत (लैंड होल्डिंग) के वार्षिक मूल्य पर प्रत्येक कृषि वर्ष के निमित्त अनुसूची में निर्दिष्ट दर से कर, जिसे एतत्पश्चात्, 'जोतकर' कहा गया है, भारित किया जायगा, लगाया जायगा तथा अदा किया जायगा (शैल बी चार्जड्, लेवीड् ऐंड पेड)

किंतु प्रतिबंध यह है कि उस जोत पर ऐसा कर नहीं लगाया जायगा जिसका क्षेत्रफल तीस एकड़ से अधिक न हो।

(२) राज्य सरकार, सरकारी गजट में विज्ञप्ति प्रकाशित करके, उपधारा (१) के अधीन लगाए जाने वाले जोत कर में किन्हीं जोतों के वर्ग अथवा वर्गों के संबंध में, जैसा नियत किया जाय, पूर्णतः अथवा अंशतः ऐसी अवधि के लिये, जिसे वह उचित समझे, तथा उतने बार जिन्हें वह आवश्यक समझे, छूट दे सकती है अथवा उसे माफ कर सकती है।

(३) उपधारा (१) के प्रतिबंधक के अधीन भूमि का क्षेत्रफल आकलित करने के लिये ऐसी भूमि की, जिस पर इमारत हो, उससे संलग्न भूमि सहित, किंतु ५ एकड़ से अनधिक, गणना नहीं की जायगी।

४—(१) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये 'जोत' का तात्पर्य ऐसी समस्त भूमि के समुच्चय से है जो प्रति वर्ष जुलाई के प्रथम दिनांक पर किसी क्षेत्रपति के अधिकार या अध्यासन में हो, चाहे वह स्वयं क्षेत्रपति के नाम में हो या उसके परिवार के किसी सदस्य के नाम में हो, और ऐसी समस्त भूमि उक्त क्षेत्रपति की जोत का भाग समझी जायगी।

किंतु प्रतिबंध यह है कि ऐसी भूमि जो क्षेत्रपति के परिवार के किसी सदस्य के अधिकार या अध्यासन में हो, उक्त क्षेत्रपति की जोत का भाग नहीं होगी, यदि उसका प्रबंध और उस पर खेती पृथक रूप से की जाती हो।

स्पष्टीकरण—(१) इस धारा के प्रयोजनों के निमित्त किसी परिवार के अंतर्गत निम्नलिखित हैं—

(क) माता,

(ख) पत्नी,

(ग) अविवाहिता पुत्री या पौत्री,

(घ) पुत्र या पौत्र या प्रपौत्र,

(ङ) पुत्र की पत्नी या पौत्र की पत्नी।

स्पष्टीकरण—(२) ऐसी भूमि जो किसी ऐसे निगमित संघ (इनकारपोरेटेड असोसियेशन) के, जो सहकारी समिति से भिन्न हो, किंतु जिसके अंतर्गत सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट १८६० के अधीन निबंधित संस्था (सोसाइटी) या संघ है, या किसी कंपनी या किसी फर्म के अधिकार में हो, एक ही जोत समझी जायगी।

(२) उपधारा (१) के उपबंधों को बाधित न करते हुए, यदि भूमि दो या अधिक व्यक्तियों के या किसी सहकारी समिति के अधिकार या अध्यासन में हो तो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये, ऐसे व्यक्ति का या सहकारी समिति के किसी सदस्य का उस भूमि में हिस्सा

पृथक रूप से उसके अधिकार में समझा जायगा और ऐसे व्यक्ति की या सदस्य की, जैसी भी स्थिति हो, जोत का भाग होगा।

स्पष्टीकरण—सहकारी फार्म की दशा में पद 'भूमि में हिस्सा' का तात्पर्य ऐसी भूमि से है जो उक्त फार्म के किसी सदस्य द्वारा या उसकी ओर से अंशदान के रूप में, फार्म को दी गई हो।

वार्षिक मूल्य

५—(१) इस अधिनियम के प्रयोजनों के निमित्त किसी जोत का वार्षिक मूल्य ऐसी धनराशि समझा जायगा जो तदंतर्गत भूमि अथवा भूमियों के लिये देय लगान को ऐसे गुणक से गुणा करने पर प्राप्त हो, जो यथा नियत साढ़े बारह से अधिक न हो, और विभिन्न जिलों अथवा जिले के भागों अथवा जोत के अंतर्गत भूमियों के विभिन्न वर्गों के निमित्त विभिन्न गुणक नियत किए जा सकते हैं।

(२) उप धारा (१) के प्रयोजनों के निमित्त देय लगान, जोत के अंतर्गत भूमि अथवा भूमियों पर लागू स्वीकृत मौरूसी दरों पर आकलित धनराशि समझा जायगा अथवा जहाँ स्वीकृत मौरूसी दरें न हों तो ऐसे सिद्धांतों पर आकलित धनराशि जो नियत किए जाए।

किंतु प्रतिबंध यह है कि राज्य सरकार, उन दरों को जो जुलाई १९२७ के प्रथम दिनांक से पूर्व स्वीकृत हुए थे, ऐसे प्रतिशत से बढ़ा सकती है, जो पचास से अधिक न हो, और जिसे सरकारी गजट में विज्ञप्ति प्रकाशित करके निर्दिष्ट किया जाय और भूमि के विभिन्न वर्गों एवं उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के निमित्त विभिन्न प्रतिशत निर्दिष्ट किए जा सकते हैं।

अध्याय ३

जोतकर का निर्धारण

कर निर्धारक प्राधिकारी

६—(१) उपधारा (२) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के प्रयोजनों के निमित्त कर निर्धारक प्राधिकारी वह सब डिवीजनल आफिसर होगा जिसके क्षेत्राधिकार में क्षेत्रपति साधारणतया रहता हो।

किंतु प्रतिबंध यह है कि राज्य सरकार आदेश दे सकती है कि कोई असिस्टेंट कलेक्टर आफ दि फर्स्ट क्लास, जो उसके द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट किया जाय, संपूर्ण जिले में अथवा उसके किसी भाग में उन समस्त अथवा किन्हीं अधिकारों का, जो इस अधिनियम के अधीन कर निर्धारक प्राधिकारी को प्रदत्त हों, किसी अन्य कर निर्धारक प्राधिकारी के होने पर भी अनन्य रूप से प्रयोग करे।

और प्रतिबंध यह है कि यदि क्षेत्रपति साधारणतया उत्तर प्रदेश में न रहता हो तो कर निर्धारक प्राधिकारी, उस तहसील का जिसके अंतर्गत जोत स्थित हो सब डिवीजनल आफिसर अथवा उस तहसील में क्षेत्राधिकार युक्त असिस्टेंट कलेक्टर, यथास्थिति होगा, और यदि जोत एकाधिक जिलों अथवा तहसीलों में स्थित हो तो यथा स्थिति, ऐसे सब डिवीजनल आफीसरों अथवा असिस्टेंट कलेक्टरों में से कोई एक जिसे क्षेत्रपति नियत रीति से स्वेच्छया चुने। इस प्रकार प्रयुक्त स्वेच्छा सिवाय ऐसे प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के, जिसे नियत किया जाय, परिवर्तित नहीं की जायगी।

और प्रतिबंध यह भी है कि जब पूर्वोक्त स्वेच्छा का प्रयोग न किया गया हो अथवा जहाँ यह प्रश्न उठाया जाय कि कर निर्धारक प्राधिकारियों में से कौन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करे, तो यह विषय ऐसे प्राधिकारी को, जिसे नियत किया जाय, उसके निर्णय के निमित्त, जो अंतिम होगा, अभिदिष्ट किया जायगा।

(२) यदि क्षेत्रपति उस तहसील से भिन्न तहसील में, जिसमें वह साधारणतया रहता हो, कर निर्धारण कराना चाहे तो वह ऐसी अनुज्ञा के निमित्त—

(क) यदि वह तहसील जिसमें वह रहता हो और वह तहसील जिसमें वह कर निर्धारण कराना चाहता हो एक ही जिले में हों, तो जिले के कलेक्टर को, और

(ख) किसी अन्य दशा में ऐसे प्राधिकारी को जिसे नियत किया जाय—

प्रार्थना पत्र देगा।

(३) यदि उस प्राधिकारी के विचार में जिसे प्रार्थना पत्र दिया गया है ऐसा करना कर निर्धारण के सुविधापूर्ण एवं शीघ्र निस्तारण में सहायक होगा तो उपधारा (२) के अधीन प्रार्थित अनुज्ञा दी जा सकती है।

(४) कर निर्धारक प्राधिकारी ऐसे अधिकारों का प्रयोग करेगा तथा ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जो इस अधिनियम अथवा तद्धीन निर्मित नियमों द्वारा उसे प्राप्त हों।

जोतों के विवरण के संबंध में नोटिस।

७—(१) कलेक्टर, प्रत्येक कृषि वर्ष में ऐसे दिनांक पर अथवा उसके पूर्व, जो नियत किया जाय, प्रत्येक क्षेत्रपति से जिसका जोतकर देने का दायित्व हो, नोटिस प्रकाशित करके अपेक्षा करेगा कि ३० दिन से अनधिक ऐसी अवधि के भीतर और ऐसे कर निर्धारक प्राधिकारी के पास, जिन्हें नोटिस में उल्लिखित किया गया हो, क्षेत्रपति नियत रीति से सत्यापित विवरण जिसमें अपने द्वारा इस रूप में उपभुक्त समस्त भूमि का क्षेत्र तथा अन्य ब्योरे उल्लिखित हों, प्रस्तुत करे।

(२) प्रत्येक ऐसे क्षेत्रपति पर भी जो कर निर्धारक प्राधिकारी के मत में जोत कर देने का उत्तरदायी हो, ऐसी रीति से, जो नियत की जाय नोटिस तामील किया जा सकता है जिसमें उससे अपेक्षा की जायगी कि ऐसी अवधि के भीतर जो नोटिस में निर्दिष्ट की जाय और जो तीस दिन से न्यून न हो, नियत आकार पत्र में नियत रीति से सत्यापित करके एक विवरण प्रस्तुत करे। नोटिस के साथ साथ कर निर्धारक प्राधिकारी एक नक्शा भी भेजेगा जिसमें ऐसे व्यक्ति की जोत का वार्षिक मूल्यांकन तथा उसके द्वारा देय कर के अंतर्कालीन तखमीने प्रदर्शित होंगे तखमीना ऐसे रूप में तैयार किया जायगा तथा उसमें ऐसे विवरण होंगे, जो नियत किए जायँ।

किंतु प्रतिबंध यह है कि कर निर्धारक प्राधिकारी, स्वविवेकानुसार, ऐसे विवरण के प्रस्तुत किए जाने के दिनांक को ऐसी अवधि के लिये, जो तीस दिन से अधिक न हो, बढ़ा सकता है।

(३) यदि क्षेत्रपति, जिस पर धारा ६ की उपधारा (१) के द्वितीय प्रतिबंधक के उपबंध लागू हों, उपधारा (१) अथवा (२) के अधीन नोटिस के अनुसरण में आय का विवरण प्रस्तुत करता है, तो वह आय के विवरण के साथ एक प्रख्यापन भी प्रस्तुत करेगा जिसमें पूर्वोक्त प्रतिबंधक के आशयानुसार कर निर्धारक प्राधिकारी से संबद्ध वरण भी बतलायेगा।

(४) यदि उपधारा (२) के अधीन तामील किया गया नोटिस तत्पश्चात् दोषपूर्ण पाया जाय और नए नोटिस की तामील आवश्यक हो जाय, तो वह कृषि वर्ष की समाप्ति होने पर भी तामील किया जा सकता है, किंतु प्रतिबंध यह है कि पहला नोटिस ठीक समय में तामील किया गया हो और उसके तामील से तीन वर्ष समाप्त न हुए हों।

कर निर्धारण

८—(१) जब कर निर्धारक प्राधिकारी को समाधान हो जाय कि धारा ७ के अधीन तैयार किया गया विवरण ठीक तथा पूर्ण है तो वह जोत का वार्षिक मूल्यांकन निर्धारित करेगा और ऐसे विवरण के आधार पर लगाया जाने वाला जोतकर निर्धारित करेगा।

(२) जब कर निर्धारण प्राधिकारी को यह विश्वास करने का कारण हो कि धारा ७ के अधीन तैयार किया गया विवरण अशुद्ध या अपूर्ण है तो वह विवरण भेजने वाले क्षेत्रपति से यह अपेक्षा करेगा कि वह ऐसे दिनांक को, जो निश्चित किया जाय, या तो कर निर्धारक प्राधिकारी के कार्यालय में उपस्थित हो या अपने विवरण की पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करे अथवा कराये।

(३) उपधारा (२) के अधीन निश्चित दिनांक पर या उसके पश्चात् यथाशीघ्र ऐसे साक्ष्य पर जो ऐसा

व्यक्ति प्रस्तुत करे और ऐसे अतिरिक्त साक्ष्य पर जिसकी कर निर्धारक प्राधिकारी अपेक्षा करे, विचार करने के पश्चात् कर निर्धारक प्राधिकारी जोत का वार्षिक मूल्यांकन सुनिश्चित करेगा तथा उस पर लगाए जाने वाले जोत कर का निर्धारण करेगा।

(४) जब कोई व्यक्ति धारा ७ के अधीन विवरण भेजने में असफल रहे अथवा विवरण भेजने के पश्चात् उपधारा (२) अथवा (३) के उपबंधों का अनुपालन करने में असफल रहे तो कर निर्धारक प्राधिकारी धारा ७ की उप धारा (२) के अधीन भेजे गए तखमीनों का उचित ध्यान रखते हुए अपने सर्वोत्तम विवेक से करनिर्धारण करेगा।

इस अध्याय के उपबंधों का विधिक प्रतिनिधि पर लागू किया जाना।

९—यदि क्षेत्रपति धारा ८ के अधीन कर निर्धारण पूर्ण होने के पूर्व मर जाय तो कर निर्धारक प्राधिकारी, नियत रीति से उसके विधिक प्रतिनिधि पर नोटिस तामील कर सकता है, और तब इस अध्याय के उपबंध, उस पर उसी प्रकार लागू होंगे, मानों ऐसा विधिक प्रतिनिधि मृत क्षेत्रपति हो।

मांग की नोटिस।

१०—जब धारा ८ के अधीन कर निर्धारण हो गया हो जो कर निर्धारक प्राधिकारी नियत आकार में नोटिस द्वारा मांग प्रस्तुत करेगा, जिसमें कर दाता द्वारा देय जो कर की धनराशि तथा उस दिनांक अथवा उन दिनांकों को जिनके भीतर कर दिया जाय, निर्दिष्ट करेगा। कर निर्धारण आज्ञा की एक प्रतिलिपि भी नोटिस के साथ भेजी जायगी।

जोत कर के निर्धारण के विरुद्ध अपील।

११—(१) कोई भी करदाता, जो धारा ८ के अधीन निर्धारित जोतकर की धनराशि अथवा दर के संबंध में कर निर्धारक प्राधिकारी की आज्ञा से अथवा जोत पर इस अधिनियम के अधीन करके दायित्व संबंधी आज्ञा से क्षुब्ध हो तो वह धारा १० के अधीन मांग के नोटिस की प्राप्ति के दिनांक से तीस दिन के भीतर कमिश्नर के यहाँ अपील कर सकता है।

(२) उपधारा (१) के अभिदिष्ट तीस दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी कमिश्नर अपील गृहीत कर सकता है, यदि उसका समाधान हो जाय कि उक्त अवधि के भीतर अपील न प्रस्तुत करने का समुचित कारण विद्यमान था।

(३) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील नियत रीति से प्रस्तुत एवं सत्यापित की जायगी।

(४) कमिश्नर अपील पर ऐसी आज्ञा पारित करेगा, जिसे वह उचित समझे तथा इस आज्ञा की एक एक प्रति अपीलकर्ता, कर निर्धारक प्राधिकारी तथा ऐसे अन्य प्राधिकारी को, जिसे नियत किया जाय, भेजेगा।

किंतु प्रतिबंध यह है कि इस धारा के अधीन जोतकर तब तक नहीं बढ़ाया जायगा जब तक कि अपीलकर्ता को कर बढ़ाये जाने के विरुद्ध कारण प्रदर्शित करने का समुचित अवसर न दिया गया हो।

पुनरीक्षण

१२—(१) माल बोर्ड (बोर्ड आफ रेवेन्यू) या तो स्वयं अथवा प्रार्थनापत्र दिये जाने पर उस कर निर्धारण प्राधिकारी अथवा उस अपील सुनने वाले अधिकारी द्वारा, जिन्होंने वाद या अपील का निर्णय किया हो, की गयी कार्यवाहियों का अभिलेख मँगवा सकता है, यदि ऐसा प्रतीत हो कि इनमें से किसी ने विधि द्वारा अपने में अनिहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है अथवा अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अवैधता अथवा सारवान अनियमितता की है, तथा इस संबंध में ऐसी आज्ञाएँ पारित कर सकता है जिन्हें वह उचित समझे।

किंतु प्रतिबंध यह है कि ऐसा प्रार्थना पत्र किसी ऐसी दशा में नहीं लिया जायगा जिसमें आज्ञा के विरुद्ध

हुए। व्यावहारिक पुनरावेदन सं० २७ उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रस्तुत है तथा व्यावहारिक पुनरावेदन सं० २८ नीचे के न्यायालय के प्रार्थी द्वारा। इस निर्णय में जिसके अंतर्गत दोनों ही पुनरावेदन हैं संक्षेपीकरण के लिये हम लोग उत्तर प्रदेश राज्य को संक्षेप में पुनरावेदक तथा उच्च न्यायालय के प्रार्थी श्री मनबोधन लाल श्रीवास्तव को उत्तरवादी कहेंगे।

निम्नलिखित तथ्यों का वर्णन आवश्यक है। सन् १९२० ई० में उत्तरवादी की नियुक्ति उत्तर प्रदेश राज्य के शिक्षा विभाग में हुई थी। साधारण रीति से उसकी पदोन्नति संयुक्त प्रदेश शिक्षा सेवा (जूनियर श्रेणी) में हुई। यह सन् १९४६ ई० में हुआ। सन् १९४८ ई० में उत्तरवादी की नियुक्ति शिक्षा विभाग से प्रकाशित 'शिक्षा' नामक पाक्षिक पत्रिका के व्यवस्थापन संपादक की जगह तथा विशेष कार्याधिकारी के पद पर हुई। विशेष कार्याधिकारी के पद पर कार्य करते समय उत्तर वादी पुस्तक प्रवरण समिति का सदस्य भी नियुक्त किया गया। वह सन् १९५१ तक इस प्रकार कार्य करता रहा। समिति के सदस्य के रूप में उत्तरवादी की चाल चलन संतोषजनक इसलिए नहीं पाई गई कि उसका स्वार्थ सार्वजनिक कर्तव्य में बाधक हो गया। यह ज्ञात हुआ कि अनुमोदित सूची की पुस्तकों के प्रवरण में कुछ पुस्तकों के बारे में उसने पक्षपात किया है। ये पुस्तकें उसके केवल एक चौदह वर्षीय भतीजा द्वारा, एक दूसरे संबंधी द्वारा तथा प्रकाशकों के एक उस फर्म द्वारा भी लिखी हुई कही गई थीं जिसने उसको व्याज पर रुपया उधार दिया था।

जुलाई सन् १९५२ ई० में उत्तरवादी का स्थानांतरण किसी हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर किया गया किंतु उसने इस नियुक्ति पर कार्यारंभ नहीं किया और अस्वस्थता के आधार पर छुट्टी ले ली। जब वह छुट्टी पर था तभी २ अगस्त सन् १९५२ ई० से सेवा से निलंबित (ससपेंड) कर दिया गया। उसी वर्ष सितंबर महीने में उत्तरवादी के विरुद्ध शिक्षा संचालक ने आरोप लगाया और अपने बचत संबंधी लिखित अभिकथन को प्रस्तुत करने तथा इसके समर्थन में साक्ष्य उपस्थित करने का इसे अवसर प्रदान करने के संबंध में आदेश दिया। इस मामले के लिये सिवा इस कथन के कि वे पुस्तकें उसके असाधारण भतीजे तथा अन्य संबंधियों द्वारा लिखी हुई कही गई थीं यह आवश्यक नहीं है कि इसके विरुद्ध आरोपों का वर्णन किया जाय। आरोपों का प्रमुख विषय उन पुस्तकों के विवरण के संबंध में था कि उसने समिति को अभिकथित लेखकों तथा अपने संबंध के बारे में सूचना नहीं दी जब कि उन पुस्तकों का प्रवरण उन संबंधियों को आर्थिक लाभ पहुँचाने वाला था। दूसरे आरोप का प्रमुख विषय था कि जिस समिति का वह सदस्य था उसी समिति द्वारा किसी प्रकाशकों के एक फर्म की लगभग द्वादशक पुस्तकों का प्रवरण हुआ था और इस प्रकार उसने फर्म को लाभ पहुँचाया।

उत्तरवादी ने प्रतिवाद में एक विस्तृत लिखित अभिकथन प्रेषित किया था और साक्षियों के मौखिक अभिकथन पर आग्रह नहीं किया। अपने कथन के समर्थन में उसने कुछ शपथ पत्र संलग्न किया था। शिक्षा संचालक ने आरोपों की समुचित जाँच के पश्चात् प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि उसके विरुद्ध आरोप पूर्णतया प्रमाणित हैं। इन्होंने अभिस्तावित किया कि उत्तरवादी को अधरिक शिक्षण सेवा (सबार्डिनेट एजूकेशन सर्विस) में पदावनत कर दिया जाय और उसको सेवानिवृत्त होने के लिये बाध्य किया जाय। उक्त प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् सरकार ने ७ नवंबर सन् १९५२ ई० को निश्चय किया कि संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) के अंतर्गत उत्तरवादी इसका कारण दिखलावे कि विभागीय जाँच के प्रतिवेदन में जिस दंड के दिए जाने का सुझाव है उसे क्यों न दिया जाय। १३ नवंबर सन् १९५२ ई० को उत्तरवादी को कारण दिखलाने की सूचना मिलने पर उसने अपने पहले वाले प्रतिवाद के ढंग का एक लंबा लिखित प्रत्युत्तर प्रेषित किया। इसमें आपत्ति का प्रमुख विषय उपपत्ति (फाइंडिंग) का गुण तथा जाँच के समय काम में लाई गई प्रक्रिया भी थी। प्रस्तावित दंड के विरुद्ध भी उसने कारण दिखलाया।

९ जनवरी सन् १९५३ ई० को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। इस विज्ञप्ति में शिक्षा विभाग के उन

कर्मचारियों का नाम था जो सामान्य क्रम में अधिवार्षिक (सुपरएनिवेशन) पर तात्पर्य कि ५५ वर्ष की आयु पर और तद्स्थानीय अधिवार्षिक तिथियों पर सेवा निवृत्त होते। उन लोगों में से उत्तरवादी भी एक है और अंतिम स्तंभ जो सेवा निवृत्त होने की तिथि के लिये बना है उसमें उत्तरवादी के नाम के आगे १५ सितंबर सन् १९५३ लिखा है। २ फरवरी सन् १९५३ ई० को उत्तरवादी ने प्रथम प्रार्थनापत्र (लेख प्रार्थनापत्र सं० १२१, १९५३) प्रस्तुत किया। इसमें उसने सरकार के निलंबन आदेश (ससपेंसन) और निलंबन की तिथि से श्रेणी में न्यूनीकरण न करने के कारण दिखलाने तथा अनिवार्य सेवा निवृत्ति के आदेशों की वैधता पर आपत्ति की। उस प्रार्थनापत्र में उसने संपूर्ण प्रक्रिया की वैधता पर भी आपत्ति की और परमादेश लेख के लिये प्रार्थना किया कि उससे सरकार को निर्देश किया जाय कि वह उसकी निलंबन की अवधि तक का पूरा वेतन दे जब तक वह उपर्युक्त अधिवार्षिक (सुपरएनिवेशन) आयु तक न पहुँच जाय। जान पड़ता है कि यह समझ कर कि कदाचित् उत्तरवादी को कारण दिखलाने की नवंबर १९५२ की सूचना संविधान के अभिप्राय के अनुकूल युक्तिसंगत अवसर दिये जाने की शर्त का पूरा पालन न करे शिक्षा संचालक ने दिनांक १६ जून सन् १९५३ ई० को एक उपरि पत्र के साथ उत्तरवादी के पास जाँच के प्रतिवेदन की प्रतिलिपि भेजा और पुनः उसको कारण दिखलाने को कहा कि क्यों न श्रेणी के न्यूनीकरण का प्रस्तावित दंड उसे दिया जाय। राज्य जनसेवा आयोग जिसे हम आयोग (कमीशन) कहेंगे की भी परामर्श सरकार ने जाँच के फलस्वरूप दंड दिए जाने के विषय में लिया। अनुमानतः दूसरी कारण दिखलाने की सूचना की तिथि तक की सभी संबद्ध सामग्री आयोग को भेजी जा चुकी थी। आयोग से परामर्श ली गई थी किंतु उच्च न्यायालय की उपपत्ति (फाइंडिंग) से यह प्रतीत होता है कि उत्तरवादी का दिनांक ३ जुलाई सन् १९५३ ई० को दिया गया लिखित प्रत्युत्तर आयोग के समक्ष नहीं था। ३ जुलाई सन् १९५३ ई० को प्रेषित किया गया प्रत्युत्तर बहुत ही विस्तृत एवं स्पष्ट था। इसका संबंध उसके विरुद्ध लगाए गए केवल तीन आरोपों तक ही सीमित नहीं था परंतु जाँच करने वाले कर्मचारी के अन्य संबद्ध उपपत्तियों (फाइंडिंग्स) के विषय में भी था। जाँच के संबंध में उत्तरवादी की क्षमता एवं आचरण के संबंध में भी विचार व्यक्त किए गए थे जो आरोपों के कई शीर्षकों में से किसी से संबंध नहीं रखते थे और जिसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। आयोग की संमति, जाँच का प्रतिवेदन एवं उत्तरवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए कतिपय प्रत्युत्तरों पर विचार करने के पश्चात् राज्य सरकारों ने दिनांक १२ सितंबर सन् १९५३ ई० को अपना अंतिम आदेश पारित किया। इस आदेश द्वारा उत्तरवादी को यू० पी० शैक्षण सेवा (अवर श्रेणी) (जूनियर स्केल) से उत्तर प्रदेश अधरिक शैक्षण सेवा (सबार्डिनेट एजूकेशन सर्विस) में करके उसकी श्रेणी २ अगस्त १९५२ ई० से नीची कर दी गई तथा सेवा निवृत्त होने के लिये बाध्य किया गया। जैसा पहले दिखलाया जा चुका है कि साधारण क्रम में उत्तरवादी १५ सितंबर सन् १९५३ ई० को सेवा निवृत्त होता इसलिए अनिवार्य सेवा निवृत्त होने का आदेश कुछ अंशों में निरर्थक था। उच्च न्यायालय ने प्रथम लेख प्रार्थनापत्र की अंश में सुनवाई किया था और वह चल ही रहा था कि इसी बीच प्रायः उपर्युक्त आधार पर एवं साहाय्य के लिये उत्तरवादी ने द्वितीय लेख प्रार्थनापत्र (लेख प्रार्थनापत्र सं० ८१७, १९५३) दिनांक २३ सितंबर सन् १९५३ ई० को प्रस्तुत किया। उच्च न्यायालय के विभागीय न्यायासन ने जिसके पीठासीन अधिकारी मुख्य न्यायाधीश थे दिनांक ८ जनवरी सन् १९५४ ई० के निर्णय और आदेश में दोनों लेख प्रार्थनापत्रों का निवर्तन किया। निर्णय हुआ कि प्रश्नगत् आदेश संविधान के अनुच्छेद ३२० (३) (सी) के उपबंधों का पूर्णतया पालन न करने से अवैध हैं कारण कि उत्तरवादी द्वारा लिखित प्रत्युत्तर जो दिनांक ३ जुलाई सन् १९५३ ई० को प्रस्तुत किया गया था वह आयोग के समक्ष नहीं रखा गया था। इसलिये उच्च-न्यायालय ने सरकार के उस आदेश को अभिखंडित कर दिया जो उत्तरवादी की श्रेणी के न्यूनीकरण तथा उसके

वेतन को निलंबन की तिथि से कम करने के लिये दिया गया था। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के बारे में कोई आदेश नहीं पारित हुआ क्योंकि उच्च न्यायालय के निर्णय के पहले ही साधारण क्रम में वह सेवानिवृत्त हो चुका था। पुनरावेदक ने उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश के इस अंश के विरुद्ध पुनरावेदन सं० २७ प्रस्तुत किया। सरकार के प्रश्नगत् आदेश द्वारा उत्तरवादी को जो निलंबन की अवधि के वेतन से वंचित कर दिया गया था उस पूरे वेतन के लिये उत्तरवादी ने प्रार्थना किया था किंतु उच्च न्यायालय ने उसे अस्वीकार कर दिया। निर्णय के इस अंश के विरुद्ध उत्तरवादी ने पुनरावेदन सं० २८ प्रस्तुत किया है। यह स्पष्ट है कि यदि राज्य सरकार का पुनरावेदन सुप्रमाणित माना जाता है और इस न्यायालय द्वारा वह स्वीकृत होता है तो उत्तरवादी का पुनरावेदन बिना अतिरिक्त विचार के असफल होना चाहिए।

इन पुनरावेदनों के विवाद के गुणों पर विचार करने के पहले इस कथन का वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है कि पुनरावेदक की ओर से उपस्थित होने वाले श्री माथुर का इस न्यायालय में प्रतर्क प्रस्तुत करने के समय यह प्रस्ताव था कि इस न्यायालय के समक्ष आरंभिक सभी अभिलेख एवं कुछ शपथपत्र इस बात को देखने के लिये रखे जाँय कि वास्तव में राज्य सरकार एवं आयोग के बीच परामर्श संबंधी सभी संबद्ध तथ्य उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं रखे गए थे और इस अवस्था में यदि अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाय तो वे इस न्यायालय को इस बात से संतुष्ट कर देंगे कि उत्तरवादी ने दूसरे कारण दिखलाने की सूचना पर जो अपना प्रत्युत्तर प्रेषित किया था उसके पश्चात् भी आयोग से परामर्श की गई थी। हम लोगों के समक्ष रखने के लिये प्रस्तावित अतिरिक्त साक्ष्य को देखे बिना ही हम लोगों ने विचार व्यक्त किया कि जब राज्य सरकार को स्वतः संबद्ध सामग्रियों को उच्च न्यायालय के समक्ष रखने के लिये पर्याप्त अवसर था और ऐसा नहीं हुआ तो इस अवस्था में हम लोग अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की अनुमति नहीं देंगे। इस न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य उपस्थित करने की अनुमति के लिये कोई विशेष कारण नहीं था। इसका सुझाव नहीं था कि वे सब सामग्रियाँ जिनका इस न्यायालय के समक्ष रखने का प्रस्ताव था वे सब उच्च न्यायालय के दो अवसरों पर लेख प्रार्थनापत्रों की सुनवाई के समय राज्य सरकार को उपलब्ध नहीं थीं। अपने वाद को उचित समय में उपस्थित करने में जो कमी रह जाती है उस कमी को दूर करने तथा अंतर को भरने के लिये यह सुनिश्चित हो चुका है कि उस पक्ष का अतिरिक्त साक्ष्य अनुमित नहीं होना चाहिए। जब स्वतः न्यायालय को पक्षों के बीच न्याय करने के लिये कुछ साक्ष्य उपस्थित किए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है तब निस्संदेह परिस्थिति दूसरी हो जाती है।

इस अवस्था में हम लोग इस अभिधारणा पर आगे बढ़े हैं कि उत्तरवादी ने जो प्रथम कारण दिखलाने वाली सूचना पर अपना प्रत्युत्तर प्रेषित किया था उसके पश्चात् यद्यपि आयोग से उत्तरवादी के अभियोगी होने या न होने और उसके विरुद्ध कार्यवाई करने के प्रस्ताव के विषय में परामर्श ली गई थी किंतु जब दूसरे कारण दिखलाने की सूचना मिलने पर उत्तरवादी ने अपना विस्तृत एवं स्पष्ट प्रत्युत्तर प्रेषित किया तो उसके पश्चात् आयोग से परामर्श नहीं की गई।

इसलिए पुनरावेदन सं० २७, १९५५ में विवाद का का मुख्य प्रश्न है कि उच्च न्यायालय का विचार कि संविधान का अनुच्छेद ३११ अनुछेद ३२० (३) (सी०) के उन उपबंधों के अधीन था कि नहीं जो अधिदेशक थे और इस प्रकार वर्तमान वाद में उन उपबंधों का पालन न किया जाना उस प्रक्रिया के लिये घातक था कि नहीं जिसका अंत सरकार द्वारा पारित दिनांक १२ सितंबर १९५३ के आदेश के साथ हुआ।

उच्च न्यायालय इस अभिधारणा के साथ चला कि संविधान के उपर्युक्त उपबंध अधिदेशक हैं और इसी अभिधारणा पर वह आगे के विचारविमर्श में इस प्रश्न पर विचार करने के लिये आगे बढ़ा कि राज्य सरकार द्वारा उन उपबंधों का पालन न किया जाना प्रस्तुत वाद में उत्तरवादी को प्रश्नगत् आदेश की वैधता पर प्रश्न करने लिये अधिकृत करता है कि नहीं। इस संबंध में उच्च न्यायालय को ज्ञात हुआ कि किसी समय जून सन्

१६५३ ई० में उच्च न्यायालय से परामर्श ली गई थी। उपर्युक्त कथनानुसार यह मानना पड़ता है कि दूसरी कारण दिखलाने वाली सूचना के प्रत्युत्तर में उत्तरवादी ने जो अपनी विस्तृत एवं और स्पष्ट लिखित व्याख्या ३ जुलाई को दी थी वह आयोग के समक्ष नहीं थी।

उच्च न्यायालय इस मत का था कि यदि वह व्याख्या आयोग के समक्ष रखी गई होती तो राज्य सरकार को इसकी सलाह उन शब्दों में न होती जो वास्तव में दी गई थी और जिस पर अन्य संबद्ध सामग्रियों के साथ विचार करने के पश्चात् राज्य सरकार ने प्रस्तुत प्रश्नगत् आदेश पारित किया। प्रस्तुत वाद के लिये हम लोगों की अभिधारणा होगी कि आयोग से परामर्श करने में केवल अनियमितता थी परामर्श का पूर्ण रूपेण अभाव नहीं था। अब प्रश्न है कि राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक १२ सितंबर सन् १६५३ ई० के आदेश पर आपत्ति करने के लिये क्या उत्तरवादी को यह अनियमितता वादमूल (काज आफ् ऐक्शन) प्रदान करती है ? आदेश के उस अंश की जो उसके अनिवार्य सेवा निवृत्ति से संबंध रखती है सरलता से उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि किसी भी दशा में केवल तीन दिन पश्चात् दिनांक १५ सितंबर को उत्तरवादी सामान्य क्रम में सेवा निवृत्त हो गया। इसलिए सरकार के अंतिम आदेश का उत्तरवादी के विरुद्ध प्रवर्ती अंश वह था जिस आदेश द्वारा उसकी श्रेणी प्रांतीय से अवरिक में नीची कर दी गई। प्रतीत होता है कि वह आदेश संविधान के अनुच्छेद ३११ के प्रतिबंधों का पालन करता है। जहाँ तक पुनरावेदक का संबंध है विवाद की किसी अवस्था में यह सुझाव नहीं दिया गया है कि उत्तरवादी को 'अपने संबंध में प्रस्तावित कार्यवाई करने के विरुद्ध कारण दिखलाने के लिये युक्तियुक्त अवसर' नहीं प्रदान किया गया। पुनरावेकक ने उत्तरवादी के विरुद्ध विभागीय जाँच किया और परिणामतः उसकी श्रेणी नीची की गई। यह समस्त प्रक्रिया संविधान के भाग १४, अध्याय १ के अधिदेशक उपबंधों का पालन अनुच्छेद ३११ के विशिष्ट अभिदेश के साथ करती है। तात्पर्य यह कि उक्त विषय अब प्रश्नगत नहीं है। वह निष्कर्ष उत्तरवादी के मामले को समाप्त कर देगा जब तक यह निर्णय नहीं हो जाता है कि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के उपबंधों का लक्षण अधिदेशक तथा उनका स्वभाव अनुच्छेद ३११ की अनुवृद्धि का सा है। ज्ञात होता है कि जिस रूप में यह प्रश्न हम लोगों के समक्ष उठाया गया है उस ढंग का निर्णय इस न्यायालय ने नहीं किया है। पी० जोसेफ जान वि० ट्रावनकोर कोचीन राज्य (१६५५) १ एस० सी० आर० १०११ में तनिक भिन्न परिस्थितियों में राज्य जन सेवा आयोग से परामर्श करने का प्रश्न उठाया गया था। जनसेवक के आचरण संबंधी जाँच का फल सरकार के समक्ष पहुँच चुका था और दंड के अन्वीक्षात्मक निर्णय के पश्चात् आयोग की परामर्श ली गई थी और आयोग ने प्रस्तावित काररवाई से सहमति प्रकट किया था। जन सेवक को अपने विरुद्ध प्रस्तावित काररवाई के विरुद्ध कारण दिखलाने के लिये जब कहा गया था उसके पहले ही यह परामर्श और सहमति प्राप्त कर ली गई थी। उसकी आपत्ति थी कि जब उसने सरकार से उसके पहले के आदेश के पुनर्वलोकन के लिये प्रार्थना किया तो उसके पश्चात् भी आयोग की परामर्श ली जानी चाहिए थी। इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि वह जितनी बार सरकार से पुनर्वलोकन के लिये प्रार्थना करे उतनी बार सरकार आयोग से परामर्श करने के लिये बाध्य नहीं है। उस मामले में इस न्यायालय ने इस पर विचार-विमर्श नहीं किया और संविधान के अनुच्छेद ३२० के अभिकथित अधिदेशक लक्षण पर अधिघोषणा किया। अस्तु ऐसा समझना चाहिए कि पहली बार हम लोगों को इस विषय पर निर्णय देना है यद्यपि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के शब्दों के ठीक अर्थ के अनुसार पुनर्वलोकन के लिये प्रार्थनापत्र "आवेदनों और याचिकाओं" (मेमोरियल्स ऐंड पेटिशन्स) शब्दों के अंतर्गत होगा।

अनुच्छेद ३२० (३) (सी) इन शब्दों में है:—

'३२० (३) संघ जन सेवा आयोग या राज्य जन सेवा आयोग की जैसी अवस्था हो परामर्श ली जायगी।

(अ)......

(ब)......

(स) अनुशासन संबंधी उन समस्त मामलों में जिनमें तत्संबंधी अभ्यावेदन या याचिकायें भी शामिल हैं और जो उन व्यक्तियों से संबंधित हों जो भारत सरकार या राज्य सरकार के अंतर्गत व्यवहार रूप में सेवा कार्य कर रहे हों।

अनुच्छेद ३२० भाग १४, अध्याय १ के 'सेवायें' शीर्षक के अंतर्गत नहीं आता। यह उस भाग के अध्याय २ के 'जन सेवा आयोग' शीर्षक के अंतर्गत आता है। अनुच्छेद ३२० और ३२३ जन सेवा आयोग के अनेक कर्तव्यों के विषय में हैं। अनुच्छेद ३२३ ऐसे 'अतिरिक्त प्रकार्यों' (ऐडिशनल फंक्शंस) के बारे में है जो संसद या किसी राज्य विधान मंडल द्वारा दिए जायँ। अनुच्छेद ३२० और ३२३ का आरंभ इन शब्दों से होता है—'यह कर्तव्य होगा कि......' और तब वह संघ या राज्य जन सेवा आयोग के कतिपय कर्तव्यों एवं प्रकार्यों के निर्धारण के लिये बढ़ता है जैसे नियुक्तियों के लिये परीक्षा लेना, संयुक्त भर्ती की योजनाओं के बनाने और चलाने में सहायता प्रदान करना भर्ती के ढंग और व्यावहारिक सेवाओं के सिद्धांत बनाने के सभी विषयों में अपनी परामर्श लिया जाना तथा व्यावहारिक सेवक का अनुशासन संबंधी समस्त विषय।

अनुच्छेद ३२० के कई भागों में 'शैल' शब्द का प्रयोग होने से उच्च न्यायालय कदाचित् यह मानने की ओर घूम गया कि उपबंध ३२० (३) (सी०) के उपबंध अधिदेशक थे। किन्तु हमारे विचार से इसके विरुद्ध मानने के लिए कई प्रबल कारण हैं। प्रथमतः अनुच्छेद ३२० का परंतुक (प्राविजो) स्वतः इस अभिप्राय का है कि जैसी अवस्था हो राष्ट्रपति या राज्यपाल 'विषय' का निर्देश करते हुए नियम बना सकते हैं कि उन विषयों के बारे में या तो साधारणतया या विशेष प्रकार के मामले में या विशिष्ट परिस्थितियों में जन-सेवा-आयोग की परामर्श आवश्यक नहीं होगी'। उपर्युक्त उद्धृत शब्द संविधान निर्माताओं के इस अभिप्राय के स्पष्ट द्योतक हैं कि उन्होंने निश्चय ही कुछ मामलों या मामलों के समुदाय की कल्पना की थी जिनमें आयोग की परामर्श की आवश्यकता नहीं थी। यदि अनुच्छेद ३२० के उपबंधों का अभिप्राय अधिदेशक होता तो संविधान ने निष्पादी सरकार के शीर्षस्थ अधिकारियों के स्वविवेक पर इसको न छोड़ा होता कि वे इसके विरुद्ध नियम बना कर उन उपबंधों के प्रभाव को शून्य कर दें। यदि संविधान निर्माताओं का अभिप्राय होता कि आयोग से परामर्श करने की बात अधिदेशक (मैनडेटरी) होनी चाहिए तो अनुच्छेद में परंतुक न होता और यदि होता भी तो इन शब्दों में न होता। उसका अभिप्राय इतना नहीं हो जाता कि निष्पादी शासन (एक्जिक्यूटिव गवर्नमेंट) चाहे तो आयोग (कमीशन) के अस्तित्व की पूर्णतया उपेक्षा कर दे और इसकी परामर्श लेने या न लेने योग्य वादों को चुन ले। एक बार जब संबद्ध नियम बन चुके हैं तो इसका अभिप्राय है कि उसका अक्षरशः एवं तत्वतः पालन होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि जनसेवक के अनुशासन संबंधी सभी विषयों में आयोग से परामर्श लेने का विशेष रूप से विधान है। पहला यह इसलिए कि सेवाओं से संबद्ध व्यक्तियों को यह आश्वासन रहे कि एक पूर्णरूपेण स्वतंत्र संस्था ने जो हमारे विरुद्ध आदेशों से संबंधित नहीं है, निष्पक्ष रूप से विचार किया है। दूसरा इसलिए कि जनसेवकों के नैतिक स्तर संबंधी महत्वपूर्ण विषय पर आयोग शासन को निष्पक्ष परामर्श एवं सम्मति दे सके। इसलिए निष्पादी शासन का यह है कि जब यह जन सेवक के विरुद्ध कारवाई करने का प्रस्ताव करे तो आयोग से परामर्श कर ले कि प्रस्तावित कारवाई में औचित्य है कि नहीं अथवा परिस्थिति की आवश्यकताओं से अधिक तो नहीं है।

द्वितीयतः यह स्पष्ट है कि आयोग से परामर्श करने की आवश्यकता का विस्तार यहाँ तक नहीं हो जाता कि उन विषयों पर आयोग की सलाह मानने के लिये सरकार बाध्य है। वास्तव में सरकार ऐसे मामलों में जब आयोग से परामर्श लेती है तो यह केवल औपचारिक ही नहीं होता वरन् जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जा रही है उसके अभियोगी होने या न होने के निर्धारण के निमित्त

उचित सहायता प्राप्त करने के विचार से तथा प्रस्तावित दंड का दिया जाना उपयुक्त और पर्याप्त है कि नहीं इसके लिये परामर्श लेती है।

यदि आयोग की संमति का मानना सरकार के लिये अनिवार्य होता तो बहुत बलपूर्वक यह प्रतर्क रखा जा सकता था कि परामर्श करने के नियम का पालन न करना उस आदेश की वैधता के लिये घातक होता जिसका जन सेवक के विरुद्ध पारित किए जाने का प्रस्ताव हो। इसके ऐसे अनिवार्य लक्षण के अभाव में यह कठिन दीखता है कि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के उपबंधों के न पालन करने का प्रभाव सरकार द्वारा पारित अंतिम आदेश को कैसे शून्य कर सकता था।

तृतीयतः संविधान में भाग १४ अध्याय २ के अनुच्छेद ३२० या अन्य अनुच्छेद आयोग के विधान, आयोग के अध्यक्ष तथा उसके अन्य सदस्यों की नियुक्ति, निष्कासन तथा उनकी सेवा के अनुबंध तथा उनके कर्तव्यों एवं प्रकार्यों का भी वर्णन करते हैं। अध्याय २ सरकार और आयोग के बीच संबंध के विषय में है आयोग और किसी जनसेवक के बीच के संबंध के विषय में नहीं। अध्याय २, जिसमें अनुच्छेद ३२० है, के शब्द जनसेवक को एकैक (इंडिविजुअल) अवस्था में कोई अधिकार या विशेषाधिकार नहीं प्रदान करते या न तो उस भाग के अध्याय १ में दिए गए प्रकार का, विशेषतः अनुच्छेद ३११ के ढंग का कोई संविधानीय प्रत्याभूत ही प्रदान करते हैं। इसलिए अनुच्छेद ३११ किसी प्रकार भाग १४ अध्याय २ के उपबंधों से और विशेषतः अनुच्छेद ३२० से नियंत्रित नहीं है।

इस प्रश्न को एक दूसरे दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। अनुच्छेद ३२० (३) (सी) की आवश्यकताओं के पालन न करने से क्या होगा, इस संभाव्यता के लिये क्या संविधान ने कुछ दिया है? स्पष्ट शब्दों में या ध्वनितार्थ में ऐसा नहीं दिया हुआ है कि इसके पालन करने से वह प्रक्रिया अवैध हो जायगी जिसका परिणाम सरकार का अंतिम आदेश था। संविधान के भाग १४ से संबद्ध उपबंधों का यह पक्ष इस प्रश्न से सीधा संबंध रखता है कि अनुच्छेद ३२० अधिदेशक है कि नहीं। यह प्रश्न कि किसी परिनियम में कोई उपबंध जो किसी लोकसंस्था या प्राधिकारी के लिये किसी कर्तव्य का विधान करता है वह अधिदेशक है या केवल निदेशक प्रिवी कौंसिल के न्यायिक समिति के श्रीपतियों के समक्ष मोंट्रियल स्ट्रीट रेलवे कंपनी विं० नारमंडन एल० आर० (१९१७) ए० सी० १७० वाद में उठा। उस मामले में विवाद्य प्रश्न था कि परिनियम द्वारा निर्देशित शप्तजन सूची (जूरी लिस्ट) के संशोधन की चूक का प्रभाव एक शप्तजन (जूरी) द्वारा दिए गए निर्णय को प्रभावशून्य कर सकता था या नहीं। श्रीपतियों ने निर्णय दिया कि शप्तजन सूची (जूरी लिस्ट) के उपयुक्त संशोधन की अनियमितता स्वतः शप्तजन (जूरी) के निर्णय को प्रभावहीन नहीं करेगी। मंडल ने निर्णय करते समय निम्नलिखित विचार प्रकट किया—

'प्रश्न कि किसी परिनियम के उपबंध निदेशक हैं या अधिदेशक इस देश में प्रायः उठे हैं किंतु इनके बारे में साधारण नियम नहीं बनाए गए हैं। प्रत्येक अवस्था में परिनियम के उद्देश्य को देखना चाहिए। इस विषय पर वाद मैक्सवेल ने जो परिनियमों पर लिखा है उसके पंचम संस्करण के पृष्ठ ५९६ पर तथा उसके पश्चात् वाले पृष्ठों पर पाए जाएँगे। जब किसी परिनियम के उपबंध जनकर्तव्य (पब्लिक ड्यूटी) के पालन करने से संबंध रखते हैं और अवस्था ऐसी हो जाती है कि इस कर्तव्य की उपेक्षा में किए गए कर्मों को प्रभावहीन तथा शून्य ठहराना उन व्यक्तियों के लिये जिनका कर्ता पर नियंत्रण नहीं है असुविधाकारक और अन्यायपूर्ण होता है तथा साथ ही विधान मंडल के उद्देश्य का पालन नहीं करता तो ऐसे उपबंध केवल निर्देशक समझे जाते हैं। उनकी उपेक्षा यद्यपि दंडनीय है फिर भी किए गए कार्यों की वैधता को प्रभावित नहीं करती।'

संघानीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) वाद विश्वनाथ खेमका वि० किंग इंपरर (१९४५) एफ० सी० आर० ९९ में उस वाद द्वारा निर्धारित सिद्धांत का अनुशीलन किया गया। भारत सरकार अधिनियम

१६३५ (गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट १६३५) की धारा २५६ के उपबंधों में था कि दंडाधिकारीय अधिकारों के प्रदान तथा दंडाधिकारीय अधिकारों इत्यादि में वृद्धि के पूर्व लोक प्राधिकारियों के बीच परामर्श कर ली जाय। न्यायालय ने इस कथन को नहीं माना कि उपर्युक्त धारा २५६ के उपबंध अधिदेशक थे। आगे यह निर्णय हुआ कि यदि नियुक्ति और सब प्रकार से ठीक और विधि पूर्वक हुई है तो केवल धारा के न पालन करने से ही अवैध और अप्रवर्ती (इन आपरेटिव) नहीं होगी। यह निर्णय विशेषतः इसलिए महत्वपूर्ण है कि संधानीय न्यायालय के श्रीपतियों के समक्ष उक्त-धारा के शब्दों में बहुत बल था तथा प्रतिषेधक लक्षण वाले थे।

अनुच्छेद ३२० के शब्दों का परीक्षण दिखलाता है कि अनुच्छेद के प्रत्येक परिच्छेद तथा उसके प्रत्येक वाक्य और उपवाक्य में 'शैल' शब्द आता है। यदि यह निर्णय किया जाय कि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के उपबंध अधिदेशक हैं तो उसी के समान अनुच्छेद के अन्य वाक्यों एवं उपवाक्यों को अधिदेशक मानना पड़ेगा। यदि वे इस प्रकार मान लिए जाते हैं तो संघ या राज्य सेवाओं की कोई नियुक्ति जिसमें अनुच्छेद ३२० के वाक्य ३ के इन उपवाक्यों का ठीक ठीक पालन नहीं हुआ है नियुक्त किए हुए व्यक्ति के प्रतिकूल पड़ेगा जब कि उस व्यक्ति की ओर से कोई त्रुटि नहीं हुई थी और इस मामले में उसका कुछ हाथ नहीं था। संविधान निर्माता ऐसे परिणाम की कल्पना नहीं कर सकते थे। इसलिये किसी परिनियम में प्रयुक्त शब्द 'शैल' यद्यपि साधारणतया अधिदेशक अर्थ में लिया जाता है फिर भी इसका अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक अवस्था में इसका वही अर्थ लिया जायगा। तात्पर्य यह है कि जब परिनियम के शब्दों का अनुसरण ठीक ठीक नहीं किया जाता तो प्रक्रिया तथा प्रक्रिया का परिणाम अवैध होगा। दूसरी ओर यह कथन सर्वदा ठीक नहीं है कि जहाँ 'मे' शब्द प्रयुक्त है वहाँ परिनियम इस अभिप्राय में केवल अनुज्ञापक तथा निर्देशक है कि इन उपबंधों का पालन न करना प्रक्रिया को अवैध नहीं करेगा। इस संबंध में क्राफोर्ड के 'परिनियम की व्याख्या' (स्टैच्युटरी कांस्ट्रक्शन) के पृष्ठ ५१६ पर के अनुच्छेद २६१ का निम्नलिखित उद्धरण महत्वपूर्ण है—

'यह प्रश्न कि परिनियम अधिदेशक है या निदेशक विधान मंडल के अभिप्राय पर निर्भर करता है न कि उसकी भाषा पर जिसमें अभिप्राय आवृत्त है। विधान-मंडल के अर्थ और अभिप्राय (मीनिंग ऐंड इंटेशन) को प्रधानता देनी चाहिए और इनका विनिश्चयन उपबंध की केवल शब्द रचना से ही नहीं प्रत्युत इस विचार के साथ होना चाहिए कि एक प्रकार से विचार करने पर इसका स्वभाव, इसका स्वरूप और इसका परिणाम क्या होगा तथा दूसरे प्रकार के विचार से कैसा होगा।

हम लोगों ने पहले ही व्यक्त कर दिया है कि संविधान का अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) लोक सेवक को कोई ऐसा अधिकार नहीं देता कि परामर्श का अभाव या परामर्श करने की अनियमितता न्यायालय में कार्रवाई करने के लिये वादमूल हो या वह संविधान के अनुच्छेद २२६ में उच्चन्यायलय के विशेष अधिकारों द्वारा या अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत इस न्यायालय से साहाय्य पाने का अधिकारी हो। यह ऐसा अधिकार नहीं है जो अस्वीकृत किया जा सके या लेख द्वारा प्रवर्तित हो। दूसरी ओर अनुच्छेद ३११ का यह अर्थ लगाया गया है कि यह संघ या राज्य के व्यवहारसेवकों को ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिसका वह विधि न्यायालय द्वारा प्रवर्तन (एनफोर्समेंट) कर सकता है। अस्तु यदि अनुच्छेद ३११ के उपबंधों का पालन इस मामले में हुआ है—और ऐसा कहीं नहीं कहा गया है—कि उनका पालन नहीं हुआ है—तो यदि राज्य सरकार ने अनियमितता भी किया हो तो उसके लिये कोई उपाय नहीं है। जब तक कि यह निश्चय न हो सके और जैसा हम लोग मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) का लक्षण अनुच्छेद ३११ की अनुवृद्धि या परंतुक का सा है तब तक अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि स्वामी द्वारा

लोक सेवक के विरुद्ध की गई कार्यवाई के लिये यह वादमूल प्रदान करता है।

इन विचारों के आधार पर यह निर्णय देना चाहिए कि अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के उपबंध अधिदेशक नहीं हैं और उन उपबंधों का पालन न करना उत्तरवादी को विधि न्यायालय में वादमूल नहीं प्रदान करता। इस न्यायालय को इसके आगे विचार नहीं करना है कि उत्तरवादी को कोई और उपाय उपलब्ध है या नहीं। इसलिए पुनरावेदन सं० २७ स्वीकृत किया जाता है और पुनरावेदन सं० २८ निरसित। इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए कि पुनरावेदन ने संविधान के अनुच्छेद ३२० (३) (सी०) के उपबंधों का पालन ठीक से नहीं किया है हम निर्देशित करते हैं कि प्रत्येक पक्ष अपना अपना परिव्यय साद्यंत सहन करे।

---

(१२) राज्य की ओर से यह प्रतर्क रखा जाता है कि न्यायालय ने अपराधी से पूछे गए प्रश्न में विष अधिनियम के अंतर्गत निर्मित नियम के नियम ३ के साथ पठित धारा ६ (ए०) की ओर संकेत किया था और यह तथ्य दिखलायेगा कि इस विषय पर न्यायालय ने अपराधी से प्रश्न अवश्य पूछा। यह प्रश्न स्वतः घुमा फिरा कर पूछे गए प्रश्न के प्रकार का है। अपने भीतर यह प्रश्नों का एक तागा पिरोये हुए है।

नियम ३ दो विषयों से संबंध रखता है। (१) विक्रय (२) विक्रय के लिये धारण। प्रश्न इस बात का स्पष्टीकरण नहीं करता है कि दोनों में से कौन सा वाद अपराधी के विरुद्ध लागू किया गया है। प्रश्न करने की इस ढंग की गणना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३४२ के प्रयोजन को व्यर्थ कर देने में की गई है। ऐसे प्रश्न स्थिति के स्पष्टीकरण की अपेक्षा उसको और उलझन में डालने वाले हो सकते हैं।

(१३) इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रतर्क इस तथ्य की अवहेलना करता है कि अपराधी से जो कुछ पूछा गया वह यही था कि विषालु पदार्थों के धारण में होने से और इससे नियम ३ का उल्लंघन करने से वह अभियोगी था। अपराधी के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करने का एकमात्र आधार न तो "विक्रय" न "विक्रय के लिये धारण" प्रत्युत केवल धारण कहा गया है। मुझे इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार का प्रश्न दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३४२ द्वारा अनुमति दिए गए या इस धारा द्वारा अपेक्षित प्रश्नों के ढंग का नहीं था।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३४२ के उपबंध अपराधी को लाभ पहुँचाने के अभिप्राय से बनाए गए थे। धारा के उपबंधों का अभिप्राय अपराधी को उलझन में डालने का नहीं था न तो इनका अभिप्राय प्रत्यादान (रिकवरी) के हेतु फंदा लगाने का ही था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ३४२ के हितकर उपबंधों के पालन करने का अभिप्राय कभी भी औपचारिक नहीं था। इनके पालन का अभिप्राय वास्तविक, विशुद्ध एवं सारभूत होने से था जिससे न्यायालय इस बात की अधिघोषणा कर सके कि अभियोजन सर्वथा न्यायपूर्ण, उचित एवं स्पष्ट रहा है तथा अपराधी किसी प्रकार की प्रतिकूलता, हानि या भ्रामक अवस्था में नहीं रहा है।

वर्तमान वाद में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त कारणों से तथा इस आधार पर भी मैं यह निश्चित करूँगा कि अपराधी को दोषसिद्धि से निराकृत होने का अधिकार है। वाद की परिस्थितियों से पुनः अन्वीक्षा की आवश्यकता नहीं है। अपराध का ८ वर्ष पहले होना कहा गया था और कोई कारण नहीं है कि अभियोजन को अपनी ही चूक एवं प्रमाद के कारण अन्वीक्षा को लंबी अवधि तक बढ़ाने की अनुमति दी जाय।

(१४) दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) ने विषालु पदार्थों के समापहरण करने का आदेश भी पारित किया है। समापहरण का यह आदेश धारा ६ उपधारा (२) के अंतर्गत पारित किया गया था जो इस प्रकार है—

"कोई विष जिसके संबंध में इस धारा के अंतर्गत अपराध किया गया है, पात्र, संवेष्ठन (पैकेजेज) और आवरण के साथ जिसमें वह पाया गया था राज्यसात् कर लिया जायगा।"

(१५) धारा ६ की उपधारा २ के अंतर्गत समापहरण करने के पूर्व प्रतिबंध यह है कि अपराधी का इस विष के संबंध में अभियोग करना पाया जा चुका हो। यदि अपराधी इस संबंध में दोषमुक्त किया जा चुका है तो मैं यह नहीं समझता कि यह कैसे संभव हो सकता है कि राज्यसात् करने का आदेश चलता रहे। राज्य की ओर से राज्यसात् करने के वर्तमान आदेश को प्राधिकृत करने के लिये विधि का कोई दूसरा उपबंध नहीं दिखलाया गया। इसलिए मैं इस पुनर्निरीक्षण को मान लेता हूँ, अभियुक्त की दोषसिद्धि को निराकृत करता हूँ तथा राज्यसात् की आज्ञा को अभिखंडित करता हूँ। अर्थदंड, यदि दिया गया हो, तो वह प्रत्यर्पित हो जायगा।

पुनर्निरीक्षण स्वीकृत

विधिपत्रिका (१८७६) १६५७ इलाहाबाद—पं० १

श्री अस्थाना—न्यायाधीश

होरीलाल — प्रार्थी

विरुद्ध

विश्वनाथ भाटले इत्यादि — विपक्षीगण

आपराधिक पुनर्निरीक्षण सं० १४२६ सन् १६५५ दिनांक २२-४-१६५७।

(अ) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८६८) धारा ४२३ (१) (ए)—साक्ष्य का अधिमूल्यन—अभियोजन के साक्ष्य की चर्चा में चूक।

जहाँ पुनर्विचारालय अभियोजन के साक्ष्य की नितांत चर्चा न करे और कारण भी न दिखावे कि उसका परित्याग क्यों किया गया, तो अभिमुक्ति की आज्ञा उत्सादित करने योग्य है।

(ब) दंड प्रक्रिया (१८६०) धारा ४६६—प्रथम अपवाद—अभियोजक के नामांकन पर आपत्ति—वक्तव्य कि अभियोजक मद्यप (ड्रंकर्ड) है।

अभियोजक के नामांकन में आपत्ति में वक्तव्य कि अभियोजक मद्यप है किसी भी प्रकार निर्वाचन से संबंधित नहीं है और अभियोजक के लिये अप्रतिष्ठाकारी है।

अभिदिष्ट वाद

अ) ८ कलकत्ता— डब्लू० एन० २६२ : २ क्रि० ला० ज० १२२।

भार० जी० दास — प्रार्थी की ओर से

एस० सी० खरे — विपक्षियों की ओर से

अकील हसन — राज्य की ओर से

आदेश—

यह निम्न पुनर्विचार न्यायालय की विपक्षी विश्वनाथ भाटले की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ५०० के अपराध की, जिसमें अन्वीक्षा न्यायालय द्वारा वह दोषसिद्ध हुआ है, और ६ महीने की साधारण कारावास का तथा १००) अर्थ दंड और न देने पर एक महीने और का कारावास का दंडादेश हुआ है, अभिमुक्ति की आज्ञा के विरुद्ध अभियोजक का पुनर्निरीक्षण है।

(२) प्रतीत होता है कि प्रार्थी होरीलाल तथा विश्वनाथ भाटले दोनों टाउन एरिया कमेटी इकदिल जिला इटावा की चेयरमैनी के लिये प्रतिद्वंदी चुनावार्थी थे। विश्वनाथ भाटले ने प्रार्थी के नामांकन में निम्नलिखित आपत्ति निवेशित किया—

'(१) श्री होरी लाल जी पर दफा १६० कायम रहा है।

(२) उनकी उमर ५५ वर्ष से अधिक है जब कि सरकार हटा देती है।

(३) वे शराबी हैं जो एक नैतिक अपराध है।

(४) शराब और जईफी के कारण जब कभी उन्मादी जैसी अवस्था हो जाती है जो पागलपन का प्रथम चरण है।

(५) उनके चारित्रिक भ्रष्टि के संबंध में सारा कस्बा अफवाहों से आच्छादित है।'

होरीलाल ने भारतीय दंड प्रक्रिया की धारा ५०० के अधीन एक परिवाद (कंप्लेंट) निवेशित किया कि अभियुक्त विश्वनाथ भाटले कृत अभिकथन सं० ३ से ५ मानहानिकर हैं और सद्भाव से नहीं किए गए हैं। अभियुक्त ने औचित्य का अभिकथन किया और कहा कि ये अभिकथन ठीक हैं। दोनों पक्षों ने अन्वीक्षा न्यायालय में ६, ६ साक्षियों का परीक्षण कराया। विद्वान मैजिस्ट्रेट संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करके संतुष्ट नहीं हुए कि उपर्युक्त आरोप ठीक हैं अथवा सद्भावनायुक्त किये गए हैं उनका मत था कि प्रतिवाद के साक्षी हितबद्ध (इंटरेस्टेड) थे और अभियोजक से वैरत्व रखते थे।

अतः उन्होंने अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादेशित किया। विद्वान सेशन जज ने, जिन्होंने पुनरावेदन की सुनवाई की, विद्वान मैजिस्ट्रेट से सहमत नहीं हुए। उनका यह मत हुआ कि अभिलेख में पर्याप्त साक्ष्य यह सिद्ध करने के लिये है कि आरोप, जिनके विरुद्ध परिवाद है, ठीक और उचित हैं। उन्होंने अपने न्यायनिर्णय में यह अभ्युक्ति की कि अभियुक्त के पक्ष में साक्ष्य के भार की अधिकता है। अतः उन्होंने दोषसिद्धि उत्सादित कर दी और अभियुक्त को अभिमुक्त कर दिया।

(३) प्रार्थी की ओर से यह विवाद उपस्थित किया गया है कि विद्वान शेशन जज की उपपत्ति कि अभियुक्त के पक्ष में साक्ष्य का अधिक भार था वह अभिलेख से उचित सिद्ध नहीं होता। यह भी विवाद किया गया है कि विद्वान शेशन जज ने ठीक प्रकार से अभिलेख के साक्ष्यों पर विचार नहीं किया है अतः दोषावह निर्णय पर आ पड़े हैं। अभिलेख के परीक्षण से यह विदित होता है कि प्रत्येक पक्ष से ६ साक्षियों का परीक्षण हुआ है। विद्वान शेशन जज के न्यायनिर्णय के अवलोकन से यह भी विदित होता है कि उन्होंने अभियोजक के साक्ष्य की नितांत चर्चा नहीं की है और न उसके अमान्य करने का कारण ही दिखाया। उन्होंने अपने न्यायनिर्णय में इतना ही उल्लेख किया है कि अभियोजक के प्रत्येक साक्षी ने क्या कहा। उनके ही न्यायनिर्णय से विदित होता है कि प्रतिवाद के कई एक साक्षी स्वतंत्र नहीं हैं। प्रतिवाद साक्षी संख्या १ महावीर सहाय शुक्ल, स्टेशन आफीसर थाना एकदिल, के संबंध में उन्होंने नीचे लिखे विचार प्रकट किए—

'यह सच है कि महावीर सहाय शुक्ल ने कहा कि उन्होंने कभी स्वतः होरीलाल को वस्तुतः मदिरा पान करते नहीं देखा। यह भी सत्य है कि उन्होंने कभी भी होरी लाल को नगर की गलियों में मदिरापान की हुई अवस्था में घूमते हुए नहीं देखा किंतु यही एक विधि नहीं है जिससे जाना जाय कि कोई आदमी नशापान करता है। उन्होंने कहा कि जब वे थाने पर आए तब उन्हें मदिरा पीए हुए अवस्था में पाया।'

प्रतिवाद साक्षी संख्या २, बृज किशोर के संबंध में उन्होंने नीचे लिखे विचार व्यक्त किए।

"यह सच है कि ये साक्षी होरी लाल के किसी सन्निकट मित्र के मैत्री में हैं, जो संबंध बुरे प्रकार का है... "यह सच है कि उसने होरीलाल को वास्तव में मदिरा की दुकान पर मद्यपान करते नहीं देखा पर इससे भी कुछ अधिक सिद्ध न होगा। उसने उसको मतवाली स्थिति में देखा। उससे आशा की जा सकती है कि वह जानता है कि वह मदिरा पीता है या नहीं।"

प्रतिवादसाक्षी संख्या ३ राममूर्ति के संबंध में उन्होंने निम्नलिखित विचार प्रगट किया।

"यह सच है कि यह साक्षी पुनरावेदक के कुटुम्ब का भी नाई है। यह भी सच है कि उसने पुनरावेदक को निर्वाचन में सहायता पहुँचाई।"

प्रतिवाद साक्षी संख्या ३ राममूर्ति के साक्ष्य परीक्षण से यह विदित होता है कि उसने कहा है कि यह वक्तव्य देने के एक वर्ष पहले से वह अभियोजक के यहाँ नहीं गया है। प्रतिवाद साक्षी संख्या ५, मुन्नालाल के संबंध में उनके विचार यह हैं कि उसका मकान टाउन एरिया कमेटी के आधीन किराये पर था जिसका कि अभियुक्त चेयरमैन है। छेदीलाल प्रतिवाद साक्षी संख्या ६ के संबंध में उनका मत है कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा ३६६ के अंतर्गत एक वाद में अभियुक्त था। प्रतिवाद साक्षी संख्या ४ श्रीमती ललिता जिसका परीक्षण यह सिद्ध करने के लिये हुआ कि जब वह किसी सहायता के लिये उनके मकान पर गई तो उन्होंने उसके साथ दुर्व्यवहार किया, विद्वान सेशन जज ने इसे नहीं माना।

स्वयं विद्वान सेशन जज के उपर्युक्त विचारों से विदित होगा कि उन्होंने प्रतिवाद साक्षियों को नितांत स्वतंत्र नहीं माना। इसमें संदेह नहीं कि विद्वान सेशन जज को वाद का निर्णय देते हुए उभय पक्ष के उपस्थित साक्ष्यों पर चर्चा करनी चाहिए थी और तब निर्णय देना चाहिए था कि कौन सा साक्ष्य ठीक है। इस बात की दृष्टि से कि विद्वान सेशन जज ने अभियोजक के साक्ष्य की नितांत चर्चा ही नहीं की और न उसके परित्याग का कारण ही दिखाया मैं समझता हूँ कि अभिमुक्ति की आज्ञा केवल इस आधार पर उत्सादित कर देनी चाहिए।

(४) आवेदक के दूसरे विवाद के संबंध में कि अभियुक्त ने जो आरोप लगाए हैं और जो इस परिवाद का विषय है वह सद्भावपूर्ण नहीं है, अन्वीक्षा मैजिस्ट्रेट ने इस पर विचार व्यक्त किया है कि किसी भी आधार पर होरीलाल का नामांकन अस्वीकृत नहीं हो सकता कारण कि टाउन एरिया की चेअरमैनी के लिये वे अनर्हता (डिस्क्वालिफिकेशन) के वे आधार नहीं हैं।

यह प्रतर्क किया गया कि आपत्ति में मानहानिकर आरोप केवल मात्र आवेदक को कलंकित करने के लिये किया गया और उसके नामांकन को चुनौती देने के लिये नहीं। अपने विवाद के समर्थन में उसने कलकत्ता उच्चन्यायालय के गिरिबालादासी वि० प्राणकिस्टो घोष, ८ कलकत्ता डब्लू० एन० २९२ के वाद के निर्णय की निर्भरता ली। इस वाद में यह निर्णय हुआ था कि यदि मानहानिकर वक्तव्य उस परिस्थिति से संबद्ध नहीं होता जिसमें वह किया गया है तो वह सद्भाव से किया हुआ नहीं माना जायगा और धारा ४९९ का अपवाद ९ व्यवहार में नहीं आएगा।

इस वाद में किसी ब्रह्ममयी दासी के विरुद्ध एक पक्षीय आज्ञप्ति पारित हो गई है। उसने उस आज्ञप्ति के उत्सादन के लिए आवेदन किया था। विपक्षिणी के नाम जो सूचना निकाली गई वह उसके घर से बाहर रहने के कारण अनिर्वाहित (अनसर्वड) लौट आई। ब्रह्ममयी दासी ने अभियोजन के विरुद्ध प्रतिस्थापित (सब्स्टीटयूटेड) निर्वहन (सर्विस) के लिये प्रार्थना की। आवेदन के अभिकथनों के समर्थन में उसने शपथ पत्र निवेशित किया। आवेदन और शपथ पत्र में यह उल्लेख किया गया था कि अभियोजिका बुरे आचरण की थी और यह कि उसने गाँव छोड़ दिया है और उसके रहने का ठिकाना अविदित है। इस वाद में यह निर्णय हुआ कि अभियोजक के आचरण संबंधी आरोप इस वाद से असंबद्ध हैं और मानहानिकारक हैं और आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा ४९९ के अपवाद ९ द्वारा संरक्षित नहीं हैं।

मेरे संमुख अभियुक्त की ओर से इसका विवाद नहीं है कि प्रस्तुत वाद के परिवादित आरोप होरीलाल के नामांकन की प्रतिद्वंदिता में आवश्यक नहीं थे और न तो ये कोई आधार थे जिन पर उसका नामांकन अस्वीकृत होता। ऐसी परिस्थिति में यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ने ये मानहानिकर अभिकथन केवल प्रार्थी को कलंकित करने के लिये किया था और किसी प्रकार भी निर्वाचन से संबंधित नहीं थे। अस्तु, विद्वान शेशन जज ने अपने न्यायनिर्णय में प्रश्न के इस स्वरूप पर विचार नहीं किया है यद्यपि अन्वीक्षा न्यायालय के न्यायनिर्णय में यह स्पष्टरूपेण उल्लिखित था।

(५) अस्तु, इसमें संदेह नहीं कि ऊपर अभिदिष्ट तथा अभियुक्त द्वारा स्वीकृत आरोप अभियोजक के लिये मानहानिकर हैं और जब तक कि वे सत्य, सद्भावपूर्ण किए गए और जनहिताय न हों, वे प्रतिरक्षित नहीं हैं। मैं इस विषय पर अपना मत प्रगट नहीं करना चाहता कि ये आरोप सत्य और ठीक हैं और सद्भावना से किए गए हैं या नहीं क्योंकि मैंने वाद को निम्न न्यायालय में साक्ष्य को भली प्रकार विचार करके निस्तारण के लिये भेजने का निश्चय कर लिया है।

(६) अतः यह पुनर्निरीक्षण स्वीकृत होता है और निम्न पुनर्विचारन्यायालय की आज्ञा उत्सादित की जाती है। यह वाद निम्न पुनर्विचार न्यायालय को पुनरावेदन के, दिए गए निर्देशों के प्रकाश में पुनः सुनवाई के लिए लौटा देता हूँ।

पुनर्निरीक्षण स्वीकृत

विधिपत्रिका (१८७९) १९५७ इलाहाबाद पं० ३

श्री मेहरोत्रा न्यायाधीश

अवध नारायण सिंह — प्रार्थी

विरुद्ध

कलक्टर इत्यादि — विपक्षीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १६७ सन् १९५७

दिनांक ८–५–१९५७

भारतीय संविधान अनुच्छेद ३११—अनुच्छेद के अधीन तहवीलदार संरक्षण का अधिकारी है।

तहवीलदार, यद्यपि कोषाध्यक्ष द्वारा नियुक्त हुआ है, राज्य सरकार के नियंत्रण में हैं अतः वह अनुच्छेद ३११ के अधीन संरक्षण का अधिकारी है। ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च न्यायालय ४०४ प्रयुक्त हुआ।

(अ) ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च न्यायालय ४०४ : १९५५ एस० सी० आर० १४२७ ।

अभिदिष्टवाद

एस० सी० खरे — प्रार्थी की ओर से

स्थायी वकील — विपक्षी की ओर से

आदेश—

यह संविधान के अनुच्छेद २२६ के अधीन प्रार्थना-पत्र है जिसमें प्रार्थना की गई है कि प्रार्थी के निष्कासन की आज्ञा को तथा प्रार्थी के निष्कासन की अभिपुष्टि करने वाली कमिश्नर की दिनांक २६ अक्तूबर १९५६ की आज्ञा को अभिखंडित करने के लिये उत्प्रेषण लेख अथवा उत्प्रेषण लेख के स्वभाव का कोई दूसरा निर्देश निकाला जाय। इसके सिवा यह भी प्रार्थना की गई है कि एक परमादेश लेख अथवा परमादेश लेख के स्वभाव का कोई निर्देश विपक्षी के नाम निकाला जाय कि वे लालगंज जिला आजमगढ़ के उपधनागार (सब ट्रेजरी) का प्रार्थी को तहवीलदार मानें।

(२) निवेदित प्रश्नों के अधिमूल्यन में जो बातें आवश्यक हैं वे ये हैं कि प्रार्थी सन् १९४६ में आजमगढ़ के खजाने में तहवीलदार नियुक्त हुआ। सरकारी खजानों के मुद्राविभाग में तहवीलदारों को नियुक्ति होती है। २० अप्रैल सन् १९५६ को जब प्रार्थी खजाने में गया तो उसको तहसीलदार ने बताया कि उसकी नौकरी समाप्त कर दी गई है और यह कि वह श्री राधेश्याम अग्रवाल को अपना चार्ज दे दे तदनुसार प्रार्थी ने अपने पद का चार्ज दे दिया।

उस निष्कासन आज्ञा के विरुद्ध प्रार्थी ने कलक्टर आजमगढ़ के यहाँ एक प्रतिनिवेदन (रिप्रेजेंटेशन) भेजा और जब उस प्रतिनिवेदन का कोई उत्तर न मिला तो प्रार्थी ने दूसरा प्रतिनिवेदन कमिश्नर गोरखपुर डिवीजन के पास भेजा। तहसीलदार ने भी इस आशय का प्रतिवेदन कलक्टर के पास भेजा कि उन्होंने प्रार्थी को अपने पद का चार्ज देने को कहा है। २६ अक्टूबर सन् १९५६ को प्रार्थी को उसके प्रतिवेदन की अस्वीकृति की सूचना मिली। प्रस्तुत प्रार्थनापत्र इस न्यायालय में १० जनवरी सन् १९५७ को निवेशित हुआ। जिला मजिस्ट्रेट की यही निष्कासन की आज्ञा जो अपील में कमिश्नर द्वारा अभिपोषित (कन्फर्म) हुई इस लेख आवेदन के द्वारा चुनौती दी जा रही है।

(३) प्रार्थी का मुख्य विवाद यह है कि वह राज्य-सरकार का व्यवहारिक (सिविल) नौकर है तदनुसार वह संविधान के अनुच्छेद ३११ के संरक्षण का अधिकारी है।

(४) कलक्टर आजमगढ़, उत्तर प्रदेश राज्य, तथा कोषाध्यक्ष आजमगढ़ और कमिश्नर बनारस डिवीजन को सूचनायें भेजी गई। कलक्टर आजमगढ़ की ओर से एक प्रति शपथपत्र निवेशित हुआ और यह स्वीकार नहीं किया गया कि प्रार्थी को उस पर आरोपित हुए दोषों के तथा प्रस्तावित दंड के उत्तर देने का अवसर नहीं मिला। विपक्षी के प्रतिशपथपत्र में मुख्य स्थिति यह है कि प्रार्थी राज्य का व्यावहारिक नौकर नहीं है।

इसकी नियुक्ति कोषाध्यक्ष ने की है जो एक मात्र रोकड़ की रक्षा के लिये दायी है। अतः प्रार्थी संविधान के अनुच्छेद ३११ का रक्षण पाने का अधिकारी नहीं है। अस्तु विचारणीय मुख्य प्रश्न यह है कि तहवीलदार के रूप में प्रार्थी का राज्य से क्या संबंध है। यदि प्रार्थी राज्य का व्यावहारिक नौकर है तो निश्चय ही वह संविधान के अनुच्छेद ३११ के रक्षण का अधिकारी है जो प्रस्तुत वाद में उसको नहीं दिया गया।

प्रार्थी ने अपने शपथपत्र में कितनी ही बातें दिखलाई हैं और विपक्षी ने भी अपने प्रतिशपथपत्र में कुछ बातें दिखलाई हैं, और विचारणीय प्रश्नयह है कि मान्य (एडमिटेड) बातों के आधार पर प्रार्थी को राज्य का नौकर मान सकते हैं या नहीं। राज्य के वकील ने बलपूर्वक यह आग्रह किया कि यह तथ्य का प्रश्न है, अतः प्रार्थी के लिये अपने अधिकार की प्रवृत्ति के लिये वाद पृथक उपस्थित करना ही एक उपाय है।

यदि तथ्यों पर कोई प्रतिवाद होता तो प्रतिपक्ष के उठाए हुए इस विवाद में कुछ बल भी होता किंतु प्रतिवादी का उठाया हुआ विवाद यह है कि मान्य बातों पर यह सिद्ध है कि प्रार्थी राज्य का नौकर है। ठीक निर्णय पर आने के लिये यह आवश्यक है कि प्रार्थी के शपथपत्र के अभिकथन तथा प्रतिशपथपत्र के अभिकथनों में से कुछ का परीक्षण कर लिया जाय।

प्रार्थी के शपथपत्र के अनुच्छेद ४ में यह कहा गया है कि तहवीलदारों का वेतन और लाभ (इमाल्यूमेंट्स) राज्य सरकार से प्राप्त होता है। इनकी नियुक्ति, निष्कासन, पदच्युति, छुट्टियाँ तथा नौकरी के दूसरे प्रतिबंध जिला के कलेक्टर के निर्देशन और नियंत्रण में है। खजानों में प्रचलित रीति के अनुसार रोकड़ विभाग का ठीका एक व्यक्ति को दिया जाता है जो सरकारी कोषाध्यक्ष कहलाता है और जिसको इसके लिए कुछ पारिश्रमिक मिलता है।

अस्तु तहवीलदारों का वेतन राज्य से मिलता है। उनकी नौकरी के प्रतिबंध, नियुक्ति, निष्कासन, पदच्युति, तथा छुट्टियाँ सब कलक्टर के निर्देश के आधीन हैं। प्रतिशपथपत्र के अनुच्छेद ५ में यह कहा गया है कि यह निश्चय करने के लिये कोषाध्यक्ष के कर्मचारीगण वस्तुतः अपना वेतन पाते हैं कि नहीं, सरकार ने राजाज्ञा दिनांक ६ दिसंबर सन् १९३९ के द्वारा अनुदेश (इंस्ट्रक्शन) भेजा कि कोषाध्यक्ष के कार्यालय का वेतन संबंधित व्यक्तियों में बाँट जाया करे और कोषाध्यक्ष को न दिया जाया करे।

अतः यह स्पष्ट है कि सन् १९२७ में यह निर्देश निकाला गया कि तहवीलदारों को सेवायुक्त (इम्प्लाय) कोषाध्यक्ष करेंगे किंतु उनकी नियुक्ति, पदच्युति आदि के प्रतिबंध आदि के विषय जिला मजिस्ट्रेट के अधीन होंगे। वेतन देने के संबंध में यह सहमति हुई कि यह धन कोषाध्यक्ष के पारिश्रमिक में जोड़ दिया जाता है और कोषाध्यक्ष अपने पारिश्रकिक में से तहवीलदारों को देंगे किन्तु सन् १९३९ से तहवीलदारों का वेतन सीधे कोषाधिकारी (ट्रेजरी आफीसर) द्वारा दिया जाने लगा।

अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वेतन भी कोषाध्यक्ष देते थे। अस्तु केवल यही बात है जैसा कि प्रति शपथपत्र में कहा गया है कि तहवीलदार वस्तुतः कोषाध्यक्षों द्वारा नियोजित होते थे। केवल यह बात कि वे कोषाध्यक्ष द्वारा नियोजित होते थे यह सिद्ध करने के लिये आधार नहीं हो सकती कि वे राज्य सरकार के नौकर नहीं हैं। स्वयं कोषाध्यक्षगण ही राज्य सरकार के नियंत्रण में हैं।

प्रतिशपथपत्र में यह नहीं कहा गया है कि कोषाध्यक्ष राज्य सरकार के नौकर नहीं हैं यदि वे नौकर हैं और स्वतंत्र ठीकेदारों की सी उनकी स्थिति नहीं है तो कोषाध्यक्षों को सरकार द्वारा प्रदत्त काम के करने के लिये उनके द्वारा नियुक्त कोई भी व्यक्ति स्वयं कोषाध्यक्षों से भिन्न नहीं हो सकता और वे भी राज्य सरकार के नौकरों के अतिरिक्त, केवल इस बात के कारण कि वे कोषाध्यक्षों द्वारा नियुक्त हैं, कुछ और न होंगे।

स्थायी वकील (स्टैंडिंग काउंसेल) ने प्रतिशपथ पत्र में ऐसा कुछ नहीं सुझाया कि जिससे सिद्ध हो कि कोषाध्यक्ष राज्य सरकार के नौकर नहीं है, प्रत्युत वे स्वतंत्र ठीकेदार हैं। शिवनंदन विरुद्ध दी पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच न्यायालय ४०४ के वाद का यहाँ अभिदेश करना आवश्यक है।

उसमें पुनरावेदक एक बैंक में रोकड़िये की भाँति नियुक्ति हुआ था। उस वाद में पुनरावेदक की अभ्यर्थना बैंक के एक नौकर होने की थी। विषय पर विचार करके सर्वोच्च न्यालय इस निर्णय पर पहुँचा कि उस वाद का पुनरावेदक बैंक का एक कर्मचारी है। सर्वोच्च न्यायालय के विचारों में से कुछ एक का अभिदेश आवश्यक है। पन्ना ४०६ में यह निर्णय है कि—

"यह निर्धारण करना सदैव सरल नहीं है कि प्रस्तुत विषय के उभय पक्ष का संबंध कोषाध्यक्ष और बैंक का मालिक के नौकर की भाँति अथवा स्वतंत्र ठीकेदार की भाँति जिसके नियोजक के कुछ कार्य का भार उठा लिया है, यह प्रश्न सामान्यतः अभिकर्ता (एजेंट) द्वारा किए गए कामों के संबंध में दूसरे के कारण देयता (लायबिलटी) के निर्धारण में उठा है। (यहाँ ऐसे तटस्थ शब्द का प्रयोग हुआ है जिसमें स्वतंत्र ठीकेदार और नौकर भी समावेशित हैं) नौकर और स्वतंत्र ठीकेदार का विभेदकरण बहुत से विधिवादों का विषयवस्तु बन गया है जिससे जिहा पर पाठ्यपुस्तक के लेखक गणों ने कुछ साधारण परीक्षण निकालने का प्रयास किया। उदाहरणार्थ पोलक्स के ला आफ़ टार्टस में यह भेद ऐसे निकाला गया—

"मालिक वह व्यक्ति है जो कर्मकार को केवल उसके काम का अंत ही नहीं बताता प्रत्युत उसके साधन को भी निर्देशित करता या किसी क्षण निर्देशित कर सकता है—अथवा जिसमें काम के नियंत्रण की शक्ति विद्यमान हों—नौकर वह व्यक्ति है जो अपने काम के करने की रीति में अपने स्वामी के प्रभुत्व के अधीन है।

'स्वतंत्र ठीकेदार वह व्यक्ति है जो किसी काम को पूरा करने का जिम्मा उठाता है लेकिन उस कार्य के वास्तविक संपादन में वह उस व्यक्ति की आज्ञा और नियंत्रण के आधीन नहीं होता जिसके लिये काम करता है और जो बातें पहले से निर्देशित नहीं हैं उनके करने में अपने स्वविवेक का उपयोग कर सकता है"

प्रतिवेदन के पन्ना ४११ में आगे यह भी व्यक्त किया गया—

" हमारी संमति में इस विवाद में कोई सार नहीं है यदि कोई स्वामी किसी नौकर को रखता है और किसी विशिष्ट काम के करने के लिये कुछ और आदमियों को नियुक्त करने और उनकी स्वामिभक्ति और कार्यक्षमता का जिम्मा उठाने का अधिकार देता है तो इस प्रकार लगाए गए नौकर, उस लगाने वाले व्यक्ति के साथ ही स्वामी के नौकर होंगे। यह कहना सदैव सत्य नहीं है कि स्वतंत्र ठीकेदार द्वारा नियुक्त और पदच्युत किए जाने योग्य व्यक्तिगण किसी भी परिस्थिति में किसी तीसरे व्यक्ति के नौकर न होंगे"।

पन्ना १४ में आगे और भी कहा गया है—

" इससे यह प्रगट होगा कि यह प्रश्न कि कोई विशिष्ट व्यक्ति किसका नौकर है यह वैयक्तिक दशाओं में अलग अलग तथ्यों और परिस्थितियों के विचार से निर्धारित करना होगा। लार्ड पोर्टर ने प्रतिवेदित वाद में अपने भाषण के प्रसंग में पन्ना १७ में जो भाव व्यक्त किया है वह निम्नलिखित है—

"परिणाम से कितनी ही बातें संबद्ध होती हैं। वेतन देनेवाला स्वामी कौन है, पदच्युति कौन कर सकता है, वैकल्पिक नौकरी कब तक चल सकती है, कौन मशीन का प्रयोग होता है, आदि बातों का ध्यान रखना होता है। किसी एक दशा में जो पद व्यक्त किए गए हों वह विचारगत विषय के संबंध में सदैव विचारणीय हैं किंतु सुझाए गए कतिपय परीक्षणों में, मेरे मत से सबसे संतोषप्रद यह निश्चय करने में कि किसी विशिष्ट काल में मालिक कौन था, यह है कि पूछा जाय कि वह कौन व्यक्ति है जिसको नौकर को, जिस काम पर वह लगाया गया है, उसके करने का ढंग बताने का अधिकार है"

५—इन परीक्षणों के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि तहवीलदारगण राज्य सरकार के आधीन थे। इन सारी परिस्थितियों पर विचार करने से मेरा मत है कि यद्यपि प्रार्थी की नियुक्ति कोषाध्यक्ष ने की थी, वह राज्य सरकार के नियंत्रण में है। अतः प्रार्थी संविधान के अनुच्छेद ३११ की रक्षा का अधिकारी है।

६—अस्तु मैं आवेदन स्वीकार करता हूँ और प्रार्थी को निष्कासित करनेवाली आज्ञा तथा कमिश्नर की २६ अक्टूबर सन् ५६ की प्रार्थी के निष्कासन की संपुष्टि करनेवाली आज्ञा का अभिखंडन करता हूँ किंतु व्यय के संबंध में मैं कोई आज्ञा नहीं देता। आवेदन स्वीकृत।

विधि पत्रिका सं० (१८७६) १९५७ इलाहाबाद

उच्च न्यायालय प० ७

देसाई और वेग न्यायमूर्तिगण

एल० मन मोहन दास तथा अन्य — आपत्तिकर्ता

वि०

शेख वहाब उद्दीन तथा अन्य — विरुद्ध पक्ष

प्रथम पुनरावेदन ४९३, ४९४, ५३५, सन् १९४३ और ५१ सन् १९४४ दिनांक २-४-१९५७

(अ) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम (१८८२), धारा ५८—लेख्य का अन्वयन—पुनः क्रय के प्रतिबंध के साथ पूर्ण विक्रय या प्रतिबंधित विक्रय का वंधक—कैसे निश्चय किया जाय—

किसी लेख्य द्वारा प्रदर्शित व्यवहार (ट्रैंजैक्शन) पुनः क्रय के प्रतिबंध के साथ पूर्ण विक्रय है या प्रतिबंधित विक्रय का बंधक है इसके लिये न्यायालय को पक्षों का वास्तविक अभिप्राय निश्चित करना है। लेख्य का केवल लिखा हुआ रूप विचारणीय नहीं है। स्वतः लेख्यों के शब्दों एवं ऐसी आसपास की परिस्थितियों से पक्षों के अभिप्राय को संग्रह करना है। ये इस बात को दिखलाने के लिये आवश्यक हैं कि लेख्यों की भाषा विद्यमान तथ्यों से किस प्रकार संबद्ध है।

उस दिन से, जिस दिन हस्तांतरकर्ता द्वारा हस्तांतरण के विलेखों का निष्पादन हुआ संबंधित यह तथ्य कि हस्तांतरिती की ओर से संपत्ति के पुनः हस्तांतरण करने का संविद समकालीन एवं एक साथ का कार्य था इस कथन का समर्थन करता है कि दोनों लेख्यों (डाकूमेंट्स) के संपादन (ट्रैंजेक्शन) ने एक ही संपादन बनाया और पक्षों का अभिप्राय था कि वे समष्टिरूप में (होल) वर्तमान रहें। यह तथ्य स्वतः वस्तुस्थिति का निश्चायक (कनक्ल्यूज़िव) नहीं है।

लेख्यों के शब्दों के तथ्य के आधार पर निश्चित हुआ कि प्रश्नगत संपादन के विषय में पक्षों का अभिप्राय बंधक होने से था न कि विक्रय से। केवल इस तथ्य ने कि पक्षों ने अपने संपादन के संबंध में "विक्रेता और क्रेता" तथा 'विक्रय' शब्दों के प्रयोग को अपनाया बंधक के वास्तविक संपादन को विक्रय में परिवर्तित नहीं किया। संपादन (ट्रैंजेक्शन) का तत्व ही देखने योग्य था न कि स्वरूप जिसमें संपादन हुआ या वे शब्द जो पक्षों द्वारा विलेख में प्रयुक्त थे। ए० आई० आर० १९३० इलाहाबाद २८३ और ए० आई० आर० १९२४ पी० सी० २२६ और ए० आई० आर० १९२९ इलाहाबाद ६१९ अभिदिष्ट हुए।

(ब) अवधि अधिनियम (१९०८) प्राक्कथन और अनुच्छेद १३४—पहले से ही तिरोहित अधिकार पर सन् १९२९ में अनुच्छेद १३४ के संशोधन होने का प्रभाव—

बंधकी (मारगेजी) ने संपत्ति का हस्तांतरण ४-५-१९०७ को किया था। यह संपत्ति वादविषय थी तथा अनुच्छेद १३४ से अनुशासित थी। इस संपत्ति में जब वादी भूस्वामी के अधिकारों का सन् १९२९ ई० के बहुत पहले ही परिशमन हो चुका था तो अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १३४ का परवर्ती संशोधन उसके पहले ही परिशमन हो चुके हुए अधिकारों को पुनर्जीवित नहीं कर सकता।

(स) अवधि अधिनियम (१९०८) प्राक्कथन और अनुच्छेद १३४-वर्तमान अनुच्छेद १३४ में शब्द "सद्भावना से" (बोनाफाइडी) या सद्विचार से" (इन गुड फेथ) का लोप—प्रभाव।

अवधि अधिनियम सन् १८५९ एवं सन् १८७१ में वर्तमान अनुच्छेद १३४ के स्थान पर अनुच्छेदों में वाक्यखंड "सद्भावना से" (बोनाफाइडी) तथा "सद्विचार से" (इन गुड फेथ) क्रमानुसार प्रयुक्त थे। वर्तमान अवधि अधिनियम में इन शब्दों का लोप है। वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत उपर्युक्त शब्दों का लोप हस्तांतरिती ट्रांसफरी) की ओर से सद्विचार से किए जाने के प्रभाव को अनावश्यक कर देता है।

१३४ ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद १९७ (पूर्णन्यायासन) का अनुसरण हुआ।

अभिदिष्ट वाद —

(अ) ए० आई० आर० १९३० इलाहाबाद २८३, १९३० इलाहाबाद एल० जे० ६१०

४

(ब) ए० आई० आर० १९४७ इलाहाबाद ३३४ : १९४७ ए० एल० जे० २७१।

(स) ए० आई० आर० १९२४ पी० सी० २२६ : आई० एल० आर० ४७ मद्रास ७२९।

(द) ए० आई० आर० १९२९ इलाहाबाद ६१९ : ११६ इंडियन केसेस १०८।

(य) ए० आई० आर० १९३१ लाहौर ४६४ : १३२ इंडियन केसेस १८४।

(र) ए० आई० आर० १९१७ मद्रास ९९६ : ३२ इंडियन केसेस २६५।

(ल) ए० आई० आर० १९३० बंबई २९२ : १२५ इंडियन केसेस ९९९।

(व) ए० आई० आर० १९१५ इलाहाबाद ४२५ : आई० एस० आर० ३७ इलाहाबाद ६६०।

(क) ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद १६७ : १९५१ ए० एल० जे० ११३ (पूर्ण न्यायासन)।

(ख) ए० आई० आर० १९३१ कलकत्ता ११३ : आई० एल आर० ५८ कलकत्ता २३४।

(ग) ए० आई० आर० १९२९ नागपुर २६७ : ११८ इंडियन केसेस ६८२।

अमरनाथ कौल और जी० एन० कुंजरू—आपत्ति-कर्ता की ओर से—

ए० हक और सादिक अली—विरुद्ध पक्ष की ओरसे—

न्यायमूर्ति बेग—

हमारे समक्ष चार पुनरावेदन हैं। ये कुल पुनरावेदन उत्तर प्रदेश भारग्रस्त संपदा अधिनियम (यू० पी० एन-कंबर्ड स्टेट्स ऐक्ट) के अंतर्गत प्रक्रिया से आते हैं। प्रथम पुनरावेदन सं० ४६४, १९४३ प्रथम पुनरावेदन सं० ५१, १९४४ से संबंधित है। ये प्रति पुनरावेदन (क्रास अपील्स) हैं। प्रथम पुनरावेदन सं० ४६४, १९४३ धनियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है तथा प्रथम पुनरावेदन सं० ५१, १९४४ भूस्वामियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। ये दोनों पुनरावेदन भारग्रस्त संपदा अधिनियम में वाद सं० ८९, १९३६ से उत्पन्न हैं। दूसरे दो पुनरावेदन प्रथम पुनरावेदन सं० ४९३, १९४३ तथा प्रथम पुनरावेदन सं० ५३५, १९४३ हैं। उनमें से दोनों संबद्ध पुनरावेदन हैं। वे भारग्रस्त संपदा अधिनियम वाद सं० ८८, १९३६ से उत्पन्न हैं। ये दोनों पुनरावेदन धनियों की ओर से प्रस्तुत किए गए हैं। भूस्वामियों द्वारा प्रथम पुनरावेदन सं० ५१, १९४४ जो प्रति पुनरावेदन (क्रास अपील) हैं हम लोगों के समक्ष उस पर आग्रह नहीं किया गया अतः परिव्यय के साथ वह निरसित किया जाता है। धनियों द्वारा शेष तीन पुनरावेदन में दो प्रश्न सन्निहित हैं।

(२) प्रथम प्रश्न हस्तांतरण के लेख्यों के बारे में है कि समुचित व्याख्या से यह संपादन (ट्रैंजैक्शन) प्रतिबंधित विक्रय (कंडीशनल सेल) का बनता है या पुनः क्रय के प्रतिबंध के साथ यह पूर्ण विक्रय होता है। हस्तांतरण के ये लेख्य ही वह आधार है जिस पर भूस्वामियों ने साहाय्य की अभ्यर्थना की थी। हम लोगों के समक्ष दूसरे प्रश्न से सहमति प्रकट की गई थी। वह प्रश्न था कि यदि इसे प्रतिबंधित विक्रय के बंधक का लेख्य निश्चित किया जाय तो इन लेख्यों के आधार पर भूस्वामियों की अभ्यर्थना अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १३४ के अंतर्गत कालबाधित होगी या नहीं।

(३) भारग्रस्त संपदा अधिनियम में वाद सं० ८८, १९३६ के प्रश्नगत हस्तांतरण के विलेखों की तिथियाँ ३-३-१९०४ और ९-३-१९०४ हैं। भारग्रस्त संपदा अधिनियम में वाद सं० ८९, १९३६ के प्रश्नगत हस्तांतरण के विलेख की तिथि १२-३-१९०४ है। कुल इन तीनों विलेखों का निष्पादन भूस्वामियों के पूर्वहितधारी ने अब्दुल हमीद के पक्ष में किया था। इन सभी विलेखों में संबद्ध शब्द थोड़ा या बहुत एकात्मक हैं। अतः व्याख्या के प्रश्न पर विचार करते समय उनको अलग अलग निर्देशित करना आवश्यक नहीं है।

(४) पुनरावेदकों की ओर से यह कहा गया है कि प्रश्नगत विलेखों की रचना पुनः क्रय के प्रतिबंध के साथ

पूर्ण विक्रय के लेख्य की है। दूसरी ओर भूस्वामी उत्तरवादियों की ओर से यह प्रतर्क है कि उचित व्याख्या पर वे केवल प्रतिबंधात्मक विक्रय का बंधक ठहरते हैं। इस विषय के निर्णय पर पहुँचने के लिये न्यायालय को पक्षों के वास्तविक अभिप्राय को निश्चित करना है। लेख्यों का केवल स्वरूप अनावश्यक है।

लेख्यों के शब्दों एवं ऐसी आसपास की परिस्थितियों से पक्षों के अभिप्राय को संग्रह करना है। ये इस बात को दिखलाने के लिये आवश्यक हैं कि लेख्यों की भाषा विद्यमान तथ्यों से किस भाँति संबद्ध है। जहाँ तक आस पास की परिस्थितियों का संबंध है इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि जिस दिन भूस्वामियों ने हस्तांतरण के उपर्युक्त विलेखों का निष्पादन किया उसी तिथि को उसी समय हस्तांतरिती (ट्रांसफरी) ने संपत्ति को पुनः हस्तांतरण कर देने के संविद का निष्पादन किया। हस्तांतरिती की ओर से संपत्ति के पुनः हस्तांतरण करने का संविद् समकालीन एवं एक साथ का कार्य था यह तथ्य इस कथन का समर्थन करता है कि दोनों लेख्यों के संपादन ने एक ही संपादन बनाया और पक्षों का अभिप्राय था कि वे समष्टि रूप में वर्तमान रहें।

(५) कृपाल सिंह वि० शिव अंबर सिंह १६३० ए० एल० जे० ६१० (ए० आई० आर० १६३० इलाहाबाद २८३) और प्रागदत्त वि० हरि बहादुर १६४७ ए० एल० जे० २७१ : (ए० आई० आर० १६४७ इलाहाबाद ३३४ में यह तथ्य कि हस्तांतरण के विलेख एवं पुनः हस्तांतरण करने के संविद का निष्पादन उसी समय हुआ था इस व्याख्या के समर्थन का एक अंग समझा गया कि प्रश्नगत लेख्य प्रतिबंधित विक्रय के बंधक के संपादन में थे। यह तथ्य स्वतः विषय का निश्चायक नहीं है। प्रस्तुत वाद में विलेखों के समावेश द्वारा उपलब्ध स्वाभाविक साक्ष्य यह दिखलाता है कि पक्षों का संपादन के बारे में अभिप्राय प्रतिबंधित विक्रय का बंधक होने का था।

इस संबंध में विलेखों का सबसे महत्व पूर्ण अनुबंध संपत्ति का विक्रेताओं को लौटा देने के संबंध में है। प्रस्तुत वाद में महत्वपूर्ण बात है कि इन विलेखों में यह लिखा हुआ है कि हस्तांतरण के विलेख के निष्पादन के पश्चात् २ वर्ष ४ महीने के लिये विक्रेताओं को संपत्ति के पुनः क्रय करने का अधिकार नहीं होगा। किंतु विलेख की निर्धारित अवधि के व्यतीत होने के पश्चात् विक्रेताओं को यह अधिकार था कि किसी वर्ष के जेठ महीने में क्रय मूल्य चुकाने के पश्चात् वे संपत्ति को पुनः क्रय कर सकते थे। यह तथ्य कि हस्तांतरकर्ता के पक्ष में क्रय करने के लिये दिया गया समय असीमित है यह दिखलाता है कि समय संविदा का तत्व नहीं था। स्वतः यह तथ्य इस विचार के समर्थन का एक दृढ़ अवयव होगा कि प्रश्नगत संपादन (ट्रैंजेक्शन) बंधक का था न कि विक्रय का। इस संबंध में धनराज गिरिजी वि० पार्थसारथी ए० आई० आर० १६२४ पी० सी० २२६ का अभिदेश किया जा सकता है। इसमें यह निर्णय हुआ था कि यह तथ्य कि पुनः क्रय के लिये निर्धारित समय जब संविदा का सार नहीं था तो यह इस विचार के पक्ष में है कि संपादन बंधक का था। वर्तमान वाद में विलेख के अन्य अनुबंध तथा परिस्थितियाँ उसी दिशा की ओर संकेत करती हैं।

वर्तमान वाद में निष्पादन के व्यय का भार हस्तांतर कर्ता पर था। विलेख में दिया हुआ था कि यदि बटवारा या व्यवस्था (सेटिलमेंट) हो तो उसका व्यय स्वामियों पर होगा। हस्तांतरकर्ता बढ़े हुए भूमिकर तथा उपकर (अबवाव) के लिये भी दायी बनाए गए तथा हस्तांतरण की हुई संपत्ति में यदि कोई कमी आए तो उसके लिये भी वही दायी हुए। भूमि कर के विचार से संपत्ति का मूल्य ऋण के धन से अधिक प्रतीत होता है।

अंत में विलेख में एक अनुबंध है कि जब तक विक्रय अंतिम रूप में न हो जाय हस्तातरिती विक्रेता के अधिकारों के विरुद्ध कोई भार (चार्ज) उत्पन्न नहीं करेगा। उपर्युक्त सभी अवयव यह दिखलाते हुए प्रतीत होते हैं कि प्रश्नगत संपादन (ट्रैंजैक्शन) बंधक का था न कि विक्रय का। केवल यह बात कि पक्षों ने अपने संपादन के संबंध में 'विक्रेता और क्रेता' तथा 'विक्रय'

शब्दों के प्रयोग को अपनाया बंधक के वास्तविक संपादन को विक्रय में परिवर्तित नहीं करेगा।

संपादन का तत्व ही देखने योग्य है न कि स्वरूप जिसमें संपादन हुआ या वे शब्द जो पक्षों द्वारा विलेख में प्रयुक्त हुए। इस संबंध में मानसिंह वि० गुमान सिंह ए० आई आर० १९२९ इलाहाबाद ६१६ का अभिदेश किया जा सकता है। वाद की पूरी स्थितियों पर विचार करते हुए हम लोगों का मत है कि प्रश्नगत संपादन प्रतिबंधित विक्रय के साथ बंधक का है और पूर्णरूपेण विक्रय नहीं है।

(६) पुनरावेदकों की ओर से दूसरा प्रतर्क था कि उत्तरवादी की अभ्यर्थना अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १३४ के अंतर्गत बाधित (बार्ड) हो चुकी है। विवेचना के पश्चात् हम लोग इस मत के हैं कि इस युक्ति में सार है तथा इसको महत्व देना चाहिए। न्यास (ट्रस्ट) या बंधक में हस्तांतरण की गई या इच्छापत्र द्वारा दी गई अचल संपत्ति जो तत्पश्चात् न्यासधारी या बंधकी द्वारा मूल्यवान प्रतिफल (कंसिडरेशन) में हस्तांतरण कर दी गई है उसके धारण को वापस लेने के वाद के लिये अनुच्छेद १३४ ने कालावधि निर्धारित कर दिया है।

इस अनुच्छेद के अंतर्गत वाद के लिये निर्धारित कालावधि १२ वर्ष है। सन् १९२९ ई० में संशोधित वर्तमान अधिनियम के अंतर्गत कालावधि का लागू होना उस तिथि से आरंभ होता है 'जब वादी हस्तांतरण से अवगत हो जाता है'। यदि यह अवस्था वर्तमान अवधि अधिनियम से शासित होती तो प्रस्तुत वाद में अवगत होने के संबंध में किसी साक्ष्य के न होने से उत्तरवादी के मामले पर अवधि के अभिकथन (प्ली) का कुछ प्रभाव न पड़ता।

भारतीय अवधि (संशोधन) अधिनियम १९२९ (अधिनियम १, १९२९), धारा ३ द्वारा वर्तमान अधिनियम में संशोधन हुआ। उक्त तिथि से पहले, तीसरे स्तंभ में 'हस्तांतरण की तिथि' शब्द थे। इस विषय में यह कहा गया है कि अब्दुल हमीद बंधकी ने प्रश्नगत संपत्ति का हस्तांतरण नजमल हुदा को दिनांक ४-५-१९०७ को कर दिया, देखिए प्रदर्श ५ और ए० २५। इसलिए यह मामला भारतीय अवधि (संशोधन) अधिनियम १९२९ (१९२९ का १) के लागू होने के पहलेवाले अवधि अधिनियम के असंशोधित उपबंधों से शासित होगा। इस विषय में उक्त तिथि ४-५-१९०७ कही जाती है। यदि अवधि का लागू होना उसी तिथि से आरंभ हो गया तो दिनांक ४-५-१९१९ को १२ वर्ष पश्चात् अचल संपत्ति के धारण को वापस लेने का वाद बाधित (बार्ड) हो जायगा। सन् १९२९ ई० के पहले ही भूस्वामियों के अधिकारों का परिशमन हो जाने से अधिनियम का परवर्ती संशोधन उन अधिकारों को पुनर्जीवित नहीं कर सकता जो उस तिथि से बहुत पहले ही समाप्त हो चुके थे।

अब्दुल हमीद द्वारा नजीमुल्ला के पक्ष में किये गये हस्तांतरण के उपर्युक्त विलेखों का अवलोकन दिखलाता है कि उन विलेखों द्वारा उसने केवल अपना बंधक अधिकार ही नहीं हस्तांतरित किया वरन् स्वतः संपत्ति ही। अपने हस्तांतरिती को संपत्ति हस्तांतरण उसने अपने को उसका स्वामी कह कर किया था। इसमें संदेह नहीं कि उन विलेखों में ३ मार्च तथा ४ मार्च सन् १९०४ ई० के संविदों के अनुबंधों का निर्देश है। पहले के संविदों का निर्देश केवल इतना ही दिखलाएगा कि उन संविदों (एग्रीमेंट्स) के अंतर्गत अब्दुल हमीद के दायित्व से हस्तांतरिती अवगत थे तथा स्वामित्व अधिकारों को उन्होंने सद्भावना (बोनाफाइडी) से नहीं लिया।

अवधि अधिनियम १८५९ और १८७१ में क्रम से 'सद्भावना से' (बोनाफाइडी) और 'सद् विचार से' (इन गुड फेथ) शब्द प्रयुक्त थे। इसलिए यह ठीक निर्णय किया गया कि उन अधिनियमों के अंतर्गत मामलों में यदि हस्तांतरिती अपने हस्तांतर कर्ता के वास्तविक अधिकारों से अवगत था तो वह वर्तमान अधिनियम के अनुच्छेद १३४ के समान अवधि अधिनियम के अनुच्छेद का लाभ उठाने का दावा नहीं कर सकता। वर्तमान

अधिनियम में इन शब्दों का लोप है और ऐसा नहीं है कि शब्दों के इस लोप का कुछ प्रभाव न हो।

लाहौर, मद्रास और बंबई उच्च न्यायालयों ने माना है कि इन शब्दों के लोप से कुछ प्रभाव नहीं पड़ता और सद्विचार का तत्व अब भी आवश्यक है, देखिए मेहँगा वि० जमन अली शाह ए० आई० आर० १९३१ लाहौर ४६४। थोलसिंगा मुदाली वि० नागलिंग चेट्टी, ए० आई० आर० १९१७ मद्रास ६९६ और शिवाजी शेषगिर वि० चन्नवा, ए० आई० आर० १९३० बंबई २९२। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के भी पहले के वाद ऐसे ही थे। उदाहरणार्थ देखिये दिग्पाल सिंह वि० कल्लू, ए० आई० आर० १९१५ इलाहाबाद ४२५

ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद १६७ में प्रतिवेदित मु० चुनई वि० राम प्रसाद के नवीनतम वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायासन ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पहले विचार को अमान्य कर दिया और निश्चित रूप से यह माना है कि वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत उक्त शब्दों के लोप के कारण हस्तांतरिती का सद्विचार अब कुछ महत्व नहीं रखता। कलकत्ता और नागपुर उच्च न्यायालयों के विचार भी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस पूर्ण न्यायासन के विचार के समान हैं, देखिये बैकुंठ नाथ राय वि० अहमद उल्लाह, ए० आई० आर० १९३१ कलकत्ता ११३ और दौलत वि० बलिराम ए० आई० आर० १९२६ नागपुर २६७।

अधिनियम के संशोधन पर दृष्टि रखने के कारण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायासन का विचार हमें अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इसलिए हम लोग इस मत के हैं कि प्रस्तुत वाद में भूस्वामियों की अभ्यर्थना अवधि से बाधित होगी। (बार्ड बाई लिमिटेशन)।

(७) उपर्युक्त निष्कर्षों का सारांश है कि प्रथम पुनरावेदन सं० ४९३, ४९४ और ५३५ सन् १९४३ परिव्यय के साथ स्वीकार किए जाते हैं तथा प्रथम पुनरावेदन सं० ५१ सन् १९४४ परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

आदेश तदनुसार

विधिपत्रिका १८७९ (१९५७) इलाहाबाद पं० ११
श्री मुकर्जी तथा टंडन, न्यायाधीशगण

सीताराम साहु इत्यादि — प्रतिवादी पुनरावेदक

विरुद्ध

केदार नाथ साहु — वादी विपक्षी

व्यवहार पुनर्निरीक्षण सं० ५८१ सन् १९५१ दिनांक १४-३-१९५७ सिविल जज बस्ती के दिनांक २७-४-१९५२ की आज्ञा से।

(अ) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धारा १५१ तथा आ० ७ नियम ११—कमी शुल्क में वादपत्र की अस्वीकृति की आज्ञा कब प्रत्याहूत (रिकाल्ड) और पुनर्विचारित हो सकती है।

न्यायालय को पूर्व दी गई अपनी आज्ञा को प्रत्याह्वान का अधिक्षेत्र प्राप्त है। न्यायालय को सदैव ऐसी आज्ञा के प्रत्याह्वान का अधिक्षेत्र प्राप्त है जिसके प्रभाव से किसी पक्ष पर अन्याय होता है। जिस आज्ञा से वादी को कमी पूर्ति के लिये अवसर नहीं दिया गया था, जो इस धारणा से हुआ था कि वादी की अस्वस्थता सत्य नहीं थी, उस पर न्यायालय पुनर्विचार कर सकता है। वह अपनी आज्ञा का प्रत्याह्वान कर सकता है जब यह विदित हो जाय कि वह आज्ञा अभिलेख में सामग्री के अभाव में दी गई थी जो सामग्री कि तत्पश्चात् उसके संमुख लाई गई। जब न्यायालय अपनी यह आज्ञा उठा लेता है तो वादपत्र की अस्वीकृतिवाली आज्ञा अपने आप व्यर्थ हो जाती है। ए० आई० आर० १९३९ इलाहाबाद ४५२ की निर्भरता ली गई।

(ब) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धारा ११५—पुनर्निरीक्षण के अधिकार का कब व्यवहार नहीं होना चाहिए।

उच्च न्यायालय का पुनर्निरीक्षण का अधिकार स्वविवेकी है। इस अधिकार का प्रयोग ऐसी दशाओं में नहीं करना चाहिए जिसमें किसी पर अन्याय हो जाने की संभावना हो।

अभिदिष्ट वाद

(अ) ए० आई० आर० १९३९ इलाहाबाद ४५२ : १८३ इं० के० ४२६।

(ब) व्यवहार पुनर्निरीक्षण सं० ३६७ सन् १९३६ (इलाहाबाद)।

के० एल० मिश्र तथा सी० बी० मिश्र —

प्रार्थियों की ओर से

हरनंदन प्रसाद — विपक्षी की ओर से

श्री मुकर्जी न्यायाधीश—

यह विद्वान सिविल जज की उस आज्ञा के विरुद्ध पुनर्निरीक्षण में आवेदन है जिसमें उन्होंने वादी को, वादपत्र के व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ७ नियम ११ (सी) के अनुसार इस आधार पर अस्वीकृत हो जाने के पश्चात् कि वादपत्र पर टिकट कम लगा है, न्यायशुल्क की कमी पूर्ति के लिये अवसर प्रदान कर दिया है।

(२) इस पुनर्निरीक्षण के आवेदन में जो प्रश्न हमारे विचारार्थ उठता है उसके अधिमूल्यन के लिये कुछ दिनांकों का वर्णन करना आवश्यक है। १३–२–१९५० को बंधकपत्र के आधार पर एक वाद उपस्थित हुआ था। न्यायालय शुल्क की कमी के संबंध में स्टांप रिपोर्टर का एक प्रतिवेदन हुआ। पहली बार इस कमी की पूर्ति के लिये १६–२–१९५० तक का अवसर दिया गया। यह कमी पूरी नहीं की गई वरन् वादी की ओर से और अवकाश के लिये आवेदन किया गया। समय दिया गया। उन विविध अवसरों का विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं जब कि वादी को इस कमी की पूर्ति के लिये अवसर दिए गए, कारण कि अपने प्रयो-जन के लिये हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि इस कमी की पूर्ति के लिये वादी को अनेक अवसर दिए गए।

हम यह और भी बता देना चाहते हैं कि वादी संपूर्णतः अक्रिय (इनैक्टिव) नहीं रहा कारण कि उसने इस कमी के मद्धे कई रकमें न्यायालय में दीं। इससे सिद्ध होता है कि वादी की असमर्थता बनावटी नहीं थी अथवा वादी का और समय प्राप्त करने का प्रयास असद्भावपूर्ण नहीं था। २४–७–१९५० को न्यायालय ने वादी को कुछ समय प्रदान करने की आज्ञा दी और उसी में आज्ञा यह कह दिया गया कि वादी को इस कमी की पूर्ति के लिये अब और समय नहीं दिया जायगा। इस आज्ञा के अनुसार कमी की पूर्ति ९–८–१९५० तक कर देनी थी। इस दिन वादी ने २००) न्यायालय शुल्क में दिया और शेषके चुकाने के लिये १५ दिन का अवसर और मिला।

शेष कमी की पूर्ति वादी नहीं कर सका अतः इसी लिये उसने समय बढ़ाने का आवेदन मुख्यतः इस आधार पर किया कि वह बहुत अस्वस्थ हो गया था इस लिये शेष न्यायालय शुल्क के देने की व्यवस्था नहीं कर सका। न्यायालय ने प्रार्थी की यह प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। अवसर न देनेवाली इस आज्ञा में न्यायालय ने यह अभिदेश नहीं किया कि उसने वादी का यह कहना कि वह अस्वस्थ था और इसी कारण से न्यायालय शुल्क देने में असमर्थ हुआ विश्वास किया या नहीं।

२५–८–१९५० को संहिता के आ० ७ नियम ११ (सी) के अनुसार वाद के यथाविधि अस्वीकृति की आज्ञा कर दी गई। तत्पश्चात् वादपत्र की अस्वीकृति की इस आज्ञा के पुनरावलोकन के लिये उसने प्रार्थनापत्र दिया। पुनरावलोकन का यह प्रार्थनापत्र भी २८–९–१९५० को अस्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् ३१–१०–१९५० को वादी ने न्यायालय को एक प्रार्थनापत्र दिया कि उसने वादी को न्यायालय शुल्क देने के लिये समय बढ़ाने की प्रार्थना को जो अस्वीकार कर दिया है उसको प्रभाव की दृष्टि से पुनर्विचार करे। प्रार्थी ने शपथपत्र में कहा कि

वह टायफागड़ में गंभीरतः अस्वस्थ हो गया था और अपने इस कथन का समर्थन उसने तीन चिकित्सा प्रमाण पत्रों से किया। प्रारंभ में वादी की बीमारी का यह प्रश्न अकस्मात् न्यायालय के संमुख आया तो न्यायालय के सामने कोई भी ऐसी सामग्री नहीं थी जिससे वादी के कथन का समर्थन हो। कहने का तात्पर्य यह कि चिकित्सा प्रमाणपत्र नहीं थे किंतु इस बार न्यायालय के सामने चिकित्सा प्रमाणपत्र थे।

न्यायालय ने वादी के इस प्रार्थनापत्र पर विचार किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि वादी का यह कथन कि वह मोतीझर ज्वर से पीड़ित था सत्य है और यह कि आवश्यक न्यायालय शुल्क देने में उसकी असमर्थता इसी बीमारी के कारण है। अतः न्यायालय ने वादपत्र अस्वीकृत करनेवाली अपनी ही आज्ञा, जो उसने २५-८-१९५० को दी थी, प्रत्याह्वान (रिकाल्ड) किया। न्यायालय ने वादी को कमी पूर्ति के तीन दिन का अवसर दिया क्योंकि वादी ने कहा था कि अस्वस्थता के होते हुए भी उसने शेष संग्रह के लिये कठिन उद्योग किया था और बहुत थोड़े ही समय में वह शेष चुकाने के लिये तैयार है। वादपत्र अस्वीकृत करनेवाली आज्ञा प्रत्याहूत हुई और न्यायालय ने वाद को वादों के रजिस्टर में उसके स्थान पर रखने का निर्देश कर दिया और जैसा हमने कहा है, वादी को कमी पूर्ति के लिये तीन दिन का अवसर दिया। इस अवधि के भीतर कमी पूरी कर दी गई। पुनर्निरीक्षण का यह आवेदन उपर्युक्त न्यायालय की आज्ञा के विरुद्ध लक्षित है।

(३) पुनरावेदक के वकील का विवाद यह है कि न्यायालय को अस्वीकृति की आज्ञा जो उसने २५-८-१९५० को दी और जो २८-६-१९५० की अपनी आज्ञा में उसने पुनः दोहराई के उत्सादन का अधिक्षेत्र नहीं है और यह भी विवाद किया गया कि वादपत्र को अस्वीकार कर देने के पश्चात् वादी को कमी पूर्ति का अवसर देने का भी न्यायालय को अधिक्षेत्र नहीं है।

(४) हमारे मत से यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय ने किसी वाद में जो आज्ञा दे दी है उसके प्रत्याह्वान का उसको अधिक्षेत्र नहीं है। न्यायालय को सदैव ऐसी आज्ञा के प्रत्याह्वान का अधिकार प्राप्त है जिसके प्रभाव से किसी पक्ष पर अन्याय घटित होता है। इस विशिष्ट वाद में जो आज्ञा प्रत्याहूत हुई वह पूर्वतन आज्ञा पर आधृत थी, अर्थात् वह आज्ञा जिसके द्वारा वादी को कमी पूर्ति के लिये आगे अवसर देना अस्वीकृत हुआ था। यह आज्ञा इस अभिधारणा पर हुई थी कि वादी की अस्वस्थता सत्य नहीं है। हमारे मत से जब न्यायालय के संमुख सामग्री उपस्थित हो गई जिससे स्पष्टतः विदित हुआ कि वादी का यह कहना कि वह अस्वस्थ था सारतः सत्य है, तो न्यायालय इस स्थिति का पुनर्विचार कर सकता है। अतः न्यायालय ने पहले उस आज्ञा का प्रत्याह्वान किया जिसके द्वारा उसने वादी को कमी पूर्ति के लिये समय देना अस्वीकार कर दिया था कारण कि वह आज्ञा अभिलेख में सामग्रियों के अभाव की अवस्था में दी गई थी ; वे सामग्रियाँ जो तत्पश्चात् न्यायालय के सामने लाई गई। और जब न्यायालय ने वह आज्ञा उठा ली तो वादपत्र अस्वीकृत करने वाली आज्ञा अपने आप व्यर्थ हो गई।

वस्तुतः तब यह प्रश्न ही नहीं रह जाता कि उस न्यायायय को वादपत्र अस्वीकार करनेवाली आज्ञा के पुनर्विलोकन का अथवा २६-९-१९५० की अस्वीकृति की आज्ञा के खंडन का अधिकार है कि नहीं।

(५) इस न्यायालय में यह माना गया है कि वादपत्र की अस्वीकृति की आज्ञा व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १५१ के उपबंधों के आधीन उत्सादित हो सकती है। यह अल्सप न्यायाधीश ने अनंत प्रसाद सिंह विरुद्ध छुन्नू तिवारी, ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद ४५२ वाले वाद में माना है।

अल्सप न्यायाधीश ने अपने उस विचार के लिये रामनाथ मिश्र विरुद्ध रूक देवता मान मिश्र, व्यवहार पुनर्निरीक्षण संख्या ३६७ सन् १९३६ इलाहाबाद श्री सुलेमान मुख्य न्यायाधिपति तथा हैरीस न्यायाधिपति द्वारा १८ अगस्त सन् १९५७ को निर्णीत वाद का आश्रय लिया है। इसमें संदेह नहीं कि यह सच है कि

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कतिपय दशाओं में यह दृष्टि कोण अपनाया है कि न्यायालय को व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ७ नियम ११ के आधीन अस्वीकृत हुए वाद पत्र को प्रतिस्थापित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। हम यह विचार करना उचित नहीं समझते कि कलकत्ता उच्च न्यायालय का यह दृष्टि कोण ठीक है वा नहीं, कारण कि हमको इसी न्यायालय का अनुगमन करना अधिमान्य है ।

५ (अ) उस आज्ञा के जिसके विरुद्ध यह पुनर्निरीक्षण निवेशित है, हम क्यों नहीं हस्तक्षेप के लिये प्रवृत्त हो रहे हैं उसका एक और कारण है। पुनर्निरीक्षण का हमारा अधिकार स्वविवेकी (डिसक्रिशनरी) है। भारत के सभी न्यायालयों में यह माना गया है कि इस अधिकार का प्रयोग ऐसी दशाओं में नहीं करना चाहिए जहाँ इस अधिकार के प्रयोग से किसी पक्ष के प्रति अन्याय की संभावना हो। यदि हम अपने स्वविवेक का उपयोग करें और इस विषय में हस्तक्षेप करें तो स्थिति यह होगी कि वादी न्यायालय के बाहर हो जायगा और उसको अपनी अभ्यर्थना (क्लेम) के अन्वेषण का, उस बंधकपत्र के संबंध में जो उसके पक्ष में लिखा गया है, यद्यपि उसने संपूर्ण न्यायालय शुल्क दे दिया है, अवसर ही न प्राप्त होगा। विषय की इस दृष्टि से भी हम सोचते हैं कि इस पुनर्निरीक्षण को निष्फल होना चाहिए।

(६) परिणामतः इस प्रार्थना पत्र में हम कोई बल नहीं पाते तदनुसार अपास्त करते हैं, किंतु वाद की परिस्थिति के आधीन व्यय के संबंध में हम कोई आज्ञा नहीं देते। स्थगन की आज्ञा अभियुक्त (डिसचार्ज) होती है।

पुनर्निरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका सं० (१८७६), १६५७
इलाहाबाद (लखनऊ न्यायासन) प० १४
आर० सिंह और ए० एन० मुल्ला— न्यायमूर्तिगण
आपराधिक पुनरावेदन सं० ५२०, १६५५–
२७ सितंबर सन् १६५७ ई०।

राज्य (परिवादी—प्रार्थी)
विरुद्ध
हर प्रसाद शर्मा (अभियुक्त—उत्तरवादी)

प्रति भ्रष्टाचार (ऐंटी करप्शन) लखनऊ के विशेष न्यायाधीश श्री बी० एम० जुत्शी के आदेश दिनांक ३ मई सन् १६५५ के विरुद्ध पुनरावेदन।

आपराधिक अन्वीक्षा—घूस दिए जाने के लिये विविध प्रकार के जाल—कौन कौन से जाल आपत्ति जनक नहीं हैं—जाल बिछाया जाना आपत्ति जनक नहीं किंतु अभियुक्त के शरीर से नोटों की प्राप्ति (रिकवरी) संदेहजनक दोषसिद्धि संधार्य नहीं।

घूस दिये जाने के निमित्त विविध प्रकार के जालों में विभेदकरण करना है। एक अवस्था वह हो सकती है जब घूस सामान्य क्रम में दिया जाने वाला है और पुलिस इसकी सूचना पाकर इस सामान्य क्रम में लेन देन को देखने के लिये जाल बिछाती है। ऐसे जाल बिछाने के संबंध में कोई वैध आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। दूसरी एक अवस्था वह हो सकती है जहाँ घूस देने वाले का घूस देने का अभिप्राय नहीं है किंतु पुलिस चाहती है कि घूस दिया जाय और अपराध के अभिनय को भाँपा जाय। इस प्रकार का जाल प्रतिनिंदित हो चुका है। किंतु केवल जाल ही मामले को प्रमाणित नहीं करेगा। अभियुक्त के शरीर से नोटों की प्राप्ति (रिकवरी) मामले को प्रमाणित करने की एक प्रमुख कड़ी है। यदि प्रत्यादान संदिग्ध हो जाता है तो दोष सिद्धि संधार्य नहीं हो सकती।

अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता— राज्य की ओर से
राम आसरे मिश्र— अभियुक्त-उत्तरवादी की ओर से
न्यायमूर्ति, सिंह—

किसी हर प्रसाद शर्मा का अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा १६१ तथा अधिनियम २ सन् १६४७ ई० की धारा ५(२) के अंतर्गत हुआ था। उनकी दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य की ओर से यह पुनरावेदन प्रस्तुत किया गया है।

यह ज्ञात होता है कि अभियुक्त-उत्तरवादी जून सन् १६५३ ई० में तथा उसके पहले सिकंदरपुर में स्टेशन मास्टर था। दूध तथा दूध से बने अन्य पदार्थों को दिल्ली के निकट के बेचने वाले दिल्ली ले जाते हैं। वे इन पदार्थों को रेलगाड़ी से ले जाते हैं तथा इस यात्रा के लिये वे मासिक टिकट ले लेते हैं।

भारतीय विभिन्न उच्च न्यायालयों के विशिष्ट निर्णयों का

संक्षिप्त विवरण

सर्वोच्च न्यायालय

(१) (अ) भारतीय संविधान अनुच्छेद १३६—विशेष अनुमति के प्रार्थनापत्र की अस्वीकृति के लिये कारण दिखाने की सर्वोच्च न्यायालय की रीति नहीं है।

(ब) भारतीय संविधान अनुच्छेद १३७—पुनर्विलोकन के आवेदन में एडवोकेट के लिये यह परम अनुचित है कि न्यायालय में पूर्व अवसर पर क्या बातें घटीं और जज ने प्रतर्क में क्या बातें कहीं उसका सविस्तार अभिदेश करे और उक्त कथन को पुनः सुनवाई का आधार बनावे। ए० आई० आर १६५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ७४२।

(२) (अ) साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धारा २१—अभियुक्तों द्वारा लिखे पत्र उन्हीं के विरुद्ध साक्ष्य हैं।

(ब) भारतीय संविधान अनुच्छेद १३६-१३४—जब उच्च न्यायालय का सर्वोच्च न्यायालय के संमुख उपस्थित किया गया पुनरावेदन उस दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध हो जो जूरियों के निर्णय की स्वीकृति पर आधृत हो तो पुनरावेदन में उच्च न्यायालय पर सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने का क्षेत्र बहुत सीमित है। ए० आई० आर० १६५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ७४७।

(३) भारतीय संविधान अनुच्छेद ३२, १६ (१) (ज)—यदि किसी वाणिज्य या व्यापार पर बिना वैधिक प्राधिकार के कर लगाया जाय तो परिवेदित नागरिक अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय में आ सकता है; कारण कि इस करारोपण से उसके व्यापार संचालन के अधिकार के अतिक्रमण का खंडन होता है और ऐसी अवस्था में अनुच्छेद १६ (१) (जी) का प्रयोग होता है। ए० आई० आर० १६५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ७६०।

(४) हिंदू विधि—धर्मार्थदान में संलेख (इंस्ट्रूमेंट) वा अनुदान (ग्रांट) का होना आवश्यक नहीं है। यह पक्षों के व्यवहार और संपत्ति के प्रयोग के सबल और संतोषप्रद साक्ष्य से सिद्ध हो जाता है कि संपत्ति संपूर्णतः अर्पित होकर धार्मिक हो गई है वा उसका साधारण रूप रह गया है। इसके अतिरिक्त अर्पणपत्र और अनुदान भी होंगे जिससे संपत्ति का समर्पण सिद्ध होगा। ए० आई० आर० १६५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ७६७।

(५) भारतीय संविधान अनुच्छेद ३११ (२)—नियमों के अंतर्गत पदच्युति सरकारी कर्मचारी के लिये दंडस्वरूप है क्योंकि यह उस अवस्था में होती है जब कि वह किसी दुराचार या अयोग्यता का अपराधी पाया जाता है और यह स्वभाव में दांडिक (पेनल) होता है, कारण, उससे पेंसन की हानि हो जाती है। निष्कासन की आज्ञा भी पदच्युति की आज्ञा के समान ही है और इसमें भी वही परिणाम संनिहित है। दोनों के बीच अंतर यह है कि पदच्युत हुआ नौकर पुनः रखा नहीं जाता, किंतु निष्कासित रखा जाता है। सेवा निवृत्ति (रिटायरमेंट) की आज्ञा इन दोनों—पदच्युति और निष्कासन से भिन्न है क्योंकि यह दंडस्वरूप नहीं है और इसमें दांडिक परिणाम सन्निहित नहीं है। कारण कि सेवा-निवृत्त व्यक्ति अपनी की हुई नौकरी के अनुपात से पेंसन पाने का अधिकारी होता है। ए० आई० आर० १६५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ८६२।

(६) भारतीय संविधान अनुच्छेद १६ (१) (ए), १६ (१) (जी)—इसमें कोई विवाद नहीं है कि भाषण और अभिव्यक्तिस्वातंत्र्य के साथ ही अपने विचार के प्रचार और प्रसार के लिये, आयंत्रणों के आधीन भी व्यक्ति को अधिकार प्राप्त है और वह अनुच्छेद १६ (१) के द्वारा प्रत्याभूत स्वातंत्र्य का अधिकार भारत में सर्वत्र कर सकता है।

निर्णय हुआ कि उपर्युक्त परीक्षण से जाँच करने पर पंजाब में, पंजाब विशेषाधिकार अधिनियम १९५६ के अनुसार प्रकाशित विज्ञप्ति ने उक्त अधिकार का संपूर्णतः अपहरण नहीं किया है वरन् उन अधिकारों के वर्तन में आयंत्रण लगा दिया है कि किसी विषय विशेष पर प्रकाशन न किए जाँय और किसी विशेष भूखंड में वितरित न किए जाँय अतः यह कहना ठीक नहीं है कि उक्त धारा से मौलिक अधिकारों के वर्तने में संपूर्णतः अवरोध आ गया है। ए० आई० आर० १९५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ८९६।

व्यावहारिक प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ४१ नि० २७

यह भली प्रकार सुनिश्चित है कि किसी पक्ष को जो उचित समय में वाद उपस्थिति के समय साक्ष्य उपस्थित करने की जो कमी रह गई उसे पुनरावेदन के समय इस कमी की पूर्ति का अवसर नहीं देना चाहिए। हाँ, यह स्थिति भिन्न है जब कि न्यायालय स्वतः पक्षों को उचित न्याय देने के लिये किसी साक्ष्य को निवेशित करने को कहे।

सर्वोच्च न्यायालय, पुनरावेदन में किसी साक्ष्य को उपस्थित करने का अवसर नहीं दे सकता। विधिपत्रिका वर्ष १ सर्वो० न्या० पं० २०, ए० आई० आर० १९५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ६१२, ए० एल० जे० १९५७ पं० ६२२।

(७) आयकर अधिनियम १९२२ धारा ६६ व ६६ (ए) जब कि कोई अभिकथन विशेष करदाता ने आयकर पुनर्विचार न्यायाधिकरण (ट्रिबुनल) के संमुख उच्च न्यायालय में प्रेषित करने के लिये उपस्थित नहीं किया और न उच्च न्यायालय में ही उठाया, और आयकर पुनर्विचार न्यायाधिकरण ने जो अभिदेश उच्च न्यायालय को दिया वह साधारण कोटि का था और इतना व्यापक था कि सर्वोच्च न्यायालय के पुनरावेदन में करदाता द्वारा उठाया गया प्रश्न उसके अंतर्गत आ जाता है।

निर्णय हुआ कि करदाता सर्वोच्च न्यायालय में इस प्रश्न का परीक्षण करा सकता है। ए० आई० आर० १९५७ सर्वोच्च न्यायालय पं० ६१८।

इलाहाबाद

(१) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ४१२—जब कि किसी अभियुक्त ने अपराध स्वीकार कर लिया है और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा इसी अभिकथन पर दोषसिद्ध हुआ है, तो सिवाय दोषसिद्ध के दंडादेश की अवैधिकता के पुनरावेदन नहीं हो सकता। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७५३।

(२) उ० प्र०—न्यायालय शुल्क अधिनियम (१८७०) धारा ७ (४) (२०), साझीदारी भंग तथा हिसाब के दावे में वादी को अपने पावने की ठीक रकम लिखनी चाहिए। केवल न्यायालय शुल्क देने के लिये वाद का मूल्यांकन की रकम देना पर्याप्त न होगा। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७५४।

(३) आयकर अधिनियम (१९२२) धारा ३४—आयकर अधिनियम धारा ३४ के अनुसार प्रक्रिया चलाने के लिये आयकर अधिकारी का अधिक्षेत्र ऐसी निश्चित सूचना पर निर्भर करता है जिसका परिणाम यह हो कि वह खोज निकाले कि कुछ आय करारोपण से छूट गई।

अतः आयकर अधिकारी धारा ३४ के अंतर्गत कार्यवाही तभी कर सकते हैं जब उन्हें स्पष्ट रूप में यह मिले कि यह विशिष्ट सूचना उन्हें प्रारंभिक करारोपण के समय नहीं मिली थी। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७६०।

(४) दंड प्रक्रिया संहिता (१८६०) धारा ३०२— दंड प्रक्रिया संहिता में कारावास अथवा अर्थ दंड अथवा दोनों दिया हुआ है। अब यह न्यायालय के स्वविवेक पर है कि वह कारावास, अर्थदंड अथवा दोनों की सजाएँ दे। अपवाद स्वरूप किसी किसी वाद में यह उचित होता है कि अर्थ दंड और कारावास दंड दोनों दिया जाय। न्यायालय को इसमें सतर्क होकर अपने स्वविवेक का प्रयोग करना चाहिए। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७६४।

(५) आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ५१४ तथा ४९९ तथा अनुसूची ५, प्रपत्र संख्या ४६— एक अभियुक्त ने अपने दोषसिद्धि के विरुद्ध सेशन जज के यहाँ पुनरावेदन किया और एक हजार रुपये के वैयक्तिक बंध तथा दो इसी रकम के जमानतों पर लग्नक (बेल) पर छोड़ा गया। जमानत जो लिखा गया वह उस फार्म पर था जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता में नोटिस संख्या ४२ अनुसूची ५ में अनुविहित है। वह बंध प्रारंभिक जाँच की अवस्था में मजिस्ट्रेट के संमुख भरा जाता है पर यह फार्म प्रतिभूति बंध के लिये उस समय निष्पादित हुआ जब व्यक्ति की दोषसिद्धि हो गई थी और वाद पुनरावेदन के अंतर्गत लंबमान था। इसके अतिरिक्त किस न्यायालय में इसे उपस्थित करना था, यह स्थान भी सादा रह गया था। अभियुक्त पहली सुनवाई पर उपस्थित होकर फिर उपस्थित नहीं हुआ। जमानतदार उसे उपस्थित नहीं करा सके। निर्णय हुआ कि यह फार्म इस वाद में प्रयोजनीय नहीं था। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७६५।

(६) सहकारी संघ अधिनियम (१९१२) धारा ४३— यह निश्चय करने के लिये कि नियम ११५ के अंतर्गत पंचायत को अभिदेश करना वैध है कि नहीं दो बातों का निश्चय कर लेना आवश्यक है (१) कोई विवाद है कि नहीं तथा (२) वह विवाद संघ के कारबार को स्पर्श करता है या नहीं। जब विवाद पंचायत के क्षेत्र के भीतर आता हो तो ऐसे विवाद में न्यायालय को नहीं घुसना चाहिए। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पन्ना ७७१।

(७) अवधि अधिनियम (१९०८) धारा ५— अपना सद्भाव सिद्ध करने के लिये व्यक्ति को यह सिद्ध करना चाहिए कि उसने उचित सावधानी वर्ती है किंतु जब ऐसा प्रतीत हो कि जो विश्वास उसने धारण कर लिया था उसका आधार उसकी अकर्मण्यता और प्रमाद था तो यह उचित आधार नहीं माना जायगा चाहे उसका विश्वास सद्भाव पूर्ण विश्वास ही रहा हो।

जब कि प्रार्थी ने बिना कोई पता लगाए भूल से यह मान लिया कि साधारण निर्वाचन के लिये उच्च न्यायालय बंद था और इसी पर निर्भर होकर उसने अपना द्वितीय पुनरावेदन समय के उपरांत दिया तो ऐसा विलंब धारा ५ के अंतर्गत उचित कारण के आधार पर क्षम्य नहीं हो सकता—रामसेवक इत्यादि विरुद्ध श्रीमती पियारी इत्यादि ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७७२।

(८) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ४२३ (१) (ए)— जब पुनर्विचार न्यायालय अभियोजन के साक्ष्य की नितांत चर्चा नहीं करता और न उसके छोड़ देने के लिये कारण ही दिखलाता है तो अभिमुक्ति की आज्ञा उत्सादन करने योग्य है। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७७८।

(९) भारतीय संविधान अनुच्छेद ३११— तहवीलदार यद्यपि कोषाध्यक्ष द्वारा नियुक्त है, किंतु राज्य सरकार के नियंत्रण में होने से अनुच्छेद ३११ के अंतर्गत रक्षा का अधिकारी है। अवध नारायण सिंह विरुद्ध कलक्टर इत्यादि, विधि पत्रिका वर्ष २ पं० ३; ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७७९।

(१०) पंचायत अधिनियम (१९४०) धारा ३३— जिस अवस्था में एक पक्ष द्वारा निवेशित आपत्ति में सामान्यतः यह कहा गया हो कि पंचायत का निर्णय अवैध है, और उसकी मृत्यु के पश्चात् पुनरावेदन के चालू अवस्था में, उसके वैध उत्तराधिकारियों ने एक

और प्रश्न उठाया कि यतः वे अभिदेश (रेफरेंस) में पक्ष नहीं बनाए गए यद्यपि वाद में हैं, अभिदेश दोष पूर्ण हैं।

निर्णय हुआ कि पहले की आपत्तियाँ इतनी व्यापक हैं कि पुनरावेदन के प्रश्न उसके अंतर्गत आ जाते हैं। पंचायत का संविद् यदि विधितः अवैध है तो उससे वैध पंचनिर्णय नहीं निकल सकता। अतः यह पश्चात्‌वाली आपत्ति वैध है यद्यपि यह प्रारंभिक न्यायालय में नहीं उठाई गई थी। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७८१।

११) निवारक निरोध अधिनियम (१९५०) धारा ३ १) (ए०) (२)—बंदी प्रत्यक्षीकरण आवेदन की प्रक्रिया में न्यायालय को क्या करना चाहिए वह यह है कि परिविदित (कम्प्लेंड आफ) अवरोध (डिटेंसन) वैध है कि नहीं यह वह देख ले। यदि वैध न हो तो न्यायालय उक्त बंदी को छोड़े जाने की आज्ञा दे दे और यदि किसी दूसरी वैध और विधि अनुकूल आज्ञा के अंतर्गत वह अवरोध में है तो न्यायालय जो आज्ञा देगी वह प्रतिबंधात्मक (कंडीशनल) होगी। यदि आज्ञा प्रतिबंधात्मक रूप में दी गई है तो आवेदक इस मुख्य रुकावट को हटाने के पश्चात् साधारण विधि के अंतर्गत अपराध के लिये लग्नक (बेल) पर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७८२।

(१२) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा १४५ (५)—मजिस्ट्रेट जब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शांति भंग की संभावना नहीं है तो धारा १४५ की कार्यवाही का आधार जाता रहता है और मजिस्ट्रेट को तत्काल अपने हाथ रोक देने चाहिए। अब उन्हें इस प्रश्न के निश्चय करने का कि किस पक्ष को धारण (पोजेशन) दे दिया जाय आगे बढ़ने का अधिक्षेत्र प्राप्त नहीं है। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७९७।

(१३) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) धारा ९ तथा २०—जब निक्षेप (डिपाजिट) अग्रिम किया जाता है उसमें स्पष्टतः ध्वनितार्थ में एक संविद् (एग्रिमेंट) होता है कि वह धन यदि काम में नहीं लाया गया तो प्रत्यर्पण (रिफंड) के योग्य होगा और प्राप्त कर्ता उस धन को निक्षेपकर्ता को लौटाने के लिए ऋणी होगा। ऐसी अवस्था में प्राप्तकर्ता उस धन को निक्षेप कर्ता को उस स्थान पर लौटाने का दायी है जहाँ वह रहता है। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७९९।

(१४) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम (१८८२) धारा १०६—कुटुंब की संयुक्त स्थिति, संयुक्त परिवार की संपत्ति में केवल एक सहभागी की विधवा का अंश आ जाने से जिसमें वह विभाजन की अभ्यर्थना कर सकती है, भंग नहीं होती। यदि परिवार की संयुक्त स्थिति रहती है तो परिवार के कर्त्ता को निश्चय ही कुटुंब के सभी कार्यों का कर्ता एवं सारे परिवार का प्रतिनिधित्व करना, जिसमें वह विधवा भी संमिलित होगी, मानना होगा। अस्तु कर्ता परिवार के हित में जो भी कर्म करेगा वह समस्त परिवार, विधवा के सहित, द्वारा किया हुआ माना जायगा। ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ८०१।

(१५) अवधि अधिनियम (१९०८) अनुच्छेद १६४—यदि वाद की सुनवाई में कोई व्याघात (इंटरप्शन) न आए और वाद साधारणतया चलता रहे तो अनुच्छेद १६४ में दिया हुआ शब्द समन से अभिदेश होगा प्रथम बार निकाला हुआ समन। किंतु यदि सुनवाई में व्याघात हो और उच्चतर न्यायालय की आज्ञा से स्थगन हुआ हो तो वाद का दूसरा ही स्वरूप हो जाता है। उच्च न्यायालय से भेजे गए वाद में जब पुनः सुनवाई प्रारंभ होती है तो इस अवस्था में पहली सुनवाई इस वाद की पहली तिथि मानी जायगी।

ऐसे वाद में जब कोई तिथि निश्चित होती है या कोई तिथि स्थगित होती है तो यह न्यायालय का परम कर्तव्य है कि वह पक्ष को या उसके वकील या प्रतिनिधि को ऐसी तिथि की सूचना दे दे। यदि इन्हें सूचना नहीं दी गई तो जिस पक्ष को सूचना न मिली होगी वह

प्रक्रिया से बाध्य न होगा। ए० आई० आर० १६५७ इलाहाबाद पं० ८०५

(१६) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) धारा १५१ आ० ७ नियम ११—न्यायालय को अपनी पहली दी गई आज्ञा के प्रत्याह्वान (रिकाल) करने का अधिक्षेत्र प्राप्त है जिस आज्ञा से किसी पक्ष के प्रति अन्याय घटित होता है। उसके प्रत्याह्वान का न्यायालय को सर्वदा अधिकार प्राप्त है। उस आज्ञा का पुनर्विचार न्यायालय कर सकता है जिसके द्वारा उसने वादी को वादपत्र के शुल्क की कमी को पूरा करने के लिये अवसर नहीं दिया था जो इस अभिधारणा पर हुआ था कि वादी की अस्वस्थता सत्य नहीं थी। जब यह पता लगे कि वह आज्ञा अभिलेख की सामग्री के अभाव में दी गई थी, जो सामग्री तत्पश्चात् न्यायालय के संमुख लाई गई न्यायालय उस आज्ञा को प्रत्याहूत कर सकता है। न्यायालय ने जब वह आज्ञा उठा ली तो वादपत्र को अस्वीकृत करनेवाली आज्ञा अपने आप गिर जाती है। ए० आई० आर० १६५७ इलाहाबाद पं० ८२५। विधि पत्रिका वर्ष २ इला० पं० ११ (सीताराम साहु विरुद्ध केदार नाथ साहु)

(१७) उत्तर प्रदेश शुद्ध खाद्य अधिनियम (३२ सन् १६५०) धारा ३०—अभियुक्त जब एक बाल्टी दूध लेकर जा रहा था जिससे इंस्पेक्टर ने रुकने को कहा लेकिन अभियुक्त उनकी आज्ञा का पालन न करके भाग चला और जब उनके चपरासी ने पीछा किया तो दूध, जिसमें से इंस्पेक्टर नमूना लेना चाहते थे, फेंक दिया, अभियुक्त ने अधिनियम की धारा ३० के अर्थ के अंतर्गत एक अधिकारी के कर्तव्य पालन में संपूर्णरूपेण बाधा पहुँचाई है।

यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त बलप्रयोग के द्वारा यह अवरोध करे। इस धारा के अनुसार इच्छा पूर्वक रुकावट डालना दंडनीय है। उसका यह कहना नहीं है कि रुकावट डालने में बलप्रयोग आवश्यक है। बाधा (आब्स्ट्रक्शन) शब्द से भी कोई बलप्रयोग का भाव नहीं निकलता।

ऐसी परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि यतः इंस्पेक्टर प्रार्थी को अपना प्रयोजन नहीं समझा सके अतः वह अधिनियम के अंतर्गत कर्तव्य पालन करते नहीं कहे जा सकते।

किंतु अभियुक्त की दोषसिद्धि इंस्पेक्टर के वाक्य खंड (बी) नियम ४ द्वारा प्रदत्त कार्य में बाधा पहुँचाने के कारण नहीं हो सकती जब तक कि अभियोजन यह न सिद्ध कर दे कि खाद्य सामग्री अर्थात् वह दूध जिसमें से इंस्पेक्टर को नमूना लेना था वह खाने के लिये बेचने को था। ए० आई० आर० १६५७ इलाहाबाद पं० ८२६।

(१८) आपराधिक अन्वीक्षा—घूस पकड़ने के लिये विविध प्रकार के जालों के बीच अंतर स्थापित करना है। एक तो वह है कि जब घूस के लेन देन की बात सामान्यतः स्थिर हो और पुलिस उसकी सूचना पाकर उसके पकड़ने के निमित्त अपना जाल बिछाए। यह आपत्तिजनक नहीं है। दूसरा वह है कि कोई घूस देने वाला नहीं है पर पुलिस किसी को खड़ा करती है कि घूस देने का अभिनय किया जाय, यह जाल निम्न माना गया है, जाल से ही मामला प्रमाणित नहीं होता। अभियुक्त के पास से नोटों का निकलना यह मामले को प्रमाणित करने की एक प्रमुख कड़ी है। यदि रुपए की प्राप्ति ही संदिग्ध ठहरती है तो दोषसिद्धि नहीं हो सकती। (राज्य वि० हरप्रसाद शर्मा) ए० एल० जे० १६५७ पं० ६३४।

(१६) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) आ० ३३ नि० ७.—आर्डर ३३ में प्रार्थी के अकिंचन रूप में वाद प्रस्तुत करने के प्रार्थना पत्र के चलते रहने के बीच उसके न्यायालय में अपनी अभ्यर्थना को कम करने की स्वीकृति के लिये तथा कम की हुई अभ्यर्थना पर न्यायालय शुल्क दिये जाने की स्वीकृति के निमित्त प्रार्थना पत्र देने में कोई रुकावट नहीं है। (मुसम्मात मौजीजा खातून विरुद्ध मुसम्मात सईद फातमा) ए० आई० आर० १६५७ इलाहाबाद ७५२।

(२०) दंड प्रक्रिया (१८६०) धारा १०० (५)— जब पति अपनी पत्नी को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके पिता के घर से बलपूर्वक खींच लाया तो पति का यह आचरण केवल अपहरण हुआ अपराध नहीं। परिणामतः कोई व्यक्ति जो उसके परित्राण के लिये आकर उसी प्रयास में उसके पति की हत्या कर डालता है वह निजी प्रतिरक्षा के अधिकार की माँग नहीं कर सकता। (राज्य विरुद्ध बद्री इत्यादि) ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७१४।

(२१) विष अधिनियम १९१९ धारा ६ (ए)— उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दो दशाओं में दंड देने का उपबंध है (१) बिना अनुज्ञप्ति प्राप्त किये अनुसूची में दी गई विषालु वस्तुओं का विक्रय तथा (२) अनुसूची में दिए गए विषों का बिक्री के लिये धारण। जब यह मान लिया जाता है कि अभियुक्त का अभियोजन बिना अनुज्ञप्ति के विषालु वस्तुओं के बिक्री के लिये नहीं हुआ है तो उसकी दोषसिद्धि केवल इस पर ही हो सकती है कि वह उन वस्तुओं के 'विक्रयात्' धारण में था। अभियुक्त अनुसूची में दिए गए विषों के केवल धारण मात्र से दोषसिद्ध नहीं होता। विधि पत्रिका १९५७ पं० १२० (हुकुमचंद्र विरुद्ध राज्य) ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७०५।

(२२) (अ) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम (१८८२) धारा ५८— कोई व्यवहार जिसके संबंध में लेख्य (डाक्यूमेंट) है वह संपूर्ण रूपेण बिक्री, पुनः विक्रय ले लेने के प्रतिबंध के सहित है अथवा विक्रय के लिये प्रतिबंधित बंधकपत्र है! यह पक्षों के वास्तविक विचार से न्यायालय को स्थिर करना चाहिए।

ब—अवधि अधिनियम (१९०८) प्राक्कथन तथा अनुच्छेद १३४— बंधकी (मार्गेजी) का वादविषय की संपत्ति का अधिकार जो अनुच्छेद १३४ से अनुशासित था ऐसे हस्तांतरण के संबंध में जो ४-५-१९०७ को किया गया था, जब १९२९ के बहुत पहले ही समाप्त हो गया तो अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १३४ का परवर्ती संशोधन उसके अधिकारों को पुनर्जीवित नहीं कर सकता। विधि पत्रिका वर्ष २ इला० पं० ७ (मनमोहन दास वि० शेख बहाबुद्दीन) ए० आई० आर० १९५७ इलाहाबाद पं० ७४०।

आंध्र प्रदेश

(१) आपराधिक प्रक्रिया संहिता (१८९८) धारा ३४४ तथा ५६१ ए०— शब्दों के अनुरूप यह धारा आपराधिक प्रक्रिया के अनिश्चय काल तक स्थगन का उपबंध नहीं करती। वस्तुतः अधिनियम २६ सन् १९५५ की जोड़ी गई उपधाराएँ १ और २ से यही व्यक्त होता है कि आपराधिक विधि की घोषित नीति यही है कि अभियुक्त के साथ जितनी शीघ्रता से संभव हो न्याय किया जाय जिसमें यदि वह अपराधी हो तो दंडित कर दिया जाय और नहीं तो शीघ्र अभिमुक्त हो। निस्संदेह व्यवहार वाद के चलते समय तक के लिये आपराधिक वाद के स्थान के लिये प्रार्थी हो सकता है किंतु उन्हीं पक्षों के बीच और एक ही वस्तु विषय के संबंध में और कतिपय उच्च न्यायालयों के अनुसार मजिस्ट्रेट को अपने संमुख की कार्यवाही के स्थगन का अंतर्निहित अधिक्षेत्र प्राप्त है पर इन स्वविवेकी अधिकारों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए। केवल उसी समय जब 'पर्याप्त और उचित कारण हो' उचित कारण की कहीं परिभाषा नहीं है और न परिभाषा संभव है।

(२) आंध्र प्रदेश पं० ७७१— प्रत्येक वाद की परिस्थिति पर यह निर्भर करता है परिस्थिति के परीक्षण में आपराधिक प्रक्रिया का स्वरूप आपराधिक विधि की नीति तथा आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा ३४४ पर सदा ध्यान रखा जाय। ए० आई० आर० १९५७ पं० ७७१।

(३) आंध्र प्रदेश पं० ७७३—

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ४७ नि० १— किसी पक्ष को या उसके वकील को न्यायनिर्णय में आए हुए स्वीकृति वक्तव्य को वकील के साक्ष्य के

द्वारा चुनौती देना उपयुक्त नहीं है। यदि पक्ष यह चाहता है कि जिस रूप में स्वीकृति हुई है वैसा नहीं है अथवा न्यायालय ने उसे ठीक प्रकार समझा नहीं तो उचित प्रक्रिया यह है कि उसी न्यायाधीश के संमुख पुनर्विलोकन की प्रार्थना की जाय न कि साक्ष्य और शपथ पत्रों के द्वारा उसका प्रतिवाद किया जाय, ए० आई० आर० १९४७।

४—हिंदू विधि—विधवा के भरणपोषण का दर निश्चय करने में वाद निवेशित करते समय की संयुक्त परिवार की आय को विचारांतर्गत लेना चाहिए न कि वह आय जो उसके पति के मरने के समय रही हो। ए० आई० आर० १९५७ आंध्र प्रदेश पं० ८६५

५—आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा २५८-१ तथा धारा ४२३ (१)—धारा २५८ (१) मैजिस्ट्रेट को बाध्य करता है कि जब अपराध की कोई उपपत्ति नहीं है तो वह अभिमुक्ति की आज्ञा दे, यह आधिदेशिक मैंडेटरी उपबंध है अतः इसका अप्रतिपालन वही परिणाम लावेगा जो उस धारा में निर्देशित है। जो सिद्धांत इससे उद्भूत होता है वह यह है कि जब अभियुक्त पर लगाए गए किसी भी दोषारोप पर विशिष्ट उपपत्ति नहीं है तो वह उस दोषारोप से अभिमुक्त होने के समान है अतः पुनर्विचार न्यायालय उसी अपराध के लिये उसको दोषसिद्ध नहीं कर सकता जब तक कि उस अभियुक्त के विरुद्ध पुनरावेदन न हो। ए० आई० आर० १९५७ आं० प्र० पं० ८७४

६—संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम १८८२ धारा ६(१) भारत में सार्वजनिक पद एक न्यास की स्थिति में माना जाता है संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा ६(१) का उपबंध है कि सार्वजनिक पद तथा लोक अधिकारी का वेतन हस्तांतरित नहीं हो सकता। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा ६ (१) के अर्थ में मंदिर के पुजारी का पद जो दाय में प्राप्त होता है और विभाजित होता है वह सार्वजनिक पद नहीं है। ए० आई० आर० १९५७ आं० प्र० पं० ८७६।

७—व्यवहार प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा १४१—आ० ९ नियम ९—जब ऐसे अपराध के लिये जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा १९५(१) बी अथवा सी के अंतर्गत आता है परिवेदन चलाने के लिये दिया गया आवेदन चूक के कारण उत्सर्जित हो जाय तो व्यवहार प्र० संहिता के० आ० ९ नियम ९ के अनुसार उस उत्सर्जन को उत्सर्जित करने के लिये प्रार्थनापत्र देना सक्षम नहीं है। ऐसे वादों में धारा १४१ का प्रयोजन नहीं है। धारा १४१ केवल प्रारंभिक प्रक्रियाओं में जो वाद के स्वभाव की है लागू होती है या संप्रमाण (प्रोबेट) और प्रतिपालकत्व (गार्जियनशिप) की प्रक्रियाओं में। ए० आई० आर० १९५७ आं० प्र० ८९८

८—मोहमदन विधि—सार्वजनिक समर्पण न भी हुआ हो तो भी भूमि का बहुत काल तक मुसलिम कब्रिस्तान की भाँति प्रयोग ही उसको वक्फ बना देगी समर्पण के सीधे साक्ष्य के अभाव में वक्फ उपयोग के साक्ष्य से सिद्ध हो सकता है और ऐसा उपयोग जिससे समर्पण का भाव निकले स्पष्टरूप में सिद्ध करना चाहिए और इस प्रकृति का होना चाहिए जिससे केवल भूमि का कब्रिस्तान के लिए समर्पण सिद्ध हो। किंतु यह प्रश्न कि क्या भूमि बिना समर्पण के उपयोग के कारण वक्फ हो गई है महत्व का रूप ग्रहण कर लेता है क्योंकि बहुत दिनों तक निरंतर और बहुतेरी दशाओं में उपयोग से ही वक्फ का परिणाम निकाला जा सकता है। ए० आई० आर० १९५७ आ० प्र० पं० ६४१।

आसाम

१. पंच निर्णय अधिनियम आर्बिट्रेशन एक्ट १९४० धारा २१, २३—जिस अवस्था में पक्षों की इच्छा पंचों से न केवल वादविषय का वरन् एक आपराधिक वाद का जो दोनों पक्षों के बीच चल रहा हो, के निर्णय कराने की हो पर न्यायालय से उक्त प्रार्थनापत्र पर जो आदेश मिला हो उसमें पंचों को केवल वादविषय के

निर्णय का आदेश हो जिसको उन्हें पक्षों के अभिवचन के अनुसार निर्णय करना है तो निर्णय यह हुआ कि न्यायालय को केवल वादग्रस्त विषय के ही अभिदेश करने का अधिक्षेत्र प्राप्त है और केवल यह बात कि आरंभिक अभिदेश के प्रार्थनापत्र में पक्षों ने किसी और विवाद के निर्णय की कामना की है इस अभिदेश की वैधता को बाधा नहीं पहुँचाता। ए० आई० आर० १९५७ आसाम पं० १६५।

२. दंड प्रक्रिया १८९० धारा ४५७—थाना भवन सार्वजनिक संपत्ति है और उसके प्रभारी अधिकारी को उसके धारण का अधिकारी मानना चाहिए। थाने से संबद्ध किसी ए० एस० आई० का प्रवेश केवल आधिकारिक कार्यों के संपादन के लिये केवल एक वैधानिक कार्य है न कि किसी अवैध कार्य के करने के लिये। इस अवस्था में यदि अभियोजन का कथन सत्य है तो अभियुक्त जो थाने से ए० एस० आई० के रूप में संबद्ध है रात को थाने के कार्यालय में अपने को छिपाए हुए प्रवेश करता है और थाने की तिजोरी से डाकखाने का रखा हुआ रुपया चुरा लेता है तो स्पष्टतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४५७ की व्याप्ति के भीतर आएगा। ए० आई० आर० १९५७ आसाम पं० १६६।

बंबई

१. संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम में जिस प्रकार शब्द हस्तांतरण का प्रयोग हुआ है उसका संकीर्ण अर्थ निकालना चाहिए। बिक्री की भाँति हस्तांतरण का तात्पर्य है स्वामित्व का हस्तांतरण। अतः जिस अवस्था में सौदा चिट्ठी में ऐसा कुछ नहीं दिया गया है जिससे यह परिणाम निकाला जाय कि पक्षों का विचार स्वामित्व हस्तांतरण करने का था प्रत्युत इसके विपरीत लेख्य से यह स्पष्ट था कि पक्षों का विचार हस्तांतरण भविष्य में करने का था तो निर्णय हुआ कि सौदा चिट्ठी के निष्पादन से संपत्ति के स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं हुआ। ए० आई० आर० १९५७ बंबई पं० २३६।

२. काश्तकारी विधि—विधान मंडल का यह स्पष्ट अभिप्राय है कि जब कोई वादमूल ऐसा हो जिससे यह प्रश्न उठे कि प्रतिवादी पट्टाधारी है कि नहीं, वह अधिनियम के अंतर्गत सुरक्षित है कि नहीं तो इसका निर्णय साधारण विधि से नहीं होना चाहिए प्रत्युत धारा १६२ के विशेष उपबंधों से इसका निर्णय होना चाहिए; जब वादी को यह मान्य न हो कि प्रतिवादी पट्टाधारी है और न्यायालय में इस विवाद को लेकर आए कि प्रतिवादी अनधिप्रवेशी है, जिस सीमा तक वह इस प्रश्न को रखता है वहाँ तक वह उचित रूप में व्यवहार न्यायालय में जाने का अधिकारी है, किंतु जब प्रतिवादी यह कहे कि एक ऐसा व्यवहार ट्रंजेक्शन है जिसके द्वारा वह वादी का पट्टाधारी है तो तत्काल यह प्रश्न उठता है कि ऐसा कोई व्यवहार है कि नहीं, तो यह विषय व्यवहार न्यायालय के अधिक्षेत्र से बाहर हो जाता है और अधिक्षेत्र राजस्व न्यायालय को प्राप्त होता है। ए० आई० आर० १९५७ बंबई पं० २३६।

कलकत्ता

१. विभाजन के बाद के वादी को यह कहना आवश्यक नहीं है कि वह एक मात्र धारण में है उसका इतना ही अभिकथन पर्याप्त है कि वह संयुक्तरूपेण इजमाली संपत्ति पर धारण रखता है। ए० आई० आर० १९५७ कलकत्ता पं० ६५१।

२. पंच निर्णय अधिनियम १९४० धारा २८ अनुसूची १ वाक्यखंड सं० ३। धारा २८ के अंतर्गत न्यायालय का अधिकार नितांत स्वविवेकी है और सीमाबद्ध नहीं है; पंच निर्णय देने के समय के पूर्व या पश्चात् न्यायालय को अवधि बढ़ाने का अधिकार प्राप्त है, ए० आई० आर० १९५७ कलकत्ता पं० ६५८।

३. आपराधिक प्रक्रिया संहिता १८९८ धारा ३४४, जब अभियुक्त की अनुपस्थिति के कारण स्थगन स्वीकृत हुआ तो न्यायालय को व्यय की आज्ञा देने का अधिकार नहीं है; कारण कि न्यायालय को स्थगन तो करना होता ही। ए० आई० आर० १९५७ कलकत्ता पं ६८३।

———

Collateral heirs	सपांश्विक दायाद
Collateral member	सांपार्श्विक व्यक्ति
„ Obligation	सांपार्श्विक दायित्व
„ Proceeding	सांपार्श्विक कार्यवाही
„ Promise	सांपार्श्विक प्रतिज्ञा
„ Proof	सांपार्श्विक प्रमाण, परिस्थिति प्रमाण
„ Relation	सांपार्श्विक संबंधी
„ Ralationship	सांपार्श्विक संबंध
„ Undertaking	सांपार्श्विक देयता
„ Warranty	सांपार्श्विक अध्याभूति
Come by the father	पित्रागत
Come by the mother	मात्रागत
Commit for trial	अन्वीक्षा के लिये उपार्पण
Commitment charges	उपार्पण प्रभार
Committal	उपार्पण
Committed and discharged	उपार्पित और उन्मुक्त
„ and Imprisioned	उपार्पित और बंदीकृत
„ to prison	कारावास उपार्पित
Common appendant	उपाबद्ध सामान्याधिकार
„ appurtenant	अनुबद्ध „
„ carrier	लोक वाहक
" lands	सामान्याधिकार भूमि
„ informer	सामान्य सूचक
„ intendment	सामान्य अभिप्राय
„ intention	„ „
„ interest	सामान्य हित, पारस्परिक हित
„ Law estoppel	वैधिक प्रतिष्टंभ
„ Law jurisdiction	रूढ़ि विधि क्षेमाधिकार
„ Law lien	रूढ़ि-विधि-धरणाधिकार
„ Lawyer	रूढ़ि विधिवेत्ता
„ of estovers	काष्ठ सामान्याधिकार, निस्तार
„ pleas	सार्वजनिक प्रतिकथन
„ traverse	साधारण उल्लंघन
General traverse	सामान्य „
Communal case	सांप्रदायिक वाद
Commutative contract	नियम संबिदा

Complainant	परिवादी
Defendant	प्रतिवादी
Plaintiff	वादी
Respondent	उत्तरवादी
Competent agency	क्षम अभिकरण
,, agent	क्षम अभिकर्त्ता
,, civil court	क्षम व्यवहार न्यायालय
,, evidence	क्षम साक्ष्य
,, To deal with	संव्यवहार क्षम
,, Tribunal	क्षम न्यायाधिकरण
,, witness	क्षम साक्षी
Complaint	परिवाद
Compoundable	संयोज्य, अभिसंधेय
,, offence	अभिसंधेय अपराध
Compounded debt	अभिसंहित ऋण
Compound offence	संयुक्त अपराध
Conclusive and final evidence	निश्चायक और अंतिम साक्ष्य
,, argument	निश्चायक युक्ति
,, evidence	,, साक्ष्य
,, evidence of fact	तथ्य का निश्चायक साक्ष्य
,, evidence of title	स्वत्व का ,, ,,
,, proof	निश्चायक प्रमाण
Concocted evidence	कूटरचित साक्ष्य
Concurrent finding	समवर्ती उपपत्ति
,, Interest	,, हित
,, jurisdiction	,, क्षेत्राधिकार
,, Sentence	संगामी दंड
Condemned prisoner	आज्ञप्तदंड बंदी
,, to death	मृत्यु दंडित
Condemn in the strongest terms	कठोरतम शब्दों में निंदा करना
Conditional	सप्रतिबंध, प्रतिबंधी
Conditional advance note	सप्रतिबंध अग्रिमपत्र
Conditional attachment	,, अभ्याग्रहण
,, bequest	,, प्ररिक्थ
,, endorsement	,, पृष्ठांकन, प्रतिबंधी पृष्ठांकन
,, remission of punishment	दंड का सप्रतिबंध परिहार

Conduct the search in person	स्वयं अन्वेषण करना
Confession	अपराधांगीकरण, पापांगीकरण
Confessional box	पापांगी कृतिकोष्ठ
Confine	संसीमन, संसीमित करना
Confirmation nisi	यावन्नात्मक पुष्टि
Confiscable	समपहार्य
Conflicting statements	परस्पर विरोधी कथन
Conflict of laws	विधि विरोध
Confinement	संसीमन
Custody	अभिरक्षा
Detention	निरोध
Confusion of rights	अधिकार संविलय
Connivance	मौनानुकूलता, गजनिमीलिका
Conscience clause	अंतःकरण खंड
Consent money	संमति राशि
Consent money suit	,, ,, वाद
Consequential injury	आनुषंगिक क्षति
Consideration for promise	प्रतिज्ञा प्रतिफल
Consideration money	प्रतिफल राशि
Consolidated	सपिंडित, संघनित, समेकित, संचित
Consolidation of actions	अभियोग समेकन
Consolidation of Corporations	निगम ,,
Conspiracy	षडयंत्र, समुपजाप
Constitution	संविधान
Constructive annexation	प्रलक्षित संमेलन
Constructive assent	,, अनुमति
Constructive authority	,, प्राधिकार
Constructive contempt	,, अवमान
,, Contract	,, संविदा
,, conversion	,, परिवर्तन
,, crime	,, अपराध
Constructive delivery	,, प्रदान
,, escape	,, विपलायन
,, fraud	,, प्रतारण
,, house breaking	,, गृह भेदन
,, liability	,, देयता

Constructive loss	प्रलक्षित हानि
,, malice	,, दुर्भावना
,, notice	,, सूचना
,, possession	,, धारण
,, resjudicata	,, प्राङ्न्याय
,, total loss	,, समस्त हानि
,, trust	,, न्यास
Contemporanea expositio	समसामयिक विवृति
Contingent charge	संभाव्य प्रभार
,, claim	संभाव्य अध्यर्थना
,, contract	,, संविदा
,, grant	,, अनुदान
,, interest	,, हित
,, legacy	घटनापेक्ष रिक्थ, संभाव्य रिक्थ
,, remainder	संभाव्य अवशेष
,, right	,, अधिकार
Continued in occupation	अभिधारण में रहा
Continuing	संतत
,, beach	लगातार भंग
,, Contravention	संतत उलंघन
,, guaruntee	,, प्रत्याभूत
,, nuisance	,, अनुत्रास
,, offence	,, अपराध
Continuous easement	निरंतर सुविधा
,, possession	,, धारण
,, residence	,, निवास
Contract of carriage	वहन संविदा
,, of copartnery	सहभागिता संविदा
,, of guarantee	अध्याभूति ,,
,, of indemnity	क्षतिपूर्ति ,,
Contravening equity	परस्पर विरोधी साम्य
Contributory mortgage	अंशदायी बंधक
,, negligence	सहायक प्रमाद
Conveyancer	हस्तांतर लेखक
Conveyed in trust	न्यास में दिया
Coparcenary	संदायादता

Coparcener	संदायाद
Corporal oath	स्पर्श शपथ
Corporeal hereditaments	मूर्त दायाप्ति
Corpus delicti	अपराध सार
,, juris	विधि संग्रह
Corrective justice	शोधक न्याय
,, punishment	,, दंड
Corroborate	संपोषण, संपुष्टि करना
Corroborated	संपुष्ट, संपोषित
Corroborative	संपोषी, संपोषक
Corrupt	भ्रष्ट, भ्रष्ट करना
Corruption	भ्रष्टाचार
,, of blood	अधिकार लोप
Corrupt practices	कदाचार, भ्रष्टाचार
,, practices in election	निर्वाचन कदाचार
Cost	परिव्यय, लागत
expenditure	व्यय
outlay	उद्व्यय
outgoing	बहिर्गामि (धन)
charges	प्रभार
Price	मूल्य
value	अर्हा
Contract Cost	संविदा परिव्यय
Costly suit	बहुव्यय वाद
Cost acquistion	अवाप्ति परिव्यय
,, of living	निर्वाह व्यय
,, of process	आदेशिका परिव्यय
,, of suit	वाद
,, per unit	प्रति एकक परिव्यय
,, recovered	प्रत्यादत्त मूल्य
Costs following the event	परिणामानुरूप परिव्यय
,, incurred	किए गए ,,
,, in the cause	वाद परिव्यय
,, of Conveyances	हस्तांतर ,,
Cost of relief	संपरिहार ,,
Cost will follow the event	परिव्यय परिणाम के अनुरूप होगा

Costs woued abide the result	परिव्यय परिणाम के अनुरूप होगा
Council	परिषद्
Council cases	,, प्रकरण, परिषद् विषय
,, of legal education	विधि शिक्षण परिषद
Council of ministers	मंत्रि परिषद्
,, of state	राज्य सभा, राज्य परिषद्
Counsel	समुपदेश, मंत्रण, मंत्रणा, समुपदेशी
barrister	विधिवक्ता
Counsellor	समुपदेष्टा
Counselled	समुपदिष्ट, मंत्रित
Counter	विध्युपस्थाता (तृ), विरोधी
Counter affidavit	प्रतिशपथ पत्र
,, attack	प्रत्याक्रमण
,, bond	प्रतिबंध
,, check	प्रति परीक्षण
,, claim	प्रति अध्यर्थना
Set off	प्रतिसादन
defence	प्रतिवाद
Counter claimant	प्रति अध्यर्थक
,, deed	प्रति विलेख
Counterfeit	कूट, खोटा, जाली, कूटकरण
,, coining	कूट टंककरण
,, currency	कूट चलार्थ
Countermand	प्रत्यादेश
revoke	प्रति संहरण
Counterpart	प्रतिवस्तु, प्रतिलिपि, प्रतिरूप
Coupable	सदोष
Coup de grace	त्वराघात
,, de main	सहसाक्रमण
,, de theatre	सहसाकृत्य
insurrection	परिद्रोह
Sedition	राजद्रोह
rebellion	विद्रोह
revolt	विप्लव
mutiny	सैन्यद्रोह
revolution	क्रांति

insurgence	अभिद्रोह
rising	उद्द्रोह
Course	मार्ग, पथ, दिशा, प्रकार, प्रणाली, विधा प्रक्रिया
during the Course of employment	नियुक्ति पर्यंत
Follow a course	क्रम अनुसरण करना
Court	न्यायालय
tribunal	न्यायाधिकरण
Court of law	विधि न्यायालय
Court of justice	न्यायालय
Bench	न्यायासन
Civil Court	व्यवहार न्यायालय
Criminal Court	दंड ,,
District Court	मंडल ,,
High Court	उच्च ,,
Magistrate Court	दंडाधिकारि ,,
Revenne Court	राजस्व ,,
Session Court	सत्र ,,
Supreme Court	उच्चतम ,, सर्वोच्च न्यायालय
Court above	उपरि ,,
,, below	अवर ,,
,, Crier	न्यायाक्रोशक, पुकार करनेवाला
,, decree	न्यायालय आज्ञप्ति
,, exhibit	न्यायालय प्रदर्श
,, fee	न्यायालय शुल्क
,, having appellate jurisdiction	पुनर्विचाराधिकारी न्यायालय
,, hours	न्यायालय समय
,, house	न्यायालय भवन
,, immediatly below	ठीक नीचे का न्यायालय
,, ,, superior	ठीक ऊपर का ,,
,, Inspector	न्यायालय निरीक्षक
,, Language	,, की भाषा
,, martial	सेना न्यायालय, सेनान्वीक्षा करना
District Court martial	मंडल सेना न्यायालय
General Court martial	सामान्य ,, ,,
Summary Genral Court martial	संक्षेपतः सामान्य सेना न्यायालय
Court of admiralitiy	नावाधिकरण न्यायालय

Court of appeal	पुनर्विचारन्यायालय, पुनर्विचारालय
,, ,, appellate jurisdiction	पुनर्विचाराधिकारी न्यायालय
,, ,, arbitration	विवाचन न्यायालय
,, ,, assize	अभिसंत्र ,,
,, ,, Audience	श्रवण धर्म ,,
,, ,, Civil judicature	व्यवहार ,,
,, ,, Common law jurisdiction	रूढ़ि विधिक्षेत्र न्यायालय
,, ,, Common pleas	सार्वजनिक प्रतिकथन ,,
,, ,, Competent jurisdiction	क्षम क्षेत्राधिकार ,,
,, ,, Construction	अन्वय न्यायालय
,, ,, Convocation	धर्म संसद
,, ,, Coordinate jurisdiction	समवर्ती क्षेत्राधिकार न्यायालय
,, ,, enquiry	परिपृच्छा न्यायालय
,, ,, equity	साम्य ,,
,, ,, exchequer	राज्य कोष ,,
,, official	न्यायालय अधिकारी
,, of first instance	प्रथमवार न्यायालय, प्रथमवार का न्यायालय
,, ,, insolvency	शोधाक्षमता न्यायालय
,, ,, International justice	अंताराष्ट्रिय ,,
,, ,, jurisdiction Competent to try	अन्वीक्षाक्षम क्षेत्राधिकार न्यायालय
,, ,, law, law Court	विधि न्यायालय
,, ,, probate	इच्छापत्र प्रमाण
,, ,, review	पुनर्विलोकन ,,
,, ,, revision	पुनरीक्षण ,,
,, ,, Sessions	सत्र न्यायालय
,, ,, Small Causes	लघुवाद ,,
,, ,, wards	प्रतिपालक अधिकरण
Covenant	संश्राव, संश्राव करना
,, against encumbrance	भारहीनता का संश्राव
,, alternative or disjunctive	वैकल्पिक संश्राव
,, dependent	आश्रित संश्राव
Covenanted	संश्रावित
,, and Commissioned officer	,, और आयुक्त अधिकारी
,, Civilian	,, जानपद सेवी
,, Civil Servant	,, ,, सेवक
Covenantee	संश्राविती

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] आषाढ़ (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जून-जुलाई १९५८ [अंक ८

संपादकीय

अर्थ और न्याय

न्याय पर विचार करते हुए इस प्रारंभिक सिद्धांत को स्वीकार करना पड़ेगा कि न्याय सबके लिये सुलभ हो, न्याय के कंधों पर अर्थ का बोझ न हो। न्यायार्थी चाहे निर्धन हो या धनवान, उसे न्याय पाने की स्वतंत्रता रहे। अर्थ का अभाव न्याय के मार्ग का रोड़ा न बन सके। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज की न्यायपद्धति में सर्वप्रथम दोष यह है कि अर्थहीन प्राणी के लिये न्याय का पाना अत्यंत कठिन है। दूसरे, आज का न्याय बहुत मँहगा है। सफल न्यायार्थी भी अंत में अर्थ के भार से, रह रहकर होनेवाली उसकी पीड़ा से, बेबसी की साँस लेता है और उसे सोचना पड़ता है कि अच्छा होता वह न्यायालय में पग न रखा होता। असफल व्यक्ति की तो मृत्यु ही हो जाती है। एक एक वाद, सात आठ वर्ष तक चले जाते हैं। उससे शाखा प्रशाखा उत्पन्न होती है और आज की न्यायपद्धति में कोई लड़ाना चाहे तो विपक्षी को न्यायालय में वर्षों तक दौड़ा सकता है। इस बात को पृथक् भी रखा जाय तो सर्वसाधारण को आज न्याय पाने में जो धनराशि व्यय करनी पड़ती है वह सर्वथा अनुचित है।

इंगलैंड और भारत की न्यायपद्धति में भी मौलिक अंतर है। उदाहरण के लिये किसी ने किसी को ऋण दिया, वह व्यक्ति ऋण को नहीं चुकाता और उसे न्यायालय में जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो सर्वप्रथम ऋण देनेवाला व्यक्ति उस व्यक्ति को सूचित करेगा कि वह ऋण चुका दे। उस अवधि तक न चुकाने पर वह न्यायालय की शरण लेगा। उस समय इस वाद पर उसे न्यायालय शुल्क के रूप में कुछ देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। न्यायालय की ओर से ऋण लेने वाले को तिथि की सूचना दी जाती है जिसपर वह उपस्थित होकर अपनी बातों को प्रस्तुत करता है। उभय पक्ष की ओर से बातें सुनी जाती हैं दोनों ओर के साक्ष्य अपनी अपनी बातों की पुष्टि करते हैं। दोनों पक्षों का प्रमाण लेने के बाद न्यायालय जब इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वादी की डिग्री दे दी जानी चाहिए तो वाद की डिग्री देते समय न्याया० न्या० विषयक व्यय की धनराशि का भी इसमें समावेश कर देता है और यह निर्धारित

कर देता है कि उस व्यक्ति को अमुक धनराशि वादी को देना है तथा अमुक धनराशि न्यायालय को। इस प्रकार न्यायालय प्रतिवादी से वह धनराशि प्राप्त करता है। वादी ऋणदाता पर उसका भार नहीं पड़ता। जब वादी-ऋणदाता वाद में असफल होता है तब उसे न्यायालय का व्यय आदि देना पड़ता है। प्रारंभ में वह न्यायालय शुल्क आदि से बचा रहता है। किंतु भारतवर्ष में सफलता या असफलता का विचार न करते हुए वादी को सर्वप्रथम न्यायालय शुल्क देना पड़ता है जो उसकी आर्थिक क्षमता से कहीं अधिक होता है। यदि उसके पास पैसे नहीं हैं तो वह वाद निवेशित कर ही नहीं सकता। न्याय के विचार से यह सिद्धांत सर्वथा अनुचित है। अर्थ के अभाव में कोई व्यक्ति न्याय न पा सके यह नितांत अव्यावहारिक तथा अन्याय है। व्यवहार न्यायालय-शुल्क बहुत अधिक है। दस रुपया प्राप्त करने के लिये उसे पहले ही दस रुपया व्यय करना पड़ता है। उसी प्रकार एक हजार का बैनामा लिखाने में उसे चौंतीस रुपया स्टांप देना पड़ता है और रजिस्ट्री शुल्क इत्यादि अनेक व्यय हैं। इस प्रकार अर्थभार उसे अधमरा बना देता है।

दंड संहिता के मुकदमों में भी यही दशा है। उसमें न्यायालय शुल्क तो व्यवहार न्यायालय जैसा नहीं है किंतु उसमें तारीखें इतनी अधिक पड़ती हैं कि वह व्यक्ति दौड़ते दौड़ते थक जाता है। न्याय और शासन में पृथकता न रहने के कारण कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं। मजिस्ट्रेट लोगों को न्याय करने के साथ साथ शासन का भी काम करना पड़ता है। न्यायालय छोड़कर वे शासन प्रबंध में चले जाते हैं जिससे न्यायालय में आए हुए व्यक्तियों को लौट जाना पड़ता है। इंगलैंड की व्यवस्था इससे कुछ भिन्न है। वहाँ पुलिस न्यायालय कहे जाते हैं। न्यायकर्ता थाने पर ही मुकदमों को सुनता है किंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि वहाँ की पुलिस से वह प्रभावित नहीं हो सकता; न वहाँ की पुलिस इस ढंग की है, न मजिस्ट्रेट और न तो वहाँ के लोगों की स्वार्थ-भरी मनोवृत्ति ही है। वहाँ का वातावरण यहाँ से भिन्न है। वहाँ साक्षी न्याय में सहयोग देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अपराधी को दंड दिलाने में उनका सक्रिय सहयोग होता है और वे निरपराधी को निर्दोष देखना चाहते हैं। भारतवर्ष में कुछ लोगों का साक्ष्य देना व्यवसाय सा हो गया है। दिन रात न्यायालय में असत्य बातें कहने के लिये वे तत्पर रहते हैं। वे राग द्वेष तथा पैसे के प्रलोभन में असत्य बातें कहते हैं। जिस घटना को वे प्रत्यक्ष देखे भी नहीं रहते उसके संबंध में अपने को प्रत्यक्षदर्शी कहकर साक्ष्य देते हैं, तोते की तरह संपूर्ण घटना का वर्णन करते हैं। आज की न्यायपद्धति में साक्षी न्याय के आधार हैं पर साक्ष्य धर्म से साक्षी अपरिचित रहते हैं। ऊपर जैसा कहा गया है थानों पर न्यायालय होने से इंगलैंड में बहुत सुविधा होती है।

भारतवर्ष में बीस तीस मील से जाकर न्यायालय में उपस्थित होना पड़ता है और तब भी निश्चय नहीं है कि उस दिन कुछ काम होगा कि नहीं। वहाँ यहाँ की तरह तारीखें पर तारीखें नहीं पड़तीं। इसी प्रकार प्राचीन न्यायपद्धति में और आज की न्यायपद्धति में अंतर है। प्राचीन काल में वकील की परंपरा आज की सी न थी। वकील समुदाय इस प्रकार का व्यवसायी नहीं था। वह धन का लोभी नहीं था। न्याय में सहयोग देना उसका प्रधान लक्ष्य था, इसी में उसे आनंद मिलता था। कभी कभी लोग उनके गाउन में अशर्फियाँ डाल देते थे। पर आज वकालत एक प्रमुख व्यवसाय हो गया है। घूस और भ्रष्टाचार के कारण न्याय और मँहगा हो गया है।

जो जितना ही दुःखी और आर्त है उसकी मनोभावना से उतना ही लाभ उठाकर न्यायालय में उससे रुपया लिया जाता है। किसी का पुत्र यदि किसी कारणवश पकड़ लिया जाता है तो जमानत कराने में जेल से छुड़ाने में उसके दुःख के अनुपात से कहीं अधिक रुपया लिया जाता है। उसे अधिक कष्ट है इसलिए उसे अधिक व्यय करना पड़ेगा, शीघ्रता है इसलिए भी उससे बहुत अधिक माँग की जायगी। यही दूषित मनोवृत्ति न्यायालय में काम करती है। न्याय पर अर्थ का भार अधिक न हो, न्यायालय शुल्क कम हो, तारीख पर तारीख न पड़े,

साक्षी अपना कर्तव्य समझें, उन्हें न्यायधर्म का ज्ञान हो। शासन न्याय विभाग से पृथक् हो, वकील समुदाय की व्यावसायिक मनोवृत्ति न हो, न्यायालय इतनी दूरी पर स्थित न हों इन सब बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार और इन समस्याओं का निराकरण करना है। इन समस्याओं के समाधान पर ही न्याय की सफलता अवलंबित है। न्याय के सस्ता और सुलभ होने पर ही समाज में शांति स्थापित होगी। न्याय के क्षेत्र में लाभ का दृष्टिकोण अव्यावहारिक और अमानवीय है।

करों के रूप में दूसरे क्षेत्रों से पैसे लिए जाँय और उन क्षेत्रों से प्राप्त धनराशि न्याय के क्षेत्र में व्यय की जाय। जिस प्रकार जल लेकर वाष्प समूह बनते हैं और फिर वही वाष्प आवश्यकतानुसार वर्षा के रूप में हमारे खेतों पर आकर अन्न उत्पादन में सहायक होतीं है उसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों से कर के रूप में प्राप्त धनराशि आर्त, दुःखी, असहाय, दीनप्राणी को न्याय प्रदान कर सके, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। दीन के प्रति दया और अपराधी के प्रति घृणा से समाज में न्याय के प्रति आस्था होगी, लोगों के मन में शांति होगी और न्याय का ठीक ढंग से प्रयोग होगा और इसके फलस्वरूप समाज में राग द्वेष और कलह धीरे धीरे समाप्त हो जायगा।

—सिद्धनाथ सिंह

———

पूर्वानुबद्ध

प्रवेश के निषेध का आदेश चालू है, उस स्थान पर बिना अनुमति के प्रवेश करता है, अथवा,

(ब) यह जानते हुए कि किसी स्त्री या लड़की को इस धारा के अंतर्गत उस स्थान से चले जाने का आदेश हो चुका है और उस स्त्री या लड़की ने तत्संबंधी पुनः प्रवेश की आवश्यक अनुमति नहीं प्राप्त की है, उस स्त्री या लड़की को उस स्थान पर शरण देता है या छिपाता है।

वह २०० रुपए तक के अर्थ दंड का भागी होगा और उस अवस्था में जब कि अपराध बराबर चलता रहे उसे अतिरिक्त अर्थ दंड भी दिया जा सकता है जो कि पहले दिन के अपराध के बाद यदि आगे चले तो उस अवधि तक बीस रुपए प्रतिदिन के अपराध तक का हो सकता है।

२०—संरक्षणीय घर।

(१) राज्य सरकार स्वविवेक के आधार पर इस धारा के अंतर्गत जितने आवश्यक समझे उतने संरक्षणीय मकान की स्थापना कर सकती है और ऐसे मकान जब स्थापित हो जायँ तो उसका प्रबंध उस प्रकार होगा जैसा बाद में निश्चित हो।

(२) इस अधिनियम के प्रारंभण के पश्चात् राज्य सरकार को छोड़कर कोई व्यक्ति या कोई प्राधिकारी सिवा इस धारा के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञप्ति जारी हुए—किसी संरक्षणीय मकान की न तो स्थापना करेगा और न प्रबंध।

(३) किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा इस धारा के अंतर्गत इस प्रयोजन के लिये प्रार्थनापत्र देने पर राज्य सरकार संरक्षणीय घर की स्थापना के लिये या व्यवस्था के लिये या जैसी परिस्थिति हो व्यवस्था के लिये निर्धारित प्रपत्र पर अनुज्ञप्ति जारी कर सकती है और इस प्रकार जारी की हुई अनुज्ञप्ति में इस अधिनियम के अंतर्गत नियमों के अनुसार ऐसे प्रतिबंध भी हो सकते हैं जिन्हें लगाना राज्य सरकार उचित समझती हो।

किंतु प्रतिबंध है कि इन शर्तों में से कोई शर्त कह सकती है कि संरक्षणीय घर का प्रबंध जहाँ संभव हो सके किसी स्त्री को सौंपा जाय—

आगे यह भी प्रतिबंध है कि कोई व्यक्ति या प्राधिकारी यदि इस अधिनियम के प्रारंभण के समय किसी संरक्षणीय मकान की व्यवस्था करता है तो इस अधिनियम के प्रारंभण से उसे ६ महीने का अवसर दिया जायगा कि इसके भीतर वह ऐसी अनुज्ञप्ति के लिये प्रार्थनापत्र दे सकता है।

(४) अनुज्ञप्ति जारी करने के पहले राज्य सरकार ऐसे कर्मचारी या प्राधिकारी को, जिसे वह इस प्रयोजन के लिये नियुक्त करे, ऐसे प्रार्थनापत्र के विषय में पूरी जाँच और अन्वेषण करके इसके परिणाम के विषय में प्रतिवेदन देने की आज्ञा दे सकती है तथा ऐसे अन्वेषण के लिये वह कर्मचारी या प्राधिकारी उस प्रक्रिया का पालन करेंगे जो इस संबंध में निश्चित हो।

(५) यदि अनुज्ञप्ति और पहले ही अस्वीकार नहीं कर दी जाती तो वह उस अवधि तक लागू रहेगी जिसका अभिदेश अनुज्ञप्ति पत्र में हो और अंतिम समय बीतने की तिथि से एक महीना पहले अनुज्ञप्ति फिर उसी समय तक के लिये पुनः नवीन कर दी जा सकती है।

(६) इस अधिनियम के अंतर्गत जारी की हुई या पुनः नवीन की हुई किसी अनुज्ञप्ति का हस्तांतरण नहीं किया जायगा।

(७) जहाँ किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को इस अधिनियम के अंतर्गत अनुज्ञप्ति जारी की गई है और वह या उस व्यक्ति या प्राधिकारी का कोई अभिकर्ता या नौकर उसकी शर्तों का पालन नहीं करता है या इस अधिनियम के किसी उपबंध का या इस अधिनियम के अंतर्गत नियमों का पालन नहीं करता है अथवा जहाँ राज्य सरकार संरक्षणीय घर का प्रबंध, उसकी अवस्था या उसकी देख रेख को संतोषप्रद नहीं पाती है तो उस दशा में राज्य सरकार इस अधिनियम के किसी उपबंध के अंतर्गत दंडित होने पर भी उन कारणों का अभिलेख करने पर लिखित आदेश द्वारा उक्त अनुज्ञप्ति को प्रभाव-शून्य कर सकती है—

किंतु प्रतिबंध है कि ऐसा आदेश तब तक नहीं दिया जायगा जब तक कि अनुज्ञप्तिधारी को यह कारण दिखलाने का अवसर न दिया गया हो कि उसकी अनुज्ञप्ति क्यों न प्रभावशून्य कर दी जाय।

(८) जब संरक्षणीय घर के संबंध में कोई अनुज्ञप्ति उपर्युक्त उपधाराओं के अंतर्गत प्रभावशून्य कर दी गई हो तो ऐसा संरक्षणीय घर ऐसे प्रभावशून्य करनेवाले आदेश की तिथि से काम करना बंद कर देगा।

(६) इस संबंध में बनाए हुए किसी नियम से नियंत्रित रहकर इस अधिनियम के अंतर्गत जारी की हुई या पुनर्नवीन की हुई किसी अनुज्ञप्ति में राज्य सरकार परिवर्तन भी कर सकती है या उसमें संशोधन भी कर सकती है।

१०—जो कोई इस अधिनियम के उपबंधों के अतिरिक्त किसी संरक्षणीय घर की स्थापना करता है या व्यवस्था करता है वह प्रथम अपराध में अर्थ दंड से दंडित होगा जो एक हजार रुपए तक हो सकता है और दूसरे तथा पश्चात्वर्ती अपराध के लिये बंदीगृह के दंड से दंडित होगा जो एक वर्ष तक का हो सकता है तथा इसके साथ अर्थदंड भी दिया जा सकता है जो दो हजार रुपए तक हो सकता है या दोनों दंड दिया जा सकता है।

२२-अन्वीक्षाएँ—

धारा २ के उपवाक्य सी० में जिस मजिस्ट्रेट के न्यायालय की परिभाषा दी गई है उससे छोटी श्रेणी का न्यायालय धारा ३, धारा ४, धारा ५, धारा ६, धारा ७ या धारा ८ के अंतर्गत अपराधों की अन्वीक्षा नहीं करेगा।

२३-नियम बनाने का अधिकार—

(१) राज्य सरकार सरकारी राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों का पालन करने के लिये नियम बना सकती है।

(२) विशेष रूप से एवं उपर्युक्त अधिकारों की व्यावहारिकता पर बिना ठेस पहुँचाए ऐसे नियम ऐसे विधान कर सकते हैं कि—

(अ) किसी स्थान के बारे में विज्ञप्ति कि यह एक सार्वजनिक स्थान है;

(ब) धारा १० की उपधारा (१) के अंतर्गत उद्धार की गई स्त्रियों या लड़कियों का अभिरक्षा में रखा जाना या जिनको सुरक्षित रखने के लिये धारा १७ की उपधारा (१) के अंतर्गत आदेश पारित हो चुके हैं तथा उनके भरण पोषण के लिये;

(स) धारा १० की उपधारा २, धारा १७ (२) और धारा १६ के अंतर्गत स्त्रियों या लड़कियों का संरक्षणीय घरों में रोक रखा जाना या रखा जाना तथा उनका भरण-पोषण;

(द) छूटे हुए अपराधियों के संबंध में उनका निवास स्थान, निवास स्थान में परिवर्तन या, निवासस्थान से अनुपस्थिति के बारे में विज्ञप्ति संबंधी धारा ११ के उपबंधों का पालन किए जाने के लिये,

(य) धारा १३ की उपधारा १ के अंतर्गत विशेष पुलिस अधिकारी की नियुक्ति का अधिकार किसी अन्य प्राधिकरण को दिए जाने के संबंध में,

(र) धारा १८ के उपबंधों को लागू करने के लिये,

(ल) (१) संरक्षणीय घरों की स्थापना, व्यवस्था, प्रबंध एवं देखरेख के लिये तथा इन घरों में नियुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति, अधिकार एवं कर्तव्य के लिये;

(२) वह प्रपत्र जिसमें अनुज्ञप्ति के लिये प्रार्थनापत्र दिया जाय और ऐसे प्रार्थनापत्र के विवरण के लिये;

(३) अनुज्ञप्ति के जारी करने या उसके नवीनीकरण की प्रक्रिया, समय जिसके भीतर अनुज्ञप्ति का जारी करना या उसका नवीनीकरण होगा तथा अनुज्ञप्ति के लिये दिए गए प्रार्थनापत्र की पूरी जाँच के लिये प्रक्रिया (प्रोसीजर) का निर्धारण,

(४) अनुज्ञप्ति या प्रपत्र एवं उसके भीतर प्रतिबंधों का निर्देश;

(५) वह ढंग जिससे संरक्षणीय घरों का हिसाब रखा जाय और उसकी जाँच हो;

(६) अनुज्ञप्तिधारी द्वारा रजिस्टर रखा जाना एवं उसका विवरण तथा इन रजिस्टरों एवं विवरणों का रूप;

(७) संरक्षणीय घरों में रहनेवालों की देखभाल दवादारू, भरणपोषण, शिक्षा, निर्देश, नियंत्रण और अनुशासन;

(८) उसमें रहनेवालों के यहाँ पहुँचने और उनसे संपर्क स्थापित करने के लिये,

(९) उन स्त्रियों एवं लड़कियों के लिये समय जिन्हें संरक्षणीय घरों में रखे जाने का आदेश हो चुका है वहाँ रखे जाने के संबंध में जब तक प्रबंध नहीं हो जाता तब तक के लिये रोक रखने की व्यवस्था;

(१०) किसी स्त्री या लड़की का एक संरक्षणीय घर से दूसरे संरक्षणीय घर में स्थानांतरण;

(११) उस स्त्री या लड़की का संरक्षणीय घर से बंदीगृह में हस्तांतरण करने के लिये न्यायालय का आदेश, जब कि यह निश्चय हो जाय कि वह स्त्री या लड़की सुधर नहीं सकती और वह अपने सहवासियों पर बुरा प्रभाव डालती जा रही है तथा ऐसे बंदीगृह में उसे रोक रखने की अवधि;

(१२) धारा ७ और धारा ८ में जिन स्त्रियों या लड़कियों को दंडादेश हुआ है उनका संरक्षणीय घरों में स्थानांतरण तथा ऐसे घरों में उनके रोक रखने की अवधि;

(१३) संरक्षणीय घरों में रहनेवालों की वहाँ से पूर्णरूपेण मुक्ति या कुछ शर्तों के अधीन मुक्ति तथा उन शर्तों का उल्लंघन करने पर पुनः बंदी कर लेने की व्यवस्था;

(१४) वहाँ रहनेवालों को थोड़ी अवधि तक की अनुपस्थिति के बारे में अनुमति प्रदान करना;

(१५) संरक्षणीय घरों या अन्य संस्थाओं का निरीक्षण जिनमें स्त्रियाँ या लड़कियाँ रखी जायँ, रोक रखी जायँ या जिनका वहाँ पालनपोषण होता है ,

(व) कोई अन्य विषय जिसका निर्धारण होनेवाला हो या जिसका निर्धारण हो सके।

(३) उपधारा २ के वाक्यखंड (द) या वाक्य खंड (ल) के अंतर्गत नियम बनाते समय राज्य सरकार यह उपबंध रख सकती है कि उसके उल्लंघन करने पर २५० रु० तक का अर्थदंड हो सकता है।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए समस्त नियम बन जाने के पश्चात् यथासंभव शीघ्र ही राज्य विधान मंडल के समक्ष रखे जायेंगे।

२४—यह अधिनियम कुछ अन्य अधिनियमों की अवहेलना नहीं करता—

इस अधिनियम के किसी उपबंध का अर्थ यह नहीं समझा जायगा कि यह सुधारक शिक्षालय अधिनियम १८९७ की या राज्य सरकार का कोई अन्य अधिनियम जो उक्त अधिनियम के परिष्कार के रूप में अधिनियमित हुआ हो या अन्य प्रकार शिशु अपराध से संबद्ध हो उनकी अवहेलना करता है।

२५—निरसन (रिपील) और बचाव—

(१) किसी राज्य में इस अधिनियम के उपबंधों, धारा १ को छोड़कर, के लागू होने की तिथि से स्त्रियों एवं लड़कियों के अनैतिक व्यापारीय दमन संबंधी या वेश्यावृत्ति निरोध संबंधी समस्त राज्य अधिनियम जो उस राज्य में उक्त तिथि से ठीक पहले लागू हों निरसित हो जायँगे।

(२) कोई राज्य अधिनियम जिसका अभिदेश उपधारा १ के अंतर्गत हुआ है उसका इस अधिनियम द्वारा निरसन होने पर भी कोई किया हुआ काम या कोई कार्यवाही (जिसमें दिया हुआ कोई निर्देश, कोई पंजिका, नियम या दिया गया आदेश और प्रतिबंध भी संमिलित है) जो उक्त राज्य अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत हो और वह यदि इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो तो समझा जायगा कि वह कार्यवाही इस अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत की गई है मानो वह उपबंध उस समय लागू था जब कि वह कार्यवाही की गई और वे तब तक लागू रहेंगे जब तक कि वे इस अधिनियम के अंतर्गत किसी किए गए काम या किसी कार्यवाही द्वारा निष्प्रभावित न कर दिए जाँय।

व्याख्या—इस धारा के अंतर्गत 'राज्य अधिनियम' की अभिव्यक्ति में प्रांतीय अधिनियम' भी संमिलित है।

संपत्ति-कर अधिनियम, १९५७
(अधिनियम २७, १९५७)
(१२ सितंबर १९५७)

संपत्ति कर लगाने के लिये उपबंध बनानेवाला एक अधिनियम भारतीय गणतंत्र के अष्टम वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित प्रकार से अधिनियमित हो—

अध्याय १
प्रारंभिक

१—संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार एवं प्रारंभण।

१–यह अधिनियम संपत्ति-कर अधिनियम १९५७ पुकारा जायगा,

२–इसका विस्तार समस्त भारतवर्ष में है।

३–समझा जायगा कि यह पहली अप्रैल सन् १९५७ को लागू हुआ।

टिप्पणी—उद्देश्य और प्रयोजनों के अभिकथन के लिये भारतीय गजट, १५-५-५७ देखिए और प्रवर समिति के प्रतिवेदन के लिये भारतीय गजट १७ ८-१९५७ देखिए।

२—परिभाषाएँ—

इस अधिनियम में जब तक कि प्रसंग से कोई अन्य बात नहीं आती,—

(अ) 'अपील के सहायक आयुक्त' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा ९ के अंतर्गत संपत्ति-कर के अपील के सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो।

(ब) 'अपील का न्यायाधिकरण' का तात्पर्य अपील के उस न्यायाधिकरण से है जिसकी नियुक्ति आयकर अधिनियम की धारा ५ ए० के अंतर्गत हुई हो।

(स) 'करदाता' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसके द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर या अन्य कोई धनराशि देय हो और इसमें वह प्रत्येक व्यक्ति संमिलित है जिसके संबंध में उसके परिसंपत् (ऐसेट्स) के मूल्य निर्धारण के लिये इस अधिनियम के अंतर्गत कोई कार्यवाही की गई हो;

'कर निर्धारण वर्ष' का तात्पर्य उस वर्ष से है जिसके लिये धारा ३ के अंतर्गत कर प्रभार्य हो;

(य) परिसंपत् (ऐसेट्स) में सभी प्रकार की चल और अचल संपत्ति आती है किंतु इसमें—

(१) कृषि भूमि और उगे हुए पौदे, घास या ऐसी भूमि पर खड़े निर्माण-काष्ठ,

(२) कोई मकान जिसका स्वामी एवं धारण करनेवाला कोई कृषक हो या कृषिभूमि की लगान या राजस्व प्राप्त करनेवाला व्यक्ति हो—

किंतु प्रतिबंध यह है कि मकान उस भूमि पर हो या उस भूमि के निकट पड़ोस में हो और वह मकान ऐसा हो जिसे कृषक अथवा उस भूमि से संबंध रहने के कारण लगान या राजस्व प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उसे निवासस्थान के रूप में प्रयोग करता हो अथवा वह संग्रहागार हो या कोई छावनी हो;

(३) जानवर;

(४) किसी अवस्था में वार्षिकी का वह अधिकार जहाँ—तत्संबंधी शर्तें एवं अनुबंध उसके किसी अंश के लघूकरण से एकमुष्ठि धनराशि की स्वीकृति में बाधक हों;

संमिलित नहीं हैं;

(र) मंडल (बोर्ड) का तात्पर्य केन्द्रीय राजस्व मंडल अधिनियम, १९२४ के अंतर्गत निर्मित केंद्रीय राजस्व मंडल से है।

(ल) 'आयुक्त' (कमिश्नर) का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा १० के अंतर्गत संपत्ति कर के आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत हो;

(व) 'कंपनी' का तात्पर्य किसी कंपनी से है जिसकी परिभाषा कंपनी अधिनियम, १९५६ की धारा ३ में दी गई है और उसमें उस अधिनियम की धारा ५९१ के अभिप्राय के अंतर्गत विदेशी कंपनी भी संमिलित है;

(व १) 'निष्पादक' का तात्पर्य किसी मृत व्यक्ति की संपदा के निष्पादक या प्रशासक से है;

(व २) 'आयकर अधिनियम' का तात्पर्य भारतीय आयकर अधिनियम १९२२ से है ,

(व ३) 'आयकर अधिकारी' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो आयकर अधिनियम के अंतर्गत आयकर अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया हो;

(व ४) 'संपत्ति-कर निरीक्षक सहायक आयुक्त' का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो धारा ११ के अंतर्गत संपत्ति-कर निरीक्षक सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो ,

(व ५) 'शुद्ध संपत्ति' (नेट वेल्थ) का तात्पर्य उस धनराशि से है जो इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा गणना की हुई उसकी सभी परिसंपत के संपूर्ण मूल्यांकन, और परिसंपत् (ऐसेट्स) चाहे जहाँ स्थित हो किंतु वह मूल्यांकन की तिथि को करदाता की हो और इसमें वह परिसंपत् भी संमिलित है जो उसकी शुद्ध संपत्ति में संमिलित की जानेवाली हो जैसा कि इस अधिनियम के अंतर्गत उक्त तिथि को करदाता द्वारा दिए जानेवाले समस्त ऋण के संपूर्ण मूल्य से अधिक हो किंतु इसमें—

(१) वे ऋण नहीं हैं जिन पर धारा ६ के अंतर्गत विचार नहीं किया जाता, और—

(२) इसमें वे ऋण भी नहीं हैं जो किसी परिसंपत् जिस पर कि इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर देय नहीं है उस पर सुरक्षित हैं या जो इस संबंध में प्राप्त किए गए हैं।

(व ६) 'निर्धारित' का तात्पर्य है कि इस अधिनियम के नियमों द्वारा निर्धारित हो,

(व ७) "मुख्य अधिकारी" यदि किसी कंपनी के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ हो तो इसका अभिप्राय होगा, मंत्री, व्यवस्थापक, प्रबंधकारी अभिकर्ता अथवा कंपनी का प्रबंधकारी निर्देशक और इसमें कोई वह व्यक्ति भी संमिलित है जो कंपनी के कामों के प्रबंध करने के संबंध में नियुक्त हो और जिसपर संपत्ति कर अधिकारी ने नोटिस इस अभिप्राय से तामील कर दी हो कि वह उसे उसका मुख्य अधिकारी समझता है;

(व ८) 'शासक' (रुलर) का अर्थ वह शासक है जिसकी परिभाषा संविधान के अनुच्छेद ३६६ के उपवाक्य (२२) में दी गई है;

(व ९) "मूल्यांकन तिथि" जो किसी उस वर्ष से संबंधित हो जिसके लिये इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण होनेवाला हो तो उसका तात्पर्य गत वर्ष का अंतिम दिन होगा जिसकी परिभाषा आयकर अधिनियम की धारा २ के उपवाक्य (११) में दी गई है मानों उस अधिनियम के अंतर्गत उस वर्ष के लिये कर निर्धारण होनेवाला है;

किंतु प्रतिबंध है कि यदि आयकर अधिनियम के अंतर्गत किसी करदाता के लिये भिन्न भिन्न आय के साधनों के लिये भिन्न भिन्न गत वर्ष हों तो इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये मूल्यांकन तिथि उपर्युक्त अंतिम गत वर्षों की अंतिम तिथि होगी;

(व १०) 'मूल्य निर्धारक' का तात्पर्य उस मूल्य निर्धारक से है जिसकी नियुक्ति संपदा शुल्क अधिनियम १९५३ की धारा ४ के अंतर्गत हुई हो।

(व ११) संपत्ति कर अधिकारी' का तात्पर्य आयकर अधिकारी से है जो धारा ८ के अंतर्गत संपत्ति कर अधिकारी का काम करने के लिये अधिकृत किया गया हो।

अध्याय २

संपत्ति कर एवं परिसंपत् का प्रभार ऐसे प्रभार के अधीन है

संपत्ति कर का लिया जाना—

इस अधिनियम के अंतर्गत अन्य उपबंधों के अधीन प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिये जो अप्रैल १, १९५७ से आरंभ होगा एक कर लिया जायगा जो (एतत्पश्चात् संपत्ति-कर से अभिदिष्ट होगा) प्रत्येक व्यक्ति, अविभाजित हिंदू परिवार और कंपनी के संगती मूल्यांकन तिथि की शुद्ध संपत्ति पर होगा और उसकी दर या दरें अनुसूची में निर्दिष्ट दर या दरें होंगीं।

इसे मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष भेजने पर उन्होंने तृतीय न्यायाधीश रघुवर दयाल की संमति के लिये अभिदेश कर दिया।

न्यायमूर्ति रघुवर दयाल ने निर्णय दिया कि 'प्रतिलिपि' का तात्पर्य प्रमाणित प्रतिलिपि से है। अतः अंत में अपील उत्सर्जित कर दी गई क्योंकि अपील के स्मृतिपत्र के साथ अवधि के भीतर निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं दी गई थी और समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र पहले ही अस्वीकार हो चुका था। किंतु इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाणपत्र दे दिया गया कि यह अपील करने के लिये उपयुक्त है।

इस अपील में केवल इसी पर जोर दिया गया कि सादी प्रतिलिपि का धा० ४१६ के अंतर्गत दिया जाना पर्याप्त है। शब्दकोश के सहारे कहा गया कि 'प्रतिलिपि' शब्द के अर्थ में अस्पष्टता है ही नहीं इसलिए इसके अन्वय (कांस्ट्रक्शन) की कोई आवश्यकता नहीं है। कहा गया कि यदि प्रमाणित प्रतिलिपि दी जाती है तो इसका भी अर्थ प्रतिलिपि ही हुआ। प्रमाणित प्रतिलिपि और प्रतिलिपि दोनों समान हैं।

इसमें संदेह नहीं कि जब किसी परिनियम में प्रयुक्त शब्द के अर्थ में संदेह हो तो उसके लिये कड़ाई से व्याकरण और व्युत्पत्ति पर ही नहीं आ जाना चाहिए वरन् अधिनियम के वस्तुविषय और विधानमंडल के उद्देश्य के साथ साथ चलनेवाला अर्थ लगाना चाहिए।

इसके लिये दं० प्र० सं० की कतिपय धाराओं के आधार पर विचार करना आवश्यक होगा। धारा ३७१ (४) के अंतर्गत अभियुक्त के न माँगने पर भी जो पूरे निर्णय की प्रतिलिपि देने का नियम है वह ज्ञात होता है कि इसीलिए है कि वह निश्चय करले कि दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध अपील करे कि नहीं। किंतु धारा ४१७ के अंतर्गत दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील करने के लिये सरकार को निर्णय की प्रतिलिपि प्राप्त करना होगा और तब उसे धा० ४१६ में स्मृतिपत्र के साथ देना होगा। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा ७४ के अंतर्गत निर्णय सार्वजनिक विलेख में आता है। दं० प्र० सं० की धारा ५४८ के अंतर्गत जो निर्णय से असंतुष्ट है वह उसकी प्रतिलिपि पाने का अधिकारी है। धारा ७६ में वह अधिकारी जिसकी देख रेख में निर्णय रखा है वह इसका शुल्क इत्यादि लेकर प्रमाणित करके प्रतिलिपि दे देगा। इसी प्रतिलिपि को प्रमाणित प्रतिलिपि कहते हैं। इसलिए चाहे अभियुक्त धारा ३७१ (१) (२) में प्रतिलिपि के लिये प्रार्थनापत्र देता हो चाहे सरकार लोक अधिकारी से प्रतिलिपि चाहती हो यह प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए। जब धारा ४१६ में प्रतिलिपि देने का नियम है तो यह प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए।

अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १५४, १५५ और १५७ में निर्दिष्ट अवधि के भीतर ही अपील निवेशित हो जानी चाहिए किंतु प्रमाणित प्रतिलिपि को प्राप्त करने में देर होती है इसीलिए अवधि अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत प्रतिलिपि पाने तक का समय और बढ़ा दिया जाता है। इन अनुबंधों के देखने से यही प्रतीत होता है कि प्रतिलिपि प्रमाणित प्रतिलिपि ही होनी चाहिए।

धारा ४१६ में जो प्रतिलिपि देने का नियम है वह विशेष अभिप्राय से है। प्रतिलिपि इसलिए दी जाती है कि न्यायाधीश इसके द्वारा दो प्रकार का आदेश दे सकते हैं। एक यह कि यों ही देखने पर जब ज्ञात होता है कि अपील में कोई आधार नहीं है तो यह सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी जायगी। दूसरे यदि अपील का आधार महत्वपूर्ण प्रतीत होता है तो उत्तरवादी को सूचना दी जायगी कि इसकी सुनवाई कब और कहाँ पर होगी। इसमें संदेह नहीं कि ये सब आदेश न्यायिक आदेश हैं और इसके लिये प्रतिलिपि का ठीक रहना आवश्यक है। इतना ही नहीं, अपील निवेशित करते समय ही आदेश के निष्पादन की कार्यवाही स्थगित करने के लिये प्रार्थना की जा सकती है या सरकार प्रार्थनापत्र दे सकती है कि सुनवाई के पहले ही अभियुक्त बंदी कर लिया जाय, इत्यादि। इन सब आदेशों के लिये उपयुक्त आधार होना चाहिए। प्रमाणित प्रतिलिपि के बिना आधार उपयुक्त नहीं हो सकता

इसलिए धा० ४१६ में प्रतिलिपि प्रमाणित प्रतिलिपि होनी चाहिए।

कहा गया कि अपील का न्यायालय अभिलेख को देखकर तभी अपील सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर सकता है, बिना देखे नहीं। ऐसी बात नहीं है। जब अभियुक्त के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का प्रश्न है तो निर्णय शीघ्र होना चाहिए। अभिलेख देखने के लिये अपील का न्यायालय बाध्य नहीं है। अभिलेख मँगाने और देखने में देर होती है। अतः यदि धा० ४१६ में प्रमाणित प्रतिलिपि हो तो यह सब कठिनाई नहीं पैदा होगी और यही धारा का उद्देश्य भी है।

विद्वान् वकील ने फिर कहा कि यदि मामला आवश्यक हो तो यह आवश्यक नहीं है कि न्यायालय अभिलेख की प्रतीक्षा करता रहे। वह तुरत अपीलकर्ता को बुला सकता है कि वह साक्ष्य दे कि निर्णय शुद्ध है कि नहीं और तब न्यायालय इस पर न्यायिक आदेश पारित कर सकता है। इस कथन को न मानने के लिये निम्नलिखित आधार हैं :—

१—दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई नियम नहीं है।

२—इसको इस प्रकार प्रमाणित करने में और विलंब होगा।

३—शुद्धता के बारे में पूछने पर अपीलकर्ता अधिक से अधिक यही कह सकता है कि मैंने निर्णय पढ़ा है और जहाँ तक मुझे स्मरण है उसकी यह सही प्रतिलिपि है। यदि ऐसा साक्ष्य दिया गया तो यह गौण साक्ष्य होगा, मुख्य नहीं। विलेख के अंतर्विषय पर मौखिक साक्ष्य देने या मुख्य साक्ष्य न देकर गौण साक्ष्य देने इत्यादि की अनेक अड़चनें पड़ेंगी और अंत में यह भारी समस्या उपस्थित होगी कि ऐसा साक्ष्य प्रतिग्राह्य है कि नहीं। धा० ७४ में निर्णय 'सार्वजनिक विलेख' में आता है। इसके लिये गौण साक्ष्य देने की मनाही है। धारा ६५ के अंतर्गत इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्रतिग्राह्य हो सकती है। प्रसंग से यह प्रगट होता है कि धा० ४१६ में प्रतिलिपि प्रमाणित होनी चाहिए।

राज्य की ओर से कहा गया कि न्यायालय को अधिकार है कि धा० ४१६ में प्रतिलिपि निवेशित करने के बंधन को पूर्णतया हटा दे। अतः जब प्रतिलिपि देने की माँग ही दूर की जा सकती है तो सादी प्रतिलिपि पर्याप्त है। यह बात भी मानने योग्य नहीं है। हो सकता है कि प्रमाणित प्रतिलिपि किसी दूसरे मुकदमें में दी गई हो और दूसरी लेने में देर हो या दूसरे कारण भी हो सकते हैं और मामला आवश्यक हो तो प्रतिलिपि का न देना न्यायालय क्षमा कर सकता है। ऐसा काम न्यायालय परिस्थिति को देखते हुए करता है। किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि न्यायालय को सादी प्रतिलिपि से भी संतुष्ट हो जाना चाहिए जिसके बारे में कोई प्रमाण नहीं है कि यह ठीक है या गलत।

राज्य का प्रतर्क है कि दं० प्र० सं० के अन्य स्थलों पर जहाँ प्रमाणित प्रतिलिपि की आवश्यकता होती है वहाँ धारा सर्वथा स्पष्ट है। यहाँ केवल 'प्रतिलिपि' ही लिखा है। इसके लिये धा० ४२५, ४२८, ४४२ और ५११ की ओर संकेत किया गया है। किंतु इन धाराओं के पढ़ने से ज्ञात होता है जिस विषय पर यहाँ चर्चा हो रही है उससे वे संबंध नहीं रखतीं।

प्रतिलिपि के संबंध में जब यह विवाद हो कि इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि चाहिए या सादी तो उसके प्रसंग द्वारा इसे जानने का यत्न करना चाहिए। प्रतिलिपि कुछ दशाओं में केवल सूचना के लिये होती है। वहाँ सादी प्रतिलिपि दी जा सकती है किंतु जिस प्रतिलिपि के आधार पर न्यायिक आदेश पारित करना है वहाँ प्रतिलिपि का प्रमाणित होना आवश्यक है। इन प्रसंग के आधार पर धा० ४१६ के अंतर्गत प्रमाणित प्रतिलिपि ही निवेशित की जानी चाहिए।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की अनेक धाराओं का अभिदेश किया गया कि विभिन्न स्थलों पर 'प्रतिलिपि' शब्द का क्या अर्थ होता है किंतु यहाँ प्रतिलिपि शब्द की ऐसी विशिष्ट व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक धाराओं में प्रतिलिपि शब्द का अर्थ भाषा, प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है।

उपर्युक्त कारणों से इलाहाबाद उच्च न्यायालय का ८ फरवरी १९५५ का आदेश ठीक था और यह अपील उत्सर्जित की जानी चाहिए।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ५५

२५ फरवरी १९५८

व्यवहार अपील सं० ११८।११९।१९५६

काशी बाई — प्रार्थी

वि०

सुधारानी घोष तथा अन्य — उत्तरवादीगण

(ए० एफ० ओ० डी० सं० २५२ और २५४। १९४८ दिनांक २७-६-१९५१ पटना से)

अवधि अधिनियम (१९०८) अनु० १४४ कोयले की खान पर सविराम धारण होना प्रतिकूल धारण के लिये पर्याप्त है कि नहीं—

कोयले की खान पर जब समय समय पर रुक रुककर पुनः काम आरंभ किया जाता रहा हो तो इस प्रकार १२ वर्ष की अवधि तक का प्रतिकूल धारण (एडवर्स पोजेशन) अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। ऐसे खंडित धारण के प्रति विधि की यह अभिधारणा समाप्त नहीं हो जाती कि जब जब खान में काम बंद रहता था तब तक इसका धारण इसके वास्तविक स्वामी के पास लौट जाया करता था।

न्यायमूर्ति कपूर—

धनबाद में दो प्रतिवाद (क्रास सूट्स) समान तथ्यों पर निवेशित हुए और उनमें पहले का वादी दूसरे में प्रतिवादी था तथा दूसरे का प्रतिवादी पहले में वादी। पटना उच्च न्यायालय ने एक निर्णय और दो डिग्री द्वारा इसका निर्वर्तन किया। पटना उच्च न्यायालय की अनुमति पर अपील सुनवाई के लिये आई हैं। दो डिग्री पर अपीलकर्ता ने दो अपील इस न्यायालय में निवेशित किया है जो एक में मिला दी गई हैं और इसी एक ही निर्णय द्वारा दोनों का निर्वर्तन होगा। इसमें प्रमुख विचाराधीन प्रश्न प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) का है।

अपीलकर्ता की ओर से इसमें कहा गया है कि १२ वर्ष तक धारण में रहने से उसने कोयले की खान पर प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसमें प्रमाणित हो चुका है कि १९१७-१८ में खान में काम किया गया फिर १९२३ तक खान में कोई काम नहीं हुआ। १९२३ में जब काम फिर आरंभ हुआ तो वह १९२६ तक चला। वह १९३१ में काम फिर आरंभ हुआ और १९३९ में बंद हो गया। यह स्पष्ट नहीं होता कि १९३९ में काम हुआ कि नहीं। उसके बाद १९४४ में काम आरंभ हुआ। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि धारण खान के पूरे क्षेत्र पर नहीं था वरन् कुछ भाग पर था।

धनबाद के विद्वान् अधरिक न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि उपर्युक्त भाँति खंड खंड धारण होने से यह प्रतिकूल धारण होकर स्वत्व (टाइटिल) नहीं प्रदान कर सकता और दूसरे, धारण केवल एक भाग पर ही था अतः यदि यह प्रमाणित भी हो जाय कि अपील-कर्ता का धारण लगातार रहा है तो भी संपूर्ण खान पर उसका स्वत्व नहीं हो सकता।

अपील करने पर पटना उच्चन्यायालय ने भी विद्वान अधरिक न्यायाधीश के उपर्युक्त निर्णय का स्थिरीकरण किया।

इस न्यायालय में भारतीय महा न्यायवादी (अटार्नी जनरल आफ इंडिया) का कहना है कि परिनियमित १२ वर्ष की अवधि तक प्रतिकूल धारण में रहने से अपील-कर्ता को स्वत्व प्राप्त हो गया।

प्रतिकूल धारण से अधिकार परिपक्व करने के लिये आवश्यक है कि धारण निर्धारित अवधि तक लगातार रहा हो, स्पष्ट रहा हो तथा विरुद्ध अधिकार का दावा करते हुए रहा हो। इसके लिये कहा गया कि आवश्यक नहीं है कि धारण बिना किसी रुकावट के रहा हो थोड़ी बहुत रुकावट होने पर भी प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त हो सकता है या जैसी परिस्थिति यहाँ है लंबी

अवधि तक रुकावट पर भी प्रतिकूल धारण से अधिकार प्राप्त हो सकता है।

यह बात मानने योग्य नहीं है। कोयले की खान पर प्रतिकूल धारण दिखलाने के लिये यह आवश्यक है कि धारण लगातार रहा हो। यहाँ १६१७-१८ में काम हुआ फिर बंद हुआ, १६२३ में आरंभ हुआ तो १६२६ में बंद हो गया। १६३१ में आरंभ हुआ तो १६३३ में बंद हो गया और १६३६ तक बंद रहा। १६३६ में काम हुआ कि नहीं यह स्पष्ट नहीं है किंतु १६३६ से १६४४ तक यह बंद रहा। ऐसे धारण से अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता तथा विधि की यह अभिधारणा समाप्त भी नहीं होती कि जब जब खान का काम बंद रहा तब तब धारण वास्तविक स्वामी के पास लौट जाया करता था।

ए० आई० आर० १६३१ प्रिवी कौंसिल १८६ का अभिदेश किया गया किंतु उसमें धारण संपूर्ण क्षेत्र पर हो गया था। उसमें संपूर्ण क्षेत्र में चाहे जो काम किया जाता कोई रुकावट नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया था कि वाद अवधि अधिनियम के अनु० १४४ से बाधित है। उसमें विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि 'धारण तथ्य का प्रश्न है और धारण का विस्तार तथ्य का निष्कर्ष हो सकता है'। उसमें धारण के संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि यों तो प्रतिकूल धारण पर स्वत्व आधारित रहता है किंतु स्वत्व वहीं तक सीमित रहना चाहिए जिस सीमा तक वास्तविक धारण रहा हो। किंतु इस सामान्य नियम को वाद विशेष की परिस्थिति पर निर्भर करना चाहिए।

विद्वान् महा न्यायवादी ने एक दूसरे वाद पर निर्भर किया। वह ए० आई० आर० १६३४ प्रिवी कौंसिल २३ है। उसमें एक जमींदार सरकार के विरुद्ध मछली मारने के अधिकार का दावेदार था। उसमें निर्णय हुआ था कि धारण के लिये आवश्यक नहीं है कि हर क्षण धारण रहे। यह सच है कि धारण की प्रकृति परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है तथा इसी सिद्धांत के अनुसार इस मामले में ऐसा खंडित धारण स्वत्व प्रदान नहीं

कर सकता। उच्चन्यायालय का निर्णय ठीक था अतः अपील उत्सर्जित की जाती हैं।

—अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ सर्वोच्च न्या० ५६

(पटना से)

२१ मार्च १६५८

आपराधिक अपील सं० १३४।१६५५

बिहार राज्य	—	अपीलकर्ता
	वि०	
बसावन सिंह	—	उत्तरवादी

(अ) साक्ष्य अधिनियम (१८७२), १३३— सहापराधी (एकंप्लिस) के साक्ष्य के संपोषण की आवश्यकता—न्यायालय का कर्तव्य (दं० प्र० सं० धारा ३६७)—सहापराधी और मजिस्ट्रेट—

(ब) दंड प्रक्रिया संहिता (१८६८), धारा ३६७—साक्ष्य के मूल्यांकन में न्यायालय का कर्तव्य—

(स) साक्ष्य अधिनियम (१८७२), धारा १३३— सहसाक्रमणकारी पक्ष का साक्ष्य एवं उसका संपोषण (दं० प्र० सं० (१८६८) धा० ३६७)—संपोषण की प्रकृति एवं उसकी व्याप्ति—

(द) भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत अधिक्षेत्र का प्रयोग—

न्यायमूर्ति एस० के० दास—

गया के विशेष न्यायाधीश ने उत्तरवादी को दंड संहिता की धारा १६१ के अंतर्गत दंड दिया था किंतु अपील करने पर पटना उच्चन्यायालय के एकाकी न्यायाधीश ने उसे छोड़ दिया। इस दोषमुक्ति के विरुद्ध विशेष अनुमति पर बिहार राज्य ने यह अपील निवेशित की है।

इसकी घटना इस प्रकार है। गया जिले में अरवल नामक स्थान पर भगवान दास की एक राशन की दूकान

थी । भगवानदास इसमें अभियोजन साक्षी है। उस क्षेत्र के थाने में एक दिन सूचना पहुँची कि महावीर प्रसाद उस दूकान से चोर बाजारी (ब्लैक मार्केटिंग) करके दो टट्टुओं पर गेहूँ लाद-कर ले जा रहा है। सूचना पाकर बसावन सिंह थानेदार जो यहाँ उत्तरवादी है पहुँचा और रास्ते में ही गेहूँ लदे हुए दोनों टट्टुओं को पकड़ा। महावीर प्रसाद साइकिल पर आगे आगे जा रहा था। उन्होंने गेहूँ अपने कब्जे में कर लिया। भगवान दास से पूछने पर उसने बतलाया कि गेहूँ चोर बाजारी से नहीं बेचा गया किंतु कार्ड पर की इकाई (यूनिट) के अनुसार दिया गया। उसके भांडार का मिलान जब उसके रजिस्टर से किया गया तो दोनों ठीक ठीक मिल गए। इसी बीच महावीर प्रसाद जिसको बुलवाया गया था अपना राशन कार्ड और कैश बुक लेकर पहुँच गया। थानेदार ने दोनों को पकड़ लिया और थाने पर ले गए। थाने पर पहुँच कर कहा गया है कि उत्तरवादी ने महावीर प्रसाद से ५०० रु० माँगा। महावीर प्रसाद ने कहा कि मैं अपने भाई से पूछ लूँ कि कितना रुपया दिया जाय। थानेदार ने उन दोनों को जमानत पर छोड़ दिया। दूसरे दिन उन्हें फिर बुलवाया और ५०० रु० माँगा। कहा जाता है कि थानेदार ने कहा कि यदि पाँच, पाँच सौ रुपया दे दो तो मैं अंतिम प्रतिवेदन दे दूँगा कि मामला झूठा है और इसके समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है और न देने पर मैं बहुत हैरान करूँगा।

कहा जाता है कि भगवान दास का मामला ५०० रु० से कम होते होते ३०० रु० पर आया। इसी बीच थानेदार ने उसकी दूकान से कुछ गेहूँ लिया और इसे भिन्न भिन्न व्यक्तियों के नाम से लिखवाया तथा इसका मूल्य चुकता नहीं किया। थानेदार ने तब भगवान दास से कहा कि शेष ५० रु० नगद दे दो। और इस प्रकार ३०० रु० पूरा हो जायगा। ३१ दिसंबर १९५१ इस ५० रु० के लेन देन के लिये तय हुआ।

भगवान दास ने जब सोच लिया कि यह ५० रु० देना ही पड़ेगा और इससे बचने के लिये अब कोई उपाय नहीं है तो वह पटना में जाकर दो दिन भ्रष्टाचार निवारक प्राधिकारी से मिला। उनको उसने इस संबंध में एक प्रार्थनापत्र दिया और उसमें उन १० रु० के ५ नोटों का नंबर भी लिखा था। विभाग के प्राधिकारी श्री मुकर्जी ने उन नोटों पर अपना हस्ताक्षर किया। श्री मुकर्जी ने जिलाधीश से प्रार्थना की कि इस काम के लिये किसी प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को नियुक्त कर दें। मजिस्ट्रेट इसके लिये नियुक्त हो गए। इस वर्ग के लोगों ने आपस में तय कर लिया कि कैसे रुपया दिया जाय और कैसे पकड़ा जाय। जब लोग एक स्थान पर थे तो भगवान दास ने उन लोगों से कहा कि थानेदार ने महावीर के गेहूँ को छोड़ने के लिये भी उसके भाई परमेश्वर प्रसाद से ५० रु० माँगा है। श्री मुकर्जी ने परमेश्वर प्रसाद का बयान लिखा और उसमें उन दस दस रुपए के ५ नोटों का नंबर लिख लिया तथा उन पर अपना हस्ताक्षर बना दिया।

८ दिसंबर १९५१ को यह घूस का रुपया दिया जानेवाला था किंतु उस दिन उत्तरवादी थाने पर नहीं था इसलिए ९ दिसंबर को रुपया देना तय हुआ। यह दल थाने पर पहुँचा। भगवान दास और परमेश्वर उत्तरवादी के निवास स्थान पर पहुँचे। अधिकारी लोग सादी वेश भूषा में केवल धोती कुर्ता पहने हुए बरामदे के बाहर बैठे। इनके बारे में कहा गया कि ये लोग भगवान दास के संबंधी हैं। उत्तरवादी भगवान दास से बरामदे की सीढ़ी पर ही मिला और उसने रुपया दिया। रुपया उसने बाँयें हाथ में लिया। इसी बीच परमेश्वर ने भी रुपया दिया। तब तक मजिस्ट्रेट, श्री मुकर्जी और पुलिस के उपअधीक्षक भी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने उत्तरवादी को अपना परिचय बतलाया और कहा कि आपने घूस लिया है। थानेदार के नकारने पर एक हाथ मजिस्ट्रेट ने पकड़ा और एक हाथ पुलिस के उप-अधीक्षक ने। हाथा बाहीं होते होते उत्तरवादी बरामदे से बाहर ले जाया गया। थाने के बगल में एक खुले स्थान पर पहुँच कर तलाशी ली गई। दस दस रुपए के ९ नोट उनके पास से निकले। उनके नंबर वही थे जो पहले लिखा गया था तथा उनपर हस्ताक्षर थे। एक नोट नहीं मिल रही थी। जब पेट्रोमैक्स लालटेन

से खोज की गई तो गणेश प्रसाद और जानकी साहु की उपस्थिति में वह नोट सिकुड़ी हुई अवस्था में बरामदे के एक कोने में पाई गई। प्रतिवेदन तैयार करके उस थाने के अधिकारी को दिया गया। पुलिस के एक दूसरे अधीक्षक ने इसकी जाँच की और उपयुक्त अधिकारी के संमोदन (सैंक्शन) पर अभियोजन आरंभ हुआ। गया के विशेष न्यायाधीश के न्यायलय में यह मुकदमा चला और उन्होंने उत्तरवादी को दंड संहिता की धारा १६१ के अंतर्गत दोषी पाया और १ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया।

अपनी बचत में उत्तरवादी का कहना था कि ८ अक्टूबर १६५१ को ही उसने अंतिम प्रतिवेदन दे दिया था कि कोई बात नहीं थी और चोर बाजारी के बारे में संदेह गलत था। उसने रुपया माँगनेवाले तथ्य से इनकार किया। वहाँ की घटना के बारे में कहा गया कि अधिकारियों ने घटना को प्रत्यक्ष नहीं देखा। वे बाहर थे और बाद में पहुँचे। जो एक नोट फेंकी हुई थी उसके बारे में कहा गया कि हो सकता है कि भगवानदास जब झुका तब उसने फेंक दिया हो।

विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन का कहना सत्य माना था और उत्तरवादी की बचत की कहानी पर विश्वास नहीं किया था।

उच्च न्यायालय में जब विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने अपील की सुनवाई की तो उन्होंने वाद के तथ्यों को तो सत्य माना था किंतु सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय के कारण वे भ्रम में पड़ गए। ए० आई० आर० १६५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ में एक ऐसा ही निर्णय हुआ था कि जो दल सहसाक्रमण करके घूस का दिया जाना पकड़ता है उसके साक्ष्य पर अभियुक्त की दोष सिद्धि ठीक नहीं है। यह साक्ष्य लांछित रहता है। अतः इसी कारण उच्च न्यायालय द्वारा वह अभियुक्त छोड़ दिया गया।

किंतु ए० आई० आर० १६५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ को देखने से प्रतीत होता है कि उसमें यह कोई अटल सिद्धांत निश्चित नहीं हुआ था कि सहसाक्रमण करके घूस के लेनदेन को पकड़नेवाले दल का अभि साक्ष्य विश्वसनीय नहीं होगा। यह प्रत्येक परिस्थिति पर निर्भर करता है।

सहापराधी (एकंप्लिस) के बारे में ए० आई० आर० १६५२ सर्वोच्च न्यायालय ५४ में कहा गया था उसका साक्ष्य प्रतिग्राह्य होता है किंतु इस साक्ष्य को काम में लाते समय थोड़ी सावधानी बरतनी चाहिए और यह परंपरा एक प्रकार से विधि हो गई है कि न्यायाधीश को चाहिए कि असंपोषित सहापराधी के साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता की निर्बलता के बारे में जूरी को चेतावनी दे दें। किंतु एक कठिनाई उस समय उपस्थित हो सकती है जब कि मुकदमे की अन्वीक्षा जूरी लोग नहीं करते। ऐसी परिस्थिति आने पर कहा गया है कि न्यायाधीश को चाहिए कि कारण स्पष्ट कर दें कि वे क्यों मुकदमें की परिस्थिति विशेष के कारण सहापराधी के साक्ष्य के संपोषण पर आग्रह नहीं करते हैं और बिना संपोषण के ही अभियुक्त की दोषसिद्धि करते हैं।

ऐसे साक्षी जो मुकदमे से बद्धहित (इंटरेस्टेड) होते हैं उनके साक्ष्य को स्वीकार करने के लिये यह आवश्यक होता है कि स्वतंत्र साक्ष्य से संपोषण कर लें। किंतु इसका यह अभिप्राय निकालना गलत है कि यह कोई अटल सिद्धांत है कि जब तक स्वतंत्र साक्ष्य संपोषण के लिये उपलब्ध न हो तब तक ऐसे साक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित नहीं की जा सकती। थोड़े में सहापराधी का साक्ष्य और बद्ध हित (इंटरेस्टेड) साक्षी का साक्ष्य स्वीकार करने के लिये इतने ही नियम हैं।

एक बात यह कही गई कि पुलिस का काम है कि अपराध करने से रोके न कि अपराध करने में स्वयं साधन बन जावे। इसके बारे में १६४७-२ इलाहाबाद ई० आर० ५७२ में कहा गया था कि पुलिस को स्वयं अपराध करके किसी के विरुद्ध साक्षी उपस्थित नहीं करना चाहिए।

ए० आई० आर० १६५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ में कहा गया था कि घूस पकड़ने के लिये मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति करना ठीक नहीं है। न्याय और शासन दोनों अलग-अलग रहना चाहिए। भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के संबंध में

अनुच्छेद ५० के अंतर्गत दिया हुआ है कि न्याय और शासन दोनों अलग अलग रहेगा। अतः मजिस्ट्रेटों को बद्धहित बनाकर उनका साक्ष्य दिलाना ठीक नहीं है। इसके बारे में कहा गया कि यदि इस प्रकार के भ्रष्टाचार वाले मुकदमें में मजिस्ट्रेट न रहें तो बड़ी कठिनाई होगी। ऐसी कठिनाई यदि हो भी तो वह न्यायाधीश के मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। न्यायाधीश को तो प्रतिग्राह्य साक्ष्य पर वादविशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार करना होता है—शासन में क्या कठिनाई है इससे कुछ संबंध नहीं रहता।

वैध फंदा और अवैध फंदा में विभेदकरण करने का प्रयत्न किया गया है तथा दो प्रकार के साक्ष्यों, सहापराधी का लांछित साक्ष्य और बद्धहित या भागीदार का साक्ष्य, में अंतर दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि सहापराधी के लांछित साक्ष्य के लिये संपोषण की मात्रा अपेक्षाकृत बद्धहित साक्षी के अधिक होनी चाहिए। यह सब विभेदकरण बनावटी है। साक्ष्य के महत्व के मूल्यांकन या संपोषण की मात्रा के संबंध में कोई अकाट्य सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता कि उसके आधार पर यह जाना जा सके कि वह विश्वसनीय है। यह परिस्थिति विशेष के अनुसार बदलता रहता है।

विद्वान् न्यायाधीश ने ए० आई० आर० १९५४ सर्वोच्च न्यायालय ३२२ का अभिप्राय यह समझ लिया कि यह एक अटल सिद्धांत निश्चित करता है कि सहसाक्रमणकारी दल के साथियों का साक्ष्य बिना स्वतंत्र संपोषण के दोषसिद्धि का आधार नहीं हो सकता। उक्त रूलिंग का यह अभिप्राय नहीं है। ठीक परिस्थिति यह है कि ऐसे मुकदमों में जो साक्षी स्वयं अपराध में भाग लेते हैं उनके साक्ष्यगुण का मूल्यांकन सहापराधी के साक्ष्य के समान करना चाहिए और जो साक्षी बद्धहित होते हैं या जो केवल इस बात से संबंध रखते हैं कि फंदा सफल हो जाय उनके साक्ष्य का परीक्षण उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार अन्य बद्धहित साक्षियों का परीक्षण अन्य मुकदमों में किया जाता है और जो मुकदमों की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न बातों पर निर्भर करता है। कुछ परिस्थितियों में न्यायालय दोषसिद्धि के लिये स्वतंत्र संपोषण का आग्रह कर सकता है। यहाँ यदि मजिस्ट्रेट ने अपने को बद्धहित साक्षी की अवस्था में रख दिया है तो वे दोषसिद्धि के लिये अपने साक्ष्य का महत्व अन्य साधारण बद्धहित साक्षियों से अधिक होने का दावा नहीं कर सकते।

इस मुकदमें में अब स्वतंत्र संपोषण पर विचार करना है। गणेश और जानकी कहा गया है कि इसमें दो स्वतंत्र साक्षी हैं जिनके सामने एक मसली हुई दस रुपए की नोट मिली थी। वे तात्विक विवरण के लिये स्वतंत्र इसलिए नहीं माने जा सकते कि यह प्रमाणित नहीं है कि वह दस रुपए की एक नोट वहाँ बरामदे में कैसे आई जब तक कि सहसाक्रमणकारी दल का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं मान लिया जाता। इसके बारे में कहा गया है कि साक्षीगण बाद में आए। कुछ भी हो स्वतंत्र संपोषण का अभिप्राय यहाँ तक नहीं होता कि प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण का संपोषण स्वतंत्र साक्षियों द्वारा किया जाय। इसका उद्देश्य केवल इतना ही होता है कि एक अतिरिक्त साक्ष्य मिल जाय जिससे इस पर विश्वास हो सके कि सहापराधी की कहानी संभव है और युक्ति कहती है कि इस पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित है। संपोषण के लिये सीधा साक्ष्य नहीं चाहिए जो बतलावे कि अभियुक्त ने अपराध किया है, यह केवल पारिस्थितिक साक्ष्य भी हो सकता है जो अभियुक्त का अपराध से संबंध जोड़ दे।

विद्वान् न्यायाधीश ने इस मुकदमें के तथ्यों को ठीक माना था अतः सहसाक्रमणकारी दल के साक्ष्य पर दोषसिद्धि करने में कोई अड़चन नहीं है जब कि यहाँ दो स्वतंत्र साक्षी भी हैं।

एक बात यह कही गई कि इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपने अनुच्छेद १३६ के अंतर्गत विशेषाधिकार का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए और बहुत असाधारण होने पर ही दोषमुक्ति के आदेश को निराकृत करना चाहिए। यह बात ठीक है। यहाँ अभियुक्त के विरुद्ध सभी आरोप प्रमाणित हैं। जो वह छोड़ा गया वह एक मात्र इसी न्यायालय के एक निर्णय के कारण अतः इसमें

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १३६ में अंतर्गत अधिकार के प्रयोग करने का अवसर है।

परिणामतः यह अपील स्वीकार की जाती है। पटना उच्च न्यायालय का दिनांक १३ जनवरी १९५५ का आदेश निराकृत किया जाता है और उत्तरवादी को दोषसिद्धि दंडसंहिता की धारा १६१ के अंतर्गत की जाती है और १ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया जाता है। उत्तरवादी दंड भुगतने के लिये आत्मसमर्पण कर दे।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९६०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय६०

(बंबई से)

२१ मार्च १९५८

व्यावहारिक अपील सं० ७८।१९५४

केशव लाल लल्लू भाई पटेल तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

लालभाई त्रिकूमल मिल्स लिमिटेड — उत्तरवादी गण

(अ) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धा० ११२—तथ्य एवं विधि का प्रश्न (भारतीय संविधान अनुच्छेद १३३)

(ब) संविदा अधिनियम (१८७२) धा० ६३ और २९ - संविदा के पालन में समय के बढ़ाए जाने वाले प्रतिबंध में यदि अस्पष्टता हो तो इसका प्रभाव—साक्ष्य।

(स) व्यवहार प्रक्रिया संहिता धा० (१९०८) धा० ३५ और ११२ - यदि उत्तरवादी का ध्येय सद्भावना युक्त नहीं था और मुकदमें में जो उसने अपना पहला आधार लिया था उसे न्यायालय ने नहीं माना किंतु उसके एक दूसरे आधार पर जो उसने पहले पहल अपील में लिया उसी पर निर्णय उसके पक्ष में हुआ तो ऐसी परिस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि उभय पक्ष अपने अपने परिव्यय सार्यंत सहन करें।

(द) व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० ४१, नि० २—अक्षरों के अन्वयन (कांस्ट्रक्शन) पर यदि अभिकथन आधारित हो तो यह विधि का प्रश्न है और पहले पहल अपील में उठाया जा सकता है— लेख्य के अन्वयन के लिये किसी बाह्य साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता (साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धारा ६३।

न्यायमूर्ति पी० बी० गजेंद्रगादकर—

वादी ने संविदा के उल्लंघन करने पर प्रतिवादी गण के विरुद्ध १,५२,३३४ रु० ८ आना ६ पा० हानिपूर्ति (डैमेजेज) के लिये एक वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया और वाद में डिग्री दे दी। अपील करने पर बंबई उच्च न्यायालय ने वादी के विरुद्ध निर्णय दिया तथा उसका वाद उत्सर्जित कर दिया। बंबई उच्च न्यायालय के इसी निर्णय के विरुद्ध वादी ने यह अपील निवेशित की है।

वादियों ने प्रतिवादियों की मिल से कुछ सामान भेजे जाने के विषय में एक संविदा की थी। यह संविदा १९४२ में हुई थी। इसी बीच १९४२ ई० में आंदोलन आरंभ हुआ और प्रतिवादी उत्तरवादी गण की मिल बहुत समय तक बंद रही। जब मिल बंद थी उसी समय उत्तरवादी ने अपीलकर्ता को १५ अगस्त १९४२ को एक पत्र लिखा कि आंदोलन में तथा मिल में हड़ताल होने के कारण सामान भेजने का समय स्वतः बढ़ाया हुआ मान लिया जायगा और वह तब तक के लिये होगा जब तक कि मिल चलने नहीं लगती और साधारण वातावरण पुनः स्थापित नहीं हो जाता।

जब उपर्युक्त संविदा हुई थी उस समय उत्तरवादी के मिल के प्रबंधकारिणी अभिकरण के प्रभार में चिनू भाई लाल भाई थे और इसके बाद १८ सितंबर १९४२ को चिनू भाई के भाइयों में समझौता होने पर मिल के प्रबंधकारिणी अभिकरण के प्रभार में कासू भाई और बाबू भाई आए।

निर्णय अंतिम रूप में प्रतिवादी के विरुद्ध किया जा चुका है। अतः इस कथन में बल नहीं है कि मुकदमे का निर्णय नहीं हुआ। निर्णय हुआ है और इस प्रकार पहली आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

दूसरी आपत्ति के विषय में कहना है कि स्थगित करते समय २५ रुपया परिव्यय का आदेश देना ज्ञात होता है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० १७ नि० १ के अंतर्गत है। इसके अंतर्गत प्रतिबंध के साथ भी वाद स्थगित किया जा सकता है किंतु प्रतिबंध को स्पष्ट कर देना चाहिए कि यदि इसका पालन नहीं किया गया तो क्या दंड मिलेगा। प्रतिवादी को चेतावनी दी जानी चाहिए थी कि परिव्यय न देने का क्या परिणाम होगा। यहाँ प्रतिवादी को पता नहीं था कि क्या दंड मिल सकता है और सहसा उसे भीषण दंड मिला।

अंतिम सुनवाई की तिथि अभी तक आई नहीं थी। उस तिथि को यदि प्रतिवादी मुकदमें के आगे की कार्यवाही में भाग लेता तो आ० १७ नि० ३ में न्यायालय को उसका निर्णय करना पड़ता यद्यपि वह परिव्यय देने में चूक गया था। कुछ भी हो वह परिस्थिति आई ही नहीं। अंतिम सुनवाई के लिये जो तिथि निश्चित थी उसके पहले ही प्रतिवाद काट दिया गया।

इसमें संदेह नहीं कि मुंसिफ को समय न बढ़ाने का अधिकार था। किंतु यदि मुंसिफ समय न बढ़ाते तो इसका परिणाम यही होता कि मुकदमें का परिणाम चाहे जो होता यह परिव्यय प्रतिवादी से वसूल किया जाता। परिव्यय के लिये औपचारिक एवं निष्पाद्य आदेश पारित किया जा सकता था। किसी भी रूप में यह रूपया मुकदमें में मान्य परिव्यय होता और वसूल किया ही जाता।

यदि प्रतिवाद काट देने का आदेश स्पष्ट हो तभी ऐसा आदेश दिया जा सकता है अन्यथा नहीं। इसके लिये वादी ने कुछ प्रमाण दिया है किंतु अंतर यह है कि उन वादों में उसे चेतावनी पहले से दी गई थी कि यदि आदेश का पालन न किया गया तो उसका परिणाम क्या होगा। यहाँ कोई चेतावनी नहीं दी गई थी।

विद्वान् मुंसिफ का आदेश कि प्रतिवाद काट दिया जाय और मुकदमे की सुनवाई एकपक्षीय हो अधिक्षेत्र के बाहर है और इसमें औचित्य नहीं है। अतः यह आदेश निराकृत किया जाता है। तथा इसी सीमा तक प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। मुकदमा पुराना हो गया है इसलिए इसके अभिलेख नीचे के न्यायालय में निर्वर्तन के लिये शीघ्र ही वापस कर दिए जाँय। प्रार्थी विपक्षी से परिव्यय पाएगा।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १११

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई

गणेश दीन	—	प्रार्थी
	वि०	
विश्वनाथ	—	विपक्षी

इलाहाबाद के सी० सी० जे० के निर्णय दिनांक १७-७-१९५४ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० १०३७ १९५४ दिनांक १४-८-१९५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८) आ० २२, नि० ४, आ० ९ नि० ९ और १३–एक पक्षीय डिग्री के बाद निर्णीत ऋणी की मृत्यु तथा उसके मृत्योपरांत उसके पुत्र द्वारा डिग्री का निराकृत किया जाना-वाद का चलते रहना मानों निर्णीत ऋणी (जजमेंट डेटर) जीवित है—यह न्यायालय का कर्तव्य था कि प्रत्यस्थापन (सब्स्टीट्यूशन) का आदेश दे—वाद का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हो सकता—चूक (डिफाल्ट) में यदि वाद उत्सर्जित हो गया हो तो उसका पुनर्स्थापन हो सकता है।

आदेश—

विपक्षी ने दानीराम के विरुद्ध एक वाद निवेशित किया था और १९४५ ई० में इसमें एक पक्षीय डिग्री भी पारित हो चुकी थी। दानीराम इस प्रार्थी का पिता था। जब तक दानीराम जीवित रहा डिग्री के निष्पादन के लिये कोई कार्यवाही नहीं की गई। उसके मरने पर

जब डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही की गई तो उसमें इस प्रार्थी की कुछ संपत्ति कुर्क कर ली गई। कुर्की होने के बाद प्रार्थी को उस एकपक्षीय (एकसपार्टी) डिग्री का पता चला। एकपक्षीय डिग्री को निराकृत करने के लिये प्रार्थी ने ५-१-१९५३ को एक प्रार्थनापत्र दिया। २८-३-१९५३ को वह डिग्री निराकृत कर दी गई। विपक्षी ने न तो दानीराम के स्थान पर उसके पुत्र इस प्रार्थी का नाम रखने का प्रार्थनापत्र दिया न तो न्यायालय ने ही दानीराम का नाम काटकर उसके स्थान पर प्रार्थी को रखने की कार्यवाही की। मुकदमा यथावत् चलने लगा मानों दानीराम अभी भी जीवित है। ६-४-५४ को वादी की अनुपस्थिति में वाद उत्सर्जित कर दिया गया। वाद के उत्सर्जन पर वादी ने तुरत एक प्रार्थनापत्र दिया कि मैं ज्योंही निवृत्त होने के लिये बाहर गया कि मुकदमे की पुकार हो गई इस लिये इसे पुनर्स्थापित किया जाय। अनुपस्थिति का यह आधार उपयुक्त समझकर न्यायालय ने १० रु० परिव्यय (कास्ट) लगाकर इसे पुनर्स्थापित कर दिया।

पुनर्स्थापन के इस आदेश के विरुद्ध यह प्रार्थनापत्र है। इसमें कहा गया कि विपक्षी ने आ० २२ नि० ४ के अंतर्गत या प्रत्यस्थापन के लिये कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया इसलिए ६-४-१९५४ को वास्तव में कोई वाद था ही नहीं जो उत्सर्जित होता।

आ० २२ के उपबंध इसमें लागू नहीं होंगे क्योंकि दानीराम मुकदमें के चलते रहने के बीच ही में नहीं मरा किंतु वह उस समय मरा जब डिग्री पारित हो चुकी थी। एकपक्षीय डिग्री इस प्रार्थी के प्रार्थनापत्र पर निराकृत की गई इसका अभिप्राय हुआ कि न्यायालय ने इस प्रार्थी को दानीराम का उत्तराधिकारी माना क्योंकि एकपक्षीय डिग्री का निराकरण किसी अपरिचित व्यक्ति के प्रार्थनापत्र पर नहीं किया जा सकता। आ० २१ नि० ४ में या प्रत्यस्थापन का प्रार्थनापत्र न देने पर भी ज्योंही यह डिग्री निराकृत हुई त्योंही यह प्रार्थी समझा जाना चाहिए कि वाद का एक पक्ष हो गया।

ऐसी परिस्थिति के संबंध में व्यवहार प्रक्रिया संहिता में कोई नियम नहीं है किंतु यहाँ ठीक यही प्रतीत होता है कि एकपक्षीय डिग्री के निराकरण के पश्चात् न्यायालय को स्वतः दानीराम के स्थान पर प्रार्थी को रख देना चाहिये था। इसके लिये विपक्षी द्वारा किसी प्रार्थनापत्र के दिये जाने की आवश्यकता नहीं थी न्यायालय को स्वतः प्रत्यस्थापन कर देना चाहिए था। यतः आ० २२ इसमें लागू नहीं होता, उपशमन (अवेटमेंट) का प्रश्न नहीं उठता। न्यायालय की गलती से ही दानीराम का नाम अभिलेख में रह गया - गलती विपक्षी की नहीं थी जिसके लिये उसे दंड दिया जाय। अतः ६-४-१९५४ के पहले वाद का उपशमन (अवेटमेंट) नहीं हुआ था। यह अनुपस्थिति में उत्सर्जित हो सकता था और यदि उत्सर्जित हो गया तो आ० ९ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र द्वारा यह पुनर्स्थापित हो सकता था।

नीचे के न्यायालय ने विपक्षी का अभिकथन माना था जो ठीक था।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० ११२

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० १७४२। १९५६

१६ जनवरी १९५८

महादेव तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

सब डिविजनल आफिसर, कुंडा तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायतराज नियम, नि० २५—नि० २५ के अंतर्गत एस० डी० ओ० चुनावयाचिका की सुनवाई करते समय न्यायालय नहीं है—भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबंध नि० २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई में लागू नहीं होते।

न्यायमूर्ति वी० जी० ओक:—

जिला प्रतापगढ़ के कुंडा के एस० डी० ओ० ने एक चुनाव याचिका को उत्सर्जित कर दिया था। उसी उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६।२२७ के अंतर्गत यह लेख प्रार्थनापत्र है। इसमें प्रार्थी का कहना है कि—

१—उत्तरवादी विपक्षी की आयु ३० वर्ष से कम है।

२—चुनाव में बहुत ही अनियमितता हुई है।

३—केवल ३० वर्ष से कम आयुवाले का विषय पर एस० डी० ओ० ने साक्ष्य का अभिलेख किया है, प्रार्थी ने शेष साक्ष्य के बारे में साक्ष्य दिया किंतु एस० डी० ओ० ने उसका अभिलेख न करके टाल दिया।

४—एस० डी० ओ० ने इसके समर्थन में कि आयु ३० वर्ष से अधिक है अप्रतिग्राह्य साक्ष्य (इन ऐड मिसिबुल एविडेंस) लिया है जो गलत है।

एस० डी० ओ० ने केवल इसी प्रमुख आधार पर चुनाव याचिका उत्सर्जित कर दिया था कि निर्वाचित विपक्षी की आयु ३० वर्ष से अधिक है।

उपर्युक्त कथन के विरुद्ध विपक्षी ने प्रतिशपथपत्र दिया है जिसमें कहा गया है कि एस० डी० ओ० ने दिए गए सभी साक्ष्यों का अभिलेख किया।

आयुवाले वादपद (ईशू) पर जब एस० डी० ओ० ने इतने विस्तार से साक्ष्य का अभिलेख किया है तो कोई कारण नहीं कि शेष वादपदों पर दिए गए साक्ष्यों को वे क्यों न लिखते। अतः इस विषय पर प्रार्थी का अभिकथन ठीक नहीं प्रतीत होता।

साक्ष्य की प्रतिग्राह्यता के संबंध में जो आपत्ति है वह ज्ञात होता है कि इस अभिधारणा पर उठाई गई है कि इसमें साक्ष्य अधिनियम लागू होता है। किंतु ऐसी बात नहीं है। नि० २५ में लिखा है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध इसमें लागू होंगे। उसमें ऐसा नहीं लिखा है कि साक्ष्य अधिनियम लागू होगा कि नहीं।

साक्ष्य अधिनियम की धारा १ के अनुसार यह न्यायालय के समक्ष न्यायिक प्रक्रिया में लागू होता है। उसमें नहीं लिखा है कि यह न्यायाधिकरण (ट्रिबुनल) में लागू होता है कि नही। ए० आई० आर० १९५० सुप्रीम कोर्ट १८८ में कहा गया था कि यों तो औद्योगिक न्यायाधिकरण कई न्यायिक ढंग का काम करता है किंतु यह न्यायालय नहीं है। इसी प्रकार चुनाव न्यायाधिकरण न्यायालय नहीं है। चुनाव न्यायाधिकरण का काम औद्योगिक न्यायाधिकरण के समान है। धारा १२ सी० में है कि निर्वाचन पर आपत्ति एक मात्र चुनाव याचिका द्वारा ही निर्धारित अधिकारी के समक्ष की जा सकती है। धारा १२ सी० का अधिकारी नि० २४ द्वारा निर्धारित किया गया है। अतः नि० २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई करने वाला एस० डी० ओ० का काम न्यायाधिकरण में आता है न्यायालय में नहीं है।

नियम २५ के अंतर्गत चुनाव याचिका की सुनवाई में भारतीय साक्ष्य अधिनियम लागू नहीं होता।

तर्क के लिये यदि मान भी लिया जाय कि चुनाव याचिका में साक्ष्य अधिनियम लागू ही होता है तो विपक्षी की आयु के बारे में जो प्रमाण माना गया वह प्रतिग्राह्य था कारण कि जब एक्स० रे चित्र डाक्टर की देख रेख में लिया गया तो डाक्टर का अभिकथन एक्सरे के चित्र को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है। इस चित्र से डाक्टर ठीक आयु का अनुमान लगा सकते हैं। इस आधार पर न्यायाधिकरण का निष्कर्ष मान्य है कि विपक्षी की आयु ३० वर्ष से अधिक है। चुनाव याचिका का उत्सर्जन ठीक हुआ है।

यह प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० ११४

नाथू — अपीलकर्ता

वि०

राज्य — उत्तरवादी

फतेहपुर के सत्र न्यायाधीश के आदेश निर्णय १८-६-१९५७ के विरुद्ध आपराधिक अपील सं० ६२८। १९५५, दिनांक १८-६-१९५७

साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७ 'एक व्यक्ति' का अर्थ—दो या दो से अधिक अभियुक्त यदि एक साथ सूचना दें तो इसकी प्रतिग्राह्यता—सामान्य वाक्यांश अधिनियम (१८९७) धा० १३ में है कि एकवचन का अभिप्राय बहुबचन भी होता है।

ब—साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७ में अभिकथन लिखते समय आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त शब्दों को लिखा जाय।

स—साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० २७—यदि कई अभियुक्तों का अभिकथन हो तो उसके क्रम के लिये आवश्यक नहीं है कि जिस क्रम में 'केस' डायरी में लिखा है वह क्रम का निश्चायक प्रमाण है।

द—दंड संहिता (१८६०) धारा २०१ की प्रयोज्यता के लिये क्या आवश्यक है—

न्यायमूर्ति टंडन—

कोई रामगुलाम नामक व्यक्ति रोशनपुर टिकरी गाँव थाना खागा जिला फतेहपुर में रहता था। उसके तीन लड़के थे। एक घर पर रहकर खेती करता और दो लड़कों में से एक कानपुर में नौकरी करता था और दूसरा कानपुर-शहर में ही पढ़ रहा था। रामगुलाम की पाही उसी गाँव में थोड़ी दूर पर थी जहाँ उसके दो घर थे तथा उसके चौपाए वहीं बाँधे जाते थे। रामगुलाम रात को वहीं सोता था।

नित्य की तरह वह घटना की रात को भी वहीं सोने के लिये गया किंतु सवेरे वह घर पर वापस नहीं—आया। उसका जो लड़का घर पर रह कर खेती करता था वह वहाँ गया और अपने पिता को न पाकर इधर उधर खोजा किंतु जब कहीं पता न चला तो वह कानपुर चला गया कि कदाचित् वह वहाँ उसके भाइयों के पास चला गया हो। कानपुर पहुँचने पर पता चला कि उसका पिता कानपुर आया ही नहीं तो वे तीनों फिर साथ ही घर लौट आए।

खोज करते समय कहा गया है कि इन लोगों की भेंट एक अभियोजन साक्षी से हुई और इस साक्षी ने बतलाया कि उससे नाथू गडेरिया, जो यहाँ अपीलकर्ता है पास से बहनेवाली नदी के किनारे भेंट हुई और नाथू के कपड़े भीगे थे; नाथू से पूछने पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इतनी बात ज्ञात होने पर वे लोग उसी दिशा में बढ़े और थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक लाश नदी में लटकी हुई सेमर वृक्ष की एक डाली से बँधी हुई है। उस लाश में सिर और हाथ नहीं थे। इन लोगों ने पहचान किया कि लाश हमारे पिता की है।

इसके बाद उसके एक लड़के ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन लिखाया और उसमें कहा गया कि नाथू को हमारा पिता सिंचाई करने से रोक रहा था इसलिए उससे द्वेष हो गया था तथा दशरथ पासी से भी वैमनस्य था और रामफल को उनका साथी बतलाया गया कि संदेह है कि इन्हीं लोगों ने मिलकर मेरे पिता की हत्या की है।

अंत में पुलिस ने नाथू, दशरथ, शिवप्रसाद, ठाकुरदीन और रामफल को भारतीय दंड संहिता की धा० ३०२।३४ और २०१।३४ के अंतर्गत आरोपित किया।

अभियोजन का यह कहना है कि नाथू दशरथ और शिवप्रसाद को जब १८-८-५४ को पकड़ा गया तब शिवप्रसाद से पूछने पर उसने अपनी दोष स्वीकृति की और उसके बतलाने पर उसके घर से कुल्हाड़ी और खुरपा प्राप्त हुआ जिससे कहा गया है कि राम गुलाम का बध किया गया। इसकी प्राप्ति शिवप्रसाद ने स्वयं की थी। नाथू से प्रश्न करने पर उसने बतलाया कि मैंने

शिव प्रसाद और दशरथ ने रामगुलाम मृतक का सिर और उसके हाथ छिपा करके एक स्थान पर गाड़ दिया है और कहा गया है कि उसने स्वयं जाकर खोदकर निकाला और थानेदार को दिया। शिवप्रसाद और दशरथ ने भी ऐसी ही बात बतलाई और तीनों उस स्थान पर एक साथ गए जहाँ से नाथू ने हाथ और सिर निकाल कर थानेदार को दिया था।

२२-८-५४ को ठाकुरदीन और रामफल पकड़े गए और प्रश्न करने पर कहा गया कि इन्होंने बतलाया कि हम लोग उन कपड़ों को दे सकते हैं जिन्हें मृतक हत्या के समय पहने हुए था। कहा गया है कि बाद में इन दो अभियुक्तों ने उन कपड़ों को पास के एक तालाब में से निकाल कर थानेदार को दिया।

अभियोजन कहानी थोड़े में है कि इन ५ व्यक्तियों ने मिलकर रामगुलाम की हत्या की और दंड से बचने के लिये हत्या के साक्ष्य को छिपाने का प्रयत्न किया। इसमें कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। अभियोजन केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने पर्याप्त साक्ष्य न होने से केवल नाथू के अतिरिक्त सभी अभियुक्तों को छोड़ दिया। नाथू को दंड संहिता की केवल धारा २०१ में ७ वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया जिसके विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है। उसकी दोष सिद्धि का आधार उसकी वह दोष स्वीकृति मानी गई जिसमें उसने सिर और हाथ छिपाने की बात कही थी।

इस अपील में मुख्यतः इसी विषय पर बहस की गई है कि तीनों अभियुक्तों के एक साथ बयान देने पर उपर्युक्त वस्तुएँ प्राप्त हुईं और इसलिए धारा २७ इसमें लागू नहीं हो सकती। कहा गया है कि धारा २७ में प्रयुक्त शब्द एक व्यक्ति (ए परसन) है इसलिए जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने बयान दिया तो वह बहुवचन हो गया और बहुवचन धारा का उद्देश्य नहीं है।

यह अपील पहले एकाकी न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिये आई थी किंतु धारा २७ की व्याख्या का महत्वपूर्ण प्रश्न होने से इसे विभागीय न्यायासन के समक्ष भेज दिया गया।

इसके समर्थन में कि अनेक अभियुक्तों के बयान देने पर धारा २७ लागू नहीं होती पोशाकी वि० राज्य १९५३ इलाहाबाद ५२६ जिसमें पुत्तू वि० सम्राट ए० आई० आर० १९४५, ३३५ का अनुसरण हुआ था अभिदिष्ट हुआ किंतु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपर्युक्त प्रमाण इसमें लागू नहीं होता।

पोशाकी के मुकदमे में निर्णय हुआ था कि बयान के बाद वह वस्तु प्राप्त की जानी चाहिए ऐसा नहीं कि वस्तुएँ लगातार प्राप्त की जाँय। उसमें २ अभियुक्तों ने एक साथ बयान दिया था और इसे धारा २७ के अंतर्गत नहीं माना गया था। किंतु पोशाकी वाला प्रमाण इसमें लागू नहीं होता। उसमें वस्तुएँ दो बार में प्राप्त की गई थीं एक बार एक अभियुक्त के साथ और दूसरी बार दूसरे अभियुक्त के साथ में और इसके लिये कोई संदेह नहीं कि जब पुलिस पहले से ही उस वस्तु के बारे में जानकारी रखती है तो धारा २७ के अंतर्गत यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरे अभियुक्त के बतलाने पर वह वस्तु प्राप्त की गई। ए० आई० आर० १९५६ सर्वोच्च न्यायालय २१७ में यही बात स्पष्ट रूप से कह दी गई थी कि ऐसी परिस्थिति में धारा २७ लागू नहीं होती।

ए० आई० आर० १९४५ अवध ३३५ में जो एक साथ दिए गये बयान को नहीं माना गया था तो उसमें परिस्थिति यह थी कि यह ठीक ठीक पता ही नहीं चलता था कि प्रत्येक अभियुक्त ने क्या बयान दिया। केवल अस्पष्टता के कारण उसे धारा २७ के अंतर्गत नहीं माना गया था। और ऐसा निर्णय ठीक भी था क्योंकि धारा २७ अपने पहले वाली दो धाराओं के अपवाद स्वरूप है और इसीलिए इसकी व्याख्या बहुत कड़ाई से करनी चाहिए और देखना चाहिए कि परिस्थिति ठीक ठीक धारा २७ के अंतर्गत आती है कि नहीं।

ए० आई० आर० १९४५ अवध २३५ में धारा २७ में प्रयुक्त शब्द 'एक व्यक्ति' (ए परसन) के संबंध में उसे एकवचन का सूचक माना गया था किंतु उसमें विद्वान् न्यायाधीशों का ध्यान सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जेनरल क्लाजेज ऐक्ट) की धारा १३ की ओर नहीं दिलाया गया। इस अधिनियम की धारा १३ में स्पष्ट दिया हुआ है कि यदि प्रसंग से कोई विरुद्ध बात न आती हो तो एकवचन में बहुवचन और बहु-बचन में एक बचन संमिलित होता है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने ए० आई० आर० १९३२ कलकत्ता २९७ का अभिदेश किया किंतु वह रूलिंग इसमें लागू नहीं हो सकती क्योंकि उस मुकदमे में अभियुक्त ने जो बयान दिया था वह बंदी होने के पहले ही दे दिया था जब कि धारा २७ का अर्थ होता है कि ऐसा बयान पुलिस की अभिरक्षा में होने पर दिया जाय। धारा अपवादस्वरूप है इसलिए जब तक इसमें दी गई पूरी शर्तों का पालन नहीं हो जाता, यह धारा लागू नहीं हो सकती।

अतः ए० आई० आर० १९३२ कलकत्ता २९७ ए० आई० आर० १९४२ कलकत्ता ५९३ का निर्णय मान्य है जिसमें कहा गया है कि धारा २७ के अंतर्गत अनेक बयान प्रतिग्राह्य हो सकते हैं किंतु प्रतिबंध है कि अन्य शर्तों का पालन ठीक ठीक होता हो। साथ ही एक साथ बयान देना असंभव नहीं है जैसे यदि अनेक अभियुक्त एक कागज पर लिखकर और हस्ताक्षर करके देते हैं या एक साथ ही शब्दों का उच्चारण भी कर सकते हैं और यदि ऐसी परिस्थिति है तो उनका बयान धा० २७ की अन्य शर्तों को पूरा करने पर प्रतिग्राह्य हो सकता है। यह बात दूसरी है कि यदि अभियुक्तों ने बयान आगे पीछे दिया है और अगले बयान के आधार पर कोई वस्तु प्राप्त कर ली जाती है तो पिछला बयान धारा २७ में नहीं आ सकता कारण कि अधिक से अधिक पिछले बयान के आधार पर वही वस्तु पुनः प्राप्त की जा सकती है। धारा २७ का अभिप्राय वस्तु की प्राप्ति (डिस्कवरी) से है न कि पुनर्प्राप्ति (रीडिस्कवरी) से, इसलिए पिछला बयान धारा २७ में नहीं आता।

अतः यह तथ्य प्रत्येक मुकदमें की विशेष परिस्थित पर निर्भर करता है कि बयान एक साथ दिया गया या आगे पीछे और इसका निर्णय परिस्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न हो सकता है।

इस मुकदमें में भी यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि बयान एक साथ दिया गया या आगे पीछे। प्रदर्श ३ पर इस बयान का उल्लेख है जो केवल उनके कथन का सारांश है। इस न्यायालय द्वारा तथा अन्य न्याया-लयों द्वारा कई बार चेतावनी दी गई कि अन्वेषण अधिकारी ऐसे बयान ठीक ठीक उन्हीं के शब्दों में लिखें किंतु ऐसा होता नहीं। कुछ भी हो किसी नियम के पालन की कड़ाई उसके पालन की अपेक्षा उसके उल्लंघन से ही आँकी जा सकती है।

इस विषय पर अन्य साक्षी भी भिन्न भिन्न बात कहते हैं और अभियोजन ने एक स्थल पर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि पहले नाथू अपीलकर्ता ने गड़े हुए हाथ और सिर के बारे में बतलाया और तब उसके बाद शेष दोनों अभियुक्तों ने। किंतु प्रतीत होता है कि बयान के एक साथ देने और आगे पीछे देने में जो अंतर पड़ सकता है उसी से बचने के लिये ऐसी बात बहुत बाद में चलकर कही गई। अन्वीक्षा न्यायालय में इस संबंध में ऐसी बात नहीं कही गई थी।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का विचार था कि 'केस डायरी' में नाथू का बयान पहले लिखा गया था इसलिए ज्ञात होता है कि नाथू ने पहले बयान दिया किंतु 'केस डायरी' के इस क्रम से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

नाथू की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा २०१ के अंतर्गत हुई है। धारा २०१ का अभिप्राय है कि अभि-युक्त जानता हो कि कोई अपराध किया गया है और यह जानकर वह अपराध के साक्ष्य को छिपाने का प्रयत्न करता हो। यह बात नहीं है। नाथू ने केवल यही बयान दिया है कि :—

"चलो नदी के किनारे मुँह हाथ गड़ा है, दें।" इससे यह प्रतीत नहीं होता कि नदी के किनारे मुँह हाथ

कैसे गड़ा या किसने गाड़ा। अधिक से अधिक इसका अभिप्राय केवल इतना ही हो सकता है कि उसने उस स्थान पर मुँह और हाथ का होना बतलाया। धारा के अंतर्गत इसके आगे यह नहीं पता चलता कि उसने मुँह और हाथ को छिपाया था। धारा २०१ के अंतर्गत केवल इतनी ही बात से वह अपराधी सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त इस विषय पर कोई अन्य साक्ष्य नहीं है।

अपील तद्नुसार स्वीकार की जाती है दोषसिद्धि और दंडादेश निराकृत किया जाता है और अभियुक्त उन्मुक्त किया जाता है। यदि किसी अन्य अपराध के लिये उसकी आवश्यकता न हो तो निर्देश है कि वह स्वतंत्र कर दिया जाय।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० ११७

(लखनऊ न्यायासन)

बी० मुकर्जी और रणधीर सिंह न्यायमूर्तिगण

सोमेश्वर दयाल तथा अन्य — अपीलकर्ता गण

वि०

लालमन शाह की विधवा तथा अन्य विरुद्धी

खेरी के मुंसिफ के आदेश दिनांक २८-११-१६५० से प्रार्थनापत्र सं० १०।१६५१ दिनांक ३१-१०-१६५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) धा० १४८, आ० २० नि० ३ और ६—विक्रय संविदा के यथावत् पालन की डिग्री की अंतर्वस्तु—समय बढ़ाने में न्यायालय का अधिकार (विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (१८७७) धारा ३५)

न्यायमूर्ति मुकर्जी—

वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध विक्रय संविदा पालन के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें १६ नवंबर १६४४ को वादी के पक्ष में आज्ञप्ति पारित की गई। डिग्री में कहा गया कि वादी को एक महीने का समय दिया जाता है कि वह २७५ रु० जमा करे और प्रतिवादी आज की तिथि से तीन महीने के भीतर वादी के पक्ष में विक्रय विलेख का निष्पादन कर देगा और यदि प्रतिवादी ने विलेख का निष्पादन इस निर्धारित अवधि के भीतर न किया तो वादी को अधिकार होगा कि न्यायालय द्वारा वह अपने पक्ष में विलेख का निष्पादन करा ले। निष्पादन आदि का पूरा व्यय वादी पर रहेगा।

इस आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी ने अपील निवेशित किया। अपील में इसी निर्णय को मान लिया गया। अपील का निर्णय दिनांक २३ फरवरी १६४५ को हुआ और वादी ने २३ मार्च १६४५ को २७५ रु० जमा किया। रुपया जमा करने पर भी प्रतिवादियों ने जब विक्रय विलेख का निष्पादन नहीं किया तो वादी ने निष्पादन न्यायालय में एक प्रार्थनापत्र दिया कि वह प्रतिवादी द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन करा दे।

प्रतिवादी ने कतिपय आधारों पर इस प्रार्थनापत्र का विरोध किया जिसमें से एक प्रमुख आधार यह था कि मुंसिफ ने १६-११-१६४४ से एक महीना के भीतर ही रुपया जमा करने को कहा था और यतः रुपया एक महीने के भीतर नहीं जमा किया गया इसलिए अब उसके आधार पर संविदा के यथावत् पालन की कार्यवाही नहीं की जा सकती। निष्पादन न्यायालय भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रतिवादी को अब विक्रय विलेख के निष्पादन के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता और इसलिए उसने प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

अपील पर मामला इस न्यायालय में आया और माननीय न्यायमूर्ति ने भी यही निर्णय दिया निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन प्रार्थनापत्र का उत्सर्जन ठीक ही किया है क्योंकि मुंसिफ के न्यायालय में समय बढ़ाने का कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया गया और मुंसिफ द्वारा निर्धारित समय को निष्पादक न्यायालय बढ़ा नहीं सकता।

इसके बाद वादी ने मुंसिफ के न्यायालय में समय बढ़ाने का प्रार्थनापत्र दिया। वादी का कहना था कि जब मुंसिफ के आदेश के विरुद्ध अपील हो गई तो मैं

अपील के निर्णय की प्रतीक्षा करता रहा कि कदाचित् अपील से यदि निर्णय बदल गया तो रुपया जमा करने की परिस्थिति आएगी ही नहीं और जब अपील के न्यायालय ने निर्णय दे दिया तो रुपया उस निर्णय की तिथि से एक महीना के भीतर ही जमा कर दिया गया।

मुंसिफ ने इसे मान लिया और समय बढ़ा दिया। इसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। इसमें कहा गया कि मुंसिफ को समय बढ़ाने का अधिक्षेत्र नहीं था। इसका कारण बतलाया गया कि मुंसिफ ने समय व्य० प्र० सं० की धारा १४८ में बढ़ाया और धारा १४८ इसमें लागू नहीं होती। धारा १४८ का कहना है कि इस संहिता (कोड) द्वारा निर्धारित काम को करने के लिये न्यायालय जब समय निर्धारित करे तो उसे अधिकार होगा कि वह समय को बढ़ाता चले। विद्वान् मुंसिफ ने जो समय बढ़ाया उसके लिये संहिता में कुछ दिया ही नहीं है। संहिता में संविदा के यथावत् पालन के लिये कोई नियम नहीं दिया गया है न तो उसके लिये कोई निर्धारित रूप ही है। जब कि अग्रक्रय (प्रीएमशन) की डिग्री के लिये संहिता के आ० २० नि० १४ में दिया गया है कि यह किस रूप में हो।

यथावत् पालन (स्पेसिफिक परफार्मेंस) की डिग्री का सामान्य स्वरूप इतना ही होना चाहिए कि वादी को उसका अधिकार है। उसके लिये समय का निर्धारित करना कि उस बीच रुपया जमा किया जाय या समय निर्धारित करना कि उस अवधि तक विक्रय विलेख का निष्पादन हो जाय न तो व्यवहार प्रक्रिया संहिता में कहीं दिया हुआ है और न तो कहीं विशिष्ट साहाय्य अधिनियम में ही दिया है। भारतवर्ष में यथावत् पालन के लिये समय निर्धारित कर दिया जाता है किंतु यह समय निर्धारण सुविधा की दृष्टि से है न कि संहिता के अंतर्गत किसी उपबंध के कारण।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ३५ में यह अवश्य दिया हुआ है कि जिस पक्ष के लाभ के लिये डिग्री पारित हुई है वह यदि चूक (डिफाल्ट) करता है तो उसका विपक्षी या तो उस संविदा को ही समाप्त करने का वाद निवेशित कर सकता है या न्यायालय में प्रार्थनापत्र दे सकता है कि वह अपना अपनी डिग्री काट दे।

ए० आई० आर० १९२३ मद्रास २८४ में यही प्रश्न विचाराधीन था कि संविदा के यथावत् पालन की आज्ञप्ति में यदि समय निर्धारित किया गया है तो उसे बढ़ाया जा सकता है कि नहीं। उसमें विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि समय बढ़ाया जा सकता है क्योंकि जबतक रुपया जमा नहीं कर दिया जाता और विक्रय का विलेख लिख नहीं जाता तब तक वह डिग्री अंतिम डिग्री नहीं होती। अतः समय प्रदान करनेवाली डिग्री केवल आरंभिक (प्रेलिमिनरी) डिग्री है और इसलिए समय बढ़ाया जा सकता है।

न्यायमूर्ति वालस ने कहा था कि संविदा के यथावत् पालन की डिग्री संविदा है और जैसे संविदा में यदि समय संविदा का तत्व न हो तो न्यायालय को समय बढ़ाने का अधिकार है उसी प्रकार न्यायालय ऐसी परिस्थिति में निर्धारित समय को बढ़ा सकता है।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम को धारा ३५ का भी उद्देश्य है कि चूक (डिफाल्ट) में जब तक संविदा प्रभावशून्य नहीं कर दी जाती या डिग्री काट नहीं दी जाती तब तक यथावत् पालन की डिग्री अस्तित्व में रहती है।

ए० आई० आर० १९४६ नागपुर २६ में वादी को संविदा के यथावत् पालन के लिये प्रतिफल का रुपया जमा करने के लिये समय निश्चित करने को आरंभिक डिग्री (प्रेलिमिनरी डिग्री) कहा गया था। किंतु यह विचार मान्य नहीं हो सकता। यह आदेश अंतिम डिग्री भी नहीं है कि न्यायालय समय बढ़ाने से रुक जाता है। यह आदेश एक संविदा की तरह है और जब तक संविदा का प्रवर्तन रोक नहीं दिया जाता यह चालू रहता है और समय बढ़ाया जा सकता है।

प्रार्थी की ओर से कहा गया कि यह एक डिग्री है और डिग्री के अनुबंधों में सिवा पुनर्विचार प्रार्थना के

या धा० १५२ के अधिकार के परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यह कथन माना नहीं जा सकता, कारण कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में जो डिग्री की परिभाषा दी गई है उसका तात्पर्य है कि किसी विवादास्पद बात का न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय हो। यहाँ समय बढ़ाने की बात विवादास्पद नहीं थी इसलिए यह डिग्री नहीं हुई। यदि यह डिग्री नहीं है तो इसमें हेर फेरकिया जा सकता है। अग्रक्रय (प्रीएमशन) की डिग्री में कुछ अंतर होता है। वह आ० २० नि० १४ के अनुसार बनाई जाती है और उसमें रुपया देने के लिये समय निर्धारण का भी विधान है।

उस समय इस मुकदमे में यह बात विचाराधीन थी कि निष्पादन न्यायालय को समय बढ़ाने का अधिकार है कि नहीं। यहाँ अन्वीक्षा न्यायालय ने समय बढ़ाया है। यदि निष्पादन न्यायालय ने निर्णय दे दिया है तो उसका प्रभाव ऐसे निर्णय पर नहीं पड़ेगा। पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है। पक्ष अपने अपने परिव्यय को सहन करेंगे।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय ११९

ओ० एच० मूथम मुख्य न्यायाधिपति और न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव।

ब्रह्मादीन तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

चंद्रशेखर शुक्ल — उत्तरवादी

प्रकीर्णक मुकदमा सं० ३४७-१९५५ दिनांक १५-११-१९५७।

विधि व्यवसाय अधिनियम (१८७९), धा० १३— दुर्व्यवहार—अउत्तरदायित्वपूर्ण पहचान—

मुख्य न्यायाधिपति ओ० एच० मूथम—

१९४५ में कानपुर के विकास निकाय ने कुछ मकानों को लेना चाहा। उसमें सूरज प्रसाद और ब्रह्मादीन जो दो भाई थे उनका भी मकान आया। मकान गिराने का इन लोगों ने विरोध किया और कई प्रार्थनापत्र भी दिए। अंत में प्रार्थनापत्र अस्वीकार हुआ और मकान ले लिया गया। मकान का प्रतिकर ६२९२ रु० २ आना जिला न्यायाधीश के यहाँ जमा कर दिया गया। यह रुपया प्रतिकर का था जो इन मकान मालिकों को दिया जाता।

एक दिन एक व्यक्ति वकील के यहाँ कचहरी आया और उसने अपना नाम ब्रह्मादीन बतलाया। उसने कहा कि मेरा भाई सूरज प्रसाद और उनकी स्त्री मर गई है और मुझे जिला न्यायाधीश के यहाँ से प्रतिकर (कंपेंसेशन) का रुपया दिला दिया जाय। वकील ने शपथपत्र बनाया और उसमें उस व्यक्ति ने कहा कि मैं अमुक मुहल्ले का रहनेवाला हूँ और हमारा भाई और भाई की स्त्री दोनों मर चुके हैं इसलिए केवल मैं ही संपत्ति का अधिकारी हूँ और वह प्रतिकर मुझे मिलना चाहिए।

वकील ने उस पर लिखा—

'ब्रह्मादीन की पहचान किया।''

वकील ने रुपया जिला न्यायाधीश के यहाँ से लेकर उस व्यक्ति को दे दिया। बाद में पता चला कि वह व्यक्ति ब्रह्मादीन नहीं था किंतु एक दूसरा व्यक्ति था।

वकील ने यह इनकार नहीं किया कि वह ब्रह्मादीन नहीं था। उनका कहना था कि सद्विचार से मैंने काम किया। जिस व्यक्ति ने वकील से यह बात बतलाई उसके बारे में वकील ने स्वतंत्र जाँच नहीं की कि वास्तव में वह व्यक्ति ब्रह्मादीन था कि नहीं।

यहाँ पर तर्क उपस्थित किया गया है कि यह काम वकील ने केवल प्रमाद (नेग्लिजेंस) के कारण किया और प्रमाद चाहे कितना हूँ बड़ा हो उसे व्यावसायिक दुर्व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

पहचान की कार्यवाही बड़ी ही उत्तरदायित्वपूर्ण होती है फिर भी प्रायः ऐसे व्यक्ति आते हैं जिनको वकील व्यक्तिगत रूप से नहीं पहचानते। यदि ऐसी बात हो तो इसके लिये व्य० प्र० सं० के आ० १९ नि० ११ ए० में दिया गया है कि वकील पहचानने के आधार

की चर्चा करके अपने को सुरक्षित रख सकते हैं और इसके बाद न्यायालय इसपर विचार करेगा कि पहचान की ऐसी कार्यवाही पर्याप्त है कि नहीं।

यहाँ वकील ने यह सब कुछ नहीं किया। उन्होंने जो लिखा कि ब्रह्मादीन की पहचान किया उससे यही प्रतीत होता है कि वे उसे व्यक्तिगत रूप से पहचानते थे।

इस मुकदमे में घटना १९४८ में घटी। इस वकील ने वही किया जो साधारणतया वकील लोग किया करते हैं। ऐसी परिस्थिति में वकील को कोई दंड देना ठीक नहीं समझा जाता किंतु इस आचरण की भर्त्सना की जाती है और पहचान के ऐसे गलत मुकदमे जब भविष्य में आवेंगे तो उनमें नम्रता का व्यवहार नहीं किया जायगा।

आदेश तद्नुसार

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इ० उ० न्या० १२०

एम० सी० देसाई और नसीरुल्ला बेग न्यायमूर्तिगण

न्यू सिंघल दाल मिल — प्रतिवादी प्रार्थी

वि०

फर्म शिवप्रसाद जयंतीप्रसाद — वादी विपक्षी

आगरा के लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २७-८-१९५७ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ८९७।१९५७ दिनांक १-११-१९५७

(अ) प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम (१८८७), धारा २५ जिसका संशोधन उ० प्र० अधिनियम १७,१९५७ द्वारा हुआ है उसकी प्रयोज्यता (अप्लिकेबिलिटी)—परिनियम की व्याख्या—अतीत प्रभावी होने का लक्षण।

(ब) उ० प्र० सामान्य उपवाक्य अधिनियम (यू० पी० जेनरल क्लाजेज ऐक्ट १९०४ का १) की धारा ६—संशोधन में इस धारा का लागू होना—

न्यायमूर्ति एम० सी० देसाई—

लघुवाद न्यायालय द्वारा पारित एक डिग्री के पुनरीक्षण के लिये लघुवाद न्यायालय की धारा २५ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। एक वाद सन् १९५६ में निवेशित हुआ और उसमें दिनांक २७-४-१९५७ को लघुवाद न्यायालय द्वारा एक डिग्री पारित हुई। उस समय यही नियम था कि ऐसे मुकदमों में उच्च न्यायालय मुकदमों को मँगाकर पुनरीक्षण कर सकता था।

उ० प्र० विधान मंडल ने उ० प्र० संशोधन अधिनियम सं० १७ १९५७ द्वारा उपर्युक्त धारा २५ का संशोधन किया। इस संशोधन द्वारा 'उच्च न्यायालय' के स्थान पर 'जिला न्यायाधीश' करके इसमें आवश्यक परिवर्तन किया गया। राष्ट्रपति ने ३०-५-१९५७ को इसपर स्वीकृति दी और ४-६-१९५७ को यह सरकारी राजपत्र में प्रकाशित हुआ। यह तत्क्षण लागू होने को था इसलिए ४-६-१९५७ को यह लागू हुआ। इस न्यायालय में यह प्रार्थनापत्र २७-७-१९५७ को निवेशित हुआ और इसपर विपक्षी ने एक आरंभिक आपत्ति की कि यह प्रार्थनापत्र संधार्य नहीं हो सकता।

आपत्ति थी कि ४-६-१९५७ के बाद उच्च न्यायालय में यह प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता। इसे संशोधन के अनुसार जिला न्यायाधीश के न्यायालय में देना चाहिए था। इसके उत्तर में प्रार्थी का कहना था कि उक्त संशोधन के लागू होने के पहले मैंने वाद निवेशित किया था और उसकी डिग्री भी संशोधन के लागू होने के पहले ही पारित हुई इसलिए संशोधन लागू नहीं होता और हमारा अधिकार उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण निवेशित करने का यथावत् है।

इस प्रकार की डिग्री में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र किस न्यायालय में निवेशित होगा इसके लिये संशोधन में कुछ नहीं लिखा है। संशोधन केवल इतना ही कहता है कि यह तुरत लागू हो जायगा।

अधिनियम जो ४-६-१९५७ को लागू हुआ उसका अभिप्राय केवल इतना ही है इस तिथि के बाद जिला न्यायाधीश को नीचे के न्यायालय से अभिलेख मँगा कर पुनरीक्षण करने का अधिकार है। इसमें यह नहीं है कि पहले के निवेशित या निर्णय किए हुए वादों में यह लागू नहीं होगा। २७-७-५७ को केवल जिला न्याया-

धीश को ही पुनरीक्षण का अधिकार है। इस न्यायालय को पहले इस प्रकार का अधिकार था किंतु अब वह ले लिया गया है।

इस प्रश्न पर विधि सामान्य वाक्यांश अधिनियम धारा ६ है। किंतु धारा ६ के लिये कहा गया है कि यह विधि के निरसन (रिपील) से संबंध रखती है संशोधन (अमेंडमेंट) से नहीं। निरसन (रिपील) को स्पष्ट किया गया है कि जब किसी विधि का केवल निरसन होता है और उसके स्थान पर किसी नए विधि का सृजन नहीं होता तो उसे निरसन कहेंगे और केवल इसी के लिये उपर्युक्त अधिनियम की धारा ६ लागू होती है। यहाँ यतः निरसन के बाद नया विधान बनाया गया है इसलिए कहा गया है कि धारा ६ के अनुबंध इसमें लागू नहीं होंगे। इसके लिये ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद ६३ में मुख्य न्यायाधिपति सुलेमान का कथन उदधृत किया गया है।

किंतु संमानपूर्वक इस कथन के मानने में असमर्थता प्रकट की जाती है। यों तो धारा ६ में निरसन के लिये दिया हुआ है कि इसका प्रभाव क्या होगा किंतु संशोधन के लिये कोई अन्य उपबंध है ही नहीं। किसी विधि के निरसन के बाद प्रायः नया विधान बनाया ही जाता है। निरसन और संशोधन दोनों एक ही हैं; जब उसमें परिवर्तन थोड़ा किया जाता है तो उसे संशोधन कहते हैं और जब परिवर्तन अधिक रहता है तो उसे निरसन कहते हैं, दोनों का आधार एक है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि जब निरसन के बाद नया विधि बन जाता है तो धारा ६ लागू नहीं होती और उसके लिये नए विधि का ही उपबंध लागू होगा। ए० आई० आर० १९५६ सर्वोच्च न्यायालय ७७ में स्पष्ट कह दिया गया है कि जब निरसन के पश्चात् पुनः अधिनियमन होता है उसमें धारा ६ लागू होती है। ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद जिसका अभिदेश ऊपर हो चुका है उससे सर्वोच्च न्यायालय ने ए० आई० आर० १९५५ सर्वोच्च-न्यायालय ८४ में विरुद्ध मत प्रकट किया है। सर्वोच्च-न्यायालय का इसमें निर्णय था कि संशोधन का पिछले व्यवहारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका निर्णय सामान्य वाक्यांश अधिनियम की धारा ६ के आधार पर होगा। तात्पर्य यह कि इस मामले में भी धारा ६ लागू होती है और उसी के अनुसार इस प्रश्न का निर्णय करना है।

धारा ६ में है कि निरसन की तिथि के पहले के 'अधिकारों या विशेषाधिकारों' (राइट्स एंड प्रिविलेजेज) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, उनके लिये उपाय यथावत् रहेंगे इत्यादि। अब यहाँ देखना है कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र देना क्या धारा ६ के अंतर्गत 'अधिकार' में आता है। पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र का देना कोई अधिकार नहीं है। अपील की स्थिति पुनरीक्षण से भिन्न होती है। अपील का अधिकार परिनियम द्वारा दिया हुआ है, पुनरीक्षण का अधिकार परिनियम द्वारा नहीं दिया गया है। इस कारण अपील करने पर न्यायालय उसकी सुनवाई से इनकार नहीं कर सकता जब कि पुनरीक्षण में यह जानते हुए कि अनियमितता बरती गई है न्यायालय कह सकता है कि आदेश में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा क्योंकि अनियमितता के रहते हुए भी पर्याप्त न्याय हुआ है।

यों तो न्यायालय को पुनरीक्षण का अधिकार है किंतु इस अधिकार के साथ उसका यह कर्तव्य (ड्यूटी) नहीं है। यदि यह कर्तव्य नहीं है तो तत्संबंधी अधिकार भी नहीं हो सकता।

धारा २५ का व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत पुनरीक्षण का अधिकार निहित अधिकार (वेस्टेड राइट) नहीं है। इसीलिए इन दोनों धाराओं में किसी पक्ष की चर्चा नहीं है न तो इसमें अवधि ही निर्धारित है। केवल न्यायालय को अधिकार है कि वह पुनरीक्षण कर ले किंतु यह किसी पक्ष का अधिकार नहीं है कि वह न्यायालय को पुनरीक्षण के लिये बाध्य कर सके। न्यायालय का यह अधिकार भी नीचे के न्यायालयों के काम का पुनरीक्षण करने के लिये दिया गया है कि देख लिया जाय कि नीचे के न्यायायल ठीक ढंग से काम कर रहे हैं कि नहीं। यह किसी पक्ष का अधिकार नहीं है।

इसके विरुद्ध मत के समर्थन में कुछ रूलिंग दी गई है कि जैसे अपील करने का अधिकार होता है उसी प्रकार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित करने का भी अधिकार होता है। ए० आई० आर० १९३२ प्रिवी कौंसिल १६५ का अभिदेश किया गया। किंतु उस मुकदमें में जो ऐसी बात कही गई थी वह नितांत भिन्न प्रसंग में कही गई थी। वहाँ यह बात विचाराधीन थी कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ के अंतर्गत अवधि किस तिथि से प्रारंभ होती है। उसमें कहा गया कि यों तो अनुच्छेद १८२ में केवल 'अपील' शब्द प्रयुक्त है किंतु इसमें पुनरीक्षण भी आता है। दूसरे शब्दों में उपर्युक्त मुकदमें में निर्णय हुआ था कि अपील के अंतिम आदेश की तिथि से अवधि आरंभ होती है और इस प्रकार पुनरीक्षण के अंतिम आदेश की भी तिथि से अवधि का आरंभ होगा। वहाँ अपील और पुनरीक्षण दोनों की प्रकृति की बात विचाराधीन नहीं थी वरन् दोनों में पारित अंतिम आदेश का क्या प्रभाव होगा यह बात विचाराधीन थी। और स्पष्ट शब्दों में अपील और पुनरीक्षण के बाद एक समान हो जाते हैं, इसके पहले तो उनमें अधिकार संबंधी अंतर रहता ही है और यह बात उपर्युक्त रूलिंग में विचाराधीन थी ही नहीं इसलिए वह इस मुकदमें की परिस्थिति में लागू नहीं होती। इसी प्रकार अन्य रूलिंग भी अंतर रखती हैं और इसमें लागू नहीं हो सकतीं।

न्यायालय तो सबके लिये समान रूप से खुला रहता है। सभी को अधिकार है कि वह जाकर प्रार्थनापत्र दे सकता है किंतु ऐसे अधिकार को अधिकार तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि दूसरे का इस संबंध में कर्तव्य न हो। यहाँ न्यायालय का ऐसा कर्तव्य नहीं है इसलिए धारा २५ में पक्ष का तत्संबंधी अधिकार भी नहीं है।

यदि पक्ष का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र देने का अधिकार हो भी तो वह यह नहीं कह सकता कि उच्च न्यायालय में ही देगा। संशोधन के बाद यह अधिकार अब जिला न्यायाधीश का हो गया है। दूसरे, धारा ६ के अंतर्गत यह कोई ऐसा मुकदमा नहीं है जो चल रहा हो और इसलिए संशोधन के पहले का ही अधिकार लागू हो। इसमें निर्णय हो चुका है। अतः वह अधिकार यदि हो भी तो लागू नहीं हो सकता। यह विशेषाधिकार (प्रिविलिज) भी नहीं है।

अतः संशोधन के बाद पुनरीक्षण का अधिकार केवल जिला न्यायाधीश को है। वह अधिनियम अतीत प्रभावी नहीं है और जिला न्यायाधीश संशोधन अधिनियम के लागू होने के पहले के पारित आदेश का भी पुनरीक्षण कर सकते हैं।

प्रार्थनापत्र अस्वीकार किया जाता है।

—प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२२

आर० एन गुर्टू एवं डी० एन० राय न्यायमूर्तिगण
(१२-२-५८)

शोभनाथ — अपीलकर्ता

वि०

अंबिका प्रसाद तथा अन्य — उत्तरवादीगण

बनारस के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १७-३-१९५२ से द्वितीय अपील सं० ६५२।१९५२

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३ और १९ (१) एफ० अतीत प्रभावी नहीं हैं—अग्रक्रय (प्रीएम्शन) का वाद संविधान के लागू होने की तिथि को यदि चल रहा था तो इसकी डिग्री में संविधान का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा—मुहम्मदन विधि में अग्रक्रय का अधिकार कब पैदा होता है और कब समाप्त होता है—

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू—

प्रतिवादी सं० २ ने प्रतिवादी सं० १ शोभनाथ के पक्ष में २१-६-४९ को एक विक्रय विलेख का निष्पादन किया था। इसी के विरुद्ध वादी ने अग्रक्रय वाद निवेशित किया था। इस अग्रक्रय वाद का विरोध कई आधारों पर किया गया है। अन्वीक्षा न्यायालय ने

सभी वाद पदों का निर्णय वादी के पक्ष में दिया किंतु अंत में बाद इसलिए उत्सर्जित कर दिया कि मुहम्मदन विधि के अनुसार 'तलब' नहीं पूरा किया गया।

अपील करने पर अपील के न्यायालय ने निर्णय दिया कि 'तलब' ठीक ढंग से पूरा हुआ है और अपील स्वीकार की गई। इसमें निर्णय दिया गया कि वादी १९४० रु० प्रतिवादी सं० १ को दे और ६६० रु० प्रतिवादी सं० २ को दे और यदि वादी ने रुपया दे दिया तो वाद की डिग्री हो गई हुई मान ली जायगी और यदि नहीं दिया तो वाद उत्सर्जित हो जायगा।

प्रतिवादी जो हस्तांतरिती है उसने द्वितीय अपील निवेशित की है। यह अपील दो प्रमुख आधारों पर आधारित है। एक यह कि संविधान के लागू होने पर अग्रक्रय का विधि प्रभावशून्य हो गया इसलिए वाद उत्सर्जित हो जाना चाहिए। दूसरे, सारा रुपया प्रतिवादी हस्तांतरिती को ही मिलना चाहिये था दूसरे प्रतिवादी को नहीं।

दूसरी आपत्ति के विषय में उत्तरवादी के विद्वान वकील ने मान लिया कि सारा २६०० रु० इस अपील कर्ता को ही मिलना चाहिए। इसलिए इस विषय पर अब कोई विवाद नहीं है।

पहली आपत्ति महत्वपूर्ण है। इस विषय में कहा गया है कि संविधान के अनुच्छेद १९ (१) एफ० में है कि सबको संपत्ति की प्राप्ति, धारण और निर्वर्तन का अधिकार होगा और यतः अग्रक्रय का अधिकार संविधान के उपर्युक्त मौलिक अधिकार के विरुद्ध है इसलिए यह प्रभावशून्य है। कहा गया कि यों तो संविधान अतीत प्रभावी नहीं है किंतु मुहम्मदन विधि के अनुसार अग्रक्रय के वाद में डिग्री तभी पारित हो सकती है जब कि डिग्री की तिथि को भी वादी का अग्रक्रय अधिकार ज्यों का त्यों हो। यहाँ जिस दिन डिग्री पारित हुई उस दिन संविधान लागू हो चुका था और उसके लागू होने से अग्रक्रयाधिकार प्रभावशून्य हो गया।

इसके समर्थन में दो रूलिंग्स भी दी गईं, ए० आई० आर० १९५४ राजस्थान २३१ और ए० आई० आर० १९५५ हैदराबाद १२०। इन दोनों रूलिंग्स में यह कहा गया था कि अग्रक्रय का अधिकार बिक्री के दिन और वाद निवेशित करने के दिन तक ही रहना अनिवार्य नहीं है वरन् इसे डिग्री पारित होने की तिथि को भी रहना आवश्यक है। और इसलिए संविधान के लागू होने की तिथि को अग्रक्रय के विचाराधीन वाद नहीं चल सकते।

यहाँ विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि जब संविधान अतीतप्रभावी नहीं है तो वादी का वह अधिकार जो संविधान के पूर्व ही प्राप्त हुआ और संविधान के लागू होने के पहले ही जिस अधिकार के लिये वाद निवेशित किया गया वह संविधान के लागू होने पर वाद समाप्त हो जायगा कि नहीं।

अग्रक्रय का अधिकार निम्नलिखित ३ श्रेणी के व्यक्तियों को प्राप्त होता है। १—'शफी-ए-शरीक' अर्थात् जो उस संपत्ति का सह भागीदार होता है २—'शफी-ए-खलीत' अर्थात् जो उस संपत्ति का लाभ लेता है जैसे रास्ते का अधिकार इत्यादि और ३—'शफी-ए-जार' जब वह उससे संबद्ध अचल संपत्ति का स्वामी होता है। ज्योंही कोई संपत्ति बेची गई और उपर्युक्त तीनों श्रेणी में से, किसी श्रेणी के व्यक्ति ने मुहम्मदन विधि के अनुसार 'तलब' किया कि अग्रक्रय का अधिकार पूरा हो जाता है। इसके बाद इस अधिकार का प्रयोग वह वाद द्वारा कर सकता है। अग्रक्रयाधिकार तब तक चलता रहता है जब तक कि डिग्री की तिथि को जिस अधिकार से उसने दावा किया था वह समाप्त न हो जाय या हस्तांतरिती डिग्री की तिथि को ऐसा अधिकार प्राप्त न कर ले जिससे वादी का अग्रक्रयाधिकार ही समाप्त हो जाय। मान लिया जाय कि उत्तराधिकार से या किसी अन्य प्रकार हस्तांतरिती भी उस संपत्ति का सह भागीदार हो जाता है तो वादी का अग्रक्रयाधिकार भी समाप्त हो जायगा। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त परिस्थिति में वादी को अग्रक्रय का अधिकार प्राप्त होता है और साथ ही डिग्री के पहले तक उस अधिकार को निरर्थक करने का अधिकार हस्तांतरिती को भी प्राप्त है और वह इस प्रकार कि या तो वादी का अधिकार स्वतः समाप्त हो जाय या हस्तांतरिती को ऐसा अधिकार प्राप्त

हो जाय कि उससे वादी का अधिकार समाप्त हो जाय। सारांश यह है कि वादी को वाद निवेशित करने की तिथि को या डिग्री पारित होने की तिथि को किसी नए अधिकार को नहीं दिखलाना है उसे यही दिखलाना है कि उसे अधिकार है और वह अधिकार उपर्युक्त परिस्थितियों के अंतर्गत समाप्त नहीं हो गया।

इसलिए यदि संविधान अतीत प्रभावी नहीं है तो वह अग्रक्रय के इस अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता क्योंकि अधिकार संविधान के लागू होने के पहले ही आ चुका है।

हैदराबाद और राजस्थान न्यायालयों ने जिस विचार का अनुसरण किया वह था कि जब कि डिग्री के दिन अग्रक्रय विधि मर चुका था तो वादी डिग्री नहीं पा सकता था क्योंकि अग्रक्रय विधि के लिये एक आवश्यकता यह थी कि अग्रक्रयाधिकार डिग्री के दिन भी अस्तित्व में रहे। दूसरे शब्दों में दोनों न्यायालयों ने वादी के अग्रक्रय वाद को इसलिए मार डाला कि उसमें अग्रक्रय विधि के एक शर्त का पालन नहीं किया गया था जब कि साथ ही साथ निर्णय यह कहता है कि अग्रक्रय विधि (ला आफ प्रीएंपशन) अब है ही नहीं। तात्पर्य यह कि इन न्यायालयों के निर्णय के अनुसार यद्यपि डिग्री के दिन अग्रक्रय विधि मर चुका था फिर भी मुकदमे को मारने के लिये उपर्युक्त विधि का एक प्रतिबंध (वर्तमान अधिकार का) जो उस विधि के ही अंतर्गत था पुनः जीवित किया गया। यदि विधि का एक भाग पुनर्जीवित करके लागू किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि पूरा विधि ही क्यों न पुनर्जीवित करके लागू किया जाय और जब विधि संपूर्णतः लागू किया जाता है तो मुकदमें को केवल उसी विधि के अंतर्गत ही असफल किया जा सकता है—वह विधि है कि यदि वादी के 'शफी' का अधिकार समाप्त हो जाय या हस्तांतरिती को ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाय जिससे वादी का अग्रक्रयाधिकार नष्ट हो जाय। ऐसा नहीं हो सकता कि विधि संपूर्णतः मर जाय और उसके एक भाग को मुकदमें को असफल करने के लिये जीवित कर दिया जाय। संमानपूर्वक कहा जाता है कि उन दोनों न्यायालयों का निर्णय गलत था।

जब संविधान के लागू होने के पहले ही अग्रक्रयाधिकार प्राप्त हुआ और उसकी सभी शर्तों का पालन करते हुए वाद निवेशित हुआ तो डिग्री के पारित होने के पहले यदि संविधान लागू हो गया तो इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि इसे भी प्रभावित करने लगे तो यह अतीतप्रभावी हो जायगा और निस्संदेह संविधान अतीत प्रभावी नहीं है। अग्रक्रयाधिकार का निर्णय अग्रक्रय विधि द्वारा ही करना चाहिए। जब कहा जाता है कि अग्रक्रय का सारा विधि मर चुका है तो अग्रक्रय के एक विधि को लाकर मुकदमा असफल नहीं किया जा सकता।

जब यहाँ यह निर्णय हो चुका है कि अग्रक्रय का वह विधि जो यहाँ लागू हो रहा है संविधान से प्रभावित नहीं है तो अब इसकी आवश्यकता नहीं है कि विचार किया जाय कि भारतीय संविधान के अंतर्गत वह उक्त विधि प्रभावशून्य है कि नहीं।

तदनुसार अपील आंशिक रूप में स्वीकार की जाती है और नीचे के न्यायालय की डिग्री में परिवर्तन किया जाता है कि २६०० रु० पूरा धन केवल प्रतिवादी सं० १ को ही दिया जाय। रुपया जमा करने के लिये ३ महीने की अवधि आज के दिन से ६ महीना तक बढ़ा दी जाती है उभय पक्ष अनुपात के अनुसार परिव्यय सहन करेंगे।

अपील अंशतः स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १२४

एच० पी० अस्थाना और एस० एन० सहाय
न्यामूर्तिगण

मैमे शाह — प्रार्थी
वि०
राज्य — विपक्षी

आपराधिक पुनरीक्षण सं० १४३। १९५५, दिनांक २१-११-१९५७-दंड प्रक्रिया संहिता (१८९८) धा० २३७, २३६, ४२३, ५३७—आरोप दं० सं० की

धारा ४५७ के अंतर्गत था और अन्वीक्षा न्यायालय ने अभियुक्त को इसी धारा के अंतर्गत दंड दिया था किंतु अपील करने पर अपील के न्यायालय ने दोष सिद्धि धारा ४५७ से बदल कर धारा दंड संहिता की धारा ४११ में की—इसकी वैधता—

न्यायमूर्ति (च० पी० अस्थाना—

इस न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश ने पहले पुनरीक्षण की सुनवाई की थी किंतु उनके मतानुसार इसी न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के निर्णय के कारण जो ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ३३ में प्रतिवेदित है न्यायासन के निर्णय के लिये इसका अभिदेश आवश्यक था। उन्होंने इसीलिए इसका अभिदेश किया।

प्रार्थी मैमे शाह का अभियोजन किया गया था कि वह अप्रैल १९५२ की २६ और २७ तारीख के बीच रात्रि के समय किसी शिवशंकर लाल तिवारी के मकान में चोरी करने के लिये घुस गया था। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया कि अभियुक्त दोषी सिद्ध होता है और उन्होंने उसे दं० सं० की धारा ४५७ के अंतर्गत दंड दिया।

अपील करने पर अपील के न्यायालय ने कहा कि साक्ष्यों से अपराधी धारा ४५७ में दोषी सिद्ध नहीं हो सकता और इसलिए अपील के न्यायालय ने उसकी दोष सिद्धि धारा ४११ के अंतर्गत की क्योंकि उसके पास कुछ चोरी के सामान मिले थे जिन्हें वह जानता था कि वे चोरी के हैं।

इसपर अभियुक्त ने पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसमें उसका कहना था कि आरोप केवल धारा ४५७ में लगा था और जब उस धारा के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि नहीं हुई तो एक दूसरी धारा ४११ में उसकी दोषसिद्धि नहीं हो सकती जिसका कि इसमें ऊपर आरोप था ही नहीं। इस कथन के समर्थन में उसने ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ३३ का प्रमाण दिया जिसमें ऐसी ही परिस्थिति में निर्णय दिया गया था कि उस धारा के अंतर्गत जिसमें आरोप न लगा हो दोषसिद्धि नहीं की जा सकती।

यह बात मानने योग्य नहीं है क्योंकि दं० प्र० सं० की धारा २३६, २३७ और ५३७ को देखने से प्रतीत होता है कि यदि किसी धारा में आरोप न लगा हो किंतु साक्ष्य से उक्त धारा के अंतर्गत अपराध बनता हो और अभियुक्त को किसी प्रकार की हानि न हुई हो तो यह अनियमितता धारा ५२७ के अंतर्गत ठीक की जा सकती है।

यहाँ पर इस मुकदमे में इसमें कोई संदेह नहीं कि आरोप केवल धारा ४५७ में लगा था किंतु यह निश्चय है कि कुछ चोरी गए सामान उसके यहाँ मिले थे और इसके बारे में अभियुक्त से स्पष्ट प्रश्न भी पूछा गया था और उसने इनकार किया। यह साक्ष्य से स्पष्ट है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त को चोरी गए हुए सामानों का उसके यहाँ से प्राप्त होने वाले साक्ष्यों के बारे में कोई सूचना नहीं थी।

बेगू वि. इंपरर ए. आई. आर. १९२५ प्रिवी कौंसिल १३० में निर्णय हुआ था कि जब अभियुक्त पर धारा ३०२ का आरोप हो और साक्ष्य में हो कि उसने बध के साक्ष्य को मिटाया तो उसकी दोषसिद्धि धारा ३०२ के अंतर्गत न होकर धारा २०१ के अंतर्गत हो सकती है।

अतः सर्वदा यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त की दोषसिद्धि के पहले उसके विरुद्ध विशिष्ट आरोप हो। यदि अभिलेख पर के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने कोई दूसरा अपराध किया है और यदि दूसरे अपराध में उसपर आरोप होता तो उसकी दोषसिद्धि हो सकती थी तो उसपर विशिष्ट आरोप के न रहने पर भी दोषसिद्धि हो सकती है।

इसीलिए केवल इस कारण कि उसके ऊपर धारा ४११ के अंतर्गत विशिष्ट आरोप नहीं लगा था यह नहीं कहा जा सकता कि धारा ४११ के अंतर्गत उसकी दोषसिद्धि अवैध है। उसके यहाँ से चोरी का सामान प्राप्त हुआ था और वह जानता था कि सामान चोरी का है।

इसलिए यह पुनरीक्षण अस्वीकार किया जाता है। और अभियुक्त की धारा ४११।७५ दं० सं० के अंतर्गत की दोषसिद्धि और दंडादेश मान्य होता है। प्रार्थी

जमानत पर है वह तुरत शेष दंड भुगतने के लिये आत्म-समर्पण कर दे।

पुनर्वीक्षण असफल

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद
उच्च न्यायालय १२६

आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १६१-१९५७
१० फरवरी १९५८।

मुहम्मद इब्राहीम — परिवादी
वि०
गोपीलाल तथा अन्य — अभियुक्त विरुद्ध

अवधि अधिनियम धारा ५—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४१७ (३) में यह लागू नहीं हो सकती।

न्यायमूर्ति जेम्स—

मुहम्मद इब्राहीम ने कुछ लोगों का दंड संहिता की धारा २९७ के अंतर्गत अभियोजन किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने इसमें अभियुक्तों की दोषसिद्धि की किंतु अपील से सत्र न्यायाधीश ने उन्हें छोड़ दिया।

छोड़ देने पर इब्राहीम ने इसके विरुद्ध अपील निवेशित करने की विशेष अनुमति के लिये प्रार्थनापत्र निवेशित किया। धारा ४१७ (४) के अनुसार यह प्रार्थनापत्र दोषमुक्ति के आदेश से ६० दिन के भीतर होना चाहिए था किंतु यह ६० दिन के बाद दिया गया। इस विलंब को क्षमा करने के लिये इब्राहीम ने अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र दिया। यह प्रार्थनापत्र न्यायमूर्ति देसाई के समक्ष सुनवाई के लिये आया। उनके समक्ष कहा गया कि धारा ४१७ (३) में अवधि अधिनियम की धारा ५ लागू नहीं हो सकती। न्यायमूर्ति देसाई के मन में यह तर्क बैठ गया किंतु इस विषय पर अनेक निर्णयों में मतभेद होने के कारण इसे न्यायासन के समक्ष अभिदेश करने की आवश्यकता पड़ी। इस अभिदेश पर यह सुनवाई के लिये आया है।

इस संबंध में पक्षों की बात सुनने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब धारा ४१७ (४) में यह स्पष्ट दे दिया गया है कि धारा ४१७ (३) के अंतर्गत अपील करने के लिये विशेष अनुमति का प्रार्थनापत्र यदि दोषमुक्ति के आदेश से ६० दिन के पश्चात् दिया जाता है तो उस पर विचार नहीं किया जायगा तो यह मामले का निश्चायक है कि ६० दिन के बाद उच्च न्यायालय ऐसा प्रार्थनापत्र नहीं लेगा। न्यायमूर्ति देसाई से हम सहमत हैं और प्रार्थनापत्र कालबाधित होने से उत्सर्जित कर देने योग्य है।

यदि हम मानते कि इसमें धारा ५ लागू होती है तब भी यह प्रार्थी उसका लाभ नहीं उठा सकता था क्योंकि उसने प्रार्थनापत्र देते समय देर को क्षमा करने के लिये कोई प्रार्थनापत्र नहीं दिया। बहुत दिन के बाद उसने धारा ५ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया और इसमें उसका कहना था कि मैं इनफ्लुएंजा से बीमार हो गया था परंतु उसके साथ उसने बीमार होने का प्रमाणपत्र नहीं दिया। यह प्रमाणपत्र भी उसे बाद में मिला। इसको खुर्जा के एक डाक्टर ने दिया जिनकी योग्यता एल० एम० पी० थी। उन्होंने बयान दिया कि इब्राहीम को बहुत कड़ा इनफ्ल्यूएंजा हो गया था और वह ८ जुलाई सन् १९५७ से २४ जुलाई १९५७ तक मेरी चिकित्सा के अंतर्गत रहा। इनफ्लूएंजा की बीमारी इतने दिन तक चलती रही मानने योग्य नहीं है। दूसरे उच्चन्यायालय में उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं थी। अपने किसी मित्र को वह आवश्यक कागज पत्र देकर उच्च न्यायालय में वकील के यहाँ भेज सकता था। यदि कोई मित्र न मिला तो डाकघर तो सर्वदा यह काम करने के लिये तत्पर था। इन कारणों से वह धारा ५ का लाभ नहीं उठा सकता।

अतः हमें प्रार्थनापत्र अस्वीकार करने में कोई रुकावट नहीं दिखलाई पड़ती। धारा ४१७ (३) के अंतर्गत अनुमति का प्रार्थनापत्र असफल होता है और वह एतद् द्वारा उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

वादियों का कहना है कि दुर्गा सिंह की विधवा स्त्री श्रीमती गौरा देवी थीं और श्रीमती गौरा देवी और उनकी पतोहू विवादग्रस्त भूमि की स्वामिनी थीं जो कि इन लोगों की संयुक्त 'सीर' थी। वादियों का यह कहना था कि श्रीमती गौरा देवी का स्वामित्व अधिकार भारग्रस्त संपदा अधिनियम के अंतर्गत गोविंद प्रसाद और सोहन लाल के यहाँ बन्धक रख गया था। अपने 'सीर' के खेतों पर वह हृतस्वामित्व (एक्सप्रोप्राइटरी) अधिकार प्राप्त कर ली थी जो उसमें से निकाल लिया गया था और अकेले ही उसके धारण में थी। श्रीमती गौरा देवी २५० रु० से कम लगान देती थी। वादियों का कहना था कि श्रीमती गौरा देवी ने सन् १९४५ में भूमि का बंदोबस्त डोरेलाल के साथ कर दिया और वह १२ मार्च १९५१ को मरी तथा वादीगण उसी के उत्तराधिकारी हैं। वादी का कहना है कि गौरा देवी के मरने पर विधि के प्रवर्तन से भूमि का लक्षण 'सीर' में परिवर्तित हो गया और वादीगण उसके 'भूमिधर' हो गए हैं। प्रतिवादीगण उसके असामी हुए। वादियों का कहना है कि हम लोग उस भूमि को स्वयं जोतना चाहती हैं और आरंभिक भूस्वामी की अनर्हता समाप्त हो गई है।

प्रतिवादी ने उपर्युक्त कथन को अस्वीकार किया। उसका कहना था कि हम असामी नहीं हैं इसलिए हमारा अधिनिष्कासन नहीं हो सकता।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया था कि प्रतिवादीगण असामी नहीं हैं और इसलिए वाद उत्सर्जित कर दिया। अपील में विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने अन्वीक्षा न्यायालय के आदेश को निराकृत कर दिया और अपील स्वीकृत हुई।

यहाँ प्रतिवादी अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय ने यह गलत निर्णय दिया था कि प्रतिवादी अपीलकर्ता के अधिकार का निर्णय निहित तिथि के आधार पर नहीं होगा। यह निर्विवाद है कि वादीगण विवाहित स्त्रियाँ हैं और उनके पति जीवित हैं। ये स्त्रियाँ अनर्हता की परिभाषा में नहीं आतीं इसलिए प्रतिवादी अपीलकर्ता भूमि के अधिवासी हुए न कि धारा २१ के अंतर्गत असामी।

यह बात धारा २१ का ठीक अर्थ न लगने के कारण कही जा रही है। धारा २१ के संबद्ध शब्द इस प्रकार हैं:—"......प्रत्येक व्यक्ति जो निहित होने की तिथि के ठीक पहले भूमि का......धारण या उसे सीर के कृषक रूप में लिए हुए था...' इसका अर्थ हुआ कि निहित होने की तिथि से ठीक पहले उस व्यक्ति के लिये प्रयुक्त है जो असामी घोषित होनेवाला है। निहित होने की तिथि का संबंध भूस्वामी से नहीं है। इसके अंतर्गत भूस्वामी के लिये प्रतिबंध केवल इतना ही है कि वह जिस दिन भूमि का बंदोबस्त करे उस दिन और ९ अप्रैल १९४६ को अनर्हता (डिसएबिलिटी) में रहे। उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह निहित होने की तिथि को भी अनर्हता (डिसएबिलिटी) में रहे। बंदोबस्त की तिथि को और ९ अप्रैल १९४६ को तथा निहित होने की तिथि को, जैसा कि इस मुकदमे में है, भूस्वामी दूसरे दूसरे हो सकते हैं। यदि अनर्हता समाप्त हो चुकी है तो निहित तिथि से ३ वर्ष के भीतर भूस्वामी जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २०२ (एफ) (२) के अंतर्गत वाद निवेशित कर सकता है। यहाँ जब कि भूमि का बंदोबस्त श्रीमती गौरा देवी ने सन् १९४५ में किया तो यह मान्य है कि वह विधवा थी इसलिए डोरेलाल केवल 'असामी' हुआ और उसका अधिनिष्कासन जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत किया जा सकता है।

विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने जो अपील स्वीकार की है और वादियों के वाद में आज्ञप्ति दी है वह ठीक है।

द्वितीय अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (रा०) ४२
(राजस्व मंडल)

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा (राजस्व मंडल)

खरका, बिजनौर, लखनऊ ।

लखनऊ फैजाबाद मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश ११-१२-१९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र संख्या ६ (जेड) १९५७/५८)

११ अप्रैल १९५८

रामेश्वर इत्यादि — अपीलकर्ता

वि०

श्रीमती परभूदेई — उत्तरवादी

उ० प्र० भूमिसुधार अनुपूरक अधिनियम ३१। १९५२ धा० ४ (१), (२)—कागजों की शुद्धि के बारे में जाँच-क्षेत्र-जाँच यदि असिस्टेंट कलक्टर द्वितीय श्रेणी से नीचे के स्तर के अधिकारी ने किया तो ऐसी जाँच के आधार पर शुद्धि के लिये पारित आदेश की वैधता—

न्यायिक सदस्य, एस० एन० मित्रा—

लखनऊ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है। श्रीमती परभूदेई ने उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम की धारा २३२ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इस प्रार्थनापत्र में उसका कहना था कि वह १३५९ और १३६० फ० में भूमि पर खेती करती थी और धारण में थी इसलिए अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ३ के अंतर्गत उसे अधिवासी अधिकार प्राप्त हुआ। विपक्षियों ने उसे जुलाई १९५३ में धारणच्युत कर दिया था इसलिए धारण के लिये प्रार्थनापत्र है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने प्रार्थनापत्र स्वीकार किया किंतु एक दूसरी ही बात पर इसे प्रतिप्रेषित कर दिया था कि इसके आवश्यक पक्ष नहीं बनाए गए थे। अमरनाथ, माताप्रसाद और बिंदा प्रसाद अपनी माता के द्वारा पक्ष बनाए गए। अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि अधिनियम ३१, १९५२ के अंतर्गत वह अधिवासी है और उसका प्रार्थनापत्र अवधि के अंतर्गत है। इस प्रकार वह प्रार्थनापत्र स्वीकृत हुआ। अपील पर विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने यह आदेश मान लिया और अपील उत्सर्जित कर दिया।

इस द्वितीय अपील में अपीलकर्ता ने निम्नलिखित आपत्ति किया है:—

१—अमरनाथ, माता प्रसाद और बिंदा प्रसाद अवधि बीतने पर पक्ष बनाए गए। ये लोग आवश्यक पक्ष थे अतः नीचे की अपील के न्यायालय में अपील अक्षम थी।

२—परभूदेई पहले से ही से ही धारण में नहीं थी और इस संबंध में उसने कागजों की शुद्धि के लिये एक प्रार्थनापत्र निवेशित किया था। उस प्रार्थनापत्र पर तहसीलदार ने जो आदेश दिया था वह अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ४ के अंतर्गत आदेश नहीं था। इस प्रकार दोनों न्यायालयों का आदेश गलत था और वह निराकृत कर देने योग्य है।

उत्तरवादी का कहना है कि:—

१—रामेश्वर ने स्वीकार किया था कि तीनों लड़के हमारे साथ रहते हैं और हम तथा श्रीमती जगदेई भूमि के स्वामी हैं। रामेश्वर आवश्यक पक्ष थे और वे पक्ष बनाए गए।

२—नीचे के न्यायालय ने जो उसे प्रतिप्रेषित किया था उसमें उसका कहना था कि यों तो इसको वापस करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती किंतु भविष्य की उलझनों से बचने के लिये इसे प्रतिप्रेषित किया जाता है। किसी आवश्यक कारणवश यह प्रतिप्रेषित नहीं किया गया था।

३—अधिनियम ३१, १९५२ की धारा ४ के अंतर्गत सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी को ही कागज को ठीक करने का अधिकार है किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं हो सकता कि वे ही इसकी जाँच भी करें। यहाँ पूरी जाँच करके तब कागज ठीक किया गया। इसलिए दोनों न्यायालयों का निर्णय ठीक था।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना था कि अमरनाथ, माताप्रसाद और विद्याप्रसाद का नाम बाद में जोड़ा जाना मुकदमे के लिये घातक है, ठीक नहीं है। यदि यह घोषणात्मक वाद होता तो अवधि के बाद इन

प्रकार नाम जोड़े जाने पर दूसरी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती थी; यहाँ नहीं। इस आधार पर प्रार्थनापत्र को उत्सर्जित कर देना ठीक नहीं है।

अधिनियम ३१, १९५२ धारा ४ के अंतर्गत यह आवश्यक नहीं है कि सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी के अधिकारी इसकी जाँच व्यक्तिगत रूप से करें। जाँच उनके नीचे के अधिकारी भी कर सकते हैं, अंतिम आदेश केवल वही पारित कर सकते हैं। नीचे के न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि रामेश्वर और श्रीमती जगदेई भू स्वामी हैं और जाँच के पश्चात् यह निश्चित है कि श्रीमती परभू देई १३५६ फसली में धारण में थीं और खेती करती थी। ये प्रश्न तथ्य के प्रश्न हैं और यत: यह नहीं दिखलाया गया है कि ये निष्कर्ष गलत हैं इसलिए इस द्वितीय अपील में इन प्रश्नों पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती।

यह अपील असफल होती है और परिव्यय तथा वकील के फीस के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इ० (राजस्व) ४३

(राजस्व मंडल)

जुनादपुर, आजमगढ़, एटा

आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २१ फरवरी १९५५ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० १६३।१९५४–५५)

प्रागदत्त — अपीलकर्ता

वि०

बद्री तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १, १९५१, धारा २०—भू अभिलेख नियमावली अनुच्छेद ७२—व्याख्या—'साझी' और 'सहकृषक' में प्रभेद—धारा २० के अंतर्गत अध्यासी (आकूपेंट) का अर्थ—'साझी' को अधिवासी का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता—

न्यायिक सदस्य भजनलाल चतुर्वेदी—

इन तीनों वादों में वादी प्रागदत्त ने अपने को श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का कहा है। श्रीमती रामप्यारी जगराज की विधवा स्त्री है। इस प्रकार प्रागदत्त का कहना है कि वह श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का और उसका उत्तराधिकारी है। वादी प्रागदत्त ने प्रतिवादियों के अधिनिष्कासन के लिये वाद इस आधार पर निवेशित किया था कि वे अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर्स) हैं।

प्रतिवादीगण ने वादपत्र के विरोध में कहा है कि :—

१ प्रागदत्त श्रीमती रामप्यारी की लड़की का लड़का नहीं है।

२ रामप्यारी के जीवन काल में ही हम लोग उसके प्रतिकूल धारण में थे और इस प्रकार धारण में रहने के कारण हम लोगों ने उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा १८० (२) के अंतर्गत वंशानुगत कृषक का अधिकार प्राप्त कर लिया है।

३ यह अवधि से बाधित है।

४ किसी भी दशा में हम लोग उसके अधिवासी हो गए हैं।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया था किंतु अपील में अतिरिक्त आयुक्त ने वाद उत्सर्जित कर दिया। इस उत्सर्जन आदेश के विरुद्ध वादी की यह द्वितीय अपील है।

अपील में वादी—अपीलकर्त्ता का कहना है कि :—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने गलती से प्रतिवादीगण को श्रीमती रामप्यारी का सहकृषक (कोटेनेंट) मान लिया था जब कि प्रतिवादीगण का स्वयं कहना था कि हम लोग श्रीमती रामप्यारी के साझेदार थे।

२—१३५६ फ० में प्रवृष्टि केवल साझेदार की है इसलिए साझेदारी की प्रवृष्टि पर प्रतिवादीगण को अधिवासी का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

३—प्रतिवादी बद्री ने यह स्वीकार किया है कि हम श्रीमती रामप्यारी के साझीदार थे। इसलिए प्रतिकूल धारण का अभिकथन मान्य नहीं हो सकता। यदि प्रतिकूल धारण नहीं था तो उ० प्र० भू धारण

अधिनियम की धारा १८० (२) के अंतर्गत उन्हें वंशानुगत कृषक का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

४—बद्री १३५६ में अभिलिखित अध्यासी (आकूपैंट) नहीं था।

५—१३५६ फ० में "बटाई निस्फी" की प्रवृष्टि एस० डी० ओ० ने अनधिकृत ठहराया था और प्रतिवादी के लिये आदेश दिया था कि उसका नाम उपवाक्य २० के स्वत्व के अधिकार के बिना शिकमी में केवल एक वर्ष के धारण में होना लिख लिया जाय।

६—भूखंड सं० ३६२८।२ बाग है और बाग में अधिवासी का अधिकार नहीं पैदा हो सकता। अपील के न्यायालय ने अन्वीक्षा न्यायालय के इस निष्कर्ष को बदले बिना ही कि वह बाग है गलती से आदेश पारित कर दिया है।

प्रतिवादी उत्तरवादी के विद्वान वकील ने अवधि के प्रश्न और सहकृषकत्व के प्रश्नों को छोड़ दिया। उन्होंने मान लिया कि प्रतिवाद में सहकृषकत्व का अभिकथन नहीं उठाया गया था। उनका कहना है कि प्रतिवादी उत्तरवादी गण इसके अधिवासी हो गए हैं कारण कि १३५६ फ० के खसरा और खतौनी में वे अभिलिखित अध्यासी हैं। यदि एस० डी० ओ० का उपर्युक्त आदेश अंतिम हो गया है और उन्होंने प्रतिवादी को उपवाक्य २० के अंतर्गत शिकमी माना है तो कोई कारण नहीं है कि उसे धारा २० के अंतर्गत अधिवासी का अधिकार क्यों नहीं प्राप्त हो सकता। इसके समर्थन में ए० डब्ल्यू० आर० १९५६ (रेवेन्यू) १२३ का प्रमाण दिया गया। इस मुकदमे में निर्णय हुआ था कि १३५६ का शिकमी अभिलिखित अध्यासी माना जायगा और इस प्रकार वह धारा २० के अंतर्गत अधिवासी होगा।

प्रतिकूल धारण के अभिकथन को प्रतिवादी के वकील ने छोड़ दिया है इसलिए यहाँ प्रमुख विचारणीय प्रश्न यही है कि १३५६ फ० की प्रवृष्टि के आधार पर प्रतिवादी अधिवासी हो सकता है कि नहीं। इस संबंध में बद्री ने दो विरोधी बातें कही हैं। एक बार उसने कहा था कि मुझसे और श्रीमती रामप्यारी से कोई साझेदारी नहीं थी और दूसरी बार कहा था कि जब श्रीमती रामप्यारी जीवित थीं तो मैं उनका साझीदार था। एस० डी० ओ० ने भी माना है कि बद्री १३५६ फ० में श्रीमती रामप्यारी का साझीदार था। इन सबके प्रमाण अभिलेख पर हैं।

आयुक्त ने अपने निर्णय में सहकृषक और साझीदार में कोई अंतर नहीं माना था और इसी कारण उन्होंने कहा कि बद्री वंशानुगत कृषक हो गया है और उसका अधिनिष्कासन नहीं हो सकता। हमारे विचार से 'साझी' और सहकृषक (कोटेनैंट) में बहुत अंतर है। सहकृषक वह व्यक्ति है जो अपने भू-धारण में सभी अधिकारों का प्रयोग करता है और भू स्वामी को रोकड़ (कैश) में या प्रकार (काइंड) में लगान देता रहता है। 'साझी' वह व्यक्ति है जो कृषि संबंधी अपनी संपूर्ण क्षमता को संगठित करने पर राजी होता है और इस प्रकार संगठित श्रम एवं क्षमता को दूसरे की भूमि और अधिक साधनों में मिला देता है। यह नामकरण गलत है कि 'साझी' आधा देता है, वास्तव में साझी आधा देता नहीं वरन् आधा पाता है। भू-स्वामी ही वह व्यक्ति है जो साझेदार के परिश्रम और योग्यता के बदले उसके लाभार्थ उत्पत्ति का आधा भाग ले लेने की अनुमति देता है।

भू अभिलेख नियमावली उ० प्र० के अनुच्छेद ए० ७२ की व्याख्या का अर्थ यही होता है।

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा २० के अंतर्गत वह व्यक्ति भू स्वामी को हटाकर स्वयं धारण में हो तब उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो सकता है; भू स्वामी के अंतर्गत ही यदि कोई साझी हो तो उसे यह अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इन पक्षों के बीच चले हुए धारा १४५ के एक मुकदमे की भी चर्चा की है जिसमें धारण प्रागदत्त को मिला था। अतः अन्वीक्षा न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि प्रतिवादी विवादग्रस्त भूमि के धारण में १३५६ फ० में नहीं थे।

अतः अपील परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ४५

(राजस्व मंडल)

नवापुरा, शिवपुर, बनारस

बनारस मंडल के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक ३० अगस्त १९५१ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० ६।१९५१–५२)

रोजन हज्जाम — अपीलकर्ता

वि०

बालगोविंद — उत्तरवादी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८, धा० १४४—शिकमी के विरुद्ध प्रत्यास्थापन (रेस्टीट्यूशन) किया जा सकता है कि नहीं—शिकमी का धारण चलते रहना और इस प्रकार उसे कृषक के अधिकार की प्राप्ति हो जाना—प्रमुख कृषक की प्रत्यास्थापना—शिकमी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट नहीं जाता।

न्यायिक सदस्य, ए० एन० सप्रू—

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ५९ के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया गया था उसी के संबंध में प्रतिवादी की यह द्वितीय अपील है। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद को उत्सर्जित कर दिया था और अपील करने पर विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने उस आदेश को निराकृत कर दिया और वादी के वाद में डिग्री दे दी।

वादी ने घोषणा के निमित्त एक वाद निवेशित किया था कि मैं उस भूमि का प्रमुख कृषक हूँ और प्रतिवादी उसका केवल शिकमी है तथा वह अपने स्वतंत्र अधिकार के बल पर उसका प्रमुख कृषक नहीं है।

इसके तथ्य थोड़े में इस प्रकार हैं कि वादी बाल गोविंद के पिता गनेश सिंह एक समय इसके प्रमुख कृषक थे और प्रतिवादी का पिता नेपाल उनका शिकमी था। लगान बाकी पड़ने पर जमींदार ने बालगोविंद के पिता गनेश सिंह का अधिनिष्कासन कर दिया। यह अधिनिष्कासन बकाया लगान की डिग्री के निष्पादन के संबंध में १२ जनवरी १९३३ को हुआ। पुनर्विचार प्रार्थनापत्र निवेशित करने पर यह आदेश ७ अप्रैल १९३८ को निराकृत कर दिया गया। निराकरण के पश्चात् ३१ मई १९४१ को गनेश सिंह मुख्य कृषक के रूप में प्रतिस्थापित हुआ। किंतु कागजों में इसका कोई अमल दरामद नहीं हुआ। वादी प्रमुख कृषक और प्रतिवादी उसके शिकमी चलते आए।

गनेश सिंह के अधिनिष्कासन के बाद और उनकी प्रतिस्थापना के पहले जमींदार ने इस भूमि का बंदोबस्त प्रतिवादी के साथ कर दिया। इस प्रकार प्रतिवादी उसका प्रमुख कृषक हो गया। अतः वादी का कहना है कि जब आरंभिक डिग्री में परिवर्तन हुआ तो प्रतिस्थापना पर सबकी स्थिति पूर्ववत् हो जायगी। इस प्रकार वादी के कथनानुसार प्रतिस्थापना होने पर प्रतिवादी अपने पहले के शिकमी की स्थिति को लौट आएगा और वह उसका प्रमुख कृषक नहीं हो सकता।

प्रतिवादी का कहना है कि जब वादी का अधिनिष्कासन हुआ तब उसके भूस्वामित्व के अधिकार का उपशमन हो गया। जब उपशमन (एक्सटिंक्शन) हो गया तथा शिकमी के अधिकार की समाप्ति के बाद जमींदार ने हमको प्रमुख कृषक बनाया और हम आज तक उसे लगान देते चले आ रहे हैं धारण में हैं। अवधि तक लगातार धारण रहने के कारण हम उसके मुख्य कृषक हो चुके हैं। इस संबंध में जमींदार के एक कारिंदा ने प्रमाणित किया कि प्रतिवादी लगान देता रहा है। प्रतिवादी का कहना है कि जब वादी का धारण प्रतिस्थापित हुआ तो उसे चाहिए था कि हमको अनधि प्रवेशी (ट्रेसपासर) कहकर हमारे अधिनिष्कासन के लिये वाद निवेशित करता और जब उन्होंने ऐसा नहीं किया तो अब उन्हें हमारे विरूद्ध कोई उपाय नहीं रह गई है क्योंकि १९३९ से १९४९ तक जिस वर्ष वाद निवेशित किया गया हमारा लगातार धारण रहा है. अतः हम उसके प्रमुख कृषक हैं न कि शिकमी।

वादी ने जो यह कहा कि हमारी प्रतिस्थापना के पश्चात् प्रतिवादी मुख्य कृषक के अधिकार से शिकमी के

अधिकार पर लौट आए, यह यदि पूर्णतया नहीं तो मुख्यतया धारा १४४ व्य० प्र० सं० पर निर्भर करता है। धारा १४४ में है कि उभयपक्ष अपनी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट आवेंगे जिस स्थिति में वे इस डिग्री के पहले थे। अतः यहाँ वादी और जमींदार अपनी अपनी आरंभिक स्थिति को लौट आए। वादी प्रमुख कृषक हो गया। किंतु इसका प्रभाव प्रतिवादी के प्रमुख कृषकत्व पर नहीं पड़ सकता। प्रतिवादी भी प्रमुख कृषक है। यदि वादी का कहना माना जाय तो इसका परिणाम यह होगा कि जब उसका अधिनिष्कासन हो गया था और जब तक उसकी प्रतिस्थापना नहीं हुई थी तब तक भी उस भूमि पर प्रमुख कृषकत्व का उसका अधिकार यथावत् था। यह बात नहीं मानी जा सकती। जब वादी का अविनिष्कासन हुआ तो भूमि का कोई प्रमुख कृषक नहीं था। ऐसी रिक्तावस्था में प्रतिवादी को जमींदार ने मुख्य कृषक बनाया। वह पक्षों में से नहीं है कि धारा १४४ के आदेश से बाध्य होवें।

प्रतिवादी जमींदार का प्रतिनिधि नहीं है। प्रतिवादी वह व्यक्ति अवश्य है जो जमींदार से अपना स्वत्व पाता है किंतु इसका अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि उसे जमींदार के ही विरुद्ध नहीं वरन् प्रतिवादी अपीलकर्ता के विरुद्ध भी प्रतिस्थापना की अध्यर्थना करनी चाहिए थी। किंतु इसके और आगे जाकर हम यह निर्णय नहीं दे सकते कि जब प्रतिवादी ने प्रतिकूल धारण से अधिकार परिपक्व कर लिया तब भी प्रतिस्थापना होने पर वह अपनी आरंभिक शिकमी के अधिकार को लौट जायगा। इसके समर्थन में १६४२ आर० डी० ३०६ और १६४२ आर० डी० ३३७ हैं।

अपील परिव्यय के साथ स्वीकार की जाती है।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ४६
(राजस्व मंडल)

घमहापुर, कसवार राजा, बनारस

उ० प्र० भूधारण अधिनियम धारा ४६ के अंतर्गत वाद में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की अनुमति के लिये एस० सी० प्रार्थनापत्र सं० २५।१६५१-५२

ब्रह्मदेव सिंह — प्रार्थी

वि०

बेचू सिंह इत्यादि — विपक्षी

भारतीय संविधान, अनुच्छेद १३५—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८), धारा १०९ और ११०—अपील का अधिकार—अनुच्छेद १३५ की प्रयोज्यता—

व्य० प्र० सं० धारा ११० में 'वाद विषय' (सब्जेक्ट मैटर आफ द सूट) का अर्थ—१६४५ में वाद निवेशित हुआ और १६५१ में निर्णय हुआ—यदि वाद विषय का मूल्य २०,००० रु० से कम है तो बोर्ड सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति नहीं दे सकता—

न्यायिक सदस्य, ए० एन० सप्रू—

उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ४६ के अंतर्गत एक वाद निवेशित हुआ था उसके उत्तरवादी द्वारा यह प्रार्थनापत्र दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति प्रदान की जाय। उस वाद में राजस्व मंडल अपील का अंतिम प्राधिकरण है और इसी के एक आदेश के विरुद्ध अपील करने की अनुमति मांगी जा रही है। इस आदेश पर पुनर्विचार करने के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया गया था जिसे राजस्व मंडल ने अस्वीकार कर दिया है। यहाँ से अन्वीक्षा न्यायालय में एक आदेश संपति का मूल्यांकन करने के लिये गया था। मूल्यांकन ३४३३० रु० १२ आ० ८ पा० पर हुआ था। वादी ने इस संपत्ति के आधे भाग के बँटवारे के लिये वह वाद निवेशित किया है।

पहले अपील संधानीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) में होती थी। जब वर्तमान भारतीय संविधान लागू हुआ तो संधानीय न्यायालय समाप्त हो गया और उसके स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई। संधानीय न्यायालय में वादग्रस्त संपत्ति का मूल्य कम से कम दस हजार होना चाहिए था। सर्वोच्च न्यायालय में कम से कम मूल्य २०००० रु० है। यह वाद १६४५ में निवेशित

हुआ था जब कि इस प्रकार की अपील संघानीय न्यायालय में हो सकती थी, इस वाद की अंतिम डिग्री १९५१ में पारित हुई थी जब कि संघानीय न्यायालय समाप्त हो चुका था और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हो चुकी थी।

अतः यहाँ प्रार्थी का कहना है मैं व्य० प्र० सं० की धारा १०६ और ११० के अंतर्गत अपील करने की अनुमति पा सकता हूँ। विपक्षी का कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित नहीं हो सकती कारण कि संविधान के अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत संघानीय न्यायालय ऐसी अपील नहीं सुन सकता था।

राजस्व मंडल अपील करने की अनुमति संविधान के अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत ही दे सकता है। अनुच्छेद १३५ के अंतर्गत प्रार्थी को दिखलाना चाहिए कि संविधान के लागू होने के ठीक पहले ऐसे मामलों में संघानीय न्यायालय का अधिक्षेत्र एवं अधिकार प्रयुक्त हो सकता था। इस शर्त के पालन करने पर ही सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति दी जा सकती है।

प्रार्थी का कहना है कि अपील का अधिकार निहित अधिकार (वेस्टेड राइट) है और यह अधिकार वाद निवेशित करने की तिथि को ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए यदि इस वाद के निवेशित करने की तिथि को ऐसी अपील सुनने का अधिकार संघानीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) को था तो संविधान के लागू होने पर भी संघानीय न्यायालय में अपील करने का अधिकार है और यदि संघानीय न्यायालय अपने अधिकार और अधिक्षेत्र का प्रयोग कर सकती थी तो इसमें अनुमति दी जानी चाहिए।

इसके उत्तर में विपक्षी ने ए० आई० आर० १९५६ इलाहाबाद ३२१ का अभिदेश किया। इसमें भी ऐसी ही परिस्थिति थी। एक मुकदमा संविधान लागू होने के पहले ही निवेशित किया गया था किंतु उसमें अंतिम डिग्री संविधान के लागू होने के बाद पारित हुई अतः अनुच्छेद १३५ के आधार पर उसमें निर्णय हुआ कि यह संघानीय न्यायालय का अधिकार और अधिक्षेत्र प्रयोग करने योग्य नहीं है। अनुच्छेद १३५ के देखने से प्रतीत होता है कि इसका अर्थ यही है कि जब राजस्व मंडल अपील का निर्वर्तन करे उस समय संघानीय न्यायालय का अधिक्षेत्र और अधिकार प्रयोग करने योग्य होना चाहिए। अतः यह कथन माना नहीं जा सकता कि यतः अपील का अधिकार एक निहित अधिकार है इसलिए यह एकमात्र व्य० प्र० सं० की धा० १०६ और ११० से ही शासित होगी और अनुच्छेद १३३ के साथ इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

विपक्षी के विद्वान वकील का कहना है कि धारा ११० में जो 'वाद विषय' शब्द प्रयुक्त हैं उनका अर्थ यह नहीं होता कि संपत्ति का संपूर्ण मूल्य इसमें संमिलित हो। इसका अभिप्राय है केवल वादी के भाग का मूल्य। यहाँ संपूर्ण संपत्ति का मूल्य ३४,३३० रु० से कुछ ऊपर है और प्रार्थी के भाग का मूल्य केवल १७,००० रु० से कुछ ऊपर हुआ। सर्वोच्च न्यायालय में अपील के लिये मूल्य कम से कम २०,००० रु० होना चाहिए। यदि अपील संघानीय न्यायालय में होती तो वहाँ मूल्य १०,००० रु० ही होना चाहिए था।

अपील की अनुमति के संबंध में एक प्रतिबंध और है कि यदि अंतिम न्यायालय का निर्णय नीचे के न्यायालय के निर्णय के स्थिरीकरण (अफर्मेंस) में हो तो अपील विधि के किसी तात्विक प्रश्न पर ही हो सकती है अन्यथा नहीं। यहाँ यह प्रतिबंध लागू नहीं हो सकता, कारण कि राजस्व मंडल ने नीचे के दोनों न्यायालयों के समान निर्णय के विरुद्ध अपना निर्णय दिया है। इसमें इस शर्त के पालन करने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें विधि का तात्विक प्रश्न है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से व्य० प्र० सं० धा० १०६ और ११० तथा भारतीय संविधान अनुच्छेद १३५ के उपबंधों के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ४८
(राजस्व मंडल)

अकराबाद, अलीगढ़

आगरा के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १९ जून १९५६ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र संख्या ३४० । १९५५-५६)

लीलाधर — अपीलकर्ता

विरुद्ध

याकूब अली — उत्तरवादी

अ--उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम धा० २०—यदि डिग्री के आधार पर प्रवृष्टि की गई हो और डिग्री अपील में निराकृत कर दी गई हो तो अधिवासी का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

ब—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १, १९५१ की अनुसूची २—क्रम संख्या १९—ए०—उ० प्र० अधिनियम २०, १९५४—वाद निवेशित करने और अपील करने के अधिकार की प्रकृति—उपर्युक्त अनुसूची का संशोधन अतीत-प्रभावी नहीं हैं—अनुसूची दो के संशोधन के लागू होने के पश्चात् जब अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया तो द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

स—व्य० प्र० सं०, १९०८, धारा १४४—धारा १४४ के अंतर्गत प्रतिस्थापना के लिये प्रार्थनापत्र देने पर यदि द्वितीय पक्ष को अधिवासी के अधिकार पर अन्य उपबंधों के अंतर्गत धारण वापस पाने का अधिकार है और धारा १४४ के प्रार्थनापत्र पर आपत्ति के समय उसने अपने को अधिवासी नहीं कहा तो वह तत्पश्चात् की कार्यवाही में अधिवासी का अभिकथन उठा सकता है और इसके लिये उस पर कोई रोक नहीं है।

द—पुनरीक्षण—अपील का पुनरीक्षण में परिवर्तित किया जाना—पुनरीक्षण में हस्तक्षेप ।

न्यायिक सदस्य भजनलाल चतुर्वेदी—

१९४२ में जमींदार ने विवादग्रस्त भूमि पर से अपीलकर्ताओं को अधिनिष्कासित करने के लिये उ०प्र०

भू धारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया। अन्वीक्षा न्यायालय और अपील करने पर अतिरिक्त आयुक्त दोनों ने वादी के पक्ष में निर्णय दिया और इन निर्णयों के बल पर वादी ने १८ फरवरी १९४४ को धारण प्राप्त कर लिया।

अपीलकर्ताओं ने इसके विरुद्ध राजस्व मंडल में अपील निवेशित किया और राजस्व मंडल ने दोनों न्यायालयों के आदेश के विरुद्ध निर्णय दिया और डिग्री निराकृत कर दी गई।

जब जमींदार ने १९४४ में धारण पाया और जब अपील विचाराधीन थी उसी समय उसने इस भूमि का बंदोबस्त याकूब अली के साथ कर दिया था। अपील का निर्णय होने पर अपीलकर्ताओं ने व्य० प्र० सं० की धारा १४४ के अंतर्गत प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दिया। इस पर अपीलकर्ता को उस भूमि का धारण मिल गया।

इसके बाद याकूब अली ने ज० वि० तथा भूमि सुधार अधिनियम की धा० २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थना पत्र दिया जिसमें उसका कहना था कि हम १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी (रिकार्डेड आकूपैंट) थे और धारण में थे तथा ३० जून १९४८ के पश्चात् हमारा अभिनिष्कासन हुआ है इसलिए अधिवासी के अधिकार के आधार पर हमें धारण वापस मिलना चाहिए।

इस प्रार्थनापत्र पर वर्तमान अपीलकर्ताओं ने आपत्ति की थी कि याकूब अली जमींदार के संबंधी ही हैं, उनके साथ कोई बंदोबस्त नहीं हुआ और न तो वे कभी धारण में आए। सरकारी कागजों में उनके नाम की प्रवृष्टि फर्जी है और ऐसी प्रवृष्टि पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि याकूब अली ने सिंचाई इत्यादि की कोई रसीद नहीं दी, न तो लगान की ही रसीद अभिलेख पर है और पूछने पर याकूब अली ने बतलाया कि वे सब रसीदें खो गईं। अन्वीक्षा न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ताओं का अभिकथन माना और याकूब अली का प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

Ferry	नौघाट, नाव
Ferry boat	तरणी
Ferryman	तरणी नाविक
Ferry money	नौतरण शुल्क
Fertile	उर्वर, उपजाऊ
Fetch	ले आना, उठा ले आना; से प्राप्त होना
Fete	पर्व, संभोज
Fetish	जड़पूजा, अंधभक्ति
Feud	कुलवैर
Fiction	परिकल्पना
Fiction of law	विधि परिकल्पना
Fictitious	अवास्तविक, काल्पनिक, कृत्रिम, झूठा
Fictitious account	अवास्तविक लेखा
Fictitious action	अवास्तविक वाद
Fictitious assets	अवास्तविक परिसंपत्
Fictitious bill	अवास्तविक विपत्र
Fictitious stamp	कूट मुद्रांक
Fidelity	विश्वस्तता, भक्ति, स्वामिभक्ति, पातिव्रत्य
Fiduciary	विश्वासाश्रित
Fiduciary contract	विश्वासाश्रित संविदा
Fiduciary paper money	विश्वासाश्रित पत्रमुद्रा
Fiduciary reserve	विश्वासाश्रित संचिति
Field	खेत, क्षेत्र
Figure	अंक, चित्र, आकृति
File	नस्ती, नत्थी, (क्रि०) निवेशित करना
File a doccument	लेख्य निवेशित करना
File band	नस्तिपट्टी
File board	नस्ति फलक
File number	नस्ति संख्या
File order	नस्तिक्रम
File register	नस्तिपंजी
File tags	नस्ति नस्या
Filial	पुत्रीय, अपत्य, संतति
Filial duty	पुत्रधर्म
Filiality	पितृभक्ति
Filial piety	पितृ भक्ति

Filiation	पुत्रत्व, पुत्रीकरण
Filibuster	विलंबकर्ता
Filing	नस्तीयन, नस्ती बंधन, नस्तीकरण, नत्थी करना
Fill	पूरण, पूर्ति करना
Fill in form	प्रपत्र भरना
Fill up	भरना, पूरा करना
Final	अंतिम
Final and binding	अंतिम और बंधनकारी
Final award	अंतिम परिनिर्णय
Final balance	अंतिम शेष
Final bid	अंतिम बोली
Final bill	अंतिम देयक
Final call	अंतिम याचना
Final call account	अंतिम-याचना-लेखा
Final call money	अंतिम-याचना-राशि
Final call register	अंतिम-याचना-पंजी
Final decision	अंतिम विनिश्चय
Final degree	अंतिम डिग्री, अंतिम आज्ञप्ति
Final disposal	अंतिम निर्वर्तन, अंतिम निबटारा
Final dividend	अंतित लाभांश
Final estimate	अंतिम प्राक्कलन
Finalise	अंतिम रूप देना, निश्चय करना
Finality of orders	आदेशों की अंतिमता
Final judge	अंतिम निर्णायक
Final judgment	अंतिम निर्णय
Finally decided	अंतिम रूप से विनिश्चित
Finally disposing of the matter	विषय का अंतिम निबटारा
Final notice	अंतिम सूचना
Final order	अंतिम आदेश
Final order passed on appeal	अपील पर पारित अंतिम आदेश
Final payment	अंतिम शोधन
Final process	अंतिम आदेशिका
Final receipt	अंतिम प्राप्ति
Final recommendation	अंतिम अभिस्ताव
Final release	अंतिम मोचन
Final report	अंतिम प्रतिवेदन

Final result	अंतिम परिणाम
Final rules	अंतिम नियम
Final settlement	अंतिम परिशोधन
Final surrender	अंतिम अध्यर्पण
Finance	वित्त, वित्त व्यवस्था, व्यय करना
Finance Act	वित्त अधिनियम
Finance bill	वित्त-प्रपत्र, वित्त-विधेयक
Finance Commission	वित्त आयोग (संवि०)
Finance Company	वित्त समवाय
Finance corporation	वित्त निगम
„ department	वित्त विभाग
„ member	वित्त सदस्य
„ Minister	वित्त मंत्री, अर्थ मंत्री
„ Ministry	वित्त मंत्रालय
Finances	वित्त साधन, वित्त संपद्, वित्त व्यवस्था, आर्थिक स्थिति
Finance service	वित्त सेवा
„ value	वित्त अर्हा
Financial	वित्तीय, वैत्तिक
„ Advisor	वित्त मंत्रणाकार
„ „ and chief Accounts officer	वित्त मंत्रणाकार तथा मुख्य लेखाधिकारी
„ „ to Government	शासकीय वित्त मंत्रणाकार
„ affair	वित्तीय कार्य
„ aid	वित्त सहायता
„ agreement	वित्तीय प्रबंध
„ aspect	वित्तीय दृष्टिकोण
„ assistance	वित्त साहाय्य
„ authority	वित्त प्राधिकारी
„ benefits	वित्तीय लाभ
„ bills	वित्त प्रपत्र
„ book	वित्त पुस्त
„ budget	वित्तीय आयव्ययक
„ business	वित्तीय कार्य
„ capacity	वैत्तिक क्षमता
„ commissioner	वित्त आयुक्त
„ Commissioner's Act	वित्तायुक्त अधिनियम

Financial condition	वित्तीय स्थिति
„ control	वैत्तिक नियंत्रण
„ crisis	वित्तीय संकट
„ forecast	वित्तीय पूर्वानुमान
„ gain	वित्त लाभ
„ integration	वैत्तिक एकीकरण
„ journal	वित्त पत्रिका
„ matter	वित्तीय विषय, वित्त विषय (संवि०)
„ obligation	वित्तीय भार (संवि०)
„ problems	वैत्तिक समस्याएँ
„ propriety	वित्तीय औचित्य
„ quarter	वित्तीय त्रिमास
„ records	वित्तीय अभिलेख
„ review	वैत्तिक पुनर्विलोकन
„ rules	वित्त नियम
„ stability	वित्तीय स्थायित्व
„ standing	वित्तीय स्थिति
„ statement	वित्तीय विवरण (संविधान); वित्त विवरण
„ transaction	वित्तीय व्यवहार
„ year	वित्त वर्ष
Financier	वित्त प्रबंधक, वित्तविनियोक्ता
Financing	वित्त प्रबंधन
„ bank	वित्तदायी अधिकोश
Find	प्राप्त करना, उपपादित करना
Fine	अर्थदंड, सूक्ष्म, सुंदर
„ adjustment	सूक्ष्म व्यवस्थापन
„ art	ललित कला
„ statement	अर्थदंड विवरण
Finishing charge	परूपेण प्रभार
F. I. R. (First information report)	प्र० सू० प्र० (प्रथम-सूचना-प्रतिवेदन)
Fire	गोली चलाना
Firearm	अग्न्यस्त्र
Fire inspector	अग्निनिरीक्षक
„ insurance	अग्नि आगोप
„ raising	आग लगाना, अग्निदहन
Firm market	दृढ़ विपणि, स्थिर विपणि

Firm name	सार्थ नाम
„ representative	सार्थ प्रतिनिधि
Firms deposits	सार्थ निक्षेप
„ in impersonal name	अवैयक्तिक नाम पर सार्थ
First Class Magistrate	प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट
„ entry	प्रथम प्रवृष्टि
„ generation	प्रथम संतति
„ grade	प्रथम प्रक्रम
„ hand	प्रत्यक्ष; मूल स्रोत प्राप्त, स्वयंदृष्ट
„ hearing	पहली सुनवाई
„ informant	प्रथम ज्ञापक
„ instance	प्रथमतः
Firstly	प्रथमतः, पहले
First of exchange	विपत्र प्रथमक
„ opinion	प्रथम अभिमत
„ priority	प्रथम पूर्वता
„ quality	प्रथम श्रेणी
„ rate	प्रथम श्रेणी का, वरेण्य
„ reading	प्रथम पठन (संवि०)
First step	पहला पग
Fisc	राजकोष
Fiscal	राजकोषीय
„ commission	उद्योगरक्षा आयोग
„ policy	उद्योग रक्षा नीति, राजकोषीयनीति
„ year	राजकोषीय वर्ष
Fisheries	मत्स्यग्रहण, मत्स्य पालन
„ Development Officer	मत्स्यपालन-विकास-अधिकारी
Fishery	मीन क्षेत्र (संवि०), मत्स्याधिकार
„ Inspector	मीनक्षेत्र निरीक्षक
„ officer	मत्स्याधिकारी
Fish processing	मत्स्य विधायन
Fit	समुपयुक्त, योग्य, उचित
„ certificate	स्वस्थता प्रमाणपत्र
„ for trial	अन्वीक्षा के योग्य
Fitness for trial	अन्वीक्षा के लिये समुपयुक्तता
„ to pass an efficiency bar	दक्षतावरोध पार करने की समुपयुक्तता

Five-year plan	पंचवर्षीय योजना
Fix	स्थिरीकरण, निश्चय करना, नियत करना
Fixation of compensation	प्रतिकर निश्चयन
„ „ pay	वेतन निश्चयन
„ „ price	मूल्य निर्धारण
Fixed assets	स्थिर परिसंपत्
„ capital	स्थिर पूँजी
„ charges	निश्चित प्रभार
„ contingencies	नियत संभाव्यताएँ
„ debt	निधिबद्ध ऋण, अनिश्चित काल-ऋण
„ demand	स्थिर अभियाचन
„ deposit	सावधि निक्षेप
„ „ account	सावधि-निक्षेप-लेखा
„ „ receipt	सावधि-निक्षेप-प्राप्ति
„ emoluments	नियत उपलब्धियाँ
„ establishment	स्थिर कर्मचारी
„ exchange rate	स्थिर विनिमय-अर्घ
„ fiduciary issue	नियत विश्वासाश्रित निर्गम
„ „ reserve	स्थिर विश्वासाश्रित संचिति
„ instalment	नियत प्रभाग
„ land revenue	नियत राजस्व
„ loan	सावधि उधार
„ preference shares	नियत पूर्वाधिकार अंश
„ price	निश्चित मूल्य
„ rate	नियत अर्घ
„ „ tenant	नियत अर्घ भाटकी
„ travelling allowance	निश्चित यात्रा-धिदेय
„ trust	नियत न्यास
Flagrant	अतिघोर
Flat	चपटा, वासकक्ष
Flaw	त्रुटि, दोष, छिद्र
Flexible	लचीला, आनम्य
„ constitution	आनम्य संविधान
Float	तैरना, प्रारंभण, नया निकालना
Floatation of company	समवाय प्रारंभण
„ „ bonds	बंध प्रारंभण

Floatation of loans	उधार प्रारंभण
Floating	अस्थायी, चल
" account	अस्थायी लेखा, चल लेखा
" capital	अस्थायी पूँजी, चल पूँजी
" debt	अल्पकाल ऋण
" indebtedness	अल्पकाल ऋणता
" list	चल सूची
" mortgage	चल बंधक
" population	अस्थायी जनसंख्या
" security	चल प्रतिभूति
Flock	झुंड
Flood	बाढ़
Floor	भूमितल
Fluctuate	उतार चढ़ाव होना
Fluctuating land revenul	परिवर्ती भूराजस्व
Foil	विफलता
Fold	मोड़ना
Follow	अनुसरण करना, पीछे चलना
Follower	अनुयायी
Following day	आगामी दिन, अगला दिन
" procedure should be Followed	निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए
Following sub-clause	निम्नलिखित उपखंड
Follow the same sequence	उसी क्रम में होना
" up cultivation	अनुवर्ती कृषि
Fondness	आसक्ति, अनुराग
Food	अन्न
" Accountant	अन्न लेखापाल
" Adulteration Act	अन्न अपमिश्रण अधिनियम
" advisory committee	अन्न-मंत्रणा-समिति
" and Agriculture Organisation F. A. O.	अन्न-कृषि-संस्था (अ० कृ० सं०)
" and Civil Supplies Inspector	अन्न तथा जानपद प्रदाय निरीक्षक
" crisis	अन्न संकट
" crop	अन्न सस्य
" department	अन्न विभाग
" executive officer	निष्पादक अन्नाधिकारी

Foodgrains — अनाज, अन्नधान्य
,, Clearance Inspector — अन्य धान्य निष्कासन निरीक्षक
,, Control Order — अन्य धान्य-नियंत्रण-आदेश
,, Export Restrictions Order — अन्नधान्य-निर्यात-निर्बंध-आदेश
,, license — अन्नधान्य अनुज्ञप्ति
Food industry — अन्न उद्योग
,, laboratory — अन्न प्रयोगशाला
,, Manual — अन्न नियमावलि
,, Material — खाद्य पदार्थ
,, Ministry — अन्न मंत्रालय
,, Operating Committee — अन्न परण-समिति
,, policy — अन्न नीति
,, position — अन्न की स्थिति
,, Processing Committee — अन्न-विधायन-समिति
,, procurement and rationing — अन्न प्राप्ति और समभाजन
,, special — अन्न विशेषयान
,, Standard Committee — अन्न प्रमापसमिति
Foodstuffs Coordination Committee — खाद्यपदार्थ समन्वय समिति
Food subsidy — अन्न के लिये राजसाहाय्य
,, supply — अन्न प्रदाय
,, surplus — अन्नाधिक्य, अन्नातिरेक
,, technology — अन्न प्रौद्योगिकी
,, value — अन्न-अर्हा
Fool — मूर्ख
Footing — स्थायित्व
Foot mark — पदचिह्न
,, note — पद-टिप्पण, टिप्पण
For account of — तत्कृते, तदर्थ, के लिये
,, administrative purposes — प्रशासनार्थ
,, approval — अनुमोदनार्थ
,, a term — अवधि के लिये
Forbear — विरत रहना
Forbearance — विरति
Forbid — निषेध करना (संवि०)
Forbiddance — निषेध
Forbidden — निषिद्ध (संवि०)

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] श्रावण (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : जुलाई-अगस्त १९५८ [अंक ९

संपादकीय

भारत की न्याय पद्धति पर विचार करते हुए हमें भारतीय वातावरण, यहाँ की परंपरा विचार पद्धति, भारतीय मनोविज्ञान तथा आध्यात्मिक विचार की आधार शिला पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। इंगलैंड या दूसरे देशों में न्याय पद्धति में जो परिवर्तन हुए हैं उनसे मुख मोड़ने की आवश्यकता जहाँ हमें संकीर्ण बनावेगी वहीं दूसरी ओर यहाँ की अर्वाचीन तथा प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की पृष्ठभूमि को त्याग करके किसी विदेशी न्यायपद्धति का अंधाधुंध अनुकरण भी हमारी सफलता में बाधक हुए बिना नहीं रहेगा। हमारे दृष्टिकोण में विस्तार होना चाहिए पर वह दृष्टिकोण ऐसा न हो जो यहाँ के आधार भूत सिद्धांतों और मूल प्रवृत्तियों के अध्ययन से शून्य हो।

जिस संस्कार में आज तक मानवता का पालन हुआ है उसकी भावनाओं से कानून में यदि मुठभेड़ हुई तो कानून चकनाचूर होकर रहेगा और उसके प्रति कभी आदर नहीं होगा। कानून की मर्यादा का पालन हो या कानून का अतिक्रमण करके भी न्याय के वास्तविक स्वरूप की रक्षा की जाय सिद्धांततः इनमें से एक को ग्रहण करना होगा।

साधारण सी बात है। राम ने रजक की बातों पर सीता का परित्याग किया। कानून की आँखों में यह राम का दोष था। बिना साक्षी लिए रजक की बातों की पुष्टि न होने पर भी राम को ऐसा नहीं करना चाहिए था। राम भी यह अनुभव करते थे कि रजक की बातों का कोई आधार नहीं है पर कानून एक ओर था, न्याय दूसरी ओर। उन्हें समस्त नर नारी के दिलों को जीतना था जो कानून के तर्क के अनुसार हो नहीं सकता था। राजा का कर्तव्य था न्याय की मर्यादा स्थापित करना। उस मर्यादा पालन में पीड़ा थी पर समाज में लोक कल्याण की भावना को जाग्रत करने तथा न्याय में आस्था उत्पन्न करने की एक प्रबल आकांक्षा थी; उसमें सीता झुलस उठीं, राम कराह उठे पर वह न्याय आज भी अपने एक ठोस रूप में वर्तमान है और आज भी वह न्याय हमें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने के लिये एक सजीव कहानी है। उसी प्रकार भीष्म पितामह की कहानी है। पिता के लिये उन्होंने अपने आप की आहुति दे दी। राज्य का मोह छोड़ दिया। जीवन भर ब्रह्मचारी रहे। कानून से उनके अधिकारों की रक्षा हो सकती थी किंतु उस स्थिति में पितृ भक्ति के बीच संघर्ष

हो जाता। रणक्षेत्र में उन्होंने अपनी मृत्यु का मार्ग स्वयं बतला कर न्याय पक्ष का समर्थन किया। विधान बनाने के पीछे एक उद्देश्य होता है कि समाज की मर्यादा की रक्षा हो, उसमें शांति बनी रहे, संघर्ष कम हो और एक दूसरे के स्वाभिमान की रक्षा करें।

कानून से भी बड़ी वस्तु वह है जिसके लिये कानून बनाया गया। इसलिए धर्म का स्वरूप कानून से बड़ा था। चाल क्या हो, कौन पथ श्रेयस्कर है और कौन भयावह यह सब धर्म के अंतर्गत था। यह चाल किसी काल विशेष से सीमित नहीं थी इसका अर्थ व्यापक था। युगों की अनुभूति से जो भी श्रेयस्कर प्रतीत हुआ उसे ग्रहण करके सत्पथ का उपदेश दिया गया, उसी पर आचरण करने की प्रेरणा हुई। कार्य करने का एक अभ्यास बन गया, उससे एक संस्कार का जन्म हुआ। यह एक व्यक्ति का संस्कार नहीं संपूर्ण समाज का संस्कार बन गया। सोचने की, कार्य करने की एक पद्धति बन गई। कानून बनाकर उससे कोई विरत करना चाहे तो मानस में उथल पुथल मच जायगी और हमारे आदर्शों से मुठभेड़ होगा। जब हृदय में एक बार पाप के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई तो मनुष्य पाप से बच सकता है। राम राज्य नियम या देश परंपरा दृष्टि में राज्य पाने के अधिकारी थे। उसी प्रकार संविदा के आधार पर भरत को अधिकार होता, कैकेयी के वरदान को आज की संविदा की संज्ञा दी जा सकती है। कैकेयी और राजा दशरथ में यह संविदा हुई थी। कानून के आधार पर दोनों व्यक्ति अपने अपने अधिकारों के लिये लड़ सकते थे। राज्य की परंपरा राम के पक्ष में थी और संविदा कैकेयी के पक्ष में थी पर यहाँ कानून नहीं देखा गया। अपनी संस्कृति और सभ्यता पर दृष्टिपात किया गया। कानून के विपरीत भी जाकर उन्होंने मर्यादा के सेतु का निर्माण किया। कानून अधिकारों की रक्षा के लिये साधन प्रस्तुत करता है पर उन अधिकारों का परित्याग करना कानून से भी बड़ा है। आज कानून ने यहाँ की परंपरा में एक मोड़ उत्पन्न कर दिया है। राजा के हाथों में शक्ति थी, शासन था, सेना थी पर उस राजा से बड़ा वह था जो जंगल में रहकर राज्य नियमों का उपदेश करता था। चाणक्य की कुटिया में जो नियम बनता था उससे सम्राट शासित होता था। उस समय न्याय और धर्म ही प्रमुख था कानून गौड़।

—सिद्धनाथ सिंह

———

(पूर्वानुबद्ध)

४—शुद्ध संपत्ति में कुछ परिसंपत् भी संमिलित हैं—

(१) किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय उसमें उसकी,—

(अ) परिसंपत् का मूल्य जो मूल्यांकन की तिथि को—

(१) उसकी स्त्री का है और जिसे उस व्यक्ति ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हस्तांतरित कर दिया है किंतु इसके लिये वह परिसंपत छोड़ दी जायगी जो पर्याप्त प्रतिफल के बदले में हस्तांतरित कर दी गई हो या अलग रहने के संविद् के संबंध में दे दी गई हो, अथवा

(२) अवयस्क बच्चे का है और जो विवाहित पुत्री न हो तथा जिस परिसंपत् को उस व्यक्ति ने पर्याप्त प्रतिफल के बदले में न देकर किसी अन्य प्रकार दे दिया हो, अथवा

(३) किसी व्यक्ति या व्यक्ति के उस समुदाय का हो और जिसे उस व्यक्ति ने उस व्यक्ति के लाभ या उसकी पत्नी या अवयस्क पुत्र के लाभ के लिये बिना पर्याप्त प्रतिफल के किसी अन्य प्रकार से हस्तांतरित कर दिया हो, अथवा

(४) (अ) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति के समुदाय का हो जिसे उस व्यक्ति ने उसके लिये हस्तांतरित कर दिया हो और हस्तांतरण अप्रतिसंहार्य (इरेवोकेबुल) न हो — चाहे उपर्युक्त वाक्यांशों में से किसी में अभिदिष्ट परिसंपत् जिस रूप में हस्तांतरण की गई हो उसी रूप में हो या अन्य प्रकार से हो

(ब) फर्म की संपत्ति या समुदाय की संपत्ति का मूल्य होगा जब कि करदाता उस फर्म में भागीदार हो या व्यक्तियों के उस समुदाय का सदस्य हो और यह मूल्य निर्धारित प्रकार से निश्चित होगा।

(२) उपधारा (१) वाक्य खंड (बी०) में अभिदिष्ट संपत्ति के मूल्यांकन के संबंध में कोई नियम बनाते समय बोर्ड तत्कालीन उस प्रवर्ती विधि का ध्यान रखेगा जो फर्म के या व्यक्तियों के समुदाय के विघटन के समय जैसी अवस्था हो उसके भागीदारों के बीच हिसाब किताब ठीक करने के ढंग से संबंध रखता हो।

(३) उपधारा के वाक्य खंड (ए०) के अनुसार जहाँ किसी परिसंपत् का मूल्य करदाता की शुद्धि संपत्ति में संमिलित किया जानेवाला हो वहाँ जहाँ तक ऐसा ऋण परिसंपत् से संबंधित करने योग्य हो हस्तांतरिती का वह ऋण जो मूल्यांकन की तिथि को था ऐसे मूल्य में से घटा दिया जायगा।

(४) उपधारा (१) के वाक्य खंड (ए०) में दी गई कोई बात ऐसे हस्तांतरण में लागू नहीं होगी जिसको कि उस व्यक्ति ने पहली अप्रैल १६५६ के पहले किया है और इस प्रकार हस्तांतरण किए हुए परिसंपत् का मूल्य उसकी शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय संमिलित नहीं किया जायगा।

५—वह परिसंपत् जो अप्रतिसंहार्य हस्तांतरण के अंतर्गत् हस्तांतरित कर दिया गया है उसका मूल्य जब उसके प्रतिकार का अधिकार प्राप्त होता है हस्तांतरकर्ता की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय उसमें संमिलित करने योग्य होगा।

व्याख्या—इस धारा के प्रयोजन के लिये अभिव्यक्ति "हस्तांतरण" में कोई निवर्तन, न्यास, संविदा, संविद् या व्यवस्था संमिलित है और किसी "अप्रतिसंहार्य हस्तांतरण" में उस परिसंपत का हस्तांतरण संमिलित है जो इसके विलेख के अनुबंधों द्वारा यह निश्चित करता है कि ६ वर्ष से अधिक तक के समय के लिये यह अभिखंडित नहीं किया जा सकता अथवा हस्तांतरिती के जीवन काल तक यह अभिखंडित नहीं किया जा सकता।

५—कुछ परिसंपत् के विषय में छूट—

किसी करदाता द्वारा निम्नलिखित परिसंपत् के विषय में संपत्ति कर देय नहीं होगा और इस प्रकार के परिसंपत् करदाता की शुद्ध संपत्ति में संमिलित नहीं किए जायँगे—

(१) उसकी कोई संपत्ति जो वह न्यास या अन्य किसी विधिक बंधनों के अंतर्गत किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये जो भारत में दातव्य या धर्मार्थ प्रकृति का समझा जाता हो धारण करता है;

(२) करदाता की वह संपत्ति जो हिंदू अविभाजित परिवार में हो और जिसका कि करदाता एक सदस्य है;

(३) कोई एक भवन जो कि केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य विलयन (कराधन छूट) आदेश १९४९ के अनुच्छेद १३ अथवा भाग बी० राज्य (कराधन छूट) आदेश १९५० के अनुच्छेद १५ के अंतर्गत किसी शासक का सरकारी निवासस्थान घोषित हो चुका है और जो भवन ऐसे शासक के धारण में है।

(४) भवन जो केवल करदाता का हो और वही इसका प्रयोग अपने निवास स्थान के लिये करता हो और वह ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ की जनसंख्या दस हजार से अधिक न हो और जो उस क्षेत्र से पाँच मील से अधिक दूरी पर हो जहाँ के लिये कि कोई नगर-पालिका हो और उस क्षेत्र की जनसंख्या दस हजार से अधिक हो।

(५) कोई एकस्व या प्रतिलिप्याधिकार (पेटेंट ऐंड कापीराइट) जो करदाता का हो।

किंतु प्रतिबंध यह है कि वे सब उसके व्यापार और व्यवसाय के परिसंपत् न हों और उनसे कोई आय या किसी प्रकार का लाभ नहीं होता।

(६) करदाता का किसी आगोप-लेख (इंश्योरेंस पालिसी) की वह संपत्ति जो उस रुपए के संबंध में जो मिलनेवाला और करदाता को देय होता है उसके पहले की अवस्था में;

(७) करदाता को अपने स्वामी से पहले की की हुई सेवाओं के बदले में मिलनेवाली पेंसन या अन्य जीवन वार्षिकी को प्राप्त करने का अधिकार;

(८) करदाता के कमरे के सामान, घरेलू सामान, पहनने के वस्त्र भोजन के तथा अन्य सामान जो उसके घरेलू तथा व्यक्तिगत प्रयोग के लिये रखा गया हो;

(९) करदाता का खेती करनेवाला औजार;

व्याख्या—इस उपवाक्य के प्रयोजनों के लिये औजार में चाय या अन्य रोपण में काम में लाई जाने-वाली मशीनें या प्लांट संमिलित नहीं हैं जो खेती के उत्पत्ति के कामों में आती हैं या खेती से उत्पन्न हुए पदार्थों से कोई सामान बनाने के काम में लाई जाती हैं।

(१०) औजार या अन्य कल पुर्जे जो करदाता के व्यवसाय के लिये आवश्यक हैं किंतु यह अधिक से अधिक बीस हजार रुपए तक के मूल्य के अधीन होगा;

(११) कल पुर्जे या अन्य सामान जो करदाता द्वारा वैज्ञानिक आविष्कार के लिये प्रयोग किए जाते हैं;

(१२) कला, पुरातत्व, वैज्ञानिक, कला-संग्रह, हस्तलेख या पुस्तकों संबंधी कोई काम जो करदाता का है और उसका अभिप्राय उसे वेचने का नहीं है;

(१३) कोई ड्राइंग, चित्रकारी, फोटोग्राफ मुद्रण और अन्य कोई दायस्व जो उपवाक्य (१२) में नहीं आता और जिसे वेचने का अभिप्राय नहीं है किंतु उसमें रत्नाभूषण संमिलित नहीं है;

१४—किसी शासक के धारण में वह रत्नाभूषण जो उसकी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है और जो इस अधिनियम के प्रारंभण के पहले केंद्रीय सरकार द्वारा उसका दायस्व मान्य हो चुका है अथवा जहाँ इस प्रकार की कोई मान्यता नहीं है और जिसे बोर्ड केंद्रीय सरकार द्वारा इस संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन इस अधिनियम के अंतर्गत पहली बार संपत्ति कर के कर निर्धारण के समय उसका दायस्व (एयरलूम) मान्य कर ले;

१५—करदाता के रत्नाभूषण जो अधिक से अधिक २५ हजार के मूल्य के अधीन होंगे;

१६—दस वर्ष कोष बचत में जमा किया हुआ प्रमाण पत्र, १५ वर्ष की वार्षिकी प्रमाण पत्र, पोस्ट आफिस सेविंङ्स बैंक में जमा की हुई धन राशि, पोस्ट आफिस कैश प्रमाण पत्र और पोस्ट आफिस नेशनल सेविंङ्स प्रमाणपत्र जो करदाता का हो;

१७—यदि करदाता वेतन पाता है तो उसके स्वामी द्वारा रखा हुआ उसका प्राविडेंट फंड जो प्राविडेंट फंड अधिनियम १९२५ के अंतर्गत है या आयकर अधिनियम के अध्याय ९-ए० के अंतर्गत प्राविडेंट फंड मान्य है;

१८—वह संपत्ति जिसे करदाता सरकार से वीरता या योग्यता के बदले पावे और जो केंद्रीय सरकार द्वारा प्रतिस्थापित हो या अनुमोदित हो;

१६—किसी भी अवस्था में जिसमें कि करदाता एक कंपनी हो करदाता द्वारा किसी अन्य कंपनी में उसके भाग का मूल्य;

२०—करदाता का किसी कंपनी में उसके भाग का मूल्य जो धारा ४५ के उपवाक्य डी० में अभिदिष्ट है, यदि संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को इस अधिनियम के उपबंध उक्त धारा के उपबंधों के कारण उस कंपनी में लागू न हों;

(२१) किसी कंपनी की शुद्ध संपत्ति का वह भाग जो कंपनी कि धारा ४५ के उपवाक्य डी० की व्याख्या के अभिप्राय के अंतर्गत प्रयोजनों के लिये भारतवर्ष में औद्योगिक कार्य के लिये स्थापित की गई है और जो कि इसके औद्योगिक कार्य के सारभूत विस्तार द्वारा इस अधिनियम के प्रारंभण के पश्चात् स्थापित एक अलग एवं नवीन इकाई में है;

किंतु प्रतिबंध यह है कि:—

(१) (अ) ऐसी इकाई के लिये अलग लेखा रखा जाता हो; और

(ब) धारा ४५ के उपवाक्य (डी०) में उल्लिखित शर्तों का ऐसी इकाई के संस्थापन के संबंध में पालन किया गया हो

किंतु आगे प्रतिबंध यह है कि ऐसी कंपनी को यह छूट केवल पाँच लगातार कर निर्धारण के वर्षों तक के लिये होगी और इस अवधि का प्रारंभण जिस दिन कि वह कंपनी ऐसी इकाई के संस्थापन का कार्य आरंभ करती है उस तिथि से आगे दूसरे कर निर्धारण वर्ष से होगा।

(२) किसी करदाता द्वारा संपत्तिकर उसके द्वारा सरकार के पास जमा की हुई धनराशि में या सरकारी प्रतिभूति में या उस स्थानीय प्राधिकरण में जमा की हुई धनराशि में स्थानीय प्राधिकरण का उल्लेख उपधारा (१) के वाक्यखंड (१६) में नहीं है और जिसे केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट की विज्ञप्ति द्वारा संपत्ति कर से मुक्त कर दे, देय नहीं होगा; किंतु जमा की हुई ऐसी धनराशि का मूल्य अथवा छूट दी हुई ऐसी प्रतिभूति का मूल्य करदाता की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय संमिलित किया जायगा।

(३) उपधारा (१) में किसी बात के रहते हुए भी किसी करदाता द्वारा संपत्ति कर उपधारा १ के उपवाक्य (१६), उपवाक्य १६, उपवाक्य २० में अभिदिष्ट परिसंपत् के विषय में किसी कर निर्धारण वर्ष के लिये देय होगा अथवा उपधारा २ में अभिदिष्ट परिसंपत् के विषय में देय होगा जब कि उसकी परिसंपत् निम्नलिखित श्रेणियों में न आती हो—

अ—किसी कंपनी के भागों की दशा में उस दिन से जिस दिन कि कंपनी द्वारा भाग पहले पहल जारी किया गया, अथवा कम से कम ६ महीने की अवधि के लिये जिसकी समाप्ति संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को होती हो—इनमें से जो भी कम हो;

और—

ब—अन्य परिसंपत् की अवस्था में कम से कम ६ महीने की अवधि के लिये जिसकी समाप्ति संबद्ध मूल्यांकन की तिथि को होती हो

६—भारतवर्ष के बाहर के ऋण एवं परिसंपत् (ऐसेट्स) का छोड़ दिया जाना।

किसी व्यक्ति या अविभाजित हिंदू परिवार की शुद्ध संपत्ति की उस वर्ष की गणना करते समय जो मूल्यांकन की तिथि को समाप्त होता हो और जो कि भारतवर्ष में नहीं रहता या यदि निवासी हो तो साधारणतया निवास न करता हो या उस कंपनी की शुद्ध संपत्ति की गणना करते समय जो कि उक्त तिथि को भारत में न हो निम्नलिखित की गणना नहीं की जायगी—

(१) परिसंपत् और ऋण जो कि भारत के बाहर स्थित हों, और—

(२) भारतवर्ष में परिसंपत् का मूल्य जो कि करदाता पर के ऋण से संबद्ध हो और कुछ भी हो जब इस ऋण पर देय कोई हित (इंटरेस्ट) आयकर अधिनियम

की धारा ४ (३) के अंतर्गत करदाता की कुल आय में नहीं जोड़ा जाता।

व्याख्या १—मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष में किसी व्यक्ति या हिंदू अविभाजित परिवार का भारत में निवासी न होना या निवासी होना किंतु भारत में साधारणतया निवासी न होना तब समझा जायगा जब कि वह व्यक्ति या परिवार जैसी अवस्था हो आयकर अधिनियम के अभिप्राय के अंतर्गत निवासी नहीं है या यदि निवासी है तो साधारणतया निवासी नहीं है।

व्याख्या २—मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष में किसी कंपनी का भारत में होना तब समझा जायगा जब कि:—

(अ) वह एक ऐसी कंपनी हो जो कंपनी अधिनियम १९५६ के अंतर्गत बनी हो और पंजयित हो या उक्त अधिनियम के अभिप्राय के अंतर्गत वह कंपनी वर्तमान हो; अथवा

(ब) उस वर्ष में कंपनी का नियंत्रण और कंपनी की व्यवस्था सभी भारत में स्थित हो।

७—परिसंपत् का मूल्य कैसे तय किया जायगा—

(१) किसी परिसंपत् का मूल्य (रोकड़ को छोड़कर) जो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये अनुमानित होगा वह संपत्तिकर अधिकारी के विचार से संपत्ति की वह कीमत होगी जो कि मूल्यांकन तिथि को खुले हाट में यदि बेचा जाय तो आवे।

(२) उपधारा १ में किसी बात के रहते हुए भी,

(अ) यदि करदाता ऐसा व्यापार करता है जिसका लेखा ठीक से रखा जाता है तो संपत्तिकर अधिकारी करदाता के इस व्यापार के अलग अलग परिसंपत् पर विचार न करके सारे व्यापार के परिसंपत् के शुद्ध मूल्य पर विचार करेगा और ऐसा करते समय मूल्यांकन तिथि की स्थिति विवरण (बेलेंश सीट) को ध्यान में रखेगा और परिस्थिति के अनुसार आवश्यक समायोजन (ऐडजस्टमेंट) करेगा।

(ब) जब कि करदाता जो व्यापार करता है वह एक ऐसी कंपनी है जो भारत में निवास नहीं करती और भारत में कारबार के संबंध में कोई अलग स्थिति विवरण न होने से उपवाक्य (अ) के अनुसार गणना नहीं की जा सकती तो संपत्तिकर अधिकारी भारत में उस व्यापार की परिसंपत् का शुद्ध मूल्य चाहे जहाँ व्यापार होता हो उन सबकी शुद्ध संपत्ति का वह अनुपात समझेगा जिसका निश्चय उपर्युक्त प्रकार से उस आय के रूप में किया जाता है जो मूल्यांकन तिथि को समाप्त होनेवाले वर्ष के लिये भारत के किसी व्यापार से होती हो और इसका उपर्युक्त अनुपात उन समस्त आय से हो जो कि उस वर्ष चाहे जहाँ के व्यापार से हुई हो।

अध्याय ३

संपत्तिकर प्राधिकरण

८—संपत्तिकर अधिकारी

प्रत्येक आयकर अधिकारी जिसका अधिक्षेत्र या कार्य करने का अधिकार आयकर अधिनियम के अंतर्गत किसी व्यक्ति हिंदू अविभाजित परिवार या कंपनी के संबंध में होता है वह इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्तिकर अधिकारी का काम ऐसे व्यक्ति, हिंदू अविभाजित परिवार या कंपनी के संबंध में पूरा करेगा।

९—संपत्तिकर के अपील के सहायक आयुक्त

बोर्ड इस अधिनियम के अंतर्गत जितने व्यक्तियों को उचित समझे उतने व्यक्तियों को संपत्तिकर की अपील के सहायक आयुक्त का काम करने के लिये अधिकृत कर सकता है और इस प्रकार अधिकृत होने पर अपील के सहायक आयुक्त ऐसे क्षेत्र या ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के ऐसे वर्ग के संबंध में बोर्ड जैसा निर्देश करे कार्य करेंगे और उस समय जब कि ऐसा निर्देश उसी क्षेत्र में, उन्हीं व्यक्तियों के लिये या उन्हीं व्यक्तियों के वर्ग के लिये कार्य दो या दो से अधिक अपील के आयुक्तों को सौंप दिया जाता है तब वे अपना कार्य बोर्ड के ऐसे आदेश के अनुसार करेंगे जो कि कार्य वितरण या कार्य का अलग अलग व्यक्तियों को रूप से निर्धारित करके दे दिए जाने के संबंध में हो।

१०—संपत्ति कर के आयुक्त

बोर्ड जितने व्यक्तियों को उचित समझे इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर के आयुक्त का कार्य करने के लिये नियुक्त कर सकता है और इस प्रकार अधिकृत होने पर संपत्ति कर के आयुक्त ऐसे क्षेत्र, ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के ऐसे वर्ग के संबंध में अपना काम करेंगे जिसे कि बोर्ड निर्देश करे और जहाँ पर निर्देश द्वारा उसी क्षेत्र उन्हीं व्यक्तियों या उन्हीं व्यक्तियों के वर्गों के संबंध में कार्य दो या दो से अधिक संपत्ति कर के आयुक्तों को सौंप दिया गया है तो उनका अधिक्षेत्र सहवर्ती होगा किंतु यह बोर्ड के उस आदेश के, यदि कोई हो अधीन होगा जिसे कि बोर्ड किए जाने वाले कार्य के वितरण या उसे अलग अलग बाँट दिए जाने के संबंध में पारित करे।

११—संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त

संपत्ति कर के आयुक्त जितने व्यक्तियों को उचित समझें इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त का कार्य करने के लिये अधिकृत कर सकते हैं और इस प्रकार अधिकृत होने पर संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त ऐसे क्षेत्र, ऐसे व्यक्तियों या व्यक्तियों के ऐसे वर्गों के संबंध में अपना कार्य करेंगे जिसे आयुक्त निर्देश करें और जहाँ उसी क्षेत्र में, उन्हीं व्यक्तियों के प्रति या व्यक्तियों के उन्हीं वर्गों के संबंध में कार्य दो या दो से अधिक निरीक्षक सहायक आयुक्तगण को सौंप दिया गया है वे अपना कार्य आयुक्त के उस आदेश के अनुसार करेंगे जो कि कार्य के वितरण या उसके अलग अलग बाँट दिए जाने के संबंध में हो।

१२—संपत्ति कर अधिकारी संपत्ति कर के आयुक्त और संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के अधीन होंगे।

संपत्ति कर अधिकारी जो कि संपत्ति कर के आयुक्त और संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के अधिक्षेत्र के भीतर कार्य करते हों उनके अधीन होंगे।

१३—संपत्ति कर के अधिकारीगण को बोर्ड के आदेश इत्यादि का पालन करना होगा।

इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य संपादन करने के लिये नियुक्त समस्त अधिकारीगण एवं अन्य व्यक्ति बोर्ड के आदेश, अनुदेश और निदेश का पालन करेंगे,

किंतु प्रतिबंध यह है कि बोर्ड द्वारा कोई ऐसा आदेश, अनुदेश या निदेश नहीं दिया जायगा जो कि संपत्ति कर के अपील के सहायक आयुक्त के अपील संबंधी स्वविवेक में हस्तक्षेप करे।

अध्याय ४

कर निर्धारण

१४—संपत्ति विवरण

(१) प्रत्येक व्यक्ति जिसकी शुद्ध संपत्ति मूल्यांकन तिथि को वह धन राशि थी जिस पर कि वह इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर का दायी है तो वह कर निर्धारण तत्संबद्ध वर्ष में ३० जून के पहले संपत्ति कर अधिकारी के यहाँ निर्धारित प्रपत्र पर विवरण भेज देगा और इस विवरण में मूल्यांकन तिथि को उसकी शुद्ध संपत्ति के बारे में तथ्य रहेगा तथा यह विहित ढंग पर सत्यापित रहेगा।

किंतु प्रतिबंध यह है कि कर निर्धारण वर्ष जो पहली अप्रैल १९५७ से आरंभ होता है उसके लिये विवरण ३१ दिसंबर से पहले किसी समय बनाया जायगा।

(२) यदि संपत्ति कर अधिकारी का यह विचार होता है कि किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति एक ऐसी धन राशि है जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर लग सकता है तब उपधारा (१) में किसी बात के रहते हुए भी वह ऐसे व्यक्ति पर एक नोटिस तामिल कर सकता है कि जैसा नोटिस में दिया हुआ हो ऐसी अवधि के भीतर जो ३० दिन से कम न हो निर्धारित प्रपत्र पर विवरण दे और यह विवरण निर्धारित प्रकार से सत्यापित हो तथा जिसकी माँग नोटिस में हो उसके संबंध में अन्य विवरण के साथ नोटिस में दी गई मूल्यांकन तिथि को उसकी शुद्ध संपत्ति के बारे में हो।

(३) संपत्ति कर अधिकारी यदि इस बात से संतुष्ट हो जाय कि ऐसा करना आवश्यक है तो इस अधिनियम

के अंतर्गत विवरण दी जानेवाली तिथि को बढ़ा सकता है।

१५—विवरण निश्चित तिथि के बाद तथा विवरण का संशोधन।

यदि किसी व्यक्ति ने धारा १४ में दिए गए समय के भीतर विवरण नहीं दिया है या उक्त अधिनियम के अंतर्गत विवरण देने पर उसमें कोई गलती पाता है या कोई बात छूट गई रहती है तो जैसी स्थिति हो वह विवरण या संशोधित विवरण कर निर्धारण होने के पहले किसी समय दे सकता है।

१६—कर निर्धारण

(१) यदि संपत्ति कर अधिकारी करदाता की उपस्थिति या उसके साक्ष्य के बिना ही इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि धारा १४ के अंतर्गत दिया हुआ विवरण पूर्ण है तो वह करदाता का शुद्ध संपत्ति को निर्धारित करेगा और उस पर उसके द्वारा देय संपत्ति कर की धन राशि निश्चित कर देगा।

(२) संपत्ति कर अधिकारी यदि इस प्रकार संतुष्ट नहीं होता तो वह करदाता पर एक नोटिस तामील कर देगा कि नोटिस में दी गई तिथि को या तो वह स्वतः उपस्थित होवे या उक्त तिथि को अपने विवरण के समर्थन में कोई साक्ष्य उपस्थित करे।

(३) उस व्यक्ति द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद या किसी विषय पर साक्ष्य उपस्थित किए जाने की माँग पर ऐसे उपस्थित किए गए साक्ष्यों का परीक्षण करने के बाद संपत्ति कर अधिकारी अपने लिखित आदेश द्वारा उसकी शुद्ध संपत्ति का निर्धारण करेगा और वह धन राशि निश्चित कर देगा जो कि उस व्यक्ति द्वारा संपत्ति कर के रूप में देय होगी।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण के लिये संपत्ति कर अधिकारी किसी भी ऐसे व्यक्ति पर जिसने धा० १४ (१) के अंतर्गत विवरण प्रस्तुत किया है या जिस व्यक्ति पर उक्त अधिनियम की उपधारा (२) के अंतर्गत नोटिस तामील हुई है नोटिस इस बात के लिये तामील कर सकता है कि नोटिस में दी गई तिथि को ऐसा लेखा, अभिलेख या अन्य विलेख उपस्थित करे जिसकी आवश्यकता संपत्ति कर अधिकारी को प्रतीत हो।

(५) यदि कोई व्यक्ति धा० १४ की उपधारा (२) के अंतर्गत दी गई नोटिस के उत्तर में विवरण नहीं देता है या उपधारा २ या उपधारा ४ के अंतर्गत जारी की हुई नोटिस के अनुबंधों का पालन नहीं करता है तब संपत्ति कर अधिकारी अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार कर निर्धारण करेगा और ऐसे कर निर्धारण के आधार पर वह धनराशि निश्चित करेगा जो कि ऐसे व्यक्ति द्वारा संपत्तिकर के रूप में देय होगी।

१७—कर निर्धारण से बची हुई संपत्ति —

यदि संपत्ति कर अधिकारी—

(अ) को विश्वास हो जाता है कि धारा १४ के अंतर्गत किसी कर निर्धारण वर्ष के लिये करदाता अपनी शुद्ध संपत्ति का विवरण देने में चूक गया है या इस वर्ष के कर निर्धारण के लिये समस्त आवश्यक तत्वों को पूर्ण रूपेण और ठीक ठीक प्रकट करने में असफल रहा है तथा उस वर्ष में उसकी शुद्ध संपत्ति कर लगने से बच गई है—चाहे यह कम मूल्य पर कर निर्धारण द्वारा या बहुत ही कम दर से कर निर्धारण द्वारा या अन्य प्रकार से हो, अथवा—

(ब) यदि संपत्ति कर अधिकारी को उसके पास आई हुई किसी सूचना द्वारा यह विश्वास हो जाता है कि जैसा उपवाक्य (ए०) में कहा गया है कोई चूक या असफलता नहीं हुई है जिससे कि उसकी शुद्ध संपत्ति उस वर्ष कर लगने से बच गई हो चाहे कम मूल्य पर कर निर्धारण द्वारा या बहुत ही कम दर पर निर्धारण द्वारा या अन्य प्रकार से—तब अन्य किसी बात के रहते हुए भी :— (उत्तरानुबद्ध)

६ दिसंबर १९४२ को उक्त जासू भाई ने अपील कर्ताओं को लिखा कि उक्त संविदा अब प्रभावशून्य हो चुकी है। इसपर १७ दिसंबर १९४२ को अपीलकर्ता ने लिखा कि अपने १५ अगस्त १९४२ के पत्र के आधार पर उत्तरवादीगण पर सामान भेजने का पूरा बंधन है और उक्त संविदा अब तक चालू है और यदि उत्तरवादीगण ने इस पर ध्यान नहीं दिया और सामान नहीं भेजा तो बाध्य होकर अपीलकर्ताओं को कानून की शरण लेनी पड़ेगी। इसके उत्तर में उत्तरवादी ने वही पुरानी बात दोहराई। इसपर अपीलकर्ताओं ने सामानों की माँग औपचारिक ढंग पर की किंतु जब उसका पालन नहीं हुआ तो अपीलकर्ताओं ने १,५२,३३४ रु० ८ आना० ६ पा० तक व्याज एवं परिव्यय के सहित हानिपूर्ति का वाद निवेशित कर दिया।

वादपत्र में कहा गया कि वाद अवधि के भीतर है क्योंकि १५ अगस्त १९४२ के पत्र द्वारा समय बढ़ाया गया है। वादपत्र का विरोध प्रतिवादियों ने दो आधार पर किया कि पक्षों के बीच समय के बढ़ाए जाने के विषय में कोई संविद् नहीं हुई है इसलिए यह वाद काल बाधित है। अन्वीक्षा न्यायालय ने कतिपय वाद पद बनाया जिनमें से दो से हमारा यहाँ संबंध है। पहला संविदा के पालन के विषय में समय के बढ़ाने पर और दूसरा अवधि का अभिकथन।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इन दोनों वादपदों का निर्णय वादी अपीलकर्ता के पक्ष में दिया किंतु अपील करने पर उच्च न्यायालय का निर्णय हुआ कि उत्तरवादी ने समय बढ़ाने की संविद् को स्वीकार किया ही नहीं और यदि १५ अगस्त १९४२ के पत्र के बारे में यह मान भी लिया जाय कि समय बढ़ाने की संविद स्वीकार की गई तो भी वह इतना अस्पष्ट है कि उस पर कोई कानूनी अधिकार आधारित हो ही नहीं सकता। उच्च न्यायालय ने वादी अपीलकर्ता के इस कथन को भी नहीं माना कि प्रतिवादी-उत्तरवादी गण का पश्चात्वर्ती आचरण ऐसा था जिससे समझा जा सकता था कि उन्होंने समय बढ़ाना और उसे कार्यरूप में परिणित करना स्वीकार किया था। अतः उच्च न्यायालय ने वाद को अवधि बाधित मानकर उत्सर्जित कर दिया। यतः इस मुकदमे की धन राशि २०,००० रुपए से अधिक की है और अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री के प्रतिकूल उच्च-न्यायालय ने निर्णय दिया है इसलिए यह अपीलकर्ताओं का अधिकार है कि वे हमारे समक्ष तथ्य एवं विधि दोनों प्रश्नों को उठाकर बहस कर सकते हैं।

साक्ष्यों के देखने से प्रतीत होता है कि अपील कर्ताओं ने समय का बढ़ाना स्वीकार किया और इसके लिये एक प्रमाण यह भी है कि यदि समय का बढ़ाना स्वीकार न किया गया होता तो अपीलकर्ता उस पहले की निश्चित तिथि को ही सामानों की माँग करते न कि उसके बादवाली तिथि को जिस दिन कि उन्होंने वास्तव में माँग की। पश्चात्वर्ती यह आचरण स्पष्ट करता है कि अपीलकर्ताओं ने समय का बढ़ाना स्वीकार किया।

समय बढ़ाने के लिये उसकी विधिक स्थिति पर निश्चित सिद्धांत भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ६३ में है। उसमें है कि प्रत्येक प्रतिज्ञाती (प्रामिसी) संविदा का समय बढ़ा सकता है। यह प्रश्न कि समय बढ़ाने के लिये उसके पक्षों में सहमति किस प्रकार हो यहाँ विवादास्पद है। यह सत्य है कि समय बढ़ाने के लिये विक्रेता और क्रेता दोनों की सहमति आवश्यक है। प्रतिज्ञाती (प्रामिसी) को ही केवल यह अधिकार देना कि वह एक पक्षीय ढंग पर अपने लाभ के अनुसार समय बढ़ा ले ठीक नहीं है। दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक है। सहमति कैसे प्रमाणित की जाय इसके लिये कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता। पक्षों के तत्संबंधी आचरण और सामान्य परिस्थिति के आधार पर ही इसका निश्चय किया जा सकता है। प्रत्येक वाद की परिस्थिति के अनुसार उसमें दिए गए साक्ष्यों के आधार पर इस प्रश्न का निर्णय करना है। अतः इस परिस्थिति में उत्तरवादी का समय बढ़ानेवाला प्रस्ताव मौखिक साक्ष्य के आधार पर स्वीकृत माना जाना चाहिए। इस प्रश्न पर अन्वीक्षा न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश का विचार मान्य होता है।

किंतु इन बातों का निर्णय अपीलकर्ता के पक्ष में होने पर भी अन्य कारणों से वह सफल नहीं हो सकता। समय बढ़ानेवाले पत्र में दो शर्तें थीं। एक शर्त यह थी कि मिल में हड़ताल समाप्त हो जाय और दूसरी शर्त थी कि साधारण परिस्थिति (नार्मल कंडीशन रिस्टोर्ड) हो जाय। पहली शर्त तो स्पष्ट है क्योंकि किसी एक निश्चित समय में हड़ताल समाप्त हो सकती है। किंतु दूसरी शर्त अस्पष्ट अनिश्चित और अक्षम है। साधारण परिस्थिति पुनर्स्थापित होने में कई एक कारण हैं और उन सबको जोड़कर कहा जा सकता है कि सामान्य परिस्थिति पुनर्स्थापित हो गई। अतः दूसरी शर्त के बारे में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि साधारण परिस्थिति कब स्थापित हुई और इसके स्पष्ट न होने से समय बढ़ानेवाला कोई संविद् हुआ ही नहीं।

इसके उत्तर में कहा गया है कि पहली शर्त अर्थात् हड़ताल समाप्त होना ही प्रमुख शर्त है और दूसरी शर्त निरर्थक है और व्यर्थ ही उसमें जोड़ दी गई है इसलिए संविद होना केवल पहली ही शर्त से पूरा हो जाता है। इसके लिये निकोलेन लिमिटेड वि० सिगांड्स १९५३-१ क्यू० बी० ५४६ का एक प्रमाण दिया गया। इसमें विद्वान् न्यायाधीश ने कहा था कि अस्पष्ट और निरर्थक अंश संविदा में से निकाल देने पर भी यदि संविदा का अभिप्राय स्पष्ट रहता है तो संविदा यथावत् है और केवल उस वाक्यांश के कारण सारी की सारी संविदा प्रभाव शून्य नहीं हो सकती। निर्णय के प्रसंग में विद्वान् न्यायाधीश ने उसमें कहा था कि जिनको संविदा का पालन करना नहीं होता वे पहले ही इस प्रकार के निरर्थक वाक्यांश रख देते हैं अतः इन वाक्यांशों का प्रभाव संविदा पर नहीं पड़ सकता।

किंतु इस वाद में उपर्युक्त प्रमाण लागू नहीं होता। यहाँ इन दो शर्तों पर ही समय बढ़ाने का संविद् हुआ था और बाद में जब एक शर्त निरर्थक प्रतीत हुई तो इसका अभिप्राय यह नहीं हुआ कि पक्षों ने इसे व्यर्थ ही जोड़ा था। दोनों शर्तों के मानने पर ही संविद् हुआ था और केवल इसी के आधार पर धारा ६३ के अंतर्गत यह एक वैध संविदा थी। इस बात के समर्थन के लिये

१९४१ ए० सी० २५१ का इंगलैंड का एक मुकदमा है।

अतः उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि दूसरी शर्त इतनी अस्पष्ट और अनिश्चित है कि उस पर कोई वैध अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता और संविदा अधिनियम की धारा २९ के अंतर्गत यह प्रभावशून्य है।

उच्च न्यायालय में एक प्रश्न यह उठाया गया कि दूसरी शर्त अस्पष्ट और अनिश्चित है किंतु वह भी उच्च न्यायालय में निवेशित की गई अपील के आधार में नहीं था वरन् अलग से उठाया गया और उच्च न्यायालय ने ऐसे अभिकथन की अनुमति भी दे दिया।

उच्च न्यायालय का इसे अनुमित करना ठीक था क्योंकि यह विधि का प्रश्न है। विधि का प्रश्न यह इसलिए है कि यह एकमात्र अक्षरों के अन्वयन पर आधारित है और इसी पर संविदा में समय का बढ़ाया जाना निर्भर करता है। अतः व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ४१ नि० २ के अंतर्गत ऐसा अभिकथन उठाया जा सकता है और यदि अक्षर के अन्वयन से यह प्रतीत होता है कि शर्त अस्पष्ट और अनिश्चित है तो इस अस्पष्टता या अनिश्चितता को हटाने के लिये कोई बाहरी साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। साक्ष्य अधिनियम की धारा ९३ के अंतर्गत ऐसा साक्ष्य वर्जित है। यदि ऐसा साक्ष्य देने का प्रयत्न किया जाय तो पक्षों के बीच में यह एक नई संविदा बनावेगा। अतः अपीलकर्ता यह नहीं कह सकता कि उच्च न्यायालय को अस्पष्टता का अभिकथन स्वीकार नहीं करना चाहिए था।

परिणामतः उच्च न्यायालय का अस्पष्टता संबंधी निर्णय मान्य होता है और इसलिए वाद उत्सर्जित किया जाता है।

उत्तरवादी का विचार इस वादशीलता में अच्छा नहीं रहा है। वह यह कहकर आया था कि समय बढ़ानेवाला पत्र ही अधिकार के भीतर नहीं था और उसका बंधन इस पर नहीं है। उत्तरवादी की इस बात को नीचे के दोनों न्यायालयों ने नहीं माना था। उत्तरवादी तो यहाँ एक दूसरे ही आधार पर सफल हो रहा है जिसे

उसने पहले पहल अपील में कहा था। अतः अपील असफल होती है और उत्सर्जित की जाती है किंतु सावंत परिव्यय के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ६३

बंदी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) की प्रकृति के लेख के लिये संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र सं० १३५।१९५७

(२५ नवंबर १९५७ को निर्णीत)

चौधरी धरम सिंह रथी — प्रार्थी

वि०

पंजाब राज्य तथा अन्य — उत्तरवादी गण

निवारक निरोध अधिनियम (प्रिवेंटिव डिटेंशन ऐक्ट) १९५०, धा० — १०—सप्ताह के भीतर परामर्श दातृ समिति द्वारा प्रतिवेदन का न दिया जाना— निरुद्ध व्यक्तिगत स्वातंत्र्य से वंचित किए जाने के संबंध में परिवाद कर सकता है।

मुख्य न्यायाधिपति दास—

प्रार्थी करनाल के जिलाधीश के आदेश द्वारा निवारक निरोध अधिनियम की धारा ३ के अंतर्गत बंदी कर लिया गया था। प्रार्थी १८–८–१९५७ को बंदी किया गया और २९–८–१९५७ को सरकार ने इसका अनुमोदन किया। बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के लिये इसमें प्रार्थना की गई है।

प्रार्थनापत्र के अनुच्छेद १० (१२) में प्रार्थी का कहना है कि परामर्शदातृ समिति के समक्ष मैंने प्रतिनिवेदन किया था और दो बार इसके समक्ष उपस्थित भी हुआ किंतु उक्त समिति ने अब तक कोई आदेश पारित नहीं किया इसलिए यह निरोध विधि विरुद्ध और बुरा है।

निवारक निरोध अधिनियम की धारा १० के अंतर्गत समिति को अन्य कार्यवाही के साथ निरोध की तिथि से १० सप्ताह के भीतर प्रतिवेदन दे देना चाहिए। प्रतिवेदन पाने पर धारा ११ के अंतर्गत यदि प्रतिवेदन निरोध के विरुद्ध है तो सरकार उसे तुरत छोड़ देगी और यदि प्रतिवेदन निरोध के पक्ष में है तो सरकार या तो निरोध जारी रख सकती है या उसे छोड़ सकती है। इस दशा में सरकार यदि निरोध जारी रखना चाहती है तो वह अवधि निर्धारित कर देगी।

प्रार्थी का कहना है कि पहलेवाली स्थिति में जब कि तुरत छोड़ देने का विधान है और दूसरी स्थिति में जब कि सरकार को नया निर्णय लेना पड़ता है– दोनों ही दशा में समिति का प्रतिवेदन समय के भीतर आना बहुत ही अधिक महत्व रखता है। प्रतिवेदन की अवधि २७–१०–५७ को समाप्त हुई इसलिए २८–१०–५७ से निरोध विधि विरुद्ध हो गया है।

सरकार की ओर से विद्वान् वकील का कहना है कि प्रार्थी ने अपने प्रार्थनापत्र में यह नहीं कहा कि समिति ने प्रतिवेदन समय के भीतर नहीं दिया वरन् उसने जो कुछ कहा है वह यही कहा है कि समिति ने कोई आदेश पारित नहीं किया और आदेश पारित करने का अधिकार परामर्शदातृ समिति को नहीं है।

यह कथन मान्य नहीं हो सकता कारण कि प्रार्थी के प्रार्थनापत्र के परिच्छेद १० (१२) के पढ़ने से यही आता है कि उसे असंतोष केवल इसी बात से था कि समिति ने समय के भीतर प्रतिवेदन नहीं दिया। उसके असंतोष का तत्व यही है अतः आदेश या प्रतिवेदन का अंतर महत्व का नहीं है।

सरकार के विद्वान् वकील का कहना है कि इसकी सुनवाई स्थगित कर दी जाय और इस बीच हम इस बात का निश्चय कर लें कि समय के भीतर परामर्श दातृ समिति ने प्रतिवेदन दिया है कि नहीं। ऐसी परिस्थिति में मैं यह ठीक नहीं समझता की सुनवाई स्थगित की जाय कारण कि प्रार्थी ने यह बात अपने प्रार्थनापत्र में स्पष्ट कही है और इसके विरोध में सरकार ने दो शपथपत्र भी निवेशित किया है किंतु उनमें कहीं भी इस बात की चर्चा है ही नहीं। अतः स्थगित करने का कोई उपयुक्त कारण नहीं दिखाया गया।

इस परिस्थिति में किसी दूसरी बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है इसलिए आदेश होता है कि जिस लेख के लिये प्रार्थना की गई है वह जारी किया जाय और प्रार्थी तुरत छोड़ दिया जाय।

विधि पत्रिका (१६८०) १६५८ सर्वो० न्या० ६४

१ नवंबर १६५७

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास, न्यायमूर्ति वेंकटारामा अय्यर, न्यायमूर्ति एस० के० दास, न्यायमूर्ति सरकार तथा न्यायमूर्ति बोस

व्यवहार अपील सं० ६५।१६५७

पुरुषोत्तम लाल धिंगरा — अपीलकर्ता

वि०

भारत संघ — उत्तरवादी

आर० एस० खुलर — अंतःस्थ

(एल० पी० ए० सं० २८।१६५५, दिनांक १६-१-१६५६ पंजाब, दिल्ली से)

अ—भारतीय संविधान, अनुच्छेद ३१० और ३११—"कामन ला" के इस नियम की कि लोक सेवक का पद "क्राउन" की कृपा पर है भारत में प्रयोज्यता—(भारत सरकार) अधिनियम (१६१५) धा० ६६ बी० (१) और भारत सरकार अधिनियम (१६३५) धा० २४० (१)

ब—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३१० के अंतर्गत संरक्षण की प्रवृत्ति—अनुच्छेद ३११ की व्याप्ति—लोक सेवक को इसका लाभ कब मिल सकता है—

स—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३११ (२) सेवा की समाप्ति या श्रेणी में न्यूनीकरण दंड कब होता है—

द—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३१० और ३११—लोकसेवक का स्थायी या अस्थायी पद धारण करने का अंतर—अनुच्छेद ३११ का लागू होना—

मुख्य न्यायाधिपति सुधि रंजन दास—

अपीलकर्ता रेलवे में वर्ग ३ में सेवा करता था और उसे वर्ग २ में स्थानापन्न होकर काम करने का अवसर प्रदान किया गया। उत्तरी रेलवे के मुख्य प्रबंधक ने अपने आदेश दिनांक १६ अगस्त १६५३ द्वारा अपील कर्ता को वर्ग २ में से नीचे करके पहलेवाले वर्ग ३ में कर दिया। इस आदेश के विरुद्ध प्रार्थी ने लेख जारी करने के लिये उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र दिया और न्यायमूर्ति श्री हरनाम सिंह ने प्रार्थी का प्रार्थनापत्र स्वीकार किया और आदेश दिनांक १६ अगस्त १६५३ को निराकृत किया। एकस्व-पत्र (लेटर्स पेटेंट) अपील में विभागीय न्यायासन ने न्यायमूर्ति श्री हरनाम सिंह का निर्णय उलट दिया। इसी निर्णय और आदेश के विरुद्ध पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा समुपयुक्तता के प्रमाणपत्र दिए जाने पर यह अपील निवेशित की गई है।

थोड़े में इसके तथ्य इस प्रकार हैं:—

अपीलकर्ता १६२४ में रेलवे की सेवा में पहले पहल आया और क्रमशः उन्नति करता गया किंतु उन्नति किए हुए ये सभी पद वर्ग ३ के थे। १६५१ में वर्ग २ के एक पद के चुनाव के लिये ७ अभ्यर्थी बुलाए गए जिसमें अपीलकर्ता भी एक था। उन सातों में से अपील-कर्ता ही उक्त पद के लिये चुना गया। इसकी जो नियुक्ति पत्र की सूचना मिली उसमें लिखा था कि अपील-कर्ता को साहू राम के स्थान पर स्थानापन्न चीफ कंट्रोलर के पद पर नियुक्त किया जाता है। प्रार्थी ने नियत समय पर कार्यभार ग्रहण भी कर लिया।

अपीलकर्ता के ऊपर के अधिकारियों ने अपीलकर्ता के विरुद्ध कुछ बातें लिख दी थीं जो कि गुप्त अभिलेख में था और यह गुप्त अभिलेख जब मुख्य प्रबंधक के समक्ष पहुँचा तो उन्होंने निम्नलिखित ढंग पर अपना विचार प्रकट किया।

'इन प्रतिवेदनों को पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। वह नीचे की श्रेणी में चला आवे जब तक कि एक अधिकारी के पद पर काम करने के अवसर पर उसमें जो कमी पाई गई है वह दूर न हो जाय। जो स्थल लाल स्याही से चिह्नित किए गए हैं उनसे वह अवगत करा दिया जाय।'

उच्च अधिकारियों ने गुप्त प्रतिवेदन में अपीलकर्ता में जो कमी पाई थी वह थी कि वह अपने निर्णय में अनावश्यक शीघ्रता करता है, उसमें अपने को महत्वपूर्ण समझने का भाव वर्तमान है-इत्यादि।

अपीलकर्ता अपने स्थानापन्न पद से नीचे आ गया।

अपीलकर्ता ने मुख्य प्रबंधक से प्रार्थना की कि वे उस आदेश पर फिर से विचार करें और उसके बाद

उसने रेलवे बोर्ड में अपील की। अपीलकर्ता ने राष्ट्रपति के यहाँ भी प्रतिनिवेदन किया। रेलवे बोर्ड ने मुख्य प्रबंधक को लिखा कि उसका काम देखते रहना चाहिए और जब वह योग्य हो जाय तो उस पद के लिये उस पर विचार किया जायगा। यह निर्णय जब अपीलकर्ता को भेजा गया उस समय तक संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत वह उच्च न्यायालय में लेख प्रार्थनापत्र निवेशित कर चुका था। इसमें उसका कहना था कि ऐसा आदेश श्रेणी का न्यूनीकरण (रिडक्शन इन रैंक) था इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) का पालन न करने से वह आदेश अवैध है।

इस अपील में हमारे समक्ष विचारणीय प्रमुख प्रश्न है कि मुख्य प्रबंधक का दिनांक १९ अगस्त १९५३ का आदेश संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) के अभिप्राय के अंतर्गत श्रेणी का न्यूनीकरण है कि नहीं कारण कि यदि उक्त आदेश श्रेणी का न्यूनीकरण है तो वह अवैध इसलिए होगा कि उक्त अनुच्छेद की शर्तों का पालन, यह मान्य है कि नहीं किया गया।

इंगलैंड में 'कामन ला' विधि के अनुसार राज्य के सभी लोक सेवक 'क्राउन' की कृपा तक ही अपने पद पर रहते हैं और 'क्राउन' के इस विस्तृत अधिकार पर कोई रोक नहीं है किंतु यह विस्तृत अधिकार भारतवर्ष में उस सीमा तक लागू नहीं है। भारत सरकार अधिनियम १९१५ की धारा ९६ बी० में 'क्राउन' के इस अधिकार पर एक प्रमुख प्रतिबंध लगा दिया गया कि जिस प्राधिकरण द्वारा वह नियुक्त किया गया है उससे नीचे के प्राधिकरण द्वारा वह पदच्युत नहीं किया जा सकता। भारत सरकार अधिनियम १९३५ की धारा २४० (१) और (२) उपर्युक्त धारा ९६ बी० का दूसरा रूप है। इसमें एक तो वही नियम है कि कोई सेवक अपने नियुक्त किए जानेवाले प्राधिकरण से नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा और दूसरा यह जोड़ दिया गया कि ऐसा कोई व्यक्ति जब तक उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही के संबंध में कारण दिखलाने का युक्तिसंगत अवसर नहीं दे दिया गया हो पदच्युत या श्रेणी से नीचे नहीं किया जायगा। धा० ९६ बी० (१) में श्रेणी में न्यूनीकरण नहीं था किंतु यह पहले पहल उपधारा (३) में पदच्युति के साथ जोड़ा गया।

इसके बाद २६ जनवरी १९५० को हमारा संविधान आया और उसके अनुच्छेद ३१० और ३११ में उपर्युक्त अनुबंधों के समान उपबंध थे। हमारे संविधान के अनुच्छेद ३१० (१) और ३११ इस प्रकार हैं :—

"३१० (१) संविधान में जहाँ स्पष्टतः कोई बात कह दी गई हो उसे छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति जो संघ या अखिल भारतीय सेवा की प्रतिरक्षा सेवा का सदस्य है या व्यवहार सेवा का सदस्य है या संघ के अंतर्गत प्रतिरक्षा सेवा से संबंधित या व्यवहार सेवा से संबंधित किसी पद पर है वह अपने पद पर राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत है और प्रत्येक व्यक्ति जो राज्य की व्यवहार सेवा में है या राज्य के अंतर्गत किसी व्यवहार पद पर है वह अपने पद पर राज्यपाल की कृपा पर्यंत है।

३११ (१) कोई भी व्यक्ति जो संघ या अखिल भारतीय सेवा या राज्य में व्यवहार सेवा पर है अथवा संघ या किसी राज्य के अंतर्गत किसी व्यवहार सेवा पर है वह जिस प्राधिकरण द्वारा नियुक्त किया गया है उससे नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युत या हटाया नहीं जायगा।

(२) उपर्युक्त कोई भी ऐसा व्यक्ति जब तक कि उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही करने के संबंध में उसे कारण दिखलाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान नहीं कर गया हो वह पदच्युत, पद से हटाया या पद से नीचे की श्रेणी में नहीं किया जा सकता।

किंतु प्रतिबंध है कि—"

सारांश यह है कि 'संविधान में जहाँ स्पष्टतः कोई बात कह दी गई हो उसे छोड़कर' इसका तात्पर्य यह है कि संविधान में यह दिया हुआ है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशगण तथा उसमें दिए हुए अन्य उच्च अधिकारी किस प्रक्रिया के पालन करने के साथ हटाए जायँगे। उनके लिये यह नहीं है कि वे राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत अपने पद पर हैं। इस प्रकार अनुच्छेद ३११ अनुच्छेद ३१० (१) परंतुक के समान है। ए० आई० आर १९५४ सर्वोच्च न्यायालय २४५ में यह निर्णय हो

चुका है कि यह नियम कि पद कृपा पर्यंत रहेगा इंगलैंड में जितनी कड़ाई से लागू होता है उतना भारत में नहीं। अनुच्छेद ३११ कृपा पर्यंत सेवा के संबंध में दो प्रकार का संरक्षण स्वीकार करता है; पहला यह कि नियुक्तिकारी प्राधिकरण से नीचे का प्राधिकरण उसे पद-च्युत नहीं कर सकता और दूसरा यह कि उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही के संबंध में कारण दिखलाने का अवसर प्रदान किया जाय। अनुच्छेद ३११ से दो प्रश्न पैदा होते हैं: १—संरक्षण के अधिकारी हैं कौन? और २—संरक्षण का क्षेत्र और उसकी व्याप्ति कितनी है?

मौलिक नियमों के अंतर्गत दिया हुआ है कि सेवाओं के लिये एक संवर्ग (कैडर) होता है। संवर्ग के अंतर्गत कई एक पद (पोस्टिंग) होते हैं। इन पदों में स्थायी पद वह पद होता है जिसके लिये वेतन की एक निश्चित दर रहती है और वह किसी अवधि तक सीमित नहीं रहता। व्यापार बढ़ने से या अन्य कारण से कुछ अस्थायी पदों की आवश्यकता पड़ जाती है। अस्थायी पद वह पद है जिसके लिये निश्चित दर से वेतन निर्धारित अवधि तक के लिये स्वीकृत रहता है। अस्थायी पद साधारण तथा संवर्ग के बाहर होते हैं और प्रायः एक वर्ष के लिये होते हैं और वर्ष प्रतिवर्ष इनका नवीनीकरण होता रहता है। इनमें से कुछ पद एक निर्धारित अवधि तक के लिये भी होते हैं। स्थायी या अस्थायी पदों पर जब सरकारी नौकरों की नियुक्ति होती है तो वे प्रत्यक्ष या परोक्ष में नियुक्ति संविदा से शासित रहते हैं तथा पद विशेष के लिये बने हुए नियमों के अधीन रहते हैं।

स्थायी पदों पर सरकारी नौकरों की नियुक्ति तीन प्रकार की हो सकती है—

१—मौलिक रूप में २—परीक्षण पर और ३—स्थानापन्न आधार पर।

१—मौलिक रूप में—इस प्रकार नियुक्त सेवक का उक्त पद पर धारणाधिकार हो जाता है और वह केवल दो ही ढंग पर पद से हटाया जा सकता है:—

(अ) नियुक्ति संविदा के अनुबंध विशेष द्वारा जैसे यदि नोटिस देने की बात तय हुई हो और

(ब) सेवाओं के संबंध में बनाए हुए नियमों के अंतर्गत जैसे अनिवार्य सेवा निवृत्ति की शर्त का पालन करते हुए इत्यादि।

२—परीक्षण पर—इस प्रकार की सेवा में नियुक्त किए हुए व्यक्ति का काम देखा जाता है कि वह उक्त सेवा में चल सकता है कि नहीं। जब उक्त व्यक्ति का काम ठीक नहीं होता तो नोटिस देकर उसे हटाया जा सकता है और परीक्षण की अवधि समाप्त होने पर स्वामी और सेवक का संबंध समाप्त हो जाता है।

३—स्थानापन्न सेवा—दो प्रकार से इस पद पर नियुक्ति होती है। एक यह जब कि उस पद पर का व्यक्ति छुट्टी पर रहता है और दूसरा यह कि जब उस पद पर कोई मौलिक नियुक्ति नहीं हो गई रहती। निम्नलिखित परिस्थिति में वह व्यक्ति हटाया जा सकता है:—

१—जब उस पद पर का व्यक्ति छुट्टी से पुनः काम पर आ जाय।

२—जब मौलिक नियुक्ति हो जाय और—

३—सामान्य विधि में युक्तिसंगत परिस्थिति में नोटिस देकर या यदि तय हुआ हो तो यों ही नोटिस देकर।

इन सबका तात्पर्य यह हुआ कि स्थायी पद पर यदि परीक्षण या स्थानापन्न स्थान पर नियुक्ति हुई हो तो उसमें सेवा सामान्य क्रम में नोटिस देकर समाप्त की जा सकती है किंतु प्रतिबंध है कि यदि इसके विरुद्ध किसी अन्य बात की संविदा न हुई हो।

अस्थायी पद पर नियुक्ति यदि किसी निर्धारित अवधि तक के लिये होती है तो उस अवधि तक के लिये सेवक का अधिकार हो जाता है कि बिना उपयुक्त कारण के जो कई एक होते हैं जैसे प्रमाद आदि वह हटाया नहीं जा सकता। इस प्रकार के पद पर नियुक्त व्यक्ति को वेतन एवं छुट्टी के संबंध में उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिकार अधिक होते हैं जो अस्थायी पद पर परीक्षण या स्थानापन्न सेवा के लिये नियुक्त होता है। बादवाले पद के व्यक्ति केवल एक नोटिस देकर हटाए जा सकते हैं सिवा उस दशा में जब कि उनकी सेवा १६४६ के

नियमों के अंतर्गत आभास स्थायी सेवा (क्वासी परमानेंट सर्विस) में परिपक्व न हो गई हो।

सारांश यह कि यदि कोई विशेष संविदा न हुई हो तो किसी स्थायी पद पर मौलिक नियुक्ति उसे उस पद पर रहने का तब तक के लिये अधिकार प्रदान करती है जब तक कि वह नियम के अंतर्गत अधिवार्षिकी आयु को प्राप्त न हो जाय या निर्धारित अवधि तक सेवा कर चुकने के बाद अनिवार्यतः सेवा निवृत्त न हो जाय।

यदि वह पद समाप्त हो जाय तो उस पर का व्यक्ति सिवा अक्षमता दुर्व्यवहार, प्रमाद और अयोग्यता पर जो दंडस्वरूप हो हटाया नहीं जा सकता और ऐसी अयोग्यता उसे नोटिस देने के बाद किसी उचित जाँच करने पर पाई गई हो। अस्थायी पद पर जब किसी निश्चित अवधि तक के लिये नियुक्ति होती है तो उस अवधि तक के लिये उसका उस पर अधिकार हो जाता है जब तक कि दंडस्वरूप उस अवधि के बीच वह पदच्युत या सेवा से हटा न दिया जाय। इन दो नियुक्तियों के अतिरिक्त अन्य नियुक्तियाँ उस पर नियुक्त व्यक्ति को उस सेवा में कोई अधिकार नहीं प्रदान करती जब तक कि नियमानुकूल वह सेवा आभास स्थायी सेवा में परिपक्व न हो गई हो।

यहाँ केवल एक यही प्रश्न विचारणीय है कि अ० ३११ का संरक्षण इन सरकारी कतिपय सेवाओं में प्रत्येक में लागू होता है कि नहीं।

कुछ निर्णय हुए हैं कि अनुच्छेद ३११ के संरक्षण के संबंध में स्थायी या अस्थायी नियुक्ति का भेद नहीं किया जा सकता और सभी प्रकार की सेवाओं में अनुच्छेद ३११ का लाभ मिलना चाहिए – ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद ७९३। कुछ निर्णय इसके विरुद्ध हुए हैं और उनमें यह कहा गया है कि जब तक वह व्यक्ति स्थायी रूप की सेवा का सदस्य नहीं हो जाता तब तक वह संविधान के अनुच्छेद ३११ (२) के लाभ का अधिकारी नहीं है—ए० आई० आर० १९५६ नागपुर ११३। इस प्रकार जो दो विरोधी निर्णय विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए हैं उन सबको देखने पर सबसे अधिक निर्णय इस बात के समर्थन में है कि पदच्युति, पद से हटाया जाना या श्रेणी में न्यूनीकरण जब दंड के कारण होता है तभी अनुच्छेद ३११ (२) का संरक्षण दिया जा सकता है किंतु ऐसा जब दंड के कारण नहीं होता वरन् नियुक्ति के समय यदि ऐसा अधिकार तय रहता है या सेवा की शर्तों में जो कि नियुक्ति का एक अंग होती है यह बात रहती है और इस अधिकार के बल पर पदच्युति, पद से हटाया जाना और श्रेणी का न्यूनीकरण होता है तब अनुच्छेद ३११ (२) का लाभ नहीं दिया जा सकता। यों तो सामान्यतः यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि अनु० ३११ (२) का संरक्षण कब प्राप्त किया जा सकता है किंतु कार्य रूप में यह इतना सरल नहीं है कारण कि यह तय करने के लिये कि अमुक पदच्युति आदि दंड स्वरूप है या सेवा के नियमों के अंतर्गत या पक्षों की संविद् के अंतर्गत है--कोई आधार नहीं है। दूसरे "अस्थायी" "स्थानापन्न" "परीक्षण पर" आदि शब्दों का प्रयोग कड़ाई से उसी अर्थ में न करने से भी बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। अतः इसके लिये संविधान के संबद्ध स्थलों पर विचार करना आवश्यक है।

अनुच्छेद ३११ का अभिप्राय यह नहीं है कि जो स्थायी सेवा का सदस्य है उसी के लिये या जो स्थायी व्यवहारिक सेवा के पद पर है उसीमें यह लाभ मिलेगा। ऐसा सीमित अर्थ लगाना अनु० ३११ को संकुचित कर देना है जो संविधान या किसी परिनियम की व्याख्या के सामान्य नियम के विरुद्ध है। अनुच्छेद ३११ (२) में है "उपर्युक्त व्यक्ति" इसके लिये ३११ (१) पर आ जाना है। अनुच्छेद ३११ (१) में जो जो व्यक्ति हैं वे सब अनुच्छेद ३१० में हैं। अनुच्छेद ३१० में जो जो अधिकारी हैं वे सब राष्ट्रपति या राज्यपाल जैसी स्थिति हो, उनकी कृपा पर्यंत अपने पद पर हैं। अनु० ३१० और ३११ में कहीं 'स्थायी' या, अस्थायी शब्द नहीं है। यदि मान लिया जाय कि वे सब अधिकारी एकमात्र स्थायी सेवावाले अधिकारीगण ही हो सकते हैं तो इसका परिणाम यहाँ तक हो सकता है कि अस्थायी सेवावाले व्यक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल की कृपा पर्यंत अपने पद पर नहीं रहते, यह परिणाम सिद्धांत

के सर्वथा विरुद्ध है। अनुच्छेद ३१० और ३११ स्थायी और अस्थायी सेवा में विभेद नहीं करते। दूसरे, यह कहा गया है कि जो स्थानापन्न आदि सेवाओं में होता है वह केवल वहाँ का काम करता है—सेवा का धारण (होल्ड) नहीं करता और उपर्युक्त अनुच्छेदों में "धारण" या होल्ड शब्द ही प्रयुक्त है। यदि "धारण" (होल्ड) का अर्थ यही हो तब तो संविधान के अनुच्छेद ५८ और ६६ में जहाँ शब्द "धारण" (होल्ड) ही प्रयुक्त हैं वहाँ अस्थायी सेवावाला व्यक्ति राष्ट्रपति आदि के चुनाव के लिये उठ सकता है। इस प्रकार का तर्क मन में बैठता नहीं। अनुच्छेद ३१० और अनुच्छेद ३११ में स्थायी और अस्थायी का भेद नहीं है। स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार के सरकारी सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल की कृपा पर्यंत अपने पद पर रहते हैं। इसके विरुद्ध निर्णय मान्य नहीं हो सकता।

अनुच्छेद ३११ (१) में केवल "पदच्युति" और "हटाया जाना" दो ही पद प्रयुक्त हैं कि जिस प्राधिकरण द्वारा नियुक्ति की गई है उसमें नीचे का प्राधिकरण पदच्युत या पद से हटा नहीं सकता। ३११ (२) में "पदच्युत", "हटाया जाना" और 'श्रेणी से न्यूनीकरण' तीन पद प्रयुक्त हैं। इन पदों का अर्थ क्या होता है? ए० आई० आर० १९५१ इलाहाबाद ७९३ में कहा गया कि ये शब्द (टेक्निकल) हैं और दंड के लिये प्रवृत्त हुए हैं। यहाँ कहा गया कि ये शब्द सेवा नियमावलि से लिए गए हैं। सेवा नियमावलि देखने से पता चलता है कि पहले केवल नीचे के प्राधिकरण द्वारा पदच्युति करने के संबंध में ही संरक्षण था किंतु बाद में स्थिति में सुधार हुआ और भारत सरकार अधिनियम १९३५ की धारा २४० (३) के अंतर्गत एक और संरक्षण बढ़ाया गया। दूसरे शब्दों में १९३० की वर्गीकरण नियमावलि जिसमें उपर्युक्त तीन प्रकार का दंड देने के पहले एक विशेष प्रक्रिया का पालन करना था उसे परिनियम (स्टैट्यूट) में रखकर सरकारी नौकरों को परिनियमित संरक्षण प्रदान किया गया। ये परिनियमित संरक्षण जो उसी रूप में अनुच्छेद ३१० और ३११ में आए संविधान विहित संरक्षण हो गए। पहले विधि द्वारा संरक्षण का पालन नहीं कराया जा सकता था, बाद में परिनियम द्वारा इसको कराने का विधान हुआ और अब अनु० ३१० और ३११ द्वारा संरक्षण के अधिकार को संविधान विहित मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

सारांश यह कि जब उपर्युक्त तीन प्रकार का दंड देने का विचार सरकार करे केवल तभी उस व्यक्ति को दंड के विरुद्ध कारण दिखलाने का उचित अवसर देना अनिवार्य है। इसलिए इसका परिणाम हुआ कि यदि सेवा की समाप्ति दंड के आधार पर न होकर किसी अन्य प्रकार से की जा रही हो तो सरकारी नौकर अनुच्छेद ३११ (२) का संरक्षता नहीं पा सकता और इस विषय पर जितने निर्णय इस प्रकार हुए हैं सब ठीक हैं। अनुच्छेद ३१० का यह उपबंध कि सभी सरकारी सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल जैसे स्थिति हो, के कृपा पर्यंत हैं—अनुच्छेद ३११ से प्रतिबंधित है।

किंतु इतने से ही कठिनाई दूर नहीं हो जाती। यह निश्चित करना कठिन रह ही जाता है कि सेवा की समाप्ति कब दंड स्वरूप है (जिसमें ३११ (२) लागू होता है) और कब अन्य प्रकार से है। इसके लिये सरकारी नौकरी तीन भागों में विभाजित की जा सकती है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है)

१—स्थायी सेवा—यदि इस प्रकार के सेवा की समाप्ति की जाती है तो यह स्वतः दंडस्वरूप होता है कारण कि पद को धारण करने का उसका जो अधिकार है वह समाप्त हो जाता है और समाप्ति से उसे अन्य प्रकार की हानि होती है।

२—अस्थायी सेवा में शर्तों के विरुद्ध अपरिपक्वावस्था में यदि सेवा की समाप्ति होती है तो उस दशा में भी यह दंड स्वरूप होता है। और—

३—अन्य सेवाएँ जैसे—'स्थानापन्न' 'परीक्षण' आदि में सेवा समाप्ति दंड नहीं होता। सेवा केवल एक नोटिस देकर ही समाप्त की जा सकती है।

संक्षेप में सिद्धांत यह है कि जब उस सेवक का उस पद या उस श्रेणी में प्रत्यक्षतः या परोक्षतः किसी संविदा द्वारा या सेवा की शर्तों द्वारा अधिकार रहता है तो ऐसे

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १२७

(लखनऊ न्यायासन)

न्यायमूर्ति सिंह

पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र सं० ८३।१९५२—१०—२—१९५८

छुंगा — वादी प्रार्थी

वि०

केदार तथा अन्य — प्रतिवादी विपक्षी

उन्नाव के जिलाधीश के आदेश दिनांक ४ फरवरी १९५२ के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र

उ० प्र० कृषक साहाय्य अधिनियम १९३४ धारा २४ (२)—पक्षों के अधिकार को दिखलाने के लिये जब वार्षिक रजिस्टर पर के अधिकारों का अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया तो तत्संबंधी मौखिक साक्ष्य को इनकार किया जा सकता है।

न्यायमूर्ति सिंह—

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा ११५ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र है।

उ० प्र० कृषक साहाय्य अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र दिया गया था। वह प्रार्थनापत्र एक बंधक विलेख के संबंध में था।

कृषक साहाय्य अधिनियम की धारा २४ (२) में है कि बंधकदाता के उस तिथि को जिस दिन बंधक दिया गया 'कृषक' होने के प्रमाण में यदि कोई कागजी प्रमाण न हो, तो राजस्व अधिनियम १९०१ के अंतर्गत वार्षिक रजिस्टरों में लिखे हुए अधिकारों की प्रवृष्टि प्रमाण के लिये ली जायगी।

इसके देखने से प्रतीत होता है कि विधान मंडल ने इसके लिये मौखिक साक्ष्य देने की अनुमति नहीं दिया। यतः कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने जो मौखिक साक्ष्य अस्वीकार कर दिया वह ठीक ही किया है। ऐसा करना उनके अधिकार के अंतर्गत था और ए० आई० आर० १९४७ इलाहाबाद ४०७ की रुलिंग भी इसके समर्थन में है।

किसी अन्य बात पर जोर नहीं दिया गया।

इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है इसलिए परिव्यय के साथ यह उत्सर्जित किया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १२७

मुकदमा सं० ५५ ए० में कन्नौज के एस० डी० एम० के आदेश के विरुद्ध आपराधिक अभिदेश सं० ३१७।१९५५

(१५ जनवरी १९५७)

रामदयाल — प्रार्थी

वि०

बहादुर तथा अन्य — विपक्षी

दंड प्रक्रिया संहिता १८९८, धा० १४५—जब शांतिभंग की कोई आशंका नहीं थी तो मजिस्ट्रेट एक पक्ष विशेष को कुर्की हटाकर संपत्ति दे देने का अधिकार नहीं रखते—इसके लिये उपयुक्त आदेश यही हो सकता था कि वे कुर्की उठा लेते और आगे की कार्यवाही अभिखंडित कर देते—

न्यायमूर्ति अस्थाना—दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत एक मुकदमें में यह फरूखाबाद के सत्र-न्यायधीश का अभिदेश है।

राम दयाल ने एक प्रार्थनापत्र दिया कि उसका स्वामी विवादग्रस्त भूखंडों का स्वामी है और उसके धारण में है और विपक्षीगण उसके शांतिमय धारण में हस्तक्षेप करते हैं इसलिए शांति भंग हो जाने की आशंका है। मजिस्ट्रेट ने इस पर पुलिस का प्रतिवेदन माँगा। पुलिस ने प्रतिवेदन दिया कि शांति भंग की आशंका है। इस पर मजिस्ट्रेट ने आरंभिक आदेश पारित किया और उस भूमि का उस पर की फसल के सहित कुर्की का आदेश दिया

तथा संबंधित व्यक्तियों को अपने अपने अधिकार के विषय में लिखित अभिकथन निवेशित करने का आदेश दिया।

जब वह भूमि धारा १४५ में कुर्क की गई उसके पहले ही विपक्षी ने राजस्व न्यायालय में इन खेतों के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें उसका कहना था कि विवादग्रस्त भूमि के हम धारण में हैं। जब धारा १४५ की कार्यवाही चल रही थी उसी बीच उस मुकदमे में निर्णय हो गया और निर्णय में विपक्षियों का धारण माना गया।

इस निर्णय के बाद विद्वान् मजिस्ट्रेट ने १४५ के इस मुकदमे में आदेश दे दिया कि यतः अब झगड़े की कोई संभावना नहीं है इसलिए भूमि का धारण विपक्षी गण को दे दिया जाय और कुर्की उठा ली जाय।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने इस आधार पर अभिदेश किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का ऐसा आदेश गलत था। वे कुर्की उठाकर बिना धारण पर विचार किए विपक्षी को धारण दे नहीं सकते थे। उनका अभिस्ताव था कि इसमें ठीक आदेश यह होता कि कुर्की उठा ली जाती और आगे को कार्यवाही रोक दी जाती।

दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि जब यह पता नहीं चलता कि धारण विपक्षीगण से लिया गया तो पहलेवाले मुकदमे की डिग्री के कारण इसे विपक्षीगण को दे देना ठीक नहीं था। धारण के प्रश्न पर जाँच करना और इस बात का निश्चय हो जाने पर कि आरंभिक आदेश के समय कौन पक्ष धारण में था तब धारण उसको दिया जा सकता था। यहाँ धारण के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। किंतु उस मुकदमे की डिग्री के कारण जब यह समझा गया कि शांति भंग की आशंका नहीं है तो ऐसी दशा में उपयुक्त आदेश यही होता कि कुर्की उठा ली जाती और आगे की कार्यवाही अभिखंडित कर दी जाती।

अभिदेश स्वीकार किया जाता है। विपक्षी को धारण दे देने का आदेश निराकृत किया जाता है किंतु कुर्की उठा लेने का वह आदेश ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है। आगे की कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। किसी पक्ष विशेष के हित में कुर्की उठाई नहीं जायगी।

— अभिदेश अंशतः स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १२८

कानपुर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक २५-६-१६५५ के विरुद्ध आपराधिक अभिदेश सं० ३११।१६५५

(८ जनवरी १६५७)

भिक्खू लाल — प्रार्थी

वि०

बटियन तथा अन्य — विपक्षीगण

द० प्र० सं० धारा १४५—मजिस्ट्रेट का यह अधिक्षेत्र नहीं है कि वह विवादग्रस्त भूमि के स्वत्व के प्रश्न पर विचार करे और जो कि कार्यवाही में कोई पक्ष नहीं है उसके पीठ पीछे इसका निर्णय करे।

न्यायमूर्ति अस्थाना —

द० प्र० संहिता की धारा १४५ के एक वाद में सत्र न्यायाधीश का यह अभिदेश है। इसमें मजिस्ट्रेट ने निर्णय दिया था कि वह स्थल (साइट) दोनों में से किसी पक्ष का नहीं है वरन् वह गाँव समाज का है और इसे गाँव समाज को दिला दिया जाय तथा विवादग्रस्त नाद से जो दीवाल संबंधित है वह विपक्षी की है और उसे विपक्षी को दे दिया जाय—इसी आदेश को निराकृत करने की प्रार्थना है।

इसमें प्रार्थी ने द० प्र० संहिता की धारा १४५ के अंतर्गत कार्यवाही आरंभ की। उसका कहना था कि विपक्षी ने हमारी नादों को गिरा दिया और जब आकर पूछा गया तो झगड़ा करने को तैयार हो गए इसलिए इसके बारे में झगड़ा हो जाने की आशंका है।

विद्वान् मजिस्ट्रेट इस बात से संतुष्ट हो गए कि झगड़ा होने की संभावना है इसलिए उन्होंने इसके संबंध में धारा १४५ के अंतर्गत कार्यवाही आरंभ की। दोनों ओर के साक्ष्यों का परीक्षण करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह स्थल (साइट) न तो प्रार्थी का है और न विपक्षी का वरन् वह ग्राम समाज का है। नाद से लगी हुई एक दीवाल विपक्षी के धारण में थी, इसलिए वह स्थल तो ग्राम समाज को दिला देने का आदेश हुआ और दीवाल विपक्षी को।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का प्रतिवेदन है कि धारण के प्रश्न का निर्णय न करके मजिस्ट्रेट ने जो ग्राम समाज के स्वत्व का निर्णय किया है वह ऐसा काम है जो उसके अधिक्षेत्र के बाहर है।

मजिस्ट्रेट के सामने झगड़ा यही था कि कौन पक्ष नाद के धारण में है। इसके लिये उपाय यही था कि जो पक्ष मजिस्ट्रेट के सामने थे उनके द्वारा दिए गए साक्ष्यों से इसका निर्णय करते। इसमें संदेह नहीं कि वे अपने अधिकार से दूर चले गए और ग्राम समाज के स्वत्व का निर्णय करने लगे जब कि जाँच के लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

अभिदेश स्वीकार किया जाता है और विद्वान मजिस्ट्रेट का उपर्युक्त आदेश निराकृत किया जाता है और यह मुकदमा कानपुर के जिलाधीश के पास भेज दिया जाय कि वे इसे किसी अन्य समर्थ मजिस्ट्रेट के यहाँ विधि अनुसार निर्वर्तन करने के लिये भेज दें।

अभिदेश स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १२६

व्यवहार पुनरीक्षण सं० ७६१।१९५३—२४ सितंबर १९५७

मकबूल आलम तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०

जावद हुसेन तथा अन्य— विपक्षीगण

बनारस के व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री और आदेश दिनांक १४-४-१९५३ (व्यवहार अपील सं० १५७।१९४५) के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८—मुकदमें की कार्यवाही जब स्थगित है तो प्रतिस्थापना के लिये प्रार्थनापत्र यदि स्थगन आदेश की उन्मुक्ति के बाद दिया गया तो उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ—अवधि अधिनियम १९०८ धारा ५—

न्यायमूर्ति भार्गव—

यह प्रतिवादी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है जो नीचे के न्यायालय में चलती हुई एक अपील के संबंध में है।

अपीलकर्ता सं० ५ मर गई। उत्तरवादी संख्या ४ भी मर गया। अपीलकर्ता के उत्तराधिकारी पहले से ही अभिलेख पर थे इसलिए उनके बारे में तो कोई कठिनाई नहीं थी किंतु उत्तरवादी के उत्तराधिकारी अभिलेख पर नहीं थे। वह १९४७ में किसी समय मरा किंतु उसकी प्रतिस्थापना (सबस्टीट्यूशन) के लिये प्रार्थनापत्र १८ फरवरी १९५२ को दिया गया। उसके साथ देर को क्षमा करने के लिये अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र भी दिया गया। प्रार्थनापत्र में कहा गया था कि उसके मरने का समाचार समय से ज्ञात नहीं हुआ था इसलिए प्रतिस्थापना प्रार्थनापत्र में विलंब हो गया अतः धारा ५ का लाभ दिया जाय। १९४६ से उस तिथि तक उस अपील की सुनवाई स्थगित थी।

विद्वान व्यवहार न्यायाधीश ने कहा कि जब सुनवाई स्थगित थी तो यह प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नहीं है कि उसके मरने का समाचार नहीं मिला था। उनका विचार था कि इससे उपशमन नहीं हुआ। प्रार्थी के लिये यह अवसर था कि जब स्थगन का आदेश हटे तब प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दे। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९५२ पेप्सू ४० का सहारा लिया गया था।

इस पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र में कहा जाता है कि केवल कार्यवाही स्थगित थी प्रतिस्थापना की कार्यवाही स्थगित नहीं थी। यह कथन मानने में हम असमर्थ हैं। जब वाद स्थगित है तो तत्संबंधी समस्त कार्यवाही स्थगित रहती है। यों तो प्रार्थी प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र स्थगन की अवधि में भी दे सकता था किंतु वह भी स्थगित ही रहता कारण कि उस बीच न्यायालय उस प्रार्थनापत्र पर कोई आदेश नहीं दे सकता था। कुछ भी हो जब कार्यवाही स्थगित थी तो यह अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत विलंब को क्षमा करने के लिये अच्छा आधार है। इस प्रकार इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं दीखता।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है।

स्थगन का आदेश उन्मुक्त किया जाता है। प्रार्थनापत्र ४ वर्ष तक पड़ा रहा इसलिए अभिलेख नीचे के न्यायालय में शीघ्र निवर्तन के लिये तुरत भेज दिया जाय।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १३०

द्वारिका प्रसाद	—	प्रार्थी
	वि०	
नगर पालिका, मेरठ	—	विपक्षी

मेरठ के सिटी मुंसिफ के आदेश दिनांक १७-१-१९५३ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ३५५।१९५३ दिनांक २६-१-१९५८।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१९०८), धा० ६० (१) परंतुक (बी)—खेती के औजार—कृषक द्वारा खेती के लिये ट्रैक्टर का प्रयोग—

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू—

लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा २५ के अंतर्गत यह निर्णीत ऋणी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। निर्णीत ऋणी के विरुद्ध १९४५ में रुपए की एक डिग्री पारित हुई थी। डिग्रीदार ने १९५१ के लगभग निर्णीत ऋणी के एक ट्रैक्टर को कुर्क करके और उसे बेच करके डिग्री को निष्पादित कराना चाहा। निर्णीत ऋणी ने प्रश्नगत् ट्रैक्टर की कुर्की के विरुद्ध व्य० प्र० सं० की धा० ६० (१) के परंतुक (बी) की शरण लेना चाहा। लघुवाद न्यायालय ने निर्णीत ऋणी की यह बात न मानी और निर्णय दिया कि ट्रैक्टर की कुर्की हो सकती है तथा इसके साथ ही उक्त न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि निर्णीत ऋणी कृषक (अग्रिकल्चरिस्ट) नहीं है। इसके बाद निर्णीत ऋणी ने लघुवाद न्यायालय की धारा २५ के अंतर्गत यह व्यवहार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

यह बात मान्य है कि निर्णीत ऋणी १२०० बीघे के खेतों में मशीन से खेती करता है और यों तो पहले उसकी आय के अनेक स्रोत थे किंतु अब खेती ही उसकी आय का प्रमुख साधन रह गया है। इसलिए कोई कारण नहीं है कि उसको कृषक न माना जाय।

उपवाक्य (बी०) में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा नहीं दी गई है किंतु शब्दकोश से लघुवाद न्यायालय के निष्कर्ष का समर्थन नहीं होता है। यह बात मानने योग्य नहीं है कि परंतुक का उपवाक्य (बी०) केवल छोटे कृषकों में लागू होता है और बड़े कृषकों के लिये यह विधान नहीं है। उपवाक्य का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि यह प्रत्येक कृषक की रक्षा करता है कि वह पहले की तरह जीविकोपार्जन कर सके। ऐसा नहीं है कि वह उपवाक्य छोटे कृषकों तक ही संकुचित हो गया है। यदि इसको यह मान भी लिया जाय कि यह छोटे कृषकों तक ही सीमित है तब भी इसके आगे एक बड़ी भारी कठिनाई यह पैदा होगा कि छोटा कृषक है कौन ?

ए० आई० आर० १९३६ नागपुर ३ में मोटर ट्रैक्टर को कृषि का उपकरण इसलिए नहीं माना गया

था कि उस समय वह खेतों के काम में नहीं आता था वरन् वह आटा चक्की खींचता था। इस प्रकार इस रुलिंग में उपर्युक्त सिद्धांत केवल प्रसंगोक्ति थी (आबिटर डिक्टा) थी। ए० आई० आर० १९३२ इलाहाबाद ३४४ में कहा गया था कि उपवाक्य (बी०) का अर्थ बहुत कड़ाई से नहीं करना चाहिए।

व्य० प्र० सं० धा० ६० (१) के परंतुक (बी०) का अर्थ होता है कि जब न्यायालय के समक्ष ऐसा प्रश्न आवे तो उसे केवल इतना ही देखना है कि कुर्की का औजार या उपकरण उसके जीविकोपार्जन के लिये आवश्यक है कि नहीं। जब उसे प्रतीत हो कि यह औजार जीविकोपार्जन के लिये आवश्यक है तो उसे उक्त उपबंध के अंतर्गत कुर्की से संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

इस वाद विशेष में यह स्पष्ट है कि यदि ट्रैक्टर का प्रयोग नहीं होगा तो खेती नहीं होगी और यदि खेती नहीं होगी तो वह जीविकोपार्जन नही कर सकेगा क्योंकि कृषक के लिये खेती ही जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन है।

इसके विरुद्ध यह कथन नहीं माना जा सकता कि खेती से उसको बहुत ही अधिक आय है और ट्रैक्टर कुर्क हो जाने पर भी वह दूसरे साधनों से खेती कर सकता है तथा इससे केवल थोड़ी सी उपज कम हो सकती है। जब विधि उसको यह अनुमति देता है कि वह अपने अपने अच्छे उपकरणों से खेती करें तो हम क्यों उसे बाध्य करें कि वह खराब औजार से खेती करें। यह भी नहीं बतलाया गया कि इसके अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा ट्रैक्टर है। इस संबंध में नीचे के लघुवाद न्यायालय का निर्णय गलत था।

तद्नुसार हम इस पुनरीक्षण को स्वीकार करते हैं और निर्णीत ऋणी के प्रश्नगत् ट्रैक्टर की कुर्की और विक्रय की आपत्ति को मान लेते हैं। ट्रैक्टर पर से कुर्की हटा ली जाय। पुनरीक्षण का व्यय पक्षों पर होगा।

पुनरीक्षण स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय १३१

अनवर हुसेन तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

एस० एन० फ्रैंक्लिन तथा अन्य— विपक्षीगण

फरुखाबाद के व्यवहार न्यायाधीश के आदेश दिनांक २२-१२-५२ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ५६७/१९५३, दिनांक ७-१-१९५८

व्य० प्र० सं० (१९०८), आ० ४१, नि० २३, २५, धा० १५१—प्रतिप्रेषण का अंतर्भूत अधिकार—जहाँ उचित अन्वीक्षा न हुई हो वहाँ प्रतिप्रेषण के आदेश का औचित्य—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

फरुखाबाद के व्यवहार न्यायाधीश के प्रतिप्रेषण के आदेश दिनांक २२ दिसम्बर १९५२ के विरुद्ध यह पुनरीक्षण का एक प्रार्थनापत्र है।

यह मुकदमा इस न्यायालय के एकाकी न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिये आया था। किंतु उसमें विधि के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उठने के कारण यह मामला न्यायासन के समक्ष निर्णय के लिये अभिदिष्ट हुआ है।

थोड़े में इस मुकदमें के तथ्य इस प्रकार हैं। एक वाद निषेधाज्ञा के लिये और ५००) हानि-पूर्ति वापस पाने के लिये निवेशित किया गया था। अन्वीक्षा न्याया-लय ने वादी के पक्ष में निषेधाज्ञा और केवल २००) की डिग्री दे दी। केवल एक प्रतिवादी ने अपील निवेशित किया। वादियों ने उस पर प्रति आपत्ति उस भाग के बारे में की जिसे अन्वीक्षा न्यायालय ने हानि-पूर्ति देते समय अस्वीकार कर दिया था।

नीचे के अपील के न्यायालय ने इस पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुंसिफ ने मुकदमें की सुनवाई ठीक ढंग से नहीं की है, पक्षों के अभिवचन का स्पष्टीकरण नहीं किया है और न तो इस मुकदमे में

ठीक ढंग से वादपद ही बने हैं। इसलिए नीचे के न्यायालय ने वाद को प्रतिप्रेषित कर दिया। प्रतीत होता है कि यह आदेश अपील के न्यायालय ने अपने अंतर्निहित अधिक्षेत्र के अंतर्गत दिया न कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के किसी विशिष्ट उपबंध के अंतर्गत।

हमारे समक्ष श्री सक्सेना के दो प्रमुख प्रतर्क हैं। पहला यह कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा १०७ के अंतर्गत प्रतिप्रेषण आ० ४१ नि० २३ तक ही सीमित है। और दूसरा यह कि यदि अपील का न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इसमें मुंसिफ के न्यायालय में ठीक अन्वीक्षा नहीं हुई है तो प्रतिप्रेषण का आदेश ठीक नहीं था।

पहले प्रतर्क के बारे में यह जान लेना आवश्यक है कि जब १६०८ की संहिता पारित हुई तो उस समय क्या स्थिति थी।

१८८२ के व्यवहार प्रक्रिया संहिता में वह धारा जो इस संहिता के आ० ४१ नि० २३ के समान थी वह धारा ५६२ थी। धा० ५६२ के बाद एक धारा ५६४ थी जिसमें दिया गया था कि अपील का न्यायालय किसी मुकदमें के द्वितीय निर्णय के लिये प्रतिप्रेषण धा० ५६२ के सिवा किसी अन्य उपबंध के अंतर्गत नहीं कर सकता। इस अधिकार के बारे में आधिकारिक निर्णय (आई० एल० आर० २३ इलाहाबाद १६७ और आई० एल० आर० ३३ कलकत्ता ६२७) हो चुके हैं कि उपर्युक्त उपबंधों के अलावा भी न्याय के लिये अपील का न्यायालय प्रतिप्रेषण कर सकता है और १८८२ की संहिता की उपर्युक्त धारा सर्वतःपूर्ण नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में व्य० प्र० सं० १६०८ पारित हुई। इसकी धारा १०७ के अंतर्गत प्रतिप्रेषण का अधिकार सामान्यतः दिया गया किंतु इसे कुछ निर्धारित प्रतिबंधों के अधीन रखा गया। इन प्रतिबंधों का तात्पर्य तद्अंतर्गत नियमों आ० ४१ नि० २३ और २५ से है जो पुरानी संहिता की धा० ५६२ और ५६४ का प्रतिरूप मात्र है। इसके अतिरिक्त एक नई धारा १५१ भी बनी।

अतः हमारे विचार से विधान मंडल का १६०८ की संहिता में यह विचार नहीं था कि प्रतिप्रेषण के अधिकार को आ० ४१ नि० २३ तक ही सीमित कर दिया जाय किंतु उसका विचार था कि उन सब अधिकारों को मान्यता दी जावे और अक्षुण्ण रखा जाय जो उसके पहले प्रयुक्त होते थे। धारा १०७ को धारा १५१ के साथ पढ़ना चाहिए जिसमें न्याय के लिये न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि वह अपने अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग करे। एक बात अवश्य है कि अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग न्यायालय को बहुत कम और न्याय के लिये करना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि अधिकार संहिता के विशिष्ट उपबंधों के प्रतिकूल न पड़े।

अतः निष्कर्ष निकलता है कि न्यायालय का प्रतिप्रेषण का अधिकार आ० ४१ नि० २३, और २५ तक ही सीमित नहीं है वरन् न्याय के उद्देश्य से न्यायालय अपने अंतर्भूत अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस कथन के समर्थन में कलकत्ता की एक रूलिंग (ए० आई० आर० १६२८ कलकत्ता ८१२ है और उसी से मिलती जुलती रूलिंग ए० आई० आर० १६४८ इलाहाबाद १६ (पूर्ण न्यायासन) है।

नीचे के अपील के न्यायालय ने अपने निर्णय में स्पष्ट कर दिया है कि मुंसिफ के न्यायालय में सुनवाई ठीक से नहीं हुई, अभिवचन का स्पष्टीकरण नहीं हुआ और वादपद नहीं बने। इन आधारों पर अपील के न्यायालय ने जो प्रतिप्रेषण का आदेश दिया वह न्याय के लिये सर्वथा उचित था। मुकदमें की परिस्थिति के अनुसार प्रतिप्रेषण का आदेश ठीक था।

श्री सक्सेना ने एक प्रतर्क यह रखा है कि जब अपील का न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इसमें वाद पद नहीं बने तो उसे चाहिए था कि स्वयं वादपद बनाकर उसपर निर्णय देती। उसके लिये यह ठीक नहीं था कि डिग्री निराकृत करके सारे वाद को ही प्रतिप्रेषित करे और इस प्रकार पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य देने का अवसर मिले।

ए० आई० आर० १६४१ अवध ५६१ में इस पर निर्णय हो चुका है कि प्रतिप्रेषण का अधिकार आ० ४१ नि० २३ और २५ तक ही सीमित नहीं है। न्याय के लिये अपील का न्यायालय आ० ४१ नि० २३, २५ के बाहर जाकर भी प्रतिप्रेषित कर सकता है और ऐसी परिस्थिति में न्यायालय पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य देने में कोई रुकावट नहीं डाल सकता।

पुनरीक्षण में बल नहीं है और यह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

—पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३३

न्यायमूर्ति बलराम उपाध्याय

बाबू तुलसीपत राम तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

नायब सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

हमीरपुर के द्वितीय अस्थायी सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १३-२-१६५३ के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ६६३।१६५४ दिनांक १३-२-१६५८

अवधि अधिनियम (१६०८), अनुच्छेद १८२ (३)—'निर्णय पर पुनर्विचार'—एक पक्षीय डिग्री को निराकृत न करनेवाला आदेश—उपवाक्य (३) लागू नहीं होता।

निर्णय—

ये डिग्रीदारों की अपीलें हैं जो निष्पादन कार्यवाही से आई हैं। जिन दो डिग्रियों का निष्पादन किया जानेवाला है उसमें से पहली २६-२-१६४१ को और दूसरी २६६-१६४७ को प्राप्त की गई थीं। प्रतिवादियों ने इन डिग्रियों के निराकरण के लिये प्रार्थनापत्र दिया। वे प्रार्थनापत्र अनुपस्थिति में उत्सर्जित कर दिए गए। इसलिए नए प्रार्थनापत्र निवेशित किए गए और पुनर्स्थापना के प्रार्थनापत्र २० जनवरी १६५७ तक विचाराधीन रहे जब कि उस दिन पुनर्स्थापना के प्रार्थनापत्र अंतिम रूप से अस्वीकार कर दिए गए।

डिग्रीदारों ने तब निष्पादन के लिये प्रार्थनापत्र दिया। एक प्रार्थनापत्र १-७-१६५१ को दिया गया और दूसरा २-७-१६५१ को इन दोनों मामलों में डिग्रीदारों ने कुर्की की प्रार्थना की थी। निर्णीत ऋणी ने इस पर आपत्ति की जिसमें प्रमुख बात थी कि निष्पादन का प्रार्थनापत्र कालबाधित है। नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया कि प्रार्थनापत्र कालबाधित है और प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया।

यहाँ अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि एक पक्षीय डिग्री के निराकरण के लिये जो प्रार्थनापत्र दिया गया वह पुनर्विचार (रेव्यू) प्रार्थनापत्र है इसलिए अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ (३) के अनुसार उक्त पुनर्विचार प्रार्थनापत्र पर जिस दिन अंतिम आदेश पारित हुआ अवधि (३ वर्ष) की गणना उस तिथि से होगी और इस प्रकार गणना करने पर निष्पादन के प्रार्थनापत्र कालबाधित नहीं हैं।

उपवाक्य (३) में है कि :—

'जहाँ निर्णय पर पुनर्विचार हुआ है, तो पुनर्विचार के निर्णय की तिथि।'

विद्वान वकील ने एकपक्षीय डिग्री के निराकरण को जो पुनर्विचार प्रार्थनापत्र कहा है वह ए० आई० आर० १६३७ पटना ३३७ के निर्णय पर आधारित है। पटना उच्चन्यायालय ने उक्त निर्णय में कहा था कि कोई न्यायालय अपने निर्णय को सिवा विशिष्ट आधारों पर किसी अन्य प्रकार से बदल नहीं सकता और वे विशिष्ट आधार 'पुनर्स्थापना' प्रार्थनापत्र में दिए रहते हैं। उसमें विद्वान न्यायाधीशों का निष्कर्ष था कि पुनर्विचार और पुनर्स्थापना के प्रार्थनापत्रों में कोई मौलिक अंतर नहीं होता। और उन सभी परिस्थितियों में जिनमें न्यायालय अपने निर्णय पर फिर विचार करता है अनुच्छेद १८२ (३) के अभिप्राय के अंतर्गत पुनर्विचार प्रार्थनापत्र हैं।

ऐसा प्रतीत होता है विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट नहीं किया गया कि जब कि 'पुनर्विचार' की स्थिति में न्यायालय स्वतः निर्णय का ही परीक्षण करता है और इस प्रकार वह निर्णय के तत्व पर आ जाता है कि निर्णय बदलने या निराकृत करने योग्य है कि नहीं—पुनर्स्थापना की दशा में न्यायालय को निर्णय के स्वतः तत्व पर विचार नहीं करना होता किंतु वह उन आधारों की पर्याप्तता को देखता है जो एकपक्षीय डिग्री के निराकरण के लिये दिखलाए गए हैं। पुनर्स्थापनावाली दशा में निर्णय पर फिर से विचार नहीं किया जाता।

न्यायालय केवल उन कारणों का परीक्षण करता है जो प्रार्थी द्वारा डिग्री के निराकरण के लिये उठाए गए हैं। भारतीय अवधि अधिनियम और व्यवहार प्रक्रिया संहिता दोनों प्रक्रिया विधि के भाग हैं और विधानमंडल ने इन दोनों का अधिनियम एक ही समय और एक ही सत्र में किया है। ऐसी परिस्थिति में इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि इन दोनों अधिनियम में पुनर्विचार और पुनर्स्थापना प्रार्थनापत्र की चर्चा अलग अलग की गई है। 'निर्णय पर पुनर्विचार' यह अभिव्यक्ति अवधि अधिनियम की धा० ५ और १२ तथा अनेक अनुच्छेदों में है और कोई कारण नहीं है कि यह माना जाय कि शब्द 'निर्णय पर पुनर्विचार' जो इन उपबंधों में प्रयुक्त हैं उनका अर्थ व्य० प्र० सं० आ० ४७ से भिन्न होता है।

बाद के अनेक निर्णयों में पटना उच्चन्यायालय के इस निर्णय पर विचार विमर्श किया गया था। ए० आई० आर० १६४१ पटना २१३ में न्यायमूर्ति फजल अली ने पहलेवाले निर्णय के 'पुनर्विचार' के अर्थ को नहीं माना था। उनका निष्कर्ष यह भी था कि यदि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिया गया है तो उक्त अनुच्छेद लागू नहीं होगा क्योंकि उस दशा में यह निर्णय पर पुनर्विचार नहीं होगा जैसा कि अनुच्छेद के शब्दों का अर्थ होता है। यही बात ए० आई० आर० १६५१ पटना १ में भी कही गई कि पुनर्विचार का जो अर्थ १६३७ पटना के वाद में किया गया था वह ठीक नहीं था।

ए० आई० आर० १६३२ इलाहाबाद ६०१ में इस न्यायालय का भी यही विचार था कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १८२ में 'निर्णय पर पुनर्विचार' शब्दों का अर्थ कड़ाई से निर्णय पर पुनर्विचार ही होना चाहिए। कोई ऐसा कारण नहीं दिखलाई पड़ता जिसके आधार पर अवधि अधिनियम के 'निर्णय पर पुनर्विचार' का अर्थ व्य० प्र० सं० के अर्थ से भिन्न माना जाय। यही निर्णय ए० आई० आर० १६५० इलाहाबाद ३२७ में भी हुआ था।

अतः अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कथन नहीं माना जा सकता। नीचे के न्यायालय अपने इस निर्णय में सर्वथा ठीक थे कि निष्पादन के प्रार्थनापत्र कालबाधित हैं।

अपीलें असफल होती हैं और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती हैं।

—अपीलें उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१६८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३४

पारसराम तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

अलीगढ़ नगरपालिका — उत्तरवादी

अलीगढ़ के अस्थायी व्यवहार और सत्र न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २७-७-१६५० के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० १७६५।१६५० दिनांक ५-१२-१६५७

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) आ० २६ नि० ६—निगम (कारपोरेशन) द्वारा निवेशित वाद में निगम के एक सदस्य ही कमिश्नर नियुक्त—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

प्रतिवादियों की यह द्वितीय अपील है। वादी

नगरपालिका ने प्रतिवादियों के अतिक्रमण को हटाने के लिये एक वाद निवेशित किया था जिसमें उसका कहना था कि प्रतिवादियों ने नगरपालिका के एक रास्ता पर घेरा डालकर अतिक्रमण किया है।

प्रतिवादियों ने वाद का विरोध इस आधार पर किया कि कोई अतिक्रमण रास्ता की भूमि पर नहीं हुआ है। प्रतिवादियों का कहना है कि विवादग्रस्त भूमि हमारे बगीची का एक भाग है जिसे हमने राजा प्रेम प्रताप सिंह से पट्टा पर लिया था।

अन्वीक्षा न्यायालय ने इस विषय पर प्रतिवेदन के लिये एक कमीशन जारी किया। वह कमीशन बाँके लाल वकील को मिला जो वकालत करते थे। श्री बाँके लाल वकील संयोगवश नगरपालिका के कमिश्नर निकले। कमिश्नर ने उस स्थान का निरीक्षण किया और नाप करके नकशा बनाया। प्रतिवेदन में उन्होंने लिखा कि प्रतिवादियों ने जो पट्टा लिया है वह स्वतः पूर्ण है और रास्ता पर जो घेरा है वह पट्टा की भूमि से अधिक है इसलिए प्रतिवादियों ने रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण किया है।

कमिश्नर के इस प्रतिवेदन तथा नकशे पर आपत्ति की गई और इनमें से एक आधार यह भी था कि कमिश्नर महोदय नगरपालिका के कमिश्नर हैं और इस प्रकार इस मुकदमे से वे हितबद्ध हैं अतः इस काम के लिये उनकी नियुक्ति ठीक नहीं हुई है। अन्वीक्षा न्यायालय ने इन आपत्तियों को नहीं माना और अन्य साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया कि रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण हुआ है। अपील करने पर नीचे के अपील के न्यायालय ने इसे उत्सर्जित कर दिया। इसके बाद यह अपील निवेशित की गई।

इस अपील में बहस की गई कि नगरपालिका का कमिश्नर इस मुकदमें में कमिश्नर नियुक्त हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने ही मुकदमे में न्यायाधीश हो गया अतः यदि नियुक्ति के समय आपत्ति न उठाई गई हो तब भी उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता। विद्वान् एकाकी न्यायाधीश ने इसे महत्वपूर्ण समझकर न्यायासन के समक्ष अभिदिष्ट कर दिया।

इसके उत्तर में यही कहना है कि कमिश्नर की नियुक्ति ठीक हुई है। कमिश्नर की नियुक्ति के समय कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। कमिश्नर ने नकशा बनाया और प्रतिवेदन दिया और उसके बाद न्यायालय ने जब नकशे और प्रतिवेदन का परीक्षण करने के बाद उपर्युक्त आदेश दिया तो अब जब प्रतिवेदन प्रतिवादी गण के विरुद्ध हुआ तो वे ऐसी आपत्ति नहीं उठा सकते।

अन्य साक्ष्यों से भी प्रमाणित होता है कि प्रतिवादी गण ने जितनी भूमि का पट्टा लिया उतनी भूमि उनके धारण में है। यह विवादग्रस्त भूमि पट्टे की भूमि से अधिक पड़ती है और यह रास्ता के भूभाग पर अतिक्रमण है।

द्वितीय अपील में बल नहीं है। तद्नुसार अपील उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्याया० १३५

राम कलप — वादी अपीलकर्ता

वि०

बंशीधर तथा अन्य — प्रतिवादी उत्तरवादीगण

व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८), आ० २२, नि० ५ और धारा ११—विधिक प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन के संबंध में आदेश की अंतिमता—

न्यायमूर्ति डी० एन० राय—

इस न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ निर्णयों में विरोध होने के कारण वादी की यह द्वितीय अपील न्यायासन को अभिदिष्ट हुई है। यह वाद दो गाँवों की कुछ जमींदारी की संपत्ति के धारण के लिये निवेशित किया गया है। पहले यह संपत्ति रामसमुझ की थी। रामसमुझ ने प्रतिवादियों के पक्ष में एक उपहार विलेख लिखा था। बाद

में रामसमुझ ने उस उपहार के विलेख को निराकृत करने के लिये एक वाद निवेशित किया कि वह उपहार का विलेख धोखा से लिखा गया है। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद में डिग्री दे दी। अपील करने पर अपील के न्यायालय ने डिग्री उलट दिया और वाद उत्सर्जित कर दिया। इस उत्सर्जन के आदेश के विरुद्ध लखनऊ में अवध चीफ कोर्ट में द्वितीय अपील निवेशित की गई। द्वितीय अपील जब विचाराधीन रही उसी बीच रामसमुझ की मृत्यु हो गई। प्रश्न उठा कि अपील को चालू रखने के लिये विधिक प्रतिनिधि के लिये किसकी प्रतिस्थापना की जाय। प्रस्तुत अपीलकर्ता रामकलप पांडे रामसमुझ के विधिक प्रतिनिधि के रूप में आया और इस संबंध में उसका कहना था कि रामसमुझ के इच्छापत्र द्वारा वह उसका विधिक प्रतिनिधि है। यह इच्छापत्र रामसमुझ की मृत्यु के केवल ६ दिन पहले का था। आ० २२ नि० ५ की कार्यवाही में रामकलप की प्रतिस्थापना अपील के स्मृतिपत्र पर उसके विधिक प्रतिनिधि के रूप में की गई। इस द्वितीय अपील के निर्णय द्वारा नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय उलट दिया गया और अन्वीक्षा न्यायालय का निर्णय पुनर्स्थापित हुआ।

राम कलप ने एक वाद पुनः निवेशित किया और उसमें उसका कहना था कि प्रतिवादियों ने मुझे धारण से हटा दिया है इसलिए धारण वापस मिलना चाहिए। अपने अधिकार को उसने उसी पहलेवाले इच्छापत्र के अंतर्गत बतलाया था। प्रतिवादियों ने इस वाद में जब इच्छापत्र की वैधता पर ही आपत्ति की तब उसके उत्तर में वादी ने कहा कि वह अब प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) हो गया है। नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया कि वह प्राङ् न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता और इच्छापत्र की वैधता पर विचार करके उन्होंने वाद उत्सर्जित कर दिया और अपील भी।

वादी की ओर से ए० आई० आर० १९२६ इलाहाबाद ४३६ का अभिदेश किया गया। इस रुलिंग में यह निर्णय हुआ था कि जब मुकदमे की सुनवाई के बीच में ही कोई पक्ष मर जाता है तो न्यायालय उसके विधिक प्रतिनिधि का निश्चय करके उसकी प्रतिस्थापना कर सकता है तथा इसके लिये किसी अलग वाद की आवश्यकता नहीं है। और न्यायालय के इस निर्णय का बंधन दोनों पक्षों पर होगा तथा यह निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) होता है। किंतु आई० एल० आर० २८ इलाहाबाद १०६ में इससे विरुद्ध निर्णय हुआ था कि विधिक प्रतिनिधि की प्रतिस्थापना के लिये जो आदेश पारित होता है वह उस प्रश्न का अंतिम निर्वर्तन नहीं करता वरन् वह जाँच संक्षेपतः (समरी) होती है और इसलिए उसका निर्णय प्राङ्न्याय नहीं होता। इन दो विरुद्ध निर्णयों के पश्चात् ए० आई० आर० १९३६ इलाहाबाद ४११ का निर्णय हुआ जिसमें आई० एल० आर० २८ इलाहाबाद १०६ का निर्णय मान्य हुआ कि उपर्युक्त कार्यवाही के संबंध में पारित आदेश प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता। इसमें १९२६ इलाहाबाद ४३६ से विरुद्ध मत प्रकट किया गया।

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायासन का निर्णय है कि विधिक प्रतिनिधि का वाद के चालू रखनेवाला प्रश्न ऐसा प्रश्न नहीं है जिसको कहा जा सके कि स्वतः वाद के निर्णय के लिये वह प्रश्न उठा है। न्यायासन ने स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया कि ऐसा निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता (२० इंडियन केसेस ६५०)। नागपुर का एक निर्णय इसी अभिप्राय का था कि उपर्युक्त प्रकार का निर्णय डिग्री नहीं है और वह प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होता (ए० आई० आर० १९२१ नागपुर २३)। लाहौर (ए० आई० आर० १९३४ लाहौर ४६५) के निर्णय में यह कहा गया था कि आ० २२ नि० ५ की कार्यवाही में यदि किसी को किसी पक्ष का विधिक प्रतिनिधि नहीं माना गया है तो इसका बंधन नहीं होता और मामला पुनः उठाया जा सकता है और पहला निर्णय प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) नहीं होगा।

अपने उच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालयों के सबसे अधिक निर्णय वादी के विरुद्ध हुए हैं कि वह प्राङ्न्याय नहीं होता। इस मुकदमे में इच्छापत्र के निष्पादन एवं अभिप्रमाणन (एक्जीक्यूशन एंड अटे-

स्टेशन) का प्रश्न उठा था जिस पर वादी ने कोई साक्ष्य नहीं दिया । इसलिए नीचे के दोनों न्यायालयों ने जो वाद और अपील का उत्सर्जन किया है वह ठीक है। आ० २२ नि० ५ में विधिक प्रतिनिधि का विनिश्चयन संक्षेपतः (समरी) कार्यवाही है अतः इच्छापत्र की वैधता का जो यहाँ स्पष्ट प्रश्न उठा है उस पर यह प्राङ्न्याय नहीं होता । वादी मृतक का उत्तराधिकारी होकर संपत्ति का धारण नहीं पा सकता ।

एक प्रश्न यह भी उठा था कि इच्छापत्र में विवाद-ग्रस्त संपत्ति आती है कि नहीं जिसका विवरण वाद पत्र में है। नीचे के दोनों न्यायालयों ने निर्णय दिया था कि इच्छापत्र में यह संपत्ति नहीं आती । यहाँ उपर्युक्त निष्कर्ष के कारण इस प्रश्न पर विचार करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं । परिणामतः अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है ।

—अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १३७

दुर्गा प्रसाद — अपीलकर्ता

वि०

स्वामी अविद्यानंद गुरु इत्यादि — उत्तरवादी

एफ० ए० एफ० ओ० सं० ३३६।१६५५, दिनांक १२-३-१६५८

न्यायालय शुल्क अधिनियम (१८७०), धा० ७ (आई०), १६ और अनुसूची १ अनुच्छेद १— लिखित प्रतिवाद, अभिवचन और प्रतिसादन (सेट आफ)—देय न्यायालय शुल्क—(व्य० प्र० सं० (१६०८) आ० ८ नि० ६)

निर्णय—न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा ६ ए० के अंतर्गत यह अपील है ।

वादी ने प्रतिवादी को पत्थर की गिट्टी भेजा था और उसी के मूल्य के लिये एक वाद निवेशित किया । प्रतिवादी ने अपने प्रतिवाद ने कहा था कि वादी ने पत्थर की गिट्टी नहीं भेजा इसलिए उसे १३४५६ रु० ३ आना की हानि हुई । अतः उसने प्रतिसादन (सेट आफ) की अभ्यर्थना की । न्यायालय ने इस प्रतिसादन (सेट आफ) पर न्यायालय शुल्क माँगा । प्रतिवादी ने इस पर आपत्ति की । पक्षों की बात सुनने के पश्चात् व्यवहार न्यायाधीश ने प्रतिवादी को १३,४५६ रु० पर यथामूल्य शुल्क देने को कहा । इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है ।

कहा गया कि हानिपूर्ति की माँग करते समय प्रतिवादी प्रतिसादन (सेट आफ) नहीं माँग रहा था वरन् वह समायोजन (ऐडजस्टमेंट) माँग रहा था । मैं इसे समयोजन (ऐडजस्टमेंट) या भुगतान (पेमेंट) नहीं मानता वरन् इस मुकदमें में जो पत्थर की गिट्टी नहीं भेजी गई और इस प्रकार जो हानि हुई उसके आधार पर यह प्रतिसादन (सेट आफ) हैं। इस मुकदमें में वादी की माँग यदि स्वीकार कर ली गई होती और प्रतिवादी के यहाँ वादी का जो रुपया चाही था उसका समायोजन (ऐडज़स्टमेंट) इस लेखा में हो गया होता तब उस दशा में परिस्थिति दूसरी हो सकती थी । किंतु हानिपूर्ति का वादमूल (काज आफ ऐक्शन) सर्वथा भिन्न होने से यह प्रतिसादन का स्पष्ट आधार होता है जो इस न्यायालय के न्यायासन के एक निर्णय (ए० आई० आर० १६५०, २३७) के समान है ।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील ने ए० आई० आर० १६३७ लाहौर ६२ की निर्भरता ली किंतु मेरे विचार से उस मुकदमें के तथ्य इस मुकदमें से सर्वथा भिन्न थे । मेरे मतानुसार नीचे के न्यायालय का निर्णय ठीक था । इस अपील में बल नहीं है तद्नुसार यह उत्सर्जित की जाती है । मुकदमें की परिस्थिति को देखते हुए परिव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है ।

शीघ्र निर्वर्तन के लिये अभिलेख नीचे के न्यायालय में वापस कर दिए जाँय।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० १३८

न्यायमूर्ति डी० एन० राय और न्यायमूर्ति ए० एन० मुल्ला में मतभेद होने पर

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू

गोकुल — अपीलकर्ता

वि०

राज्य — उत्तरवादी

पीलीभीत के सत्र न्यायाधीश के निर्णय दिनांक १४-१-१६५५ के विरुद्ध आपराधिक अपील सं० ४४१। १६५५ दिनांक १३-१२-१६५७

(अ) दं० प्र० संहिता (१८६८) धारा ४१६ ४२०—बंदीगृह की अपील के संक्षेपतः उत्सर्जन के बाद सामान्य क्रम में अपील

(ब) दं० प्र० संहिता (१८६८), धा० ५६१ ए०—निर्णय की व्याख्या करने का अधिकार—

(स) साक्ष्य अधिनियम (१८७२) धा० ६—पहचान (आइडेंटिफिकेशन) का मूल्य (दं० प्र० सं० (१८६८) धा० ३६७)—पहचान का प्रदर्शन—व्यक्तियों का मिलाया जाना—

न्यायमूर्ति मुल्ला और न्यायमूर्ति राय में मतभेद होने पर यह अपील सुनवाई के लिये आई है।

गोकुल अपीलकर्ता की दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा ३६५ के अंतर्गत १४ जनवरी १६५५ को हुई। उसे ५ वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया गया। उसने जेल से दं० प्र० सं० की धारा ४२० के अंतर्गत अपील

निवेशित किया। न्यायालय नियम भाग ३, अध्याय १८ नि० १३ (२) के अंतर्गत यह अपील माननीय न्यायमूर्ति बेग के समक्ष प्रस्तुत की गई।

१६ मार्च १६५५ को उसी दोषसिद्धि के विरुद्ध दं० प्र० सं० की धारा ४१६ के अंतर्गत वकील द्वारा एक अपील निवेशित की गई। इस अपील के बारे में कार्यालय ने लिखा कि गोकुल की ओर से जेल अपील हुई है और स्वीकृति के निमित्त वह माननीय न्यायमूर्ति बेग के समक्ष रखी गई है जो अभी तक वापस नहीं आई है। गोकुल की ओर से यह अपील दूसरी है और १६-३ ५५ तक अवधि के भीतर है।

इसके बाद रजिस्ट्रार ने लिखा कि आज प्रस्तुत की गई और आदेश के लिये २२-३-१६५५ को न्यायालय के समक्ष रखा जाय।

कार्यालय ने एक दूसरा प्रतिवेदन दिया कि माननीय न्यायमूर्ति बेग द्वारा जेल अपील उत्सर्जित कर दी गई है।

२६ मार्च १६५५ को यह अपील माननीय न्यायमूर्ति जेम्स के समक्ष आदेश के लिये रखी गई और उन्होंने आदेश दिया कि—"अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि जेल अपील पहले ही सरसरी ढंग पर उत्सर्जित हो चुकी है और यह अपील सामान्य क्रम में निवेशित की गई है। यह स्वीकृत होती है। उपयुक्त समय पर इसकी सुनवाई तत्व पर होगी।

न्यायमूर्ति बेग के जेल अपील के निर्णय पर मुहर ३० मार्च १६५५ को हुई। वकील द्वारा निवेशित अपील माननीय न्यायमूर्ति मुल्ला के समक्ष सुनवाई के लिये आई। उन्होंने इसका अभिदेश विभागीय न्यायासन को कर दिया क्योंकि अनेक विचार से निर्णय के लिये निम्नलिखित प्रश्न उठे थे :—

१—क्या दं० प्र० सं० की धा० ४२१ का परंतुक, जो दं० प्र० सं० की धारा० ४१६ और धा० ४२० में की गई अपीलों में विभेदकरण करता है औचित्यपूर्ण है या यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ का यह उल्लंघन करता है?

२—उच्च न्यायालय को क्या यह अधिकार है कि अभियुक्त की पहली जेल अपील के सरसरी ढंग पर अस्वीकार हो जाने के बाद वकील द्वारा निवेशित दूसरी अपील स्वीकार करे और सुनवाई करे ?

३—क्या यह ठीक कि है उच्च न्यायालय का निर्णय तब तक निर्णय नहीं माना जाता जब तक कि उच्च-न्यायालय की मुहर इस पर लग न जाय ?

४—क्या उच्च न्यायालय दं० प्र० सं० की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है ?

विभागीय न्यायासन के समक्ष जब अपील पहुँची तो वहाँ माननीय न्यायाधीशों में मतभेद रहा। पहले प्रश्न का उत्तर माननीय मुल्ला ने दिया कि दं० प्र० सं० की धारा ४१६ का परंतुक भारतीय संविधान के शक्ति परस्तात् (अल्टाव्हारस) है किंतु उनका विचार था कि प्रश्नगत् भाग को उसमें से अलग किया जा सकता है और अलग करने पर यह वैध हो सकता है। माननीय राय का विचार था कि धा० ४१६ के परंतुक का कोई भाग संविधान के शक्ति परस्तात् नहीं है।

प्रश्न २ और ३ पर दोनों न्यायाधीशों का एक मत रहा कि जेल की अपील अस्वीकृत होने के बाद उच्च न्यायालय को यह अधिकार नहीं है कि वकील द्वारा निवेशित दूसरी अपील की सुनवाई करे। इस प्रश्न पर भी दोनों न्यायाधीशों का एक मत था कि उच्च न्यायालय के निर्णय की वैधता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उच्च न्यायालय की मुहर हो। चौथे प्रश्न पर न्यायमूर्ति मुल्ला का विचार था कि कुछ परिस्थितियों में उच्च-न्यायालय धा० ५६१ ए० के अंतर्गत अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है, न्यायमूर्ति राय का विचार इसके विरुद्ध था।

इस प्रकार विचार व्यक्त करने के बाद दोनों न्याया-धीश विरुद्ध निष्कर्ष पर पहुँचे। न्यायमूर्ति मुल्ला का निष्कर्ष था कि अभियुक्त को संदेह का लाभ देकर छोड़ देना चाहिए; न्यायमूर्ति राय का निष्कर्ष था कि अपील उत्सर्जित कर देने योग्य है।

इस प्रकार मतभेद होने पर यह माननीय मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष एक तीसरे न्यायाधीश के विचार के लिये भेजे जाने के निमित्त रखी गई।

जब इस अपील की सुनवाई हमारे समक्ष हुई तो उस समय न्यायमूर्ति वेग के उस निर्णय–आदेश की व्याख्या का प्रश्न उठा जो उन्होंने जेल अपील को उत्सर्जित करते समय पारित किया था। उनका आदेश इस प्रकार था:—'उत्सर्जित। जब तक अवधि बीत न जाय मुहर का लगाना रोक रखा जाय।' (डिसमिस्ड। डिले सील पेंडिंग एक्सपायरी आफ लिमिटेशन।)

यह बात दोनों पक्षों के वकीलों को मान्य हुई कि अपील सर्वथा उत्सर्जित नहीं कर दी गई है वरन् उत्सर्जन के साथ कुछ प्रतिबंध है और वह प्रतिबंध है कि यो तो अपील उत्सर्जित की जाती है किंतु इस पर मुहर का लगाना अवधि के समय तक रोक रखा जाय। विद्वान् महाधिवक्ता ने इसका अर्थ यही लगाया है कि यह उत्सर्जन अभी पूर्ण नहीं है वरन् यदि अवधि के भीतर कोई दूसरी अपील वकील द्वारा निवेशित हो जाती है तो ऐसी दशा में उत्सर्जन का आदेश प्रभावशून्य हो जायगा और इस दूसरी अपील की सुनवाई उसके तत्व पर होगी। अतः इस मामले में मुहर का लगाया जाना दूसरी अपील की सुनवाई में बाधक नहीं होता क्योंकि अवधि के भीतर दूसरी अपील निवेशित हुई है। मेरे विचार से उत्सर्जन के बादवाले ये शब्द व्यर्थ ही नहीं जोड़े गए हैं वरन् इन शब्दों से न्यायमूर्ति वेग का अभि-प्राय था कि यदि दूसरी अपील निवेशित हो तो उसकी सुनवाई की जाय। इसीलिए माननीय न्यायमूर्ति जेम्स ने दूसरी अपील स्वीकार किया था और आदेश दिया था कि तत्व पर इसकी सुनवाई हो। ३ ए० एल० जे० ६१८ में यह न्यायालय ऐसी परिस्थिति में दूसरी अपील सुनने के पक्ष में था और ए० आई० आर० १६३४ इलाहाबाद ६८८ में यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया था कि उपर्युक्त परिस्थिति में "पहली अपील के उत्सर्जन के पश्चात् दूसरी अपील जो वकील द्वारा विवेशित की गई है उसकी सुनवाई में कोई बाधा नहीं है।

जिस विषय पर न्यायमूर्ति मुल्ला और न्यायमूर्ति राय में मतभेद हुआ था वह प्रश्न है कि किसी परिस्थिति विशेष में उच्च न्यायालय अपने ही निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है कि नहीं। किंतु यहाँ हमें पुनर्विचार के इस अधिकार संबंधी उलझनवाले प्रश्न पर विचार नहीं करना है वरन् यहाँ हमें उस निर्णय का उपयुक्त अर्थ लगा कर उसके प्रभाव में लाना है। मेरे विचार से दं० प्र० सं० की धा० ५६१-ए० में न्यायालय को अपने ही निर्णय के अर्थ लगाने का पूरा अधिकार है।

मेरे विचार से जेल अपील निवेशित करने के बाद वकील द्वारा दूसरी अपील के निवेशित करने में कोई रुकावट नहीं है। दूसरी अपील यदि कालबाधित नहीं है तो दोनों अपीलों को मिलाकर एक साथ सुनवाई होगी। अपीलकर्ता यदि चाहे तो जेल की अपील हटा सकता है और दूसरी अपील की कार्यवाही चालू रख सकता है। उस दशा में बात अवश्य दूसरी हो सकती है जब जेल की पहली अपील अंतिम रूप से, बिना प्रतिबंध के सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी गई हो और अवधि के भीतर अपीलकर्ता वकील द्वारा दूसरी अपील निवेशित करके दूसरे निर्णय की माँग करता है।

अतः मेरे विचार से न्यायमूर्ति बेग के उक्त निर्णय का अर्थ यही था कि यदि अवधि के भीतर सामान्य क्रम में दूसरी अपील निवेशित होती है तो वह उत्सर्जन का आदेश प्रभावशून्य हो गया हुआ मान लिया जायगा और दूसरी अपील की सुनवाई उसके तत्व पर होगी।

अपील के तत्व पर विचार करने पर प्रतीत यही होता है कि जब डकैती रात में सोते समय पड़ी, डाकू संख्या में अधिक थे और अग्न्यस्त्र से सज्जित थे, राधिका देवी पहले ही घायल हो चुकी थी, कोई प्रमाण ऐसा नहीं है जिससे प्रतीत हो कि प्रकाश लगातार आता रहा अतः ऐसी भयानक परिस्थिति में एवं घायल होने पर केवल रुक रुक कर होनेवाले टार्च के प्रकाश में ठीक पहचान करना कठिन था। संदेह इस बात से और भी बढ़ जाता है कि पहचान की कार्यवाही घटना के बहुत दिन बाद हुई और कनटूटे होने के लिये पहचान के प्रदर्शन में कोई सावधानी नहीं बरती गई। उन्होंने संदेहवाले और न संदेहवाले दोनों को बराबर बराबर संख्या में पहचाना। पहचान के प्रदर्शन में गलत पहचान की संभावना बराबर बनी रहती है।

पूरी स्थिति समझने पर यही आता है कि गोकुल की गलत पहचान करने की संभावना सर्वदा रही है। इन कारणों से गोकुल को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए। तद्नुसार अपील स्वीकार की जाती है, उसकी दोष सिद्धि निराकृत की जाती है और उसको छोड़ देने का निर्देश किया जाता है।

मैं समझता हूँ कि यह मुकदमा विभागीय न्यायासन को वापस चला जाना चाहिए। ऐसा कर दिया जाय।

डी० एन० राय और ए० एन० मुल्ला न्यायमूर्ति गण —

मतभेद होने पर यह मामला संमति के लिये एक तीसरे विद्वान् न्यायाधीश के समक्ष गया था। उनकी संमति अब प्राप्त हो चुकी है। संमति के विचार से हम यह अपील स्वीकार करते हैं, दोष शिद्धि और दंडादेश निराकृत करते हैं और उस पर लगाए गए आरोपों से हम उसे छोड़ देते हैं। वह इस समय जमानत पर है। उसे आत्म समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १४०

बनारस के व्यवहार न्यायाधीश का व्यवहार अपील सं० १५७।१६४५ की डिग्री और आदेश दिनांक १४-४-५३ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० ७६१। १६५३ (२४ सितंबर १६५७ को निर्णीत)

मकबूल आलम तथा अन्य — प्रार्थीगण
जावद हुसेन तथा अन्य — विपक्षीगण

अवधि अधिनियम, १६०८, धारा ५ की व्याप्ति- कार्यवाही स्थगित रही और जिस दिन स्थगन का

आदेश उन्मुक्त हुआ उस दिन प्रार्थनापत्र दिया गया देर क्षमा करने का यह उपयुक्त आधार है—

न्यायमूर्ति भार्गव –

नीचे के अपील के न्यायालय में एक अपील चल रही थी उसी से यह प्रतिवादी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। श्रीमती काशिमुन्निसा अपील कर्ता सं० ५ मर गई। अब्दुल हसन उत्तरवादी सं० ४ भी मर गया। जहाँ तक अपील कर्ता सं० ५ का संबंध है उसके बारे में कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि उसके उत्तराधिकारी पहले से ही अभिलेख पर थे। अब्दुल हसन के उत्तराधिकारी पर नहीं थे। वह १६४७ में—किसी समय मरा और प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र १८-२-१६५२ को दिया गया। अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र भी दिया गया कि अब्दुल हसन की मृत्यु का तथ्य ज्ञात नहीं हुआ था इसलिए अपीलकर्ता को धारा ५ का लाभ इस आधार पर दिया जाना चाहिए। विद्वान् व्यवहार न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि जब अपील स्थगित थी तो अपीलकर्ता को यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि उसकी मृत्यु का समाचार मालूम नहीं था। अपील प्रार्थनापत्र देने के दिन तक स्थगित थी।

इस परिस्थिति में विद्वान व्यवहार न्यायाधीश का विचार था कि अपील का उपशमन (अवेटमेंट) नहीं हुआ जब कि कार्यवाही स्थगित थी तो अपील कर्ता को यह अधिकार था कि स्थगन के आदेश की समाप्ति के बाद प्रार्थनापत्र दें। उन्होंने गुरुबक्स सिंह विरुद्ध आशा सिंह ए० आई० आर० १६५२ पेप्सू ४० पर निर्भर किया।

मेरे समक्ष इस पुनर्निरीक्षण में बहस की गई कि नीचे के अपील के न्यायालय का यह विचार गलत था। यदि कार्यवाही स्थगित थी तो विद्वान वकील का कहना है कि प्रतिस्थापना की कार्यवाही स्थगित नहीं थी। यह बात मानने योग्य नहीं है। क्योंकि एक बार जब कार्यवाही स्थगित हो चुकी है तो मुकदमे की सभी कार्यवाही स्थगित रहेगी। यों तो अपीलकर्ता प्रतिस्थापना का प्रार्थनापत्र दे सकता था किंतु वह भी विचाराधीन ही रहता कारण कि इस बीच न्यायालय उस पर कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था। कुछ भी हो जब कार्यवाही स्थगित थी तो अवधि अधिनियम की धारा ५ के अंतर्गत विलंब को क्षमा करने के लिये यह आधार उपयुक्त है। ऐसी परिस्थिति में पुनरीक्षण में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता।

तद्नुसार यह प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है किंतु परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

स्थगन का आदेश उन्मुक्त होता है। ४ वर्ष से यह प्रार्थनापत्र विचाराधीन है। इसके अभिलेख नीचे के न्यायालय में शीघ्रातिशीघ्र निर्णय के लिये भेज दिए जायँ।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद
उ० न्या० १४१

गुर्तू और राय न्यायमूर्तिगण

व्यवहार न्यायाधीश बरेली के आदेश दिनाक १३-१-१६५५ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० २१३।१६५५
(३० जनवरी १६५८ को निर्णीत)

राधेलाल — वादी अपीलकर्ता
वि०
रामकिशोर — प्रतिवादी उत्तरवादी

(अ) पुनरीक्षण—अभिवचन (प्लिडिंग्स) का संशोधन अस्वीकृत होने पर पुनरीक्षण नहीं होता—१६३६ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ७७६ पूर्ण न्यायासन अभिदिष्ट।

(ब) अभिवचन (प्लीडिंग्स) के नियम में यह नहीं है कि विपक्षी जो कहे उसको पहले से ही जान कर तब बात कही जाय—अभिवचन के सामान्य सिद्धांत—

न्यायमूर्ति राय—

वादी के वादपत्र का संशोधन अस्वीकार कर दिया गया था उसी के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

इस न्यायालय में पूर्ण न्यायासन के एक निर्णय श्रीमती सूरजपाली वि० आर्य प्रतिनिधि १९३९ ए० डब्ल्यू० आर (उच्च न्यायालय) ७७९ के अनुसार एक आरंभिक आपत्ति उठाई गई कि अभिवचन का संशोधन अस्वीकार करने पर इसके विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित नहीं किया जा सकता। इस आरंभिक आपत्ति में बल है। किंतु मुकदमे की परिस्थिति से आवश्यकता यही प्रतीत होती है कि प्रतिवादी के लिखित प्रतिवाद के उत्तर में वादी प्रत्योत्तर (रेप्लिकेशन) प्रार्थनापत्र निवेशित कर सकता है और प्रतिवादी भी प्रत्युक्ति (रीज्वाइडर) निवेशित कर सकता है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं कि भू स्वामी दीपचंद ने वादी के कथनानुसार अपनी संपत्ति इच्छापत्र द्वारा दे दी थी। वादी ने वाद निवेशित किया था कि हमलोग उसके प्रत्यावर्ती हैं। प्रतिवाद में एक विक्रय विलेख की चर्चा की गई जिसके द्वारा कहा गया कि प्रतिवादियों के पक्ष में संपत्ति का हस्तांतरण सर्वथा ठीक था। जब विक्रय विलेख की चर्चा की गई तो वादी को यह दिखलाने की आवश्यकता पड़ी कि यह बेनामी है और वास्तविक स्वामी दीपचंद था और यदि दीपचंद वास्तविक स्वामी न भी हो तो उत्तराधिकार के क्रम में वादी आता है। इसी बात को दिखलाने के लिये वाद पत्र के संशोधन की आवश्यकता पड़ी। इसी के लिये संशोधन प्रार्थनापत्र दिया गया था। वादी यह जानता नहीं था कि विक्रय विलेख प्रतिवादी के पास है इसलिए वादी पहले ही इसके बारे में कुछ लिख नहीं सकता था। यह नियम अभिवचन में है भी नहीं। कुछ भी हो प्रतिवादी के लिखित प्रतिवाद निवेशित करने के बाद जब विक्रय विलेख न्यायालय में आता तो वादी प्रत्योत्तर प्रार्थनापत्र में यह कह सकता है कि वह लेन देन बेनामी है और वास्तविक स्वामी दीपचंद है।

आ० ६ नि० ७ में है कि बिना संशोधन के अभिवचन में कथन के बारे में कोई नया आधार नहीं उठाया जा सकता या ऐसा तथ्य नहीं लाया जा सकता जो पहले के अभिवचन से असंगत पड़ता हो। अभिवचन के सामान्य सिद्धांत इस प्रकार है :—

वादी अपनी अभ्यर्थना के अभिकथन द्वारा उन सारभूत तथ्यों की चर्चा करता है जिन पर वह अपने मुकदमें के लिये निर्भर करता है।

२—प्रतिवादी उसके उत्तर में प्रतिवाद रखता है जिसमें वह सभी या निम्नलिखित उपायों में से कोई काम में ला सकता है:—

पहला, वह वादी के कथन के तथ्य या तो नकार सकता है या तो उसे स्वीकार करने से इनकार कर सकता है।

दूसरा, वह अपनी गलती स्वीकार कर सकता है या तथ्य को मान सकता है और उसके प्रभाव को दूर करने के लिये नए तथ्य की चर्चा कर सकता जो कि उसका उत्तर होता है।

तीसरा वह वादी के अभिकथन के तथ्यों को मान सकता है और उसके विधिक प्रभाव को निर्धारित करने के लिये विधि का प्रश्न उठा सकता है।

यदि प्रतिवादी इन उपायों में से पहला और तीसरा उपाय काम में लाता है तो तुरत पक्षों के बीच में तथ्य एवं विधि का प्रश्न उठ जाता है।

(३) यदि प्रतिवादी इन उपायों में से दूसरा उपाय काम में लाता है तो वादी उत्तर दे सकता है कि:—

पहला, प्रतिवादी द्वारा नए तथ्यों को नकार जाय या, दूसरा, उनको मानकर अन्य तथ्यों की चर्चा कर कर सकता है जो उसके प्रभाव को समाप्त कर दे या, तीसरा, उसके प्रभाव के लिये विधि का प्रश्न उठावे।

(४) जब वादी दूसरे प्रकार के उत्तर की शरण लेता है और यह कि जब दोष स्वीकृति और टाल मटोल द्वारा उत्तर देता है तो उस दशा में प्रतिवादी को प्रत्युक्ति (रीज्वाइंडर) का उपाय उपलब्ध है।

इस मुकदमें प्रतिवादी ने अधिकार के प्रश्न की चर्चा की। इसलिए ऐसी परिस्थिति में वादी प्रत्योत्तर (रेप्लिकेशन) द्वारा वह बात कह सकता है जिससे कि वह सफल हो जैसे कि संपत्ति का वास्तविक स्वामी

याकूब अली ने इस आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित किया। अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया कि अन्वीक्षा न्यायालय जो धारण का प्रमाण चाहता था वह गलत था। धारा २० में अधिवासी होने के लिये केवल अभिलिखित अध्यासी होना ही पर्याप्त है, धारण की आवश्यकता नहीं है। अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया था कि यहाँ याकूब अली १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी था और ३० जून १९४८ के पश्चात् उसका अधिनिष्कासन हुआ है इसलिए धाराएँ २०।२३२ के अंतर्गत धारण वापस पाने का प्रार्थनापत्र स्वीकार करना चाहिए। अतिरिक्त आयुक्त का यह भी कहना था कि धारा २० की व्याख्या ४ इसमें लागू नहीं हो सकती।

लीलाधर तब इस द्वितीय अपील में आए। इस अपील में उनका कहना है कि :—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने याकूब अली के धारण की प्रकृति पर विचार नहीं किया। याकूब अली का नाम कागजों में न्यायालय के आदेश से आया और वह आदेश जब अपील से निराकृत हो गया तो धारा २० के अभिप्राय के अनुसार याकूब अली अभिलिखित अध्यासी नहीं कहा जा सकता और वह इस अधिकार के बल पर धारण वापस भी नहीं पा सकता। १९५६ ए० एल० जे० ३५१ में निर्णय हुआ था कि १३५६ की प्रवृष्टि सामान्य क्रम में पटवारी द्वारा होनी चाहिए किसी न्यायालय की उस डिग्री द्वारा नहीं जो बाद में चलकर उलट दी गई हो। १९५६ आर० डी० १५० में राजस्व मंडल ने यही निर्णय दिया था कि अधिवासी अधिकार प्रदान करने के लिये १३५६ फ० की प्रवृष्टि विधि की दृष्टि में प्रवृष्टि हो।

२—व्य० प्र० सं० की धारा १४४ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र में याकूब अली एक पक्ष थे किंतु उन्होंने उसमें अपने अधिवासी अधिकार की चर्चा नहीं की।

३—द्वितीय अपील के बारे में कहना है कि जब अनुसूची का संशोधन हुआ उसके बाद विद्वान् आयुक्त ने इसमें निर्णय दिया इसलिए इसमें द्वितीय अपील हो सकती है।

पहली आपत्ति के विषय में याकूब अली की ओर से कोई प्रमाण नहीं दिया गया। अपील के दूसरे आधार के बारे में याकूब अली का कहना है कि १९५६ ए० एल० जे० ३२५ में निर्णय हुआ था कि अधिवासी के अधिकार पर धारण वापस पाने के लिये प्रार्थी को अधिनियम के अंतर्गत अभिदिष्ट न्यायालय के समक्ष प्रार्थनापत्र देना चाहिए और तत्संबंधी नियमों का पालन करना चाहिए। अतः उत्तरवादी का कहना है कि यदि १४४ की कार्यवाही के अंतर्गत अधिवासी अधिकार की चर्चा नहीं उठाई गई तो बाद में धारा २०।२३२ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने में कोई रुकावट नहीं है और ठीक कार्यवाही यही है भी।

द्वितीय अपील के बारे में उत्तरवादी का कहना है कि अपील का अधिकार निहित अधिकार है। इसलिए यदि वाद निवेशित करने की तिथि को द्वितीय अपील निवेशित करने का कोई विधान नहीं था तो संशोधन के बाद ही निर्णय क्यों न हुआ हो द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

इसके उत्तर में अपीलकर्ता ने बतलाया कि अपील के स्मृतिपत्र पर एक नोट भी है कि यदि किसी कारण से अपील न हो सकती हो तो इसे पुनरीक्षण ही माना जाय। उत्तरवादी की आपत्ति है कि इस अपील को पुनरीक्षण नहीं माना जाना चाहिए कारण कि यदि अपीलकर्ता पहले से ही जानता था कि अपील निवेशित नहीं हो सकती और यह जानते हुए भी उसने अपील निवेशित किया तो इसे पुनरीक्षण में परिवर्तित नहीं करना चाहिए। इसके लिये उसने १९५६ आर० डी० ३४५ का सहारा लिया जिसमें कहा गया था कि अपील को पुनरीक्षण में परिवर्तित करने का अधिकार न्यायालय के स्वविवेक पर निर्भर करता है। अतः ऐसी परिस्थिति में न्यायालय को स्वविवेक का प्रयोग न्यायिक ढंग पर करना चाहिए।

इस मामले में विद्वान आयुक्त का निर्णय अनुसूची के संशोधम के बाद हुआ और संशोधन द्वारा

द्वितीय अपील का विधान बनाया गया तो यह पुनरीक्षण में परिवर्तित करने योग्य है और इसमें न्यायालय का स्वविवेक प्रयुक्त हो सकता है।

उत्तरवादी के वकील ने फिर आपत्ति की कि यदि इसे पुनरीक्षण मान भी लिया जाय तो भी विद्वान् आयुक्त का निर्णय हस्तक्षेप्य नहीं है क्योंकि पुनरीक्षण में हस्तक्षेप केवल उसी समय किया जा सकता है जब कि न्यायालय ने विधि द्वारा प्रदत्त अभिक्षेत्र का प्रयोग नहीं किया या जिस अधिक्षेत्र का प्रयोग किया वह विधि द्वारा प्रदत्त नहीं था अथवा अधिक्षेत्र के प्रयोग में न्यायालय ने ऐसी अनियमितता बरती हो कि उससे वाद के तात्विक निर्णय पर प्रभाव पड़ा हो। उत्तरवादी का कहना है कि इसमें हस्तक्षेप करने योग्य कोई परिस्थिति नहीं है।

यहाँ पर व्य० प्र० सं० की धारा १४४ में धारण छोड़ देने पर भी विधि के अभिप्राय के प्रतिकूल धारण वापस पाने का प्रयत्न, तत्संबंधी १३५६ फ० की प्रवृष्टि, याकूब अली का जमींदार का संबंधी होना, धारण के संबंध में कोई प्रमाण न देना ये सब ऐसे कारण हैं जिनके बल पर पुनरीक्षण में हस्तक्षेप किया जा सकता है।

अतः आगरा मंडल के अतिरिक्त आयुक्त का दिनांक १६ जून १६५६ का आदेश निराकृत किया जाता है और एस० डी० ओ० का आदेश पुनर्स्थापित होता है।

—आदेश निराकृत

——

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ५०

(राजस्व मंडल)

बेलगड़हा, मलीहाबाद, लखनऊ

लखनऊ और फैजाबाद मंडल के आयुक्त के आदेश दिनांक २५ फरवरी १६५२ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० १६६।१६५१-५२)

मुहम्मद युसुफ खाँ — अपीलकर्ता

विरुद्ध

बागला — उत्तरवादी

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम १८७७ धा० ४२ का परंतुक—भू धारण अधिनियम की धारा ४६ के अंतर्गत खाते के बटवारे के वाद में विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ बाधक नहीं है।

सह कृषक की यदि अवस्था हो तो उसमें प्रतिकूल धारण को प्रमाणित करने के लिये प्रमाण बहुत ही भारी होना चाहिए—एक सहकृषक जब खेती में रुचि नहीं रखता तो इसे निश्चित रूप से परित्याग नहीं कहा जा सकता और कई एक सहकृषकों में से एक परित्याग कर भी नहीं सकता - (उ० प्र० भू धारण अधिनियम, १७, १६३९—धारा ८७—)

न्यायिक सदस्य ए० एन० सप्रू—

वादी ने उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा ४६ के अंतर्गत खाते के बँटवारे के लिये एक वाद निवेशित किया था। प्रतिवादी बागला ही उसमें एकमात्र लड़नेवाला पक्ष था। दोनों न्यायालयों ने वादी के विरुद्ध निर्णय दिया था इस प्रकार वादी की यह द्वितीय अपील है।

इसमें प्रतिवादी की आपत्ति थी कि वादी २५ वर्ष से बाहर रहता है और खेती नहीं करता। लगान हमीं देते हैं और जिस समय इन खेतों का पट्टा लिखा गया उस समय उसमें यह तय हुआ था कि पट्टा हमारे ही नाम से रहेगा। प्रतिवादी ने यह भी कहा कि वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। उत्सर्जन का आधार दिया गया कि लगान की कोई रसीद नहीं दी गई, वादी ने परित्याग कर दिया है और वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित है। विद्वान् आयुक्त ने भी थोड़ा बहुत यही निष्कर्ष माना है।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ से बाधित

होने की जो बात कही गई है वह मान्य नहीं हो सकती क्यों कि धारा ४६ के अंतर्गत वाद धारण के लिये होता है और इस प्रकार धारा ४६ में उक्त अधिनियम की धारा ४२ बाधक नहीं होती।

परित्याग (अबंडनमेंट) की जो बात कही गई है वह भी ठीक नहीं है। परित्याग के लिये विधान है कि जहाँ कई एक सह कृषक हों वहाँ यदि सभी परित्याग करें तभी परित्याग होता है; एक सह कृषक परित्याग नहीं कर सकता। दूसरे, खेती में केवल रुचि न रखना या खेती न करना परित्याग नहीं है। यहाँ परित्याग से वादी के अधिकार का उपशमन नहीं हुआ यदि उपशमन हो भी सकता है तो केवल एक प्रकार से कि अवधि व्यतीत हो जाने पर धारण वापस पाने का अधिकार बाधित हो गया हो। किंतु इस प्रकार का प्रतिकूल धारण यदि एक सहकृषक का दूसरे सहकृषक के विरुद्ध हो तो इसके लिये बहुत स्पष्ट प्रमाण चाहिए। प्रतिवादी को दिखलाना चाहिए कि धारण वास्तविक, अकेले, विरोधी भाव से लगातार था। और वादी इस धारण से अवगत रहा है। अतः इस प्रकार परीक्षण करने पर यही आता है कि प्रतिवादी—उत्तरवादी का धारण प्रतिकूल नहीं था।

प्रतिवादी का यह कहना असंगत प्रतीत होता है कि यों तो पट्टा दोनों के नाम से लिखा गया किंतु उसमें तय हुआ था कि प्रतिवादी ही उसका अकेले स्वामी रहे। यदि पट्टा दोनों के नाम से लिखा गया तो आरंभ से ही यह प्रतिबंध कैसे लगा दिया गया कि प्रतिवादी ही उसका स्वामी रहे। विद्वान् आयुक्त ने साक्ष्य की वास्तविकता को नहीं समझा था। अतः निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर वाद की डिग्री दी जाने योग्य है।

१—वादी के सहकृषकत्व के प्रमाण में बहुत पहले तक की प्रवृष्टि,

२—प्रतिवादी के कथन में असंगति,

३—प्रतिकूल धारण के अभिकथन का न होना,

४—एक सहकृषक द्वारा ही लगान का दिया जाना और जमींदार का उसे स्वीकार करना यह प्रमाणित नहीं करेगा कि दूसरे सहकृषक का अधिकार समाप्त हो गया।

अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति पर मैं यह अपील स्वीकार करूँगा और नीचे के न्यायालयों की डिग्री परिव्यय के साथ निराकृत की जायँगी।

न्यायिक सदस्य एस० एच० जहीर ने सहमति प्रकट की।

—अपील स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९६०) १९५८ इला० (राजस्व) ५१

(उच्च न्यायालय)

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० २३७०।१९५६

२० मार्च १९५८

सय्यद मुहम्मद जमीन प्रार्थी

विरुद्ध

एस० डी० ओ० मंझनपुर विपक्षी

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार नियम १९५२ नि० ११५—सी० से नि० ११५—एफ० तथा नि० २६ और २६—ए०—पट्टेदार पट्टे की भूमि पर के पेड़ों को काट कर ले जा सकता है और उसे हरजाना देने का आदेश गलत है—

न्यायमूर्ति टंडन—

इलाहाबाद जिले के मंझनपुर के एस० डी० ओ० ने प्रार्थी के विरुद्ध ग्राम समाज से ली हुई भूमि पर के पेड़ों को काट कर ले जाने के संबंध में १५० रु० हरजाना देने का आदेश दिया था। इसी आदेश को प्रभाव शून्य करने के लिने भारतीय संविधान के अनु० २२६ के अंत-

र्गत उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

तथ्य इस प्रकार है कि यह भूमि पहले बंजर थी और ग्राम समाज की थी। प्रार्थी का कहना है कि १९५२ में ग्राम समाज ने इस भूमि का मुझे पट्टा कर दिया और धारण भी दे दिया। इस बीच गाँव के कुछ लोग जो मुझ से बुरा मानते थे एस० डी० ओ० के यहाँ एक बिना नाम का प्रार्थनापत्र भेजा और उसमें उन लोगों का कहना था कि ग्राम समाज ने गलत ढंग पर भूमि का पट्टा कर दिया है और मैं गलत ढंग पर उस पर के पेड़ काट कर ले गया हूँ।

ऐसा प्रार्थनापत्र पाने पर एस० डी० ओ० ने तहसीलदार और कानून गो को जाँच करने का आदेश दिया और जाँच का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर एस० डी० ओ० ने जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार नियम १९५२ के नि० ११५—सी० में इसे मुकदमा लिखा और इस प्रार्थी को नोटिस दिया कि वह कारण दिखलावे कि ग्राम समाज की भूमि पर से उसका अतिक्रमण हटाने के लिये आदेश क्यों न पारित किया जाय। इसके पहले की सारी कार्यवाही प्रार्थी के पीठ पीछे हुई थी।

नोटिस पर प्रार्थी ने उपस्थित होकर के कारण दिखलाया कि वह भूमि ग्राम समाज से पट्टा पर ली गई है और सरकारी कागजों की शुद्धि के संबंध में एक मामला इसी संबंध में था और उसमें तहसीलदार ने उस पट्टे का स्थिरीकरण किया है।

एस० डी० ओ० ने पट्टा को सही माना और कहा कि प्रार्थी प्रश्नगत् भूमि का सीरदार है किंतु उन्होंने आदेश दिया कि प्रार्थी ने जो उस भूमि पर के पेड़ों को काट लिया है उसके लिये २५०) हरजाना दे।

११५ सी० से ११५ एफ० तक के नियम इस प्रसंग से संबंधित हैं और उसमें हरजाना देने का नियम है। किंतु हरजाना उसी समय दिलाया जा सकता है जब कि वह संपत्ति ग्राम समाज की हो। यहाँ ये पेड़ ग्राम समाज के नहीं थे। जब प्रार्थी उस भूमि का सीरदार है तो नि० २६—ए० के अनुसार जितने पेड़ उस भूमि पर थे वे सब प्रार्थी के हो गए।

एस० डी० ओ० ने अपने आदेश में यह कहीं नहीं दिखलाया है कि वे पेड़ ग्राम समाज के थे। ११५ सी० से ११५ एफ० तक में मजिस्ट्रेट को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार कहीं नहीं दिया गया है। मजिस्ट्रेट का यह आदेश गलत है एवं अधिक्षेत्र के बाहर है।

प्रार्थी केवल इसी आधार पर सफल हो जाता है इसलिए अन्य आधारों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

तदनुसार यह प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है। मजिस्ट्रेट का १२-३-१९५६ का हरजाना दिलानेवाला आदेश अभिखंडित किया जाता है। प्रार्थी को विपक्षी से परिव्यय पाने का अधिकार होगा।

—प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५२
(राजस्व मंडल)

एम० एन० सिद्दिकी न्यायिक सदस्य और आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य (रा० मं०)

रुहेलखंड प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २२ अगस्त १९५७ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० ७।१९५७-५८

५ मई १९५८

हरद्वारी — प्रार्थी

गुलजारी — विपक्षी

व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८ आ० २३, नि० १ (२) (बी०)—वाद को हटा लेने के लिये प्रार्थना पत्र यदि अपील के न्यायालय में दिया जाता है तो उसकी प्रक्रिया (प्रोसीजर)—यदि अपील के न्यायालय ने वाद हटा लेने की अनुमति दी किंतु

अपने इस आदेश में इसका कारण नहीं दिखलाया तो यह आदेश निराकृत कर देने योग्य है।

न्यायिक सदस्य एम० एम० सिद्दिकी—

रुहेलखंड प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त ने अपीलकर्ता को वाद हटा लेने की अनुमति दिया था उसी आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

अपीलकर्ता ने जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम की धारा २२६ बी० के अंतर्गत एक वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। इस पर अपील की गई और अपील के न्यायालय में वादी अपीलकर्ता ने नए मुकदमे के निवेशित करने के अधिकार के साथ वाद हटा लेने की अनुमति माँगा। कारण के लिये वादी अपीलकर्ता ने कहा कि कुछ कानूनी अड़चन के कारण वाद हटाने की आवश्यकता आ पड़ी है। उस प्रार्थनापत्र पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने निम्नलिखित आदेश पारित किया

'विद्वान् वकील उपस्थित हैं और उनकी बात सुनी गई। वाद को हटा लेने की अनुमति नया वाद निवेशित करने के अधिकार के साथ दी जाती है किंतु प्रतिबंध है कि वादी अपीलकर्ता १०) हरजाना उत्तरवादी को दे। प्रतिवादी उत्तरवादी दोनों न्यायालयों का परिव्यय और इस न्यायालय में वकील के शुल्क का १०) पाएगा।'

प्रतिवादी ने इस आदेश के पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया है।

प्रतिवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का आदेश विधि के दृष्टिकोण से कोई आदेश नहीं है क्योंकि उन्होंने वाद हटाने की अनुमति देने के कारण का उल्लेख नहीं किया है।

२—व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उक्त आदेश के नि० १ के उपनियम २ के अंतर्गत ही वाद हटाने की अनुमति दी जा सकती है और वह भी किसी औपचारिक त्रुटि (फार्मल डिफेक्ट) के आधार पर या किसी अन्य पर्याप्त कारण के आधार पर। अन्य पर्याप्त कारण औपचारिक त्रुटि के समान होने चाहिए। आदेश में चर्चा नहीं है कि उसमें कहीं ऐसी त्रुटि है कि नहीं।

३—अन्वीक्षा न्यायालय ने तत्व पर वाद का निर्णय दिया था इसलिए अपील में वाद हटा लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी।

वादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—प्रतिवादीगण पर कोई अन्याय नहीं हुआ है इसलिए पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र समर्थ नहीं है।

२—जो परिव्यय दिलाया गया उसे प्रतिवादी ने स्वीकार कर लिया है इसलिए अब वे उस पर आपत्ति नहीं कर सकते।

३—आ० २३ उपनियम २ (बी०) के अभिप्राय के अनुसार आदेश के लिए पर्याप्त आधार था।

इनका निर्वर्तन निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है:—

१—परिव्यय इस प्रतिबंध के साथ लिया गया कि इसके लेने पर पुनरीक्षण अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः परिव्यय के लिए जाने से पुनरीक्षण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

२—अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया था और अपील में जाकर वाद हटा लेने की अनुमति दी गई इसलिए प्रतिवादी के साथ अन्याय तो हुआ है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र समर्थ नहीं है।

३—आदेश के तत्व पर विचार करने के संबंध में ठीक कार्यवाही यही थी कि विद्वान् आयुक्त पहले अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री निराकृत करते और तब वाद हटाने की अनुमति प्रदान करते। यहाँ यह भी नहीं किया गया। अपील के न्यायालय को इस प्रकार का आदेश बहुत ही कम पारित करना चाहिए। जब अन्वीक्षा न्यायालय में ऐसा प्रार्थनापत्र दिया गया हो और अपील का न्यायालय यह समझता है कि इसको स्वीकार करने के लिये आधार पर्याप्त हैं केवल तभी वाद

हटानेवाला प्रार्थनापत्र स्वीकार करना चाहिए। यहाँ एक तो इसके तत्व पर निर्णय हो चुका था और दूसरे विद्वान् आयुक्त ने किसी पर्याप्त कारण का उल्लेख नहीं किया इसलिए वह आदेश विधि के विचार से उचित नहीं है।

तद्नुसार पुनरीक्षण परिव्यय के साथ स्वीकार किया जाता है। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त का आदेश अभिखंडित किया जाता है और यह अपील फिर से सुनवाई के लिये उनके यहाँ प्रतिप्रेषित की जाती है। उस परिस्थिति में जब कि वाद हटा लेने के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करने का उनका निश्चय हो तो वे ऐसा करने के लिये पर्याप्त कारण का उल्लेख करें।

(न्यायिक सदस्य आर० के० सिंह ने इससे सहमति प्रकट की।)

—पुनरीक्षण स्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५४

उच्च न्यायालय (लखनऊ न्यायासन)

न्यायमूर्ति रणधीर सिंह और न्यायमूर्ति भार्गव

व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० ७८, १९५५

१० जनवरी १९५८

महाराजा सुखजीत सिंह — प्रार्थी

विरुद्ध

उ० प्र० राज्य तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० कृषि आय कर अधिनियम, १९४८ धा०, ४४ और नि० १८ (२) – नियम के अंतर्गत विज्ञप्ति यदि किसी समर्थ प्राधिकरण द्वारा हुई हो तो वह वैध रहेगी जब तक कि उसका उत्तरवर्ती प्राधिकरण उसे हटा न ले—

न्यायमूर्ति रणधीर सिंह और न्यायमूर्ति भार्गव—

विपक्षी सं० २ ने प्रार्थी के पिता जो मर गए हैं उन पर कृषि आयकर का कर निर्धारण कई जिलों में स्थित संपत्ति पर किया है। इस प्रार्थनापत्र में प्रार्थी ने लेख (रिट) द्वारा उक्त आदेश को अभिखंडित करने की प्रार्थना की है।

प्रार्थी के पिता कपूरथला के परमजीत सिंह की संपत्ति बहराइच बाराबंकी तथा अन्य जिलों में थी। विपक्षी सं० २ ने कर निर्धारण किया था और कर किश्तों में दिया जाना था। इसमें प्रार्थना की गई है कि कर निर्धारण एवं उसका किश्तों में दिया जाना अभिखंडित किया जाय।

इसके उत्तर में विपक्षी सं० २ का कहना है कि इसमें कर निर्धारण था अधिक्षेत्र था कारण कि धारा ४४ (२) (के०) (ओ०) में सरकार को उस व्यक्ति के कृषि आयकर के कर निर्धारण के संबंध में जो उ० प्र० के बाहर रहता है एतदर्थ अधिकारी नियुक्त करने या जिस ढंग पर कर निर्धारण हो इस संबंध में नियम बनाने का अधिकार है। धारा ४४ के अंतर्गत नियम १८ (२) बना है इसलिए यह पूर्ण रूपेण वैध है। इस उपबंध के अंतर्गत राजस्व मंडल ने एक विज्ञप्ति दिनांक २६ मई १९४६ द्वारा यह अधिकार प्रदान किया था कि बहराइच में ही अन्य जिलों की संपत्ति के विषय में कर निर्धारण किया जाय। विपक्षी सं० २ का कहना है कि इसी विज्ञप्ति के आधार पर कर निर्धारण किया गया है जो ठीक है।

प्रार्थी की ओर से इसके उत्तर में कहा गया है कि नि० १८ (२) का संशोधन २० सितंबर १९५१ को हुआ और 'राजस्व मंडल' के स्थान पर 'भूमि सुधार आयुक्त' प्रतिस्थापित किया गया अतः १९४६ में जो विज्ञप्ति राजस्व मंडल द्वारा हुई वह १९५५ में लागू नहीं हो सकती क्योंकि उस समय नि० १८ (२) में शब्द 'राजस्व मंडल' था ही नहीं।

किंतु इस विषय में सिद्धांत यह है कि किसी नियम के अंतर्गत जब किसी समर्थ प्राधिकरण द्वारा कोई विज्ञप्ति हुई हो तो उसके उत्तरवादी प्राधिकरण द्वारा जब तक वह हटा न ली जाय पूर्णरूपेण वैध रहती है। यहाँ राजस्व मंडल की उक्त विज्ञप्ति को उसके उत्तरवर्ती

'भूमि सुधार आयुक्त' ने हटाया नहीं इसलिए वह अब भी वैध है।

उक्त विज्ञप्ति के आधार पर प्रार्थी के पिता की सारी संपत्ति पर कर निर्धारण केवल बहराइच जिले में हो सकता है और इसलिए यह कर निर्धारण सर्वथा ठीक था।

किसी अन्य विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। परिणामत: यह प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

स्थगन का आदेश हटा लिया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५५

(उच्च न्यायालय)

आपराधिक प्रकीर्णक लेख सं० २३४४।१९५६

१७ मार्च १९५८

राम भरोस तथा अन्य — प्रार्थीगण

विरुद्ध

राम प्रताप सिंह तथा अन्य — विपक्षीगण

अ—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम, १९४७, धा० ७१—ए० और उ० प्र० पंचायत राज नियम — नि० १००—निर्णय खुले न्यायालय में यदि सुनाया नहीं गया तो यह निर्णय वैध नहीं है।

ब—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७ धारा ८५ और ८६। संशोधित अधिनियम १९५५ द्वारा प्रतिस्थापित—एस० डी० एम० को अधिकार है कि अन्वीक्षा के लिये मुकदमा नवीन न्यायासन को प्रतिप्रेषित कर दें और यह विचाराधीन मामलों में भी लागू होता है।

न्यायमूर्ति टंडन

यह लेख प्रार्थनापत्र इलाहाबाद के एक अतिरिक्त एस० डी० एम० के आदेश के विरुद्ध है।

इसके तथ्य इस प्रकार हैं। किसी श्रीमती सुखरानी ने प्रार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा ३२३ और पशु अनधिप्रवेश अधिनियम की धारा २४ के अंतर्गत एक परिवाद निवेशित किया था। यह परिवाद न्याय पंचायत में निवेशित किया गया था। न्याय पंचायत में इसके निर्णय के लिये एक न्यायासन बना जिसके सभापति वासुदेव थे। प्रार्थी का कहना है कि साक्ष्यों का परीक्षण करने के बाद निर्णय देने के लिये एक तिथि निर्धारित की गई और उस निर्धारित तिथि को जब हम लोग पहुँचे तो पता चला कि मुकदमे के कागज पत्र सब न्याय पंचायत के सरपंच शीतला प्रसाद के पास हैं। प्रार्थियों का कहना है न्यायासन के ४ सदस्यों ने निर्णय तैयार कर लिया था और उस पर अपना हस्ताक्षर करने के बाद सरपंच को वह अभिलेख मुहर करने और सुनाने के लिये दे दिया था और केवल वासुदेव सभापति ने निर्णय में भाग नहीं लिया था। इसका परिणाम हुआ कि उस दिन निर्णय सुनाया न जा सका।

प्रार्थियों का कहना है कि हमें उस समय आश्चर्य हुआ जब शीतलाप्रसाद सरपंच ने पचास रुपया घूस माँगा और धमकाया कि न देने पर हम सब कागज फाड़ देंगे और मुकदमे की सुनवाई के लिये दूसरा न्यायासन बनाकर इसे वहीं भेज देंगे। रुपया देने से इनकार करने पर शीतला प्रसाद ने निर्णय फेंक दिया।

इसके बाद प्रार्थियों ने एस० डी० एम० के यहाँ एक प्रार्थनापत्र दिया कि १—मुकदमे के अभिलेख मँगा लें और २—घूस माँगने के अपराध में शीतलाप्रसाद के विरुद्ध कार्यवाही की जाय।

विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस प्रार्थनापत्र के निर्वर्तन में कहा कि अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कोई निर्णय तैयार हुआ ही नहीं और आदेश दिया कि नवीन न्यायासन बनाकर इस मुकदमे की सुनवाई की जाय।

मजिस्ट्रेट के इस आदेश के विरुद्ध यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

इस प्रार्थनापत्र के प्रमुख आधार हैं कि :

१—मजिस्ट्रेट का यह निर्णय गलत था कि पंचायत राज अधिनियम की धारा ७७—ए० और नि० १०० के अंतर्गत ५ में से ४ सदस्यों द्वारा दिया हुआ निर्णय निर्णय नहीं है।

२—शीतला प्रसाद का घूस माँगना अवैध और अनुचित है।

३—एस० डी० एम० को मुकदमे के प्रतिप्रेषण (रिमांड) का अधिकार नहीं है।

इसके समर्थन में प्रार्थी के विद्वान् वकील ने पंचायत राज अधिनियम की धारा ८५ का सहारा लिया है जैसी कि वह धारा अधिनियम ११।१६५५ के संशोधन के पहले थी। संशोधन के पहले उस धारा के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को पंचायती अदालत के अधिक्षेत्र को काट देने का अधिकार था या इस अदालत द्वारा पारित आदेश के अभिखंडित करने का अधिकार था—प्रतिप्रेषण (रिमांड) का अधिकार नहीं था।

इसके विरोध में विपक्षी का कहना है कि निर्णय हुआ ही नहीं। ४ सदस्य प्रार्थी से मिले हुए थे, उन्होंने एक झूठा निर्णय तैयार किया और झूठे ही कह रहे हैं कि उसे शीतला प्रसाद ने फेंक दिया।

हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

१—इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि वास्तव में निर्णय तैयार हुआ और हस्ताक्षर किया गया कि नहीं कारण कि धारा ७७—ए० और नि० १०० के अनुसार निर्णय का खुली अदालत में सुनाना आवश्यक है और जब स्वयं प्रार्थी का कहना है कि निर्णय उस दिन सुनाया न जा सका तो उस दशा में वह निर्णय था ही नहीं।

२—धारा ७७ ए० के अनुसार उस न्यायासन के सभापति और कम से कम दो सदस्यों का निर्णय में रहना आवश्यक है। यहाँ वासुदेव सभापति उस प्रश्नगत् निर्णय में संमिलित नहीं था अतः केवल इस कारण से भी यह निर्णय निर्णय नहीं था।

३—संशोधन जो अप्रैल सन् १६५६ में लागू हुआ उसके अनुसार मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रेषण का अधिकार है और इस विषय में प्रार्थी की ओर से यह कहना कि संशोधन के पहले ही मजिस्ट्रेट के यहाँ प्रार्थनापत्र दिया गया था इसलिए संशोधन का उपबंध लागू नहीं होगा मान्य नहीं है क्योंकि एक तो अभिलेख पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि मजिस्ट्रेट के यहाँ किस तिथि को प्रार्थनापत्र दिया गया था दूसरे यदि यह बात हो भी तब भी विचाराधीन वाद में धारा ८५ और ८६ के उपबंध लागू होंगे जब तक कि इसके विरुद्ध प्रमाण नहीं दिया जाता।

अतः हमारे विचार से इस प्रार्थनापत्र में बल नहीं है और वह परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है। स्थगन का आदेश हटा लिया जाता है।

—प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

English	हिंदी
Force	बल, बल प्रयोग
having the force of	सम प्रभावी
Force apart	बलात् अलग कर डालना
Forced	बलात्, बलात्कृत
„ currency	बलात् चलार्थ
„ labour	बलात् श्रम
„ sale	बलाद् विक्रय, बलात्कृत विक्रय
„ sale on execution	निष्पादनार्थ विक्रय
Forceful	प्रभावयुक्त, बलपूर्वक
Force majeure	दैवी आपत्
Forces	बल (संवि०)
Forcible detainer	बलात् निरोध
Forcible dispossession	बलात् धारण च्युति
„ entry and detainer	बलात् प्रवेश और निरोध
Forcibly	बल पूर्वक, बलात्
For compliance	पालनार्थ
For consideration	विचारार्थ, के प्रतिफल
For convenient transaction	सुविधा पूर्वक किए जाने के लिये (संवि०)
For disposal	निर्वर्तनार्थ, निबटाने के लिये
Forecast	पूर्वानुमान
Foreclosed	विमोचन रोधित
Foreclosure	विमोचन रोध
„ decree	विमोचन रोध डिग्री
Foreconscious	पूर्वचेतन
Foregoing	पूर्वगामी, पूर्ववर्ती
„ power	पूर्वगामी शक्ति
„ provisions	पूर्वगामी उपबंध
Fore ground	अग्रभूमि, पुरोभूमि
Foreign	विदेशीय, विदेशी, वैदेशिक, बाह्य
Foreign affairs	विदेश कार्य, विदेशीय कार्य (संवि०)
„ assignment	विदेश-नियोजन
„ attachment	विदेशीय अभ्याग्रहण
„ booking	बाहर भेजना
„ charity	विदेशीय पूर्त (संवि०)
„ divorce	विदेशीय विवाह विच्छेद
„ domicile bill	विदेशदेय विपत्र

Foreigners Act	विदेशीय अधिनियम
Foreign exchange	विदेशीय विनिमय (संवि०)
,, ,, liabilities	विदेशीय विनिमय देयता
,, importer	विदेशीय आयातक
,, imports	विदेशीय आयात
,, investment	वैदेशिक विनियोग
,, jurisdiction	विदेशीय क्षेत्राधिकार
,, ,, Act	बाह्य अधिकार क्षेत्र
,, ,, Act and	विदेशीय क्षेत्राधिकार अधिनियम
Extradition Act	विदेशीय क्षेत्राधिकार तथा प्रत्यर्पण अधिनियम
Foreign liquor rules	विदेशीय मदिरा नियम
,, minister	विदेश मंत्री
,, mission	विदेशीय शिष्टमंडल
,, national	विदेशीय राष्ट्रिक
,, notes	विदेशीय अर्थपत्र
,, passport	विदेशीय पारपत्र
,, personnel	विदेशीय सेविवर्ग
,, port	विदेशीय पत्तन
,, Relations Act	विदेश संबंध अधिनियम
,, remittance	विदेशीय विप्रेषण
,, sea and air borne trade	विदेशी समुद्र और वायु व्यापार
,, service	विदेश सेवा, बाह्य सेवा
,, settlement in India	भारत स्थित विदेशी बस्ती
,, trade	विदेश व्यापार, विदेशीय व्यापार
,, ,, card index	विदेश व्यापार पत्रक देशना
Forejudge	पूर्व निर्णय करना
Foreman	कार्यदेशक, प्रमुख
Foremost	सर्वोपरि
Forenoon	पूर्वाह्न
Forensic	विधि, वैधिक
Foreseen	पूर्व दृष्ट
Foreshadow	पूर्वाभास, पूर्व संकेत
Foresight	दूरदर्शिता
Forest Act	वन अधिनियम
Forestalling	पूर्वक्रयण
Forest Code	वन संहिता

Forest conservator	वन संरक्षक
„ contract agreement	वन संविदा पत्र
„ contractor	वन संविदाकार, वन ठेकेदार
„ Contract Rules	वन संविदा नियम
„ divisional officer	वन मंडलाधिकारी
Forester	वानिक, वनपाल
Forest Financial rules	वन वित्त नियम
„ guards training school	वन रक्षि प्रशिक्षण विद्यालय
„ land	वन भूमि
„ law	वन विधि
„ license	वन अनुज्ञप्ति
„ Manual	वन नियमावलि
„ office	वन कार्यालय
„ officer	वनाधिकारी
„ police	वन आरक्षी
„ produce in transit	मार्गस्थ वनोत्पाद
„ product	वन पदार्थ
„ ranger	वन क्षेत्रप
„ regulation	वन विनियम
„ Research Institute	वन अन्वेषालय
„ revenue	वन आगम
„ Settlement Officer	वन व्यवस्था अधिकारी
„ survey	वन आपरीक्षण सर्वेक्षण
„ tribe	वन जाति
„ Utilization Officer	वनोपयोजन अधिकारी
Forward — Foreword	प्राक्कथन, भूमिका
For favour of N. A.	(आ० का०) आवश्यक कार्यवाही के लिये
Forfeit	(सं०) दंड
Forfeit	(क्रि०) खोए जाना, राज्यसात् होना, अधिकार खो बैठना, हरण करना
Forfeited shares	हृत अंश
Forfeature	हरण, राज्यसात् करना
Forge	कूट करण
Forged	कूट, कूट कृत
Forger	कूटकर्ता, कूटकारी
Forgering	कूटकरण

Forgery	कूट कर्म, कूट
For instance	तद्यथा, दृष्टांतार्थ, उदाहरण के लिये
For life	आजीवन
Form	रूप, आकृति, प्रपत्र, आकार
Formal	औपचारिक, यथारीति, यथानियम, यथारूप, यथाकार यथावेश, बाह्य रूपिक, उपरिक
,, adjudication	यथानियम अधिनिर्णय
,, enquiry	औपचारिक परिपृच्छा
,, motion	औपचारिक प्रस्ताव
,, notice	औपचारिक सूचना
,, notificatian	औपचारिक अधिसूचना
,, objection	औपचारिक आपत्ति
,, order	औपचारिक आदेश
,, parties	औपचारिक पक्ष
Form and content	रूप और विषयवस्तु (अंतर्वस्तु)
Formation	निर्माण, रचना, घटना
Former	पूर्व, पहला, पूर्वोक्त
Formerely	पहले
Formidable	भीषण
Forming part	अंगभूत
Formulation	संविन्यास
For official use only	केवल शासन के प्रयोग के लिये, केवल शासन प्रयोगार्थ
For orders	आदेशार्थ, आदेश के लिये
,, ,, please	आदेशार्थ, कृपया आदेश दीजिए
,, perusal and return	पढ़कर लौटाने के लिये
,, practical purposes	व्यावहारिक प्रयोजनार्थ, व्यवहार में
,, record	अभिलेखार्थ, अभिलेख के लिये
,, report please	कृपया प्रतिवेदन भेजिए, प्रतिवेदनार्थ
,, scrutiny	परिनिरीक्षणार्थ, परिनिरीक्षा के लिये
,, signature	हस्ताक्षर के लिये
Forswear	शपथास्वीकार करना
Forthcoming	आगामी
For the account	लेखार्थ, लेखे पर, उधार पर
,, the consideration of the government	शासन के विचारार्थ
,, the ends of justice	न्याय के उद्देश्यों के लिये

For the month ending	...को अंत होनेवाले मास के लिये
„ the nonce	तत्समय
„ the sake of	के हेतु, के लिये
„ the time being in force	तत्समय प्रवृत्त
„ this reason	इस हेतु से, इस कारण से
Forthwith	अविलंब, तुरंत
Forthwith communicate	तुरंत सूचित करना
Fortify	दृढ़ करना
Fortnight	पक्ष
Fortnightly	पाक्षिक
For trial	अन्वीक्षार्थ, अन्वीक्षा के लिये
Fortuitous event	दैवी घटना
Forum	न्यायाधिकरण, स्थल
Forum actus	घटना स्थल
For valuable consideration	समूल्य
For want of	के अभाव में
Forward	अगला, आगे भेजना, अग्रेषण
„ contract	अग्रे संविदा, भावी ठेका
„ delivery	अग्रे प्रदान
Forwarded	अग्रेषित, आगे भेजा गया
„ to	की सेवा में अग्रेषित
Forwarder	अग्रेषक
Forwarding	अग्रेषण
„ note	अग्रेषण टिप्पण, प्रेषण पत्र
Foul	परिदूषित, दूषित
„ language	अपशब्द
Found	सिद्ध हुआ, उपपादित, पाया, प्राप्त
Foundation	नींव
Founder	संस्थापक, प्रवर्तक
Found guilty	सिद्धापराध, अपराधी सिद्ध हुआ
Foundry	संधानी, ढलाई घर
Fountain pen	मसीपथ
Four corners	पूरा, संपूर्ण
Fracture	अस्थि भंग
Frame a draft	प्रारूप बनाना
Framework	ढाँचा

Framing of issues	वाद पद रचना
Franchise	मताधिकार
Fraternal	भ्रातृय, भ्रातृ
Farternity	बंधुता, भ्रातृ भाव, बंधु भाव
Fratricide	भ्रातृ हत्या
Fraud	प्रतारणा, धोखा
,, in law	वैधिक प्रतारणा
,, on a power	शक्ति की प्रतारणा
,, on court	न्यायालय के प्रति प्रतारणा
,, on registration	पंजीपन के प्रति प्रतारणा
Fraudulent	कूट, प्रतारक, धोखा देनेवाला
Fraudulently	धोखे से, प्रतारणा:
Fraudulent suit	प्रतारक अभियोग, कूट अभियोग
Fraud upon the law	विधि के प्रति प्रतारणा
Fraught with danger	भयास्पद
Free	निःशुल्क, स्वतंत्र, अबाध, अनियंत्रित
Free air	अबाध वायु
Free and unqalified discretion	मुक्त और अबाध विवेक
,, ,, voluntary consent	मुक्त और स्वैच्छिक संमति
,, at quay	घाट पर निःशुल्क
Freebooter	लुंठक, जलदस्यु
Free consent	अबाध संमति
Freed	मुक्त
Freedom	स्वतंत्रता, स्वातंत्र्य
,, of expression	अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य
,, of speech	भाषण स्वातंत्र्य, वाक् स्वातंत्र्य
,, ,, the press	मुद्रण स्वातंत्र्य
,, ,, trade	वाणिज्य की स्वतंत्रता
,, ,, ,, commerce and intercourse	व्यापार, वाणिज्य और परस्पर व्यवहार का स्वातंत्र्य
Freehold	शाश्वत संपत्ति, निरधीन, आत्मधृत
,, rights	निरधीन अधिकार
Free list	निःशुल्क सूची
Freely	अबाधरूप में, मुक्त रूप से, बिना रोक टोक के
Free movement	अबाध गमनागमन
,, of all encumbrances	सर्वभार मुक्त

Free of charge	निष्प्रभार, निःशुल्क
„ of duty	शुल्क मुक्त, निःशुल्क
„ „ revenue	राजस्व मुक्त
„ „ tax	कर मुक्त
„ on board	नौतल पर्यंत निःशुल्क
„ „ rails	संयान पर्यंत निःशुल्क
„ pardon	अप्रतिबंध क्षमा
„ passage	निःशुल्क यात्रा
„ scholar	निःशुल्क छात्र
„ service article	निःशुल्क शासकीय वस्तुएँ
„ ships	तटस्थ जलयान
„ soil	जहाँ दास नहीं रखे जाते, विदास भूमि
„ studentship	निःशुल्क छात्रत्व
„ user	अप्रतिबद्ध उपयोग
„ will	स्वतंत्र इच्छा, स्वेच्छा
Freight	वहनशुल्क, भार
Frequent	बारंबार, बार बार, बार बार आना
Frequently	बारंबार, प्रायः
Fresh	अभिनव, नया, नूतन
„ deposit	नव निक्षेप
„ evidence	नवसाक्ष्य
„ grounds	नए आधार
„ lease	नया पट्टा
„ suit	नया वाद
Friction	संघर्ष
Friend of the court	न्याय परामर्शक
Frivolous	तुच्छ
„ and vexatious	तुच्छ और प्रबाधी
From	से, प्रेषक
„ time to time	समय समय पर, यथा काल
„ without	बाहर से, बर्हिदेशतः
Front	अग्र
Frontier	सीमांत
Frozen	जमा हुआ, निश्चलीकृत
Fundamental Rights	मौलिक अधिकार
Fruit Development Board	फलविकास मंडल

Fruit marketing society	फलविपणन समिति
„ preservers association	फलपरिरक्षक मंडल
Frustrated	भग्नाश
Fuel Inspector	इंधन निरीक्षक (रेलवे)
Fugitive	प्रपलायी
„ criminal	प्रपलायी अपराधी
„ offender	प्रपलायी अपराधी
Fulfil	पालन कर, पूरा करना
„ a condition	प्रतिबंध पालन
Fulfilment	पालन, पूर्ति
Fulfil requirement	आवश्यकताएँ पूरी करना
Full	पूर्ण, पूरा
„ age	वयस्, पूर्णवयस्
„ and unabridged rights of „ ownership in the property	संपत्ति में स्वामित्व के सर्वांगपूर्ण अधिकार
Full and unimpaired	पूर्ण और अविकल
„ belief	पूर्ण विश्वास
„ bench	पूर्ण न्यायासन
„ „ decision	पूर्ण न्यायासन विनिश्चय
Full blood	सोदर्य, सगा
Full brother	सगा भाई
Full compensation	पूर्ण प्रतिकर
„ court	पूर्ण न्यायालय
„ details	पूर्ण विस्तार, पूर्ण विवरण
„ discharge	पूर्ण उन्मुक्ति
„ power	पूर्ण शक्ति
„ satisfaction	पूर्ण निस्तारण
„ statement	पूर्ण विवरण
Fully assessed to land revenue	भू राजस्व पूर्णतः निर्धारित
Function	कार्य, प्रकार्य, कृत्य
Functionary	कर्मचारी
Fund	निधि
Fundamental	मूलभूत, आधारभूत
„ Right	मूल अधिकार
„ rules	मूलनियम
Funeral	अन्त्येष्टि, अंत्येष्टि संस्कार, शवयात्रा

विधि पत्रिका

[लेख खंड]

वर्ष २] भाद्रपद (सौर) सं० २०१५ : शक १८८० : अगस्त-सितंबर १९५८ [अंक १०

संपादकीय

न्याय में भक्ति और अन्याय के प्रति घृणा ही न्याय पद्धति को बल प्रदान करती है। जब तक समाज में न्याय के प्रति आकर्षण नहीं होता तब तक कानून के कंधों पर बैठा न्याय समाज के किसी काम का नहीं होता। कानून की पोथियों की भरमार होती जा रही है पर उस कानून से आँख बचाकर उसे तोड़ने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। उदाहरण स्वरूप वैदिक काल में जुए की प्रथा थी पर जुआड़ी को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। जुआड़ी की स्त्री उसे छोड़ देती थी, उसके मांगने पर उसे कोई कुछ नहीं देता था। जुआड़ी दूसरे के घर में रात काटता था। जुआड़ी को उपदेश दिया गया है 'अक्षैर्मादिव्यः'। (जुआड़ी ! जुआ कभी मत खेलना) जुआड़ी के चारो ओर का वातावरण ऐसा हो जाता था कि उसे जुआ छोड़ना ही पड़ता था। क्या उस उद्देश्य की पूर्ति कानून से हो सकती थी ? आज भी कानून है पर जुआड़ियों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। युधिष्ठिर और राजा नल के उदाहरण हमारे सामने हैं। यदि लोगों का ध्यान इन घटनाओं की ओर आकृष्ट करके मनोवृत्ति में परिवर्तन कर सकें तो जुआ बंद करने में हमें अत्यधिक सफलता प्राप्त हो सकेगी।

कानून के साथ साथ उस कानून के पालन करने के लिये एक पृष्ठ भूमिका तैयार होनी चाहिए। एक बार ऐसा वातावरण उत्पन्न होने पर जुआड़ी यदि दंडित हो तो जुआ की ओर से उदासीनता होगी। उसी प्रकार दूसरे अपराधों की रोकथाम अनुकूल वातावरण का सृजन करके की जा सकती है। आज का नैतिक वातावरण परिवर्तित है और इसमें नैतिकता का ह्रास हो रहा है तथा इसी के फल स्वरूप नैतिकता और अनैतिकता में कोई भेद नहीं रह गया है।

जगत् में तीनों गुणों के प्राणी सदा से रहते आए हैं। चाहे सतयुग हो या त्रेता या द्वापर कभी भी तामस का सर्वथा लोप नहीं था। पहले सात्विक व्यक्ति अधिक थे त्यागी, तपस्वी, परोपकारी, निश्छल, निष्कपट मनुष्यों की अधिकता थी परंतु तामसिक व्यक्ति भी थे। न्याय में पक्षपात नहीं था। अन्याय नहीं था। तपोधन ऋषियों के समक्ष अन्याय का होना संभव न था।

आज परिस्थिति दूसरी है। आज के अपराधों के लिये वातावरण भी दोषी है। सिनेमा तथा कुछ पुस्तकों का भी इसमें हाथ है। नैतिकता का जो पाठ सिनेमा की कहानियाँ पढ़ाती हैं वे हमें उन आदर्शों की ओर अग्रसर होने में सहायक नहीं। मर्यादा का सेतु निर्बल हो गया

है। आदर्शों को परिस्थितियों ने झकझोर दिया है। वदिक काल में सूदखोरों का धन ले लिया जाता था। उन्हें दंड देकर सत्य के पथ पर लाने की चेष्टा की जाती थी। अनेक मंत्रों में सूद की चर्चा है। सूद लेना आज हम अन्याय नहीं समझते। सूद से धन एकत्रित करने वाले समाज में अनादर नहीं पाते।

निरपराधी दंडित न होने पावे साथ ही अपराधी दंड से बच न सके दोनों न्याय के मूल मंत्र थे पर आज निरपराधी को दंड न मिले, कानून और न्याय का यही उद्देश्य रह गया है। एक अपराधी कानून की आँख बचाकर दंड पाने से यदि बच गया तो सैकड़ों को अपराध का प्रोत्साहन मिलता है इस तथ्य की ओर हमारी आँख कम है।

भारत में न्याय का क्या आदर्श था, सामाजिक मान्यताएँ क्या थीं, प्राचीन ग्रंथों का उपदेश क्या है, उस समय की न्याय पद्धति में अपराध कम थे या अधिक इन विषयों पर हमें गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा तथा उन कारणों पर भी दृष्टिपात करना होगा जिनके कारण अपराध करने का साहस नहीं होता था। इस पृष्ठ भूमिका में आज के न्याय विशारद न्याय पद्धति का सिंहावलोकन करके कोई नवीन पद्धति उपस्थित कर सकें तो न्याय के क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य होगा। भारतीय नैतिकता की एक पृथक् परिभाषा रही है जो दूसरे देशों से सदा मौलिक रही है। आज हमें विचार करना है कि नैतिकता के उन्हीं आदर्शों का हम अनुसरण करें या दूसरे देशों की नैतिकता के सिद्धांतों को हृदयंगम करें। एक बार इस सिद्धांत को स्थिर करने के पश्चात् ही हम यह स्थिर करने में समर्थ हो सकेंगे कि नैतिकता के विषय में हमारे न्याय की परिभाषा क्या होगी।

कानून और न्याय पद्धति तो हम दूसरे देशों से ऋण ले सकते हैं पर देखना होगा कि उनसे हमारे आदर्शों का हनन तो नहीं होता? हमारी सामाजिक परंपराएँ ध्वस्त तो नहीं हो जातीं? ऐसा नहीं है कि पहले सब देवता थे अब सब दैत्य हैं पर प्राचीन काल के मनुष्य जीवन का उद्देश्य भिन्न था। प्राचीन काल में कुछ बातें ऐसी थीं जिनकी उपादेयता को स्वीकार करना पड़ेगा उसी प्रकार आज भी अनेक नवीन अनुभव प्राप्त हुए हैं जिनसे वंचित रहना उचित नहीं होगा। दोनों के समन्वय से ही उन्नति संभव हो सकेगी। वैदिक काल में कन्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्री जाति का बड़ा सम्मान था। जो कन्या पितृकुल में जीवन भर अविवाहित रहती थी उसे पितृकुल में ही अंश मिलता था। आजकल ऐसी उदारता नहीं देखी जाती है। एक पुरुष का एक ही विवाह करना आदर्श था। स्त्रियों को पति चुनने की स्वतंत्रता थी। स्त्रियों को अधिक कार्यों में स्वतंत्रता थी। आर्य अपनी स्त्री के साथ यज्ञ करते थे। घोषा आदि अनेक स्त्रियों ने अनेक सूक्तों का सृजन किया था। स्त्रियाँ हवन करती थीं, उपदेश देती थीं तथा वेद पढ़ती थीं। आश्चर्य है कि वैदिक परंपरा की ओर से हम उदासीन हो गए और हमारी परंपरा की लड़ी टूट गई। इसका परिणाम भयानक हो गया कि उन आदर्शों की पवित्रता नष्ट हो गई। संसार की अन्य प्राचीन जातियों में स्त्रियाँ उपेक्षित थीं। जो जितनी स्त्रियाँ रखना चाहता था रख सकता था। पैगंबर मुहम्मद साहब के पहले अरब में बालिकाएँ मार दी जाती थीं। स्पार्टा में भी स्त्रियों की दशा अत्यंत शोचनीय थी।

नारी के साथ न्याय होना चाहिए। न्याय किस प्रकार हो, संपत्ति की अधिकारिणी वह किस अंश तक हो, पितृकुल या पतिकुल में किन किन परिस्थितियों में उन्हें अंश मिलना चाहिए यह एक विचारणीय प्रश्न है और इसके साथ ही एक प्रश्न संबद्ध है कि हम पति-पत्नी के पुराने आदर्शों की रक्षा करना चाहते हैं कि नहीं। यदि रक्षा करनी है तो उन्हें संपत्ति में क्या भाग मिलना चाहिए इससे भी हम मुख नहीं मोड़ सकते क्योंकि हमें बचाना है कि आदर्शों का हनन न हो।

धनसंचय, सूदखोरी आदि अनेक समस्याएँ हैं जिनका समाधान प्राचीन ग्रंथों के सहारे हो सकता है। हमारे हृदय के पुराने संस्कारों के अंकुर को पल्लवित करना है और इसके लिये उपयुक्त साधन की खोज करनी है। न्याय के सुधार में प्राचीन पद्धतियों का सहारा लेना है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे देशों की न्याय पद्धति की अच्छी बातें हम न लें। —सिद्धनाथ सिंह

(पूर्वानुबद्ध)

वह उन मामलों में जो कि उपवाक्य (ए०) के अंतर्गत आते हैं उस कर निर्धारण वर्ष के अंत के ८ वर्ष के बीच किसी भी समय, और उन मामलों में जो कि उपवाक्य (बी०) के अंतर्गत है, ४ वर्ष के बीच किसी भी समय वह करदाता पर एक नोटिस तामील करेगा और इस नोटिस में वे सब बातें रहेंगी जो धारा १४ की उपधारा २ के अंतर्गत नोटिसों में रहती हैं और शुद्ध संपत्ति पर करनिर्धारण या पुनः करनिर्धारण की कार्यवाही कर सकता है और जहाँ तक हो सकेगा इस अधिनियम के उपबंध लागू होंगे मानो उस उपधारा के अंतर्गत नोटिस जारी की गई हो।

१८—छिपाने में दंड व्यवस्था।

१—यदि संपत्तिकर अधिकारी अपील के सहायक आयुक्त या अपील का न्यायाधिकरण इस अधिनियम के अंतर्गत किसी कार्यवाही में इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि कोई व्यक्ति—

(अ) बिना किसी उचित कारण के उस शुद्ध संपत्ति के संबंध में विवरण नहीं दिया है जिसको धारा १४ (२) या धारा १७ के अंतर्गत दिए जाने की माँग की गई थी या बिना उचित कारण के स्वीकृत समय के भीतर नहीं दे सका है या जिस भाँति दिए जाने को कहा गया था उस भाँति नहीं दे सका है, अथवा

(ब) बिना किसी उचित कारण के धारा १६ की उपधारा २ या उपधारा (४) के अंतर्गत दी गई नोटिस का पालन नहीं किया है; अथवा

(स) अपनी परिसंपत् के विवरण को छिपाया है या उसने जानबूझकर परिसंपत् या ऋण के विषय में गलत विवरण दिया है तो

वह अधिकारी या वह न्यायाधिकरण लिखित आदेश द्वारा आदेश दे सकता है कि वह व्यक्ति दंड स्वरूप निम्नलिखित धनराशि देगा—

(१) उपवाक्य (ए०) में अभिदिष्ट मामलों में उसके द्वारा देय संपत्तिकर की धनराशि के अतिरिक्त वह धनराशि जो ऐसे कर के डेढ़ गुना से अधिक न हो, और

(२) उपवाक्य (बी०) और उपवाक्य (सी०) में अभिदिष्ट उसके द्वारा देय संपत्ति कर की धनराशि के अतिरिक्त ऐसी धनराशि जो उस कर, यदि कोई हो उसकी धनराशि के डेढ़ गुने से अधिक न हो जो कि यदि उस व्यक्ति द्वारा दिया हुआ शुद्ध संपत्ति का विवरण ठीक माना गया होता तो छोड़ दिया जाता।

२—उपधारा १ के अंतर्गत कोई आदेश तब तक नहीं दिया जायगा जब तक कि संबंधित व्यक्ति को अपनी बात कहने का उचित अवसर न दे दिया गया हो।

(३) इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिये उन्हीं तथ्यों पर कोई मुकदमा नहीं चलेगा जिनके संबंध में इस धारा के अंतर्गत दंड दिया जा चुका है।

(४) संपत्ति कर अधिकारी संपत्ति कर के निरीक्षक सहायक आयुक्त के पूर्ववर्ती अनुमोदन के बिना इस धारा के अंतर्गत कोई दंड नहीं देगा।

अध्याय ५

परिस्थिति विशेष में कर निर्धारण का दायित्व

१९—मृतक व्यक्ति का कर उसके विधिक प्रतिनिधि द्वारा देय होगा।

(१) जब कोई मर जाता है तो उसका निष्पादक, प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधि उस मृतक व्यक्ति की संपदा से ऐसे व्यक्ति द्वारा देय निर्धारित संपत्ति कर या अन्य कोई धनराशि का जो कि यदि वह मरा न होता तो देनदार होता—उस सीमा तक देनदार होगा जिस सीमा तक उस मृतक व्यक्ति की संपदा भार सहन करने में समर्थ हो।

(२) जब कोई व्यक्ति धारा १४ के उपबंधों के अंतर्गत विवरण दिए बिना ही मर जाता है या विवरण देने के बाद मरता है जो संपत्ति कर अधिकारी के विचार से गलत या अपूर्ण है तो संपत्ति कर अधिकारी उसकी शुद्ध संपत्ति का निर्धारण करेगा और ऐसे निर्धारण के आधार पर उसके द्वारा देय संपत्ति कर को निश्चित करेगा और इस प्रयोजन के लिये उपयुक्त नोटिस जारी

करेगा जो कि मृत व्यक्ति पर यदि वह जीवित रहा होता तो तामील हो गई होती तथा ऐसी नोटिस द्वारा उसकी यह माँग होगी कि यदि मृत व्यक्ति का निष्पादक प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधि कोई लेखा, विलेख या अन्य साक्ष्य दे जो कि धारा १६ के अंतर्गत मृत व्यक्ति को देना पड़ता ।

(३) धा० १४, १५, और १७ के उपबंध निष्पादक प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधियों पर उसी प्रकार लागू होंगे जो कि उन धाराओं में अभिदिष्ट व्यक्तियों के लिये लागू होते हैं ।

२०—हिंदू अविभाजित परिवार के बँटवारे के बाद कर निर्धारण ।

(१) जब कर निर्धारण करते समय संपत्तिकर अधिकारी को यह ज्ञात हो जाय कि किसी हिंदू परिवार के सदस्यों में बँटवारा हो चुका है और संपत्ति कर अधिकारी जाँच करने के बाद इस बात से संतुष्ट हो जाता है संयुक्त परिवार की सारी संपत्ति उसके कतिपय सदस्यों या सदस्यों के वर्ग में निश्चित भाग में बँट चुकी है तो वह इस संबंध में एक आदेश लिखेगा और यदि बँटवारा पहले वर्ष की अंतिम तिथि को हुआ है तो वह कर निर्धारण वर्ष के लिये जिसमें वह वर्ष भी संमिलित होगा जो कि पहले वर्ष से संबद्ध है और जिसमें बँटवारा हुआ या अविभाजित परिवार की शुद्ध संपत्ति पर कर निर्धारण करेगा और उसके लिये प्रत्येक सदस्य या सदस्यों का वर्ग अविभाजित परिवार की संपत्ति पर निर्धारित संपत्तिकर का संमिलित रूप से और अलग अलग देनदार होगा ।

(२) जब संपत्ति कर अधिकारी इस बात से संतुष्ट न हो तो वह आदेश द्वारा घोषणा कर सकता है कि ऐसा परिवार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये हिंदू अविभाजित परिवार चलता रहेगा और इस प्रकार वह कर का दायी होगा ।

२१—जब परिसंपत् प्रपन्नाधिकरण (कोर्ट्स आफ वार्ड्स) या महाप्रशासकगण इत्यादि लोगों के अधीन हो ।

(१) उस परिसंपत् के विषय में जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्ति कर लिया जाने वाला हो और जो प्रपन्नाधिकरण या महाप्रशासक या किसी अधिकारीय न्यासधारी या किसी प्रापक (रिसिवर) या प्रबंधक या किसी अन्य व्यक्ति उसे चाहे जिस नाम से पुकारा जाता हो और जो संपत्ति का प्रबंध दूसरों की ओर से करने के लिये न्यायालय के आदेश द्वारा नियुक्त हुआ हो उसके धारण में हो अथवा कोई न्यासधारी जिसकी नियुक्ति न्यास के अंतर्गत हुई हो और वह न्यास उचित रूप में तथा लिखित हो या चाहे वह वसीयतनामा के रूपमें हो या अन्य प्रकार से हो (इसमें वैध विलेखवाले वक्फ के अंतर्गत वाला न्यासधारी भी संमिलित है) संपत्ति कर जैसी स्थिति हो प्रपन्नाधिकरण महाप्रशासक, अधिकारीय न्यासधारी प्रापक, प्रबंधक या न्यासधारी पर लगाया जायगा और वसूल किया जायगा और यह उसी भाँति होगा जिस भाँति जिस व्यक्ति की ओर से ये लोग उसकी संपत्ति का प्रबंध करते हैं उसपर लगाया जाता और वसूल किया जाता और तद्नुसार अधिनियम के उपबंध लागू होंगे ।

(२) उपधारा १ में दी गई किसी भी बात से जिस व्यक्ति की ओर से उपर्युक्त प्रकार से परिसंपत का धारण किया हुआ है उस पर या तो सीधे कर निर्धारण में कोई रुकावट नहीं होगी या उस व्यक्ति से ऐसे परिसंपत के संबंध में लगाए गए कर की वसूली में भी कोई अड़चन नहीं पड़ेगी ।

(३) जब किसी उस व्यक्ति का संरक्षक या न्यासधारी जो कि अवयस्क पागल या मूढ़ है (इस उपधारा में ऐसे समस्त व्यक्ति एतत्पश्चात् "हित ग्राही" (बेनीफिशियरी) शब्द में आ जाएँगे) ऐसे हितग्राही की ओर से परिसंपत् का धारण करता है तो इस अधिनियम के अंतर्गत कर ऐसे संरक्षक या न्यासधारी पर जैसी स्थिति हो उसी प्रकार और उसी सीमा तक लगाया जायगा और वसूल किया जायगा जिस प्रकार यदि हितग्राही वयस्क होता या उसका मस्तिष्क ठीक रहता तथा परिसंपत का स्वामी प्रत्यक्षतः रहता तो उस पर लगाया जाता और वसूल किया जाता ।

(४) इस धारा के अंतर्गत किसी भी बात के रहते हुए भी जिस व्यक्ति की ओर से ऐसे परिसंपत धारण किए जाते हैं उसका हिस्सा अनिश्चित या अज्ञात हो तो प्रप्रत्नाधिकरण, महाप्रशासक, अधिकारीय न्यासधारी, प्रापक, व्यवस्थापक या उपर्युक्त अन्य व्यक्ति पर संपत्ति कर लगाया जा सकता है या वसूल किया जा सकता है मानो वे व्यक्ति जिनकी ओर से परिसंपत् धारण किया जाता है इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये व्यक्ति (इंडिविजुवल) हों ।

२२—उन व्यक्तियों पर कर निर्धारण जो भारत के बाहर रहते हों—

(१) कोई व्यक्ति जो इस अधिनियम के अंतर्गत संपत्तिकर का दायी हो भारत के बाहर रहता है तो उसके अभिकर्ता पर कर लगाया और वसूल किया जा सकता है और अभिकर्ता इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये इस कर के संबंध में करदाता समझा जायगा ।

(२) कोई व्यक्ति जब उपधारा (१) में अभिदिष्ट व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से नियुक्त हो या जिस व्यक्ति द्वारा वह उसकी किसी आय, लाभ या उपलब्धि को प्राप्त करता हो अथवा वह ऐसे व्यक्ति की किसी परिसंपत् के धारण या अभिरक्षा में हो और जिस पर संपत्तिकर अधिकारी ने इस विचार से नोटिस तामील कर दिया हो कि वह उस व्यक्ति का अभिकर्ता समझा जाता है तो वह उपधारा (१) के प्रयोजनों के लिये उसका अभिकर्ता समझा जायगा किंतु प्रतिबंध यह है कि—

(१) इस धारा के अंतर्गत कोई व्यक्ति किसी दूसरे का अभिकर्ता तब तक नहीं समझा जायगा जब तक कि इस प्रकार अभिकर्ता समझे जाने के संबंध में संपत्ति कर अधिकारी द्वारा उसकी बात सुनने का अवसर नहीं दिया जा चुका है; और

(२) कोई अभिकर्ता उपधारा १ के अंतर्गत संपत्ति कर के रूप में दी जानेवाली धनराशि के संबंध में जो व्यक्ति भारत के बाहर रहता है उसकी सारी धन राशि और जो धनराशि उस समय अभिकर्ता के हाथ में थी जब कि उस पर माँग की नोटिस तामील की गई थी उससे अधिक का देनदार नहीं होगा ।

अध्याय ६

अपील, पुनरीक्षण और अभिदेश

२१—अपील के सहायक आयुक्त के यहाँ संपत्ति कर अधिकारी के आदेश की अपील ।

(१) कोई व्यक्ति—

(अ) जो इस अधिनियम के अंतर्गत निश्चित की हुई शुद्ध संपत्ति की धन राशि पर आपत्ति करता हो, अथवा

(ब) जो इस अधिनियम के अंतर्गत निश्चित की हुई उस धनराशि पर आपत्ति करता हो जो कि संपत्ति कर के रूप में उसे देना है; अथवा

(स) जो इस अधिनियम के अंतर्गत कर के दायित्व से इनकार करता हो; अथवा

(द) जो संपत्ति कर अधिकारी द्वारा धा० १८ के अंतर्गत लगाए गए दंड पर आपत्ति करता हो, अथवा

य—जो संपत्तिकर अधिकारी द्वारा धा० २० (२) के अंतर्गत दिए गए किसी आदेश पर आपत्ति करता हो; अथवा

र—जो संपत्ति कर अधिकारी द्वारा आयकर अधिनियम की धारा ४६ (१) के उपबंधों के अंतर्गत दिए गए किसी दंड पर आपत्ति करता है जो उपबंध कि धारा ३२ के अंतर्गत संपत्ति कर के प्रयोजनों के लिये लागू होता है,

वह अपील के सहायक आयुक्त के यहाँ कर निर्धारण या आदेश के विरुद्ध जैसी स्थिति हो, अपील कर सकता है और यह निर्धारित प्रपत्र पर निर्धारित प्रकार से सत्यापित रहेगा ।

(२) यदि आपत्ति करनी है तो उक्त कर निर्धारण या दंड से संबंध रखनेवाली माँग की नोटिस की प्राप्ति से ३० दिन के भीतर ही अपील निवेशित की जायगी या

उस दिन से ३० दिन के भीतर अपील की जायगी जिस दिन वह इस आदेश से अवगत कराया गया किंतु अपील के सहायक आयुक्त यदि इस बात से संतुष्ट हो जाँय कि पर्याप्त कारण था जिसके कारण अपीलकर्ता अवधि के भीतर अपील निवेशित करने में असफल रहा है तो अवधि बीतने के बाद भी वह अपील कर सकता है।

(३) अपील के सहायक आयुक्त अपील की सुनवाई के लिये एक दिन और स्थान निश्चित करेंगे और सुनवाई को वे समय समय पर स्थगित कर सकते हैं।

(४) अपील के सहायक आयुक्त—

अ—अपील की सुनवाई के समय अपीलकर्ता को अपील के उन आधारों पर भी कहने का अवसर दे सकते हैं जो आधार कि उसने अपील के आधारों में पहले से नहीं लिया है;

ब—अपील का निर्वर्तन करने के पहले यदि वे उचित समझें तो आगे की जाँच स्वयं कर सकते हैं या संपत्तिकर अधिकारी को जाँच करने का आदेश दे सकते हैं।

(५) अपील का निर्वर्तन करने में अपील के सहायक आयुक्त जैसा उचित समझें आदेश पारित कर सकते हैं जिसमें कर निर्धारण या दंड को बढ़ानेवाला आदेश भी संमिलित है।

किंतु प्रतिबंध है कि कर निर्धारण या दंड को बढ़ाने वाला आदेश तबतक नहीं दिया जायगा जबतक कि उस व्यक्ति को यह दिखलाने का उचित अवसर नहीं दिया गया है कि इसको क्यों न बढ़ा दिया जाय

(६) अपील के सहायक आयुक्त द्वारा इस धारा के अंतर्गत पारित प्रत्येक आदेश की एक प्रति अपीलकर्ता और आयुक्त को दी जायगी।

२४--अपील के न्यायाधिकरण में अपील के सहायक आयुक्त के आदेश की अपील--

१--अपील के सहायक आयुक्त द्वारा धारा २३ के अंतर्गत पारित आदेश पर यदि करदाता आपत्ति करता है तो ऐसे आदेश की नोटिस की जिस दिन उस पर तामीली होती है उसके ६० दिन के भीतर वह अपील के न्यायाधिकरण में अपील कर सकता है।

(२) आयुक्त यदि अपील के सहायक आयुक्त के धारा २३ के अंतर्गत दिए गए किसी आदेश को ठीक नहीं समझते हैं तो वे संपत्ति कर अधिकारी को निर्देश कर सकते हैं कि वह इस आदेश के विरुद्ध अपील के न्यायाधिकरण में अपील निवेशित करे और ऐसी अपील जिस दिन इस आदेश से आयुक्त अवगत होते हैं उस दिन से ६० दिन के भीतर निवेशित की जायगी।

(३) न्यायाधिकरण यदि इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उपधारा १ और २ में अभिदिष्ट अवधि के भीतर अपील निवेशित न करने के लिये कारण पर्याप्त थे तो न्यायाधिकरण उक्त अवधि के बाद भी अपील स्वीकार कर सकता है।

(४) अपील के न्यायाधिकरण में अपील निर्धारित प्रपत्र पर होगी और निर्धारित विधि से सत्यापित होगी तथा उपधारा (२) अभिदिष्ट अपील को छोड़कर यह सौ रुपए शुल्क के साथ निवेशित की जायगी।

(५) अपील का न्यायाधिकरण अपील के दोनों पक्षों को अपीन बात कहने का उचित अवसर प्रदान करने के बाद उस पर जैसा उचित समझे आदेश पारित कर सकता है और ऐसे किसी आदेश में करनिर्धारण वृद्धि या दंड हो सकता है।

किंतु प्रतिबंध यह है कि कर निर्धारण या दंड बढ़ाने वाला कोई आदेश तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि उस आदेश द्वारा प्रभावित होनेवाले व्यक्ति को ऐसी वृद्धि के विरुद्ध कारण दिखलाने के लिये उचित अवसर दे न दिया गया हो।

(६) जब अपीलकर्ता किसी संपति के मूल्यांकन पर आपत्ति करता है तो अपील का न्यायाधिकरण यदि चाहे तो तथा यदि अपीलकर्ता की माँग हो तो विवा-

दास्पद मूल्य के प्रश्न को दो मूल्य निर्धारक पंचों को अभिदेश कर देगा जिनमें से एक का नाम अपीलकर्ता देगा और दूसरे का उत्तरवादी और तब न्यायाधिकरण जहाँ तक इस प्रश्न का संबंध है उपधारा (४) के अंतर्गत मूल्य निर्धारकों के निर्णय के अनुसार अपना आदेश पारित करेगा।

किंतु प्रतिबंध है कि जब दोनों मूल्यनिर्धारकों में मतभेद हो तो यह मामला तीसरे मूल्य निर्धारक को भेज दिया जायगा जो कि संविद् द्वारा मनोनीत होगा और यदि संविद् न हो सके तो अपील के न्यायाधिकरण द्वारा मनोनीत होगा और मूल्यांकन के प्रश्न पर उक्त मूल्य निर्धारक का निर्णय अंतिम होगा।

(७) उपधारा (६) में पंच निर्णय की कार्यवाही में जिस पक्ष के कहने पर मामला मूल्य निर्धारक को गया था उसी पर इसका व्यय होगा इस प्रकार जैसी स्थिति हो केंद्रीय सरकार या कर दाता पर इसका व्यय होगा। किंतु प्रतिबंध है कि कर दाता के कहने पर जो अभिदेश हुआ है उसमें यदि वह पूर्णतः या अंशतः सफल रहा है तो किस सीमा तक करदाता पर उसका व्यय रहेगा यह अपील के न्यायाधिकरण के स्वविवेक पर निर्भर करेगा।

(८) मूल्य निर्धारक जिनको उपधारा (६) के अंतर्गत पंच निर्णय के लिये मामला अभिदिष्ट हुआ है वे निर्वर्तन करते समय जैसा उचित समझें जाँच कर सकते हैं या जाँच कराकर अपीलकर्ता या उत्तरवादी को अपनी अपनी बात कहने का उचित अवसर देने के बाद उस पर जैसा उचित समझें आदेश पारित कर सकते हैं और इसकी प्रतिलिपि अपील के न्यायाधिकरण को भेज देंगे।

(९) इस धारा के अंतर्गत अपील के न्याधिकरण द्वारा पारित प्रत्येक आदेश की प्रतिलिपि करदाता और आयुक्त को भेज दी जायगी।

(१०) धारा २७ में जो दिया गया है उसे छोड़कर अपील में अपील के न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश अंतिम होगा।

(११) आयकर अधिनियम की धा० ५ (ए०) की उपधाराओं ५) (७) और (८) के उपबंध इस अधिनियम के अंतर्गत कार्य करने के संबंध में अपील के न्यायाधिकरण में उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार कि वे आयकर अधिनियम के अंतर्गत लागू होते थे।

२५-अधरिक प्राधिकरण के आदेशों के पुनरीक्षण के संबंध में आयुक्त के अधिकार।

(१) आयुक्त स्वतः या करदाता द्वारा इस संबंध में प्रार्थनापत्र देने पर अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में जिसमें किसी अधरिक प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित किया गया है उसके अभिलेख को मँगा सकते हैं और जैसे उचित समझे जाँच कर सकते हैं या जाँच करा सकते हैं तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उस पर ऐसा आदेश दे सकते हैं जो कि कर दाता को हानि पहुँचानेवाला न हो और जिसे आयुक्त उचित समझें—

किंतु प्रतिबंध है कि आयुक्त इस उपधारा के अंतर्गत किसी ऐसे आदेश का पुनरीक्षण नहीं करेंगे जहाँ:—

(अ) आदेश के विरुद्ध अपील अपील के-सहायक आयुक्त के यहाँ या अपील के न्यायाधिकरण में की जा सकती है और अपील के लिये निर्धारित अवधि व्यतीत न हो गई हो अथवा अपील के न्यायाधिकरण में अपील की अवस्था में अपीलकर्ता ने अपने अपील के अधिकार को छोड़ा न हो;

(ब) आदेश अपील के सहायक आयुक्त के समक्ष या अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष अपील करने के अधीन हो;

(स) करदाता द्वारा इस प्रकार पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया हो तो जबतक—

(१) प्रार्थनापत्र २५ रु० के शुल्क के साथ न हो; और

(२) प्रार्थनापत्र जिस आदेश का पुनरीक्षण करना है उसके पारित होने के १ वर्ष के भीतर न हो या उसके बाद उस अवधि के भीतर न हो जिसे आयुक्त ने इस

बात से संतुष्ट होकर बढ़ाना उचित समझा हो कि पर्याप्त कारण थे जिन्होंने करदाता को समय के भीतर प्रार्थना पत्र निवेशित करने में रुकावट डाली है; और

(द) जिस आदेश का पुनरीक्षण आयुक्त को स्वतः करना है वह आदेश यदि १ वर्ष पहले से अधिक का पारित किया हुआ है।

व्याख्या—इस उपधारा के प्रयोजनों के लिये—

(अ) समझा जायगा कि अपील के सहायक आयुक्त आयुक्त के नीचे के प्राधिकारी हैं; और

(ब) जिस आदेश में आयुक्त हस्तक्षेप करने से अस्वीकार कर दें समझा जायगा कि वह आदेश करदाता के लिये हानिकर नहीं है।

(२) उपधारा (१) में दिए गए उपबंधों को हानि न पहुँचाते हुए आयुक्त इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही के अभिलेख मँगा सकते हैं और परीक्षण कर सकते हैं और यदि उनका विचार यह होता है उसमें संपत्ति कर अधिकारी द्वारा दिया हुआ कोई आदेश इस अर्थ में गलत है कि वह राजस्व के हित को हानिकारक है तो वे कर दाता को अपनी बात कहने का उपयुक्त अवसर देने के बाद और जैसा वे आवश्यक समझें जाँच करने या जाँच कराने के बाद उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकते हैं जो परिस्थिति के अनुसार उचित हो और इसमें कर निर्धारण वृद्धि, संशोधन या उसको निराकृत करके नया कर निर्धारण का आदेश देना सभी संमिलित हैं।

२६—आयुक्तों द्वारा वृद्धि के आदेश की अपील अपील के न्यायाधिकरण में—

(१) कोई करदाता जो आयुक्त द्वारा धारा २५ के अंतर्गत वृद्धि के आदेश पर आपत्ति करता है वह अपील के न्यायाधिकरण में उस दिन से ६० दिन के भीतर अपील निवेशित कर सकता है जिस दिन कि वह आदेश से अवगत हुआ था।

(२) उपधारा (१) के अंतर्गत अपील के न्यायाधिकरण में अपील निर्धारित प्रपत्र पर होगी और निर्धारित विधि से सत्यापित रहेगी तथा १०० रु० के शुल्क के साथ रहेगी।

(३) उपधारा ३ और ५ से १० तक के उपबंध जिसमें धारा २४ भी संमिलित होगी इस धारा के अंतर्गत अपील के संबंध में उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार उस धारा के अंतर्गत अपील में वे लागू होते हैं।

२७-उच्च न्यायालय को अभिदेश

(१) धारा २४ या धारा २६ के अंतर्गत आदेश की तामीली जिस दिन होती है उस तिथि से ९० दिन के भीतर करदाता या आयुक्त निर्धारित दिन के भीतर निर्धारित प्रपत्र पर अपील के न्यायाधिकरण में प्रार्थनापत्र दे सकते हैं कि वह ऐसे आदेश से उत्पन्न किसी विधि के प्रश्न का अभिदेश उच्च-न्यायालय को कर दे किंतु यदि प्रार्थनापत्र करदाता द्वारा है तो वह १००) शुल्क के साथ होगा और जब अपील का न्यायाधिकरण विचार करता है कि इस प्रकार के आदेश से विधि का प्रश्न उत्पन्न होता है तो वह ऐसे मामले को उच्च न्यायालय के विचारार्थ भेज देगा।

(२) उपधारा (१) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र उपर्युक्त ९० दिन की अवधि के बाद भी स्वीकार किया जा सकता है जब कि न्यायाधिकरण इस बात से संतुष्ट हो जाय कि उक्त अवधि के भीतर इसे प्रस्तुत न करने में पर्याप्त कारण थे।

(३) यदि उपधारा (१) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र देने पर अपील का न्यायाधिकरण—

(अ) मामले को इस आधार पर भेजने से इनकार कर देता है कि विधि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता अथवा

(ब) इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि यह कालबाधित है;

व्यक्ति की सेवा समाप्ति स्वतः दंडस्वरूप होती है कारण कि उस सेवा से संबद्ध लाभ से वह वंचित हो जाता है किंतु जब सेवक का उस पद पर कोई अधिकार नहीं रहता और वह स्थायी या अस्थायी सेवा पर परीक्षण या स्थानापन्न रूप में नियुक्त होता है और जैसा कि अस्थायी सेवा नियमावलि के अंतर्गत है उसकी अस्थायी सेवा आभास स्थायी सेवा में परिपक्व न हो गई हो तो उसकी सेवा समाप्ति उसे किसी अधिकार से वंचित नहीं करती इसलिए यह स्वतः दंड नहीं है। सेवा की समाप्ति दंड है कि नहीं इस बात को जानने के लिये केवल यह जानना आवश्यक है कि यदि सेवा की समाप्ति न की गई होती तो उसे उस पद पर रहने का अधिकार होता कि नहीं। ऊपर बतलाई गई तीन प्रकार की सेवाओं में उस व्यक्ति का उस पद पर अधिकार होता है इसलिए सेवा समाप्ति दंडस्वरूप है और वह व्यक्ति अनुच्छेद ३११ के संरक्षण का अधिकारी है। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद ३११ (२) उन परिस्थितियों में लागू होगा जब कि सरकारी सेवक यदि वैयक्तिक (प्राइवेट) ढंग पर नियुक्त किया गया होता तो गलत पदच्युति, पद से हटाए जाने या श्रेणी से न्यूनीकरण करने के संबंध में मुकदमा चलाने का अधिकारी होता। एक प्रकार से इसे और स्पष्ट किया जा सकता है कि यदि सरकार किसी संविदा के आधार पर या सेवा नियमावली के अंतर्गत किसी भी समय सेवा समाप्त कर देने का अधिकार रखती है तो उस नियम के अंतर्गत सेवा समाप्ति स्वतः दंड नहीं होती और इस परिस्थिति में अनुच्छेद ३११ लागू नहीं होता।

इन सबका तात्पर्य यह नहीं होता कि उपर्युक्त केवल तीन प्रकार की सेवाओं को छोड़कर अन्य प्रकार की सेवाओं में जैसे "परीक्षण" या "स्थानापन्न' सेवा में, जिसमें उस व्यक्ति का अधिकार उस पद पर नहीं होता उसकी सेवा समाप्ति में अनुच्छेद ३११ लागू ही नहीं होता। यदि पद पर रहने का अधिकार न हो तब भी अनुच्छेद ३११ (२) लागू होता है और वह भी केवल एक परिस्थिति में जब कि सरकार साधारण रूप से सेवा समाप्ति के स्थान पर कुछ दंड देना चाहती है और दंड स्वरूप वह उसे पदच्युत करती है, हटाती है या श्रेणी में नीचे कर देती है। तात्पर्य यह है कि जब संविदा प्रदत्त अधिकार के अंतर्गत सेवा की समाप्ति की जाती है तो यह दंड नहीं है और इसलिए इसमें अनुच्छेद ३११ का संरक्षण नहीं दिया जा सकता किंतु जब सेवा समाप्ति दंड के साथ होती है तो इसमें अनुच्छेद ३११ लागू होता है।

इसमें एक कठिनाई और है कि यह हो सकता है कि सरकार का विचार तो किसी सेवक को दंड देने का हो किंतु वह सेवा समाप्ति संविदाप्रदत्त अधिकार के अंतर्गत करे। इस प्रश्न पर बंबई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति माननीय न्यायमूर्ति छागला ने अपना विचार व्यक्त किया है कि संविदा के अंतर्गत सेवा समाप्ति का अधिकार यदि हो तो इसका प्रभाव कुछ नहीं पड़ेगा कि इसमें सरकार का विचार दूसरा था।

श्रेणी का न्यूनीकरण प्रत्येक दशा में दंडस्वरूप नहीं होता। इसके लिये देखना पड़ता है कि इस न्यूनीकरण का परिणाम दंड होता है कि नहीं। जैसे, यदि आदेश का परिणाम यह हो कि वह वेतन से बंचित हो जाय, आगे की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाय इत्यादि तो इन बुरे परिणाम के कारण आदेश को दंड देनेवाला आदेश कहा जा सकता है। यदि सरकार का कहना हो कि हम संविदा के अधिकार के बल पर ऐसा आदेश दे रहे हैं फिर भी आदेश का परिणाम यदि बुरा हो तो उसे दांडिक ही कहा जायगा। आदेश में प्रयुक्त शब्द अहानिकर भले ही हों किंतु उसका परिणाम यदि बुरा है तो वह दंडस्वरूप होगा। इसकी परीक्षा दो प्रकार से की जा सकती है—(१) सेवक को उस पद पर या उस श्रेणी में रहने का अधिकार है कि नहीं—अथवा—(२) उसका परिणाम बुरा हुआ है कि नहीं। इन दोनों में से यदि एक भी शर्त का पालन हुआ है तो समझना चाहिए कि उसे दंड दिया गया है और वह अनुच्छेद ३११ के संरक्षण का अधिकारी है।

इस मुकदमें में अपीलकर्ता की सेवा भारतीय रेलवे संहिता से शासित है। उसके अनुसार उच्चतर पद

पर रहने का उसका अधिकार नहीं था तथा सामान्य विधि के अनुसार उसे केवल एक नोटिस देकर अलग किया जा सकता था। उक्त नियम के अनुसार उसके मौलिक पद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपने मौलिक पद पर उसकी प्रगति और उसकी ज्येष्ठता पूर्ववत् है। यह दंड नहीं है और दंड न होने से अपील कर्ता अनुच्छेद ३११ (२) के संरक्षण का अधिकारी नहीं है। अतः यह अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जानी चाहिए।

न्यायमूर्ति बोस—

अत्यंत संमान के साथ मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि इस मामले में अनुच्छेद ३११ लागू नहीं होता।

मैं इस बात से सहमत हूँ कि अनुच्छेद ३११ सभी सेवाओं के लिये लागू होता है। मैं इस बात से भी सहमत हूँ कि ये शब्द "पदच्युति" "पद से हटाया जाना" और "श्रेणी में न्यूनीकरण" अभिप्राय-विशेष के लिये प्रयुक्त हैं। इनमें बहुत ही सूक्ष्म अंतर होता है और अंतर के सूक्ष्म होने से आवश्यकता इस बात की पड़ती है कि आसपास के वातावरण द्वारा यह तय कर लिया जाय कि सविधान के लागू होने की तिथि को यह विशिष्ट अर्थ में एवं विशिष्ट प्रयोजन के लिये समझा जाने लगा था कि नहीं। इस काम के लिये 'क्राउन' के अंतर्गत सेवा की शर्तों के इतिहास पर विचार करना और तत्कालीन प्रवर्ती परिनियमों का जानना आवश्यक था। इस बात के अतिरिक्त "नियमों" को देखना उचित नहीं है क्योंकि मैं इस बात को नहीं मानता कि संविधान का अर्थ विधान मंडल के अधिनियमों और उससे भी नीचे के प्राधिकरण द्वारा बनाए गए नियमों के आधार पर लगाया जा सकता है और मुख्यतः वे नियम और अधिनियम जिनका बनाया जाना या जिनका पारित होना संविधान के बाद हुआ।

मैं इस बात से सहमत हूँ कि जब दांडिक परिणाम होता है तब अनुच्छेद ३११ लागू होता है किंतु इस सिद्धांत का विस्तार मैं और अधिक करता हूँ और मेरा विचार है कि जब कभी "अधिकार" (राइट) पर आघात पहुँचता है तब अनुच्छेद ३११ का लाभ मिलना चाहिए। सिद्धांत का विस्तार इसलिए हो जाता है कि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ सकती हैं जिनमें "अधिकार" का हनन हो जाता है परंतु उसका परिणाम दंडस्वरूप नहीं होता।

मैंने "अधिकार" का जो प्रयोग किया है वह विशेष अभिप्राय से किया है। मैंने जिस अर्थ में "अधिकार" शब्द का प्रयोग किया है हो सकता है कि यह न्यायिक न हो या हो सकता है कि यह किसी संविदा के समान न हो। मोटे तौर से यह वह अधिकार है जो न्यायालय द्वारा लागू न किए जाने योग्य होने पर भी इंगलैंड में "अधिकार प्रार्थना पत्र" (पेटिशन आफ राइट) का एक अच्छा आधार हो सकता है।

संविधान में भी "अधिकार" अपने सूक्ष्म अर्थ में न होकर स्थूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि जिन सेवकों का पद राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत है उन्हें अधिकार कैसा? और जब सेवा राष्ट्रपति की कृपा पर्यंत ही है तो फिर "संविदा" (कंट्रैक्ट) शब्द का क्या महत्व है? 'संविदा' (कंट्रैक्ट) शब्द अनुच्छेद ३१० (२) में प्रयुक्त है। इन शब्दों का तात्पर्य मोटे रूप में लिया जाता है और इस प्रकार ये शब्द अभिव्यक्ति के सुविधा-कारक साधन मात्र हैं और इन्हीं अर्थ में प्रिवी कौंसिल की कतिपय रूलिंग्स में इनका प्रयोग भी हुआ है।

सेवा की शर्तें या संविदा विशेष इस बात के रहते हुए भी कि वे एकपक्षीय ढंग पर कृपा पर्यंत हैं अधिकार प्रदान करते हैं और जब इस अधिकार पर आघात पहुँचता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होता है। यदि सेवा की समाप्ति नियम के अंतर्गत हो तो उसकी अपेक्षा अधिक बुरा परिणाम जब सेवा समाप्ति में आता है तब बादवाली सेवा समाप्ति में अनुच्छेद ३११ लागू होता है। जैसे दुर्व्यहार पर मान लिया जाय कि उसकी सेवा समाप्ति की जानेवाली है तो यह दो ढंग पर हो सकती है—(१) दुर्व्यवहार के कारण पदच्युति आदि और (२) सेवा नियमावली या संविदा के अंतर्गत अधिकार के प्रयोग

द्वारा यद्यपि कि दुर्व्यव्यहार का तत्व इसमें भी वर्तमान है। जब सरकार सं० २ के आधार पर पदच्युति आदि करती है तो इसको सावधानी इस बात की रखनी पड़ती है कि यदि वह व्यक्ति दुर्व्यव्यहार के आधार पर पदच्युत न होता और संविदाप्रदत्त अधिकार पर ही सामान्य क्रम में पदच्युत होता तो उससे बुरा परिणाम सं० २ के ढंग पर की हुई पदच्युति आदि में न आने पावे।

मेरे विचार से परीक्षण केवल इस बात का है कि संविदा प्रदत्त अधिकार द्वारा सेवा समाप्ति से अधिक बुरा परिणाम दूसरे प्रकार की सेवा समाप्ति में आता है कि नहीं। यदि अधिक बुरा परिणाम आता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होगा।

सरकार का कहना है कि इस मुकदमें में अपीलकर्ता जिस स्थानापन्न सेवा पर था वह अस्थायी थी और जब वह पहले वाले पर कर दिया गया तो उसे कोई हानि नहीं हुई। उसके विरुद्ध समस्त गुप्त प्रतिवेदनों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है किंतु मुख्य प्रबंधक ने जो एक बात लिख दी है कि उसका उच्च अधिकारी जब यह प्रतिवेदन दे दे कि उसने अपनी गलती सुधार ली है तभी उसकी प्रगति होगी—सेवा कर्तव्य पर यह कलंक है। मेरे विचार से यदि संविदा के आधार पर सामान्य क्रम में सेवा समाप्ति होती उससे अधिक बुरा परिणाम इस प्रकार की सेवा समाप्ति में आता है। उसकी प्रगति पर यह अवरोध है। चाहे यह दंड (पनिशमेंट) हो या (पेनाल्टी) हो इससे हमारा संबंध नहीं है। हमारा निर्णय यह है कि यदि उसकी श्रेणी का न्यूनीकरण बिना किसी गलती से यों ही कर दिया गया होता तो वह परिस्थिति जैसी होती उससे बुरा परिणाम इस प्रकार के न्यूनीकरण में हुआ है। इस प्रकार की परिस्थिति में केवल यही देखना है कि अतिरिक्त बुरा परिणाम आदेश से भासित होता है कि नहीं।

यहीं मैं अत्यंत सम्मान के साथ अनु० ३११ का अर्थ लगाने में विरुद्ध मत प्रकट करता हूँ कि इन सब का सारांश यह नहीं है कि कार्यवाही का रूप क्या है या किस प्रक्रिया का पालन किया जाता है और न तो मेरे विचार से इसी का निश्चय आवश्यक है कि अधिकारी विशेष के मस्तिष्क में कौन सी बात घर कर चुकी थी। चोट वास्तव में उन चीजों से नहीं आती वरन् आती है तो केवल उन चीजों के परिणाम से और मेरा निर्णय तो यह है कि अनुच्छेद ३११ का संरक्षण कठोर शब्दों से बचाव करने के लिये नहीं दिया गया वरन् वह कठोर धक्के से बचने के लिये है। आदेश का प्रभाव ही एकमात्र महत्वपूर्ण वस्तु है और जब कभी संविदागत् आदेश के अतिरिक्त इसका प्रभाव कोई बुराई विशेष लाता है तो अनुच्छेद ३११ लागू होता है। यह कहकर अनुच्छेद के प्रभाव से नहीं बचा जा सकता कि अमुक आदेश नियम के अंतर्गत दंड नहीं है या वह इस विचार से नहीं दिया गया था कि वह (पेनाल्टी) हो। मेरा निर्णय यह है कि इसका प्रभाव कुछ नहीं पड़ता कि बुरा परिणाम नियम द्वारा निर्धारित दंड में आता है कि नहीं। वास्तविक परीक्षण केवल यही है कि क्या सचमुच वे उस आदेश के परिणामस्वरूप हैं?

मैं अपील को परिव्यय के साथ स्वीकार करूँगा।

न्यायालय द्वारा:—

बहुमत से अपील परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ७१

(बंबई से)

१४ अप्रैल १९५८

वी० पी० सिनहा, जफर इमाम एवं के० सुब्बा राव

न्यायमूर्तिगण

ननि बाई — अपीलकर्ता

वि०

गीता बाई — उत्तरवादी

अ—अवधि अधिनियम (१९०८) अनु० १२—गलत व्यक्ति को प्रतिनिधि मानकर उसके विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही किया जाना—विक्रय एवं उसका निराकरण।

ब—अवधि अधिनियम (१६०८) अनुच्छेद १३४ के लिये प्रमाण

स—व्यवहार प्रक्रिया संहिता (१६०८) धा० २२ नि० ४—समस्त विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर लाए गए किंतु उनमें से कुछ पर तामीली न हो सकी तो उसका प्रभाव

द—रजिस्ट्रेशन अधिनियम (१६०८) धा० १७, ४६—संयुक्त स्थिति का पृथक्करण—हिंदू विधि (बँटवारा)

न्यायमूर्ति बी० पी० सिनहा—

यह अपील जिस वाद से आई है वह वाद (विशिष्ट वाद सं० १३२२।१६३८) था। संगली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उस राज्य के ऋणी कृषकों के लाभार्थ कुछ उपबंध बनाए गए थे। यह राज्य उस समय 'ब्रिटिश इंडिया' के बाहर था। यह वाद पहले दो बंधकों के हिसाब के लिये तथा बंधक में दी हुई संपत्ति के धारण के लिये उक्त अधिनियम के अंतर्गत निवेशित किया गया था। संपत्ति का विवरण वाद पत्र में दिया हुआ है।

प्रतिवादी सं० १ ने प्रतिवाद में कहा कि बंधकवाली संपत्ति पर वादी का स्वत्व नहीं है क्योंकि मेरे पिता ने नीलाम में उस संपत्ति को खरीद लिया है और इस प्रकार वे उसके पूर्ण स्वामी हो गए तथा उसके बाद उन्होंने उस संपत्ति में से कुछ को कई एक व्यक्तियों के पक्ष में हस्तांतरित भी कर दिया है और अब हस्तांतरिती उसके पूर्ण स्वामी हो गए हैं। अन्य प्रतिवादियों ने भी प्रतिवाद निवेशित किया कि जब प्रतिवादी सं० १ का स्वत्व पूर्ण हो गया तब हमने उनसे संपत्ति को लिया और यतः इस वाद के निवेशित करने के पूर्व हस्तांतरण हुए १२ वर्ष से अधिक हो चुका इसलिए यह वाद अब अवधि बाधित है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर अपील के न्यायालय ने वाद प्रतिप्रेषित (रिमांड) कर दिया। प्रतिप्रेषण पर जब वाद विचाराधीन ही था उसी समय प्रतिवादी सं० २ के स्थान पर प्रतिस्थापना के लिये एक प्रार्थना पत्र दिया गया क्योंकि वह प्रतिवादी मर चुका था। न्यायालय ने वह प्रार्थना पत्र इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि प्रतिवादी सं० २ के संबंध में वाद का उपशमन हो चुका है। अपील से जब प्रतिप्रेषण का आदेश हुआ था उस समय वादी को संशोधन द्वारा अधिनिष्क्रयण (रिडेंप्शन) का अभिवचन लेने की अनुमति दे दी गई थी। इस आधार पर अन्वीक्षा न्यायालय ने वादपद पुनः बनाकर वाद की सुनवाई फिर से की तथा अंत में निर्णय दिया कि जो प्रतिवादीगण विक्रय विलेख के आधार पर संपत्ति के धारण में आए हैं उनका धारण १२ वर्ष पहले से ऊपर हो गया और इसलिए इसमें अवधि अधिनियम अनुच्छेद १३४ लागू होने से उन लोगों के विरुद्ध वाद काल बाधित हो जाता है। प्रतिवादी १ के उत्तराधिकारियों के विरुद्ध डिग्री दे दी गई। इस आदेश के विरुद्ध प्रतिवादी ने अपील किया और वादी ने प्रतिअपील (क्रास अपील) निवेशित किया। इन अपीलों में बंबई उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि इसमें अनुच्छेद १३४ लागू नहीं होता वरन् इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और इस कारण वाद काल बाधित नहीं है और इस कारण वाद काल बाधित नहीं है। परिणाम यह हुआ कि वादी के वाद में डिग्री पूर्ण रूपेण दे दी गई। अतः इस अपील को केवल प्रतिवादियों ने ही निवेशित किया।

इसमें विधि एवं तथ्य के प्रश्न पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गई हैं जिनमें से एक आरंभिक आपत्ति यह है कि सिंगली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम में दिया हुआ है कि विशिष्ट न्यायालय १६१५ के पहले के बंद हो गए हुए लेनदेन को पुनः चालू नहीं कर सकता और यहाँ इस वाद में लेनदेन १६१५ से बहुत पहले हुआ है इसलिए विशिष्ट न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र था ही नहीं। इस कथन में बल नहीं दीखता। यों तो १६१५ एक निश्चित तिथि निर्धारित की गई है किंतु इसका अर्थ इतना तक नहीं होता कि न्यायालय कोई अन्य सहायता प्रदान कर ही नहीं सकता। यदि ऐसी बात होती तो परिनियम में इसे स्पष्ट कर दिया गया होता किंतु ऐसा कुछ है नहीं। अतः विशिष्ट

न्यायालय को अधिकार है कि अधिनिष्क्रयण के बाद को ले ले किंतु यह १६१५ के पहले के बंद हो गए हुए लेनदेन के प्रश्न को पुनः चालू नहीं कर सकता। यहाँ अभिवचन में यह प्रश्न उठाया ही नहीं गया था। यहाँ केवल पहली बार यह प्रश्न उठाया जा रहा है अतः अन्वीक्षा न्यायालय के अधिक्षेत्र के संबंध में आपत्ति अमान्य की जाती है।

दूसरी आपत्ति है कि अवधि अधिनियम के अनुच्छेद १२ के अंतर्गत १ वर्ष की अवधि से यह वाद बाधित है। इसके बारे में तथ्य इस प्रकार हैं कि गुंडी ने १८९८, १९०० और १९०१ में बंधक रखा था। किसी अन्य व्यक्ति ने गुंडी के विरुद्ध रुपए की एक डिग्री प्राप्त किया था और यह मुकदमा केवल गुंडी के ही विरुद्ध था। जब गुंडी मरा तब उसका भाई सदाशिव उनके स्थान पर आया और डिग्री के निष्पादन की कार्यवाही में सदाशिव के विरुद्ध इस बंधकवाली संपत्ति को बंधकी के पिता ने नीलाम में खरीद दिया। अब यहाँ क्रेता का कहना है कि सदाशिव गुंडी का प्रतिनिधि था और जब तक उसके विरुद्ध विक्रय विलेख का निराकरण नहीं हो जाता तब तक उसका बंधन गुंडी और उसके प्रतिनिधि पर है। उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि गुंडी का विधिक प्रतिनिधि सदाशिव था ही नहीं और इस प्रकार निष्पादन कार्यवाही में गुंडी पक्ष नहीं रहा, अतः विक्रय विलेख के निराकरण का प्रश्न नहीं उठता। उच्चन्यायालय के निर्णय के अनुसार इसमें अनुच्छेद १२ लागू नहीं होता।

२७ इंडियन अपील्स २१६ में प्रिवी कौंसिल का निर्णय था कि गलत व्यक्ति की प्रतिस्थापना पर जब संपत्ति बेच दी गई है तो यह विक्रय ठीक है और इसका बंधन निर्णीत ऋणी की संपत्ति पर उसी प्रकार होगा मानों वह गलत व्यक्ति उचित रूप से उसका विधिक प्रतिनिधि रहा हो। इसके आधार पर कहा गया कि सदाशिव भलेही गुंडी का विधिक प्रतिनिधि न रहा हो—विक्रय का बंधन गुंडी की संपत्ति पर रहेगा ही।

प्रिवी कौंसिल को उपर्युक्त रूलिंग इससे भिन्न-परिस्थिति में दी गई थी इसलिए वह इसमें लागू नहीं होती। उस रूलिंग में परिस्थिति यह थी कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विशेष रूप से विचाराधीन था कि निर्णीत ऋणी का विधिक प्रतिनिधि कौन है। यह प्रश्न विवादास्पद था और पक्षों की बात सुनने के बाद न्यायालय ने जिस व्यक्ति को विधिक प्रतिनिधि माना वास्तव में वह गलत था। इसीलिए प्रिवी कौंसिल ने निर्णय दिया था कि न्यायालय का निर्णय गलत भले ही हो किंतु एक बार जब निर्णय हो चुका तो विक्रय विलेख का बंधन निर्णीत ऋणी की संपत्ति पर रहेगा। यहाँ ऐसी बात नहीं थी। गुंडी के मरने पर सदाशिव के विधिक प्रतिनिधि के प्रश्न पर कोई विवाद उठा ही नहीं न तो न्यायालय ने इस पर कोई निर्णय दिया। सदाशिव का नाम यों ही सामान्य क्रम में रख दिया गया। इसलिए वादी जो गुंडी की लड़की है उसके लिये यह आवश्यक नहीं था कि वह विक्रय विलेख के निराकरण के लिये वाद निवेशित करती। उसने ठीक ही किया कि वह निष्पादन कार्यवाही की अवहेलना करती हुई और अपने उत्तराधिकार के अधिकार को जताती हुई सीधे आई। अतः अवधि अधिनियम अनुच्छेद १२ के अंतर्गत वाद काल बाधित नहीं है।

प्रतिवादियों की ओर से दूसरा तर्क है कि इसमें अनुच्छेद १३४ लागू होता है। अनुच्छेद १३४ उस समय लागू होता है जब कि बंधकी ने अपने अधिकार से परे संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया है और इस गलत हस्तांतरण से बंधक दाता जिस दिन अवगत होता है उसके निराकरण के लिये १२ वर्ष की अवधि का आरंभ उसी तिथि से आरंभ हो जाता है। इस आधार पर प्रतिवादी का कहना है कि वाद १२ वर्ष की अवधि के कारण काल बाधित हो गया है। वादी का कहना है कि इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और अवधि ६० वर्ष की है। यहाँ अभिलेख पर विक्रय विलेख नहीं है जिससे कि उसके अनुबंधों को जाना जा सके। यह बात मान्य है कि उस विक्रय विलेख की रजिस्ट्री हुई थी इसलिए स्वतः वह विलेख ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। यदि किसी कारण से वह विलेख प्राप्त नहीं था तो उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि दी जा सकती थी। इनके

अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य एक निर्बल साक्ष्य होता किंतु यहाँ अभिवचन में इसकी कहीं चर्चा भी नहीं है। प्रतिवादियों ने फिर अपना तर्क दूसरी ओर मोड़ा कि यतः यह बात वादी के अवगत होने के संबंध में है अतः इसका विशिष्ट ज्ञान वादी को है और इसीलिए इसके प्रमाणित करने का भार भी वादी पर है कि वह बतलावे कि किस दिन उसे इस हस्तांतरण का ज्ञान हुआ। वादी का कहना है कि जब इसका लाभ प्रतिवादी लेना चाहता है तो उसे प्रमाणित करना पड़ेगा कि किस दिन मैं उस हस्तांतरण से अवगत हुआ। अतः इसमें अनुच्छेद १३४ लागू नहीं होता इसलिए इन विवादास्पद बातों पर निर्णय देने की आवश्यकता भी नहीं है। वादी के धारण वापस पाने में न तो अनुच्छेद १२ लागू होता है और न तो अनुच्छेद १३४। इसमें अनुच्छेद १४८ लागू होता है और इसलिए यह वाद काल बाधित नहीं है।

वाद की संधार्यता के विषय में प्रतिवादियों की ओर से एक बात कही गई कि प्रतिवादी सं० २ मुकदमें की सुनवाई के बीच में ही मर गया और वादी ने प्रतिस्थापना के संबंध में कोई कार्यवाही नहीं किया। अपील से मुकदमा प्रतिप्रेषित होकर जब पुनः अन्वीक्षा न्यायालय में आया तब वादी ने प्रतिस्थापना की कार्यवाही करना चाहा किंतु अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दे दिया कि जहाँ तक प्रतिवादी सं० २ का संबंध है वाद का उपशमन हो चुका है। इस तथ्य के आधार पर प्रतिवादी का कहना है कि व्य० प्र० सं० आ० ३४ नि० १ में है कि बंधक प्रतिभूति में या अधिनिष्क्रयण (रिडेंप्शन) के अधिकार में जितने लोगों का हित हो वे सब पक्ष बनाए जायं। उसका कहना है कि यहाँ पर प्रतिवादी सं० २ के न रहने से वाद अपूर्ण है और परिणामतः सारा वाद उपशमित (अबेटेड) हो जाना चाहिए। किंतु अभिवचन से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि प्रतिवादी सं० २, प्रतिवादी सं० १ के साथ संयुक्त बंधकी था कि कैसा था। प्रतिवादी सं० १ ने अपने को आरंभिक बंधकी के हित का उत्तराधिकारी कहा है। वादपत्र में इतना ही है कि प्रतिवादी सं० २ एस० आर० सं० १७३५ का स्वामी है किंतु इस बात से भी प्रतिवादी सं० ३ इनकार कर गया और उसका कहना था कि एस० आर० सं० १७३५ का स्वामी मैं हूँ और धारण में हूँ। प्रतिवादी सं० २ ने प्रतिवादी सं० ३ के इस बात का विरोध नहीं किया और यहाँ तक कि सारी कार्यवाही में वह एक पक्षीय (एक्सपार्टी) रहा। उसने कोई लिखित प्रतिवाद नहीं निवेशित किया। अतः अधिनिष्क्रयण करनेवाली संपत्ति में प्रतिवादी सं० २ का कोई अधिकार नहीं रहा। उसके उत्तराधिकारी वाद में पक्ष नहीं हैं और इस वाद के निर्णय का बंधन उन पर नहीं होगा। किंतु यह तो प्रतीत होता ही है कि द्वितीय प्रतिवादी का कोई वर्तमान हित नहीं है।

यह भी कहा गया कि जब प्रतिवादी सं० ८ मरा तो उसके स्थान पर उसके विधिक प्रतिनिधि प्रतिस्थापित किए गए। उनमें से कुछ पर तो तामीली हुई किंतु कुछ पर तामीली न हो सकी। जिन पर तामीली न हो सकी वे भी आवश्यक पक्ष थे और उनके न रहने से वाद उचित रूप में नहीं है। उच्च न्यायालय ने जो ए० आई० आर० १९३५ बंबई २८७ के आधार पर इसका उत्तर दिया था कि कुछेक विधिक प्रतिनिधियों का प्रतिस्थापित किया जाना भी पर्याप्त है किंतु वास्तव में आ० २२ नि० ४ इसमें लागू नहीं होता क्योंकि यहाँ तो सभी विधिक प्रतिनिधि प्रतिस्थापित हो चुके हैं और आ० २२ का पूरा पालन हो चुका है। यदि कुछ व्यक्तियों पर तामीली नहीं हुई तो इससे वाद का उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हो सकता परिणाम के लिये इतना ही देखना होगा कि उनके न रहने से वाद समर्थ है कि नहीं। यहाँ पर अभिलेख पर के प्रमाण से यह सिद्ध है कि विधिक प्रतिनिधियों का अधिनिष्क्रयण में कोई अधिकार और हित नहीं है। प्रश्न है कि जिन लोगों पर तामीली नहीं हुई है उनपर भी डिग्री का बंधन होगा कि नहीं। यहाँ जो कुछ हम जानते हैं वह यही है कि अधिनिष्क्रयणवाली संपत्ति में इनका कोई अधिकार नहीं है। उपशमन (अबेटमेंट) नहीं हुआ इसलिए आरंभिक आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

इस प्रकार आरंभिक आपत्तियों का निर्वतन करने के बाद अब तथ्य पर आ जाना है। वादी के पिता गुंडी ने तीन विभिन्न वर्षों में तीन बंधक लिखा। तीनों बंधक एक ही बंधकी के पक्ष में थे और तीनों में उसके दो भाई रामा और सदाशिव प्रतिभू (श्योरिटी) थे। वादी का कहना है कि हमारे पिता गुंडी के और पिता अप्पा राव थे। अप्पा राव ने अपने जीवन काल में ही संपत्ति का बँटवारा हमारे पिता गुंडी और दो चाचा रामा और सदाशिव के बीच कर दिया था तथा अपनी स्त्री के जीवन यापन के लिए संपत्ति में से कुछ भाग निकाल लिया था।

वादी का कहना था कि सभी भाई अलग २ थे और इसलिए बंधक की सारी संपत्ति हमारे पिता गुंडी की ही थी।

पहले रामा मरा और उसके बाद वादी की माता मरी। इन दोनों के मरने पर गुंडी और सदाशिव संपत्ति के आधे आधे भाग के स्वामी हो गए। प्रतिवादी का कहना है कि बँटवारा हुआ ही नहीं और बँटवारे के संबंध में वह विलेख प्रति ग्राह्य (ऐडमिसिबुल) नहीं है कारण कि उस बँटवारे की रजिस्ट्री होनी चाहिए थी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मिताक्षरा के अर्थ में बँटवारा दो प्रकार का होता है। एक वह है जब कि संयुक्त हिंदू परिवार का कोई संदायाद अलग होने की अपनी इच्छा प्रकट करता है तो ऐसी स्थिति में उसकी संयुक्त स्थिति का पृथक्करण हो जाता है और इसका परिणाम केवल यही होता है कि पहले का संयुक्त स्वत्व अब अलग स्वत्व हो जाता है किंतु उसका भाग सीमाओं एवं परिसीमाओं में नहीं बैठता। पहले का संयुक्त भू धारणाधिकार सह धारणाधिकार में परिवर्तित हो जाता है। इसके लिये सभी संदायादों की सहमति आवश्यक नहीं होती। बँटवारे की दूसरी स्थिति वह है जब कि सभी संदायाद अलग होने का अभिप्राय प्रकट कर देते हैं और इसमें भाग का बँटवारा सीमाओं एवं परिसीमाओं में हो जाता है। पहले प्रकार के बँटवारे को अचल संपत्ति से संबंध न रखने के कारण रजिस्टर्ड होना आवश्यक नहीं है। ऐसा बँटवारा मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी। यदि लिखित है तो वह किसी हित (इंटरेस्ट) का हस्तांतरण नहीं करता। सबका हित पूर्ववत् सभी संपत्ति पर होता है। पहले प्रकार का बँटवारा यदि लिखित है तो यह बटवारा का केवल साक्ष्य मात्र होगा, इसकी रजिस्ट्री अनिवार्य नहीं है। केवल इस सीमित प्रयोजन के लिये पहले प्रकार के बँटवारे के संबंध में विलेख जो रजिस्टर्ड नहीं है, प्रतिग्राह्य हो सकता है। दूसरे प्रकार का बँटवारा जो सीमाओं एवं परिसीमाओं में बँट गया रहता है उससे एक निश्चित भाग किसी संदायाद के हिस्से में पड़ता है इसलिए इसकी रजिस्ट्री अनिवार्य होती है। बिना रजिस्ट्री के वह विलेख प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। अतः यहाँ पहले प्रकार का बँटवारा विलेख जो सीमित प्रयोजन के लिये साक्ष्य में प्रतिग्राह्य किया गया वह ठीक था।

वादी का यहाँ कहना है कि सारी पैतृक संपत्ति का बंधक किया गया था अतः बँटवारा मान लेने पर रामा और उनकी माता की मृत्यु के बाद वादी के पिता और सदाशिव आधे आधे भाग के स्वामी हुए और सदाशिव का वह आधा बंधकवाला भाग जब उपर्युक्त फूलचंद ने खरीद लिया तो वादी अब अपने पितावाला केवल आधा भाग ही पा सकती है। अतः यह अपील सदाशिव के आधे भाग तक ही स्वीकार की जायगी और अधिनिष्क्रयण के बाद धारण की डिग्री वादी के पिता के आधे भाग तक ही सीमित रहेगी।

परिणामतः उपर्युक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। यतः दोनों पक्ष यहाँ सफल हुए हैं इसलिए साद्यंत परिव्यय को उभय पक्ष सहन करेंगे।

अपील अंशतः स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वो० न्या० ७५

२३ अप्रैल, १९५८

एस० आर० दास मुख्य न्यायाधिपति; टी० एल० वेंकटरामा अय्यर, एस० के० दास, पी० बी० गजेंद्रगादकर और विवियन बोस न्यायमूर्तिगण।

१—मुहम्मद हनीफ कुरेशी तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ५८।५६ में)

२—मुहम्मद इलियास तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ८३।५६ में)

३—गनी महाजन तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० ८४।५६ में)

४—नासिरुद्दीन तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १०३।५६ में)

५—शेख हुसेन कुरेशी तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं० ११७।५६ में)

६—शेख सुभान तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं १२६।५६ में)

७—अब्दुल अजीज तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १२७।५६ में)

८—मुहम्मद इस्माइल तथा अन्य (प्रार्थनापत्र सं० १२८।५६ में)

९—अब्दुल रहीम तथा अन्य (प्रार्थना पत्र २४८।५६ में)

१०—अब्दुल कदीर तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४४।५६ में)

११—महबूब सरकार वजीर तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४५।५६ में)

१२—मुहम्मद जान तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १२९।५७ में)

प्रार्थीगण

वि०

१—बिहार राज्य (प्रार्थना पत्र सं० ५८।८३ और ८४।५६ में)

२—उत्तर प्रदेश राज्य (प्रार्थना पत्र सं० १०३।५६ और १२९।५७ में)

३—बंबई राज्य (प्रार्थना पत्र सं० ११७, १२६ १२७ १२८ और २४८।५६ में)

४—मध्य प्रदेश राज्य तथा अन्य (प्रार्थना पत्र सं० १४४।५६ में)

५—मध्य प्रदेश राज्य (प्रार्थना पत्र सं० १४५।५६ में)

उत्तरवादी गण

अ—भारतीय संविधान अनुच्छेद ४८—इसकी व्याप्ति

ब—सर्वोच्च न्यायालय नियम (१९५०) आ० १४ नि० २—सुनवाई के बीच में तृतीय पक्ष का संमिलित होना—

स—भारतीय संविधान अनुच्छेद १३ (२) और भाग ४—निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल —और मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या होनी चाहिए—

द—भारतीय संविधान अनुच्छेद १४—युक्ति-संगत वर्गीकरण का परीक्षण—अभिधारणा संवैधानिकता के पक्ष में ही होनी चाहिए

य—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) और बी०—युक्ति संगत प्रतिबंध में युक्ति संगत होने का निश्चय कौन करेगा—

र—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—बिहार अधिनियम, २।१९५६ की वैधता

ल—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—मध्यप्रांत और बरार अधिनियम, ५२, १९४९ की वैधता—

व—भारतीय संविधान अनुच्छेद १९ (१) (जी०)—मध्यप्रांत और बरार अधिनियम, ५२, १९४९ की वैधता –

मुख्य न्यायाधिपति एस० आर० दास—

ये १२ पार्थनापत्र हमारे संविधान के अनुच्छेद ३२ के अंतर्गत निवेशित किए गए हैं। इनमें बिहार उत्तरप्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों द्वारा गोबध निरोध संबंधी अधिनियमों की वैधता पर आपत्ति की गई है। गोबध का प्रश्न यहाँ पर बहुत समय तक सांप्रदायिक द्वेष का कारण रहा है किंतु इसमें पक्षों द्वारा बहुत शांतिपूर्ण ढंग से बहस की गई है। इन बारह विभिन्न पार्थनापत्रों में विधि का प्रश्न एक ही है इसलिए इसमें सुविधा होगी कि इन सबका निर्णय एक साथ एक ही निर्णय पत्र में कर दिया जाय।

दीपचंद था। वैकल्पिक (आल्टरनेटिव) बात जो संशोधन के प्रार्थनापत्र में कही गई थी वह प्रतिवाद के बाद ज्ञात हुई अतः वादी इसे पहले नहीं जान सकता था। संशोधनार्थ प्रार्थनापत्र में जो बात कही गई थी वह वादपत्र के पहले अभिवचन से असंगत नहीं थी।

ऐसी परिस्थिति में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यों तो पुनरीक्षण नहीं हो सकता और पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जा रहा है किंतु हमारा विचार यह है कि अब भी वादी प्रतिवादी के उत्तर में प्रत्योत्तर प्रार्थनापत्र निवेशित कर सकता है और प्रतिवादी को भी प्रत्युक्ति (रीज्वांइडर) निवेशित करने का अधिकार होगा।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १४३

न्यायमूर्ति डी० एन० राय

व्यवहार पुनरीक्षण सं० ४३।१९५८—३ अप्रैल १९५८

श्रीमती त्रिवेणी देवी — प्रार्थी

वि०

श्रीमती शारदा देवी — विपक्षी

प्रकीर्णक वाद सं० ३८।१९५६ में मथुरा के जिला न्यायाधीश की डिग्री दिनांक १४-१०-१९५७ के विरुद्ध पुनरीक्षण।

हिंदू उत्तराधिकार, अधिनियम, १९५६ धा० ८ और १४—धारा ८ के अंतर्गत पुत्रियों द्वारा अधिकार की प्राप्ति धारा १४ से प्रभावित नहीं है।

न्यायमूर्ति राय

यह श्रीमती त्रिवेणी देवी का पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है। श्रीमती त्रिवेणी देवी रघुनाथ प्रसाद की विधवा है। रघुनाथ प्रसाद को ३ अवयस्क और १ वयस्क पुत्री थी।

वर्तमान प्रार्थी ने रघुनाथ प्रसाद की मृत्यु के बाद बचत बैंक के ७२०० रु० के लिये अपने नाम में उत्तराधिकार प्रार्थनापत्र प्राप्त करने की कार्यवाही की। यतः इसमें तीन अवयस्क लड़कियों का भी अधिकार था इसलिए न्यायालय ने सप्रतिबंध प्रमाणपत्र स्वीकार किया कि इस रुपया को न्यायालय की अनुमति के बिना वह खर्च नहीं कर सकती।

इसके बाद प्रार्थी ने पुनः विचार की प्रार्थना इस आधार पर की कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के संबद्ध उपबंध नहीं दिखलाए गए। उसका कहना था कि धारा १४ के अभिप्राय के अनुसार सारी संपत्ति केवल हमारी हो गई है और इसमें अब किसी का कोई अधिकार नहीं है। विद्वान न्यायाधीश ने यह बात न मानी और निर्णय दिया कि धारा १४ का प्रभाव धारा ८ पर नहीं पड़ता है।

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा ८ में है कि लड़कियों के साथ विधवा संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होगी। अतः इस धारा ८ में जो संपत्ति का प्रक्रामण (डिवोल्यूशन) दिया हुआ है उस पर धारा १४ का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। धारा १४ का अभिप्राय केवल इतना ही होता है कि वह विधवा जो उक्त अधिनियम के लागू होने के पहले सीमित संपदा की स्वामिनी होती थी उसका अधिकार अब बढ़ गया और वह पूर्ण स्वामिनी हो गई। मेरे विचार से धारा ८ के अंतर्गत पुत्रियों को जो अधिकार प्राप्त होता है वह धारा १४ के प्रभाव से सर्वथा अछूता है। ए० आई० आर० १९५० आंध्र प्रदेश २८० की रूलिंग का सहारा लिया गया किंतु उसमें धारा ८ की चर्चा नहीं की गई है।

ऐसी परिस्थिति में सप्रतिबंध प्रमाण पत्र का स्वीकार किया जाना सर्वथा ठीक था। पुनरीक्षण में बल नहीं है इसलिए यह उत्सर्जित किया जाता है।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १४४

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

पुनर्विचार प्रार्थनापत्र सं० ७०४।१९५८–२७ मार्च १९५८

महेंद्रपाल सिंह तथा अन्य (प्रार्थीगण) (जेल में)

वि०

उत्तरप्रदेश राज्य — विपक्षी

इस माननीय न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति श्री ए० पी० श्रीवास्तव ने आपराधिक पुनरीक्षण महेंद्रपाल सिंह और नरेंद्रपाल सिंह वि० राज्य को सरसरी ढंग पर अस्वीकार कर दिया था। उसी का यह पुनर्विचार प्रार्थनापत्र है।

दंड प्रक्रिया संहिता १८९८, धा० ३६९—उच्च-न्यायालय द्वारा अपील और आपराधिक पुनरीक्षण में पारित आदेश पर वही उच्च न्यायालय पुनर्विचार नहीं कर सकता न तो निर्णय बदल सकता है—इसके लिये उपाय सर्वोच्च न्यायालय में है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

इस न्यायालय के आदेश दिनांक २७ फरवरी १९५८ पर पुनर्विचार करने के लिये यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। विधि के किस उपबंध के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है इसे प्रार्थनापत्र के ऊपर लिख दिया गया है कि दं० प्र० सं० की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र है।

प्रतीत होता है कि प्रार्थियों की दोष सिद्धि मजिस्ट्रेट ने दंड संहिता की धारा ३२५ के अंतर्गत की और दंडादेश पारित किया। दोषसिद्धि के विरुद्ध प्रार्थियों ने सत्र न्यायाधीश के यहाँ अपील की किंतु वह अपील भी उत्सर्जित कर दी गई। इसके बाद प्रार्थियों ने इस न्यायालय में पुनरीक्षण किया और पुनरीक्षण भी इस आधार पर उत्सर्जित कर दिया गया कि मजिस्ट्रेट का तथ्य का निष्कर्ष ठीक था और दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने योग्य कोई आधार नहीं है। पुनरीक्षण में इन प्रार्थियों के वकील ने बहस की थी। इसी आदेश पर पुनर्विचार करने के लिये यह प्रार्थनापत्र इस आधार पर दिया गया है कि पुनरीक्षण में बहस करते समय असावधानी के कारण न्यायालय का ध्यान बहुत आवश्यक बातों की ओर नहीं दिलाया गया। और ये बातें न्यायालय के विचार करने योग्य हैं।

इस संबंध में सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि क्या ऐसा पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अनुमित है?

इस प्रसंग में साधारणतया नियम यही है कि दं० प्र० सं० की धारा ३६९ के अंतर्गत कोई न्यायालय सिवा किसी लिखावट की गलती को शुद्ध करने के लिये किसी निर्णय पर हस्ताक्षर करने के बाद उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा। न तो उस पर पुनर्विचार करेगा। यह नियम उच्च न्यायालय के लिये भी लागू होता है किंतु उच्च न्यायालय की स्थिति में पुनर्विचार उस दशा में अनुमित होगा जब कि वह…(लेटर्स पेटेंट) या इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अन्य निर्माणकारी अंग द्वारा तदर्थ अधिकृत हो। यहाँ अधिकार प्रदान करने वाला ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। एक बात यह अवश्य कही जा सकती है कि दं० प्र० सं० की धा० ३६९ का पालन न करने से इसे निर्णय (जजमेंट)) नहीं कहा जा सकता। इसका उत्तर १९४६ ए० आई० आर० बंबई २७६ के मुकदमें में पाया जा सकता है। इसमें कहा गया था कि उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है इसलिए यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि इसके निर्णय में वह कौन कौन सी बातें होनी चाहिए और यह पुनरीक्षण के निर्णय में और भी है कारण कि पुनरीक्षण में पक्ष को यह अधिकार तक नहीं होता कि वह अपनी बात न्यायालय के समक्ष कह सके। अतः इसके लिये ये सब बातें नहीं कहीं जा सकती कि तत्व पर विचार नहीं किया गया आदि। उस मुकदमें में विद्वान् न्यायाधीश ने स्पष्ट कहा था कि हमारे विचार से इस बात की अभिधारणा है कि आदेश अंतिम है, तत्व पर है और इसलिए यह निर्णय के समान है।

दं० प्र० संहिता की धारा ३६९ के अतिरिक्त भी इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है और न तो वह बदला जा

सकता है और न उस पर पुनर्विचार किया जा सकता है। बंबई के मुकदमे में एक अभिदेश का निवर्तन ५ शब्दों द्वारा किया गया था और इसी को निर्णय माना गया। इसके लिये उपाय केवल सर्वोच्च न्यायालय में है।

अभियुक्त की अपील या उसका पुनरीक्षण उसकी बात या उसके वकील की बहस सुनने या न सुनने पर किंतु उत्तरवादी को नोटिस दिए बिना जब सरसरी ढंग पर उत्सर्जित कर दी जाती है तो जहाँ तक अभियुक्त का प्रश्न है यह 'निर्णय' हो जाता है—यह विचार न्यायमूर्ति दास का था जो उन्होंने १९५५ ए० आई० आर० सर्वो० न्या० ६३३ में व्यक्त किया था।

न्यायमूर्ति भगवती इस बात से सहमत थे किंतु उन्होंने कह दिया कि अपील या आपराधिक पुनरीक्षण को सरसरी ढंग पर उत्सर्जित करनेवाला आदेश यों तो अंतिम आदेश है और स्वतः सर्वोच्च न्यायालय भी उस पर पुनर्विचार नहीं कर सकता और न तो पुनरीक्षण ही कर सकता है किंतु वह नीचे के न्यायालय के निर्णय के स्थान पर निर्णय के समान नहीं है।

यह सत्य है कि विद्वान् न्यायमूर्ति का उक्त विचार प्रसंगोक्त (आबिटर डिक्टा) है कारण कि उस समय विचाराधीन प्रश्न एक दूसरा ही था किंतु सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की प्रसंगोक्ति भी उच्चतम संमान की भागी होती है और इसका बंधन देश के सभी न्यायालयों पर होता है १९२३ ए० आई० आर० इलाहाबाद ४७३, १९३५ ए० आई० आर० इलाहाबाद ४६६ इत्यादि अनेक रूलिंग्स हैं जिनमें भिन्न भिन्न परिस्थितियों में निर्णय हुआ था कि उच्च न्यायालय अपने निर्णय पर पुनर्विचार नहीं कर सकता।

प्रार्थी की ओर से १९४८ ए० आई० आर० इलाहाबाद १०६, और १९५० ए० आई० आर० इलाहाबाद ६२५ पर निर्भर किया गया। इसमें निर्णय हुआ था कि संहिता की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत अपने अंतर्भूत अधिकारों से न्यायालय अपने आदेश पर फिर से विचार कर सकता है और कोई अशुद्धि या गलती ठीक कर सकता है। इस बात पर बिना विचार किए हुए कि ये निर्णय किस सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय १९५५ ए० आई० आर० ६३३ से प्रभावित हैं और इस बात को मानकर भी कि इस विषय पर निर्णयों के अनुपात ठीक हैं प्रार्थी को कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि इसमें प्रार्थी के विद्वान् वकील ने कोई स्पष्ट अशुद्धि या गलती नहीं दिखलाया है। अतः आदेश में कोई स्पष्ट अशुद्धि या गलती न होने पर उसके पुनर्विचार का प्रश्न यहाँ उठता ही नहीं।

पुनर्विचार प्रार्थनापत्र संधार्य नहीं है इसलिए यह असफल होता है। इस संबंध में उन सभी विषयों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है जिन्हें प्रार्थी के विद्वान् वकील ने उठाया है।

अतः प्रार्थनापत्र अस्वीकार किया जाता है।

प्रार्थनापत्र अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १४५

(लखनऊ न्यायासन)

मुकर्जी एवं टंडन न्यायमूर्तिगण

व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १८०।१९५७

३ जनवरी १९५८

सरदार इकबाल सिंह — प्रार्थी

वि०

लखनऊ नगर पालिका तथा अन्य — विपक्षीगण

अ—उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७ धारा ३७ (डी०) (२) नि० २२० और २२३—यदि ग्राम सभा की सीमा के भीतर रिक्शा चलते हैं तो ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) जारी करने का अधिकार है।

ब—उ० प्र० नगरपालिका अधिनियम, १९१६ धा० २९८ (२)—सूची १—(एच०) (सी०) और (डी०)—लखनऊ नगरपालिका (बाइ लाज) सं० २ और ४ का क्षेत्र—यदि किराया तय करना और रिक्शा के लिये सवारियों का बुलाना सब कुछ लखनऊ नगरपालिका के बाहर होता हो तो (बाइ लाज) लागू नहीं होता—

मुकर्जी और टंडन न्यायमूर्तिगण—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र दिया गया है। प्रार्थी का कहना है कि ग्राम सभा रूपपुर खदरा (जो लखनऊ के समीप है) ने उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम की धा० ३७ (ड०) (२) और इस अधिनियम के अंतर्गत निर्मित नियम २२२ और २२३ के अनुसार रिक्शा चलाने के लिये अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) दिया है किंतु जब हमारे रिक्शे लखनऊ नगर पालिका के बाहर पड़नेवाले गाँव रूपपुर खदरा से सवारी लेकर लखनऊ नगरपालिका के भीतर अपने निर्दिष्ट स्थान पर गए तो नगरपालिका ने इन रिक्शों को जब्त कर लिया जो गलत है।

लखनऊ नगरपालिका ने धा० २९८ (२) सूची १ एच० (सी०) और (डी०) के आधार पर अनेक उपविधि बनाया है। उपविधि २ में है कि कोई भी व्यक्ति किराया पर या व्यक्तिगत प्रयोजनों के लिये साइकिल या हाथरिक्शा म्युनिसिपल नगरपालिका के भीतर बिना नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के नहीं चलाएगा इत्यादि।

इस संबंध में प्रार्थी का निम्नलिखित कथन है कि:—

(१) रूपपुर खदरा से सवारी लेकर हमारे रिक्शे लखनऊ नगरपालिका के भीतर अपने निर्दिष्ट स्थान पर नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के बिना भी आ जा सकते हैं और जब्त नहीं किए जा सकते।

(२) संविधान के अनुच्छेद १९ (१) डी० और जी० में इस अधिकार का संरक्षण मान्य है।

(३) लखनऊ नगरपालिका ने उन रिक्शों को अपनी सीमा के भीतर आने जाने की अनुमति प्रदान किया है जिनकी अनुज्ञप्ति कंट्रनमेंट बोर्ड ने दी है किंतु यह नगरपालिका ग्राम सभा द्वारा दी गई अनुज्ञप्तियों वाले रिक्शों को अपनी सीमा में आने जाने में रोकती है अतः यह विभेदकरण है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल है।

अतः यहाँ प्रार्थी की प्रार्थना है कि परमादेश लेख जारी करके नगरपालिका को मना किया जाय कि रूपपुर खदरा की अनुज्ञप्ति वाले रिक्शों को जब्त न करे और इसके पहले जो रिक्शे जब्त हो चुके हैं नगरपालिका को आदेश दिया जाय कि वह उन सबको छोड़ दे।

नगरपालिका ने इस बात को इनकार नहीं किया कि रिक्शे जब्त नहीं हुए थे किंतु उसका कहना था कि १—नगरपालिका ने एक बार यह निश्चय किया कि ३२५० रिक्शों से अधिक रिक्शों को अनुज्ञप्ति न दी जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि जो रिक्शा अनुज्ञप्ति लेना चाहते भी थे उनको अनुज्ञप्ति मिल ही नहीं सकती थी। रिक्शावालों ने इससे बचने के लिये ग्राम सभाओं से अनुज्ञप्ति लेना आरंभ किया जो गलत है।

२—ग्राम सभा रूपपुर खदरा की जनसंख्या केवल ५०० है किंतु वहाँ से ४५० रिक्शों को अनुज्ञप्ति दी गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है ग्राम सभा की अनुज्ञप्तियाँ केवल बचाव के लिये हैं और ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति प्रदान करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है

तीन व्यक्तियों ने विचाराधीनावस्था में पक्ष बनने की प्रार्थना की। उनका कहना था कि हम लोगों ने नगरपालिका से अनुज्ञप्ति लिया है इसलिए यदि प्रार्थी गण सफल हो जायँगे तो हम लोगों के व्यवसाय पर धक्का पहुँचेगा। इन लोगों को पक्ष बनाने की अनुमति प्रदान की गई। इन लोगों का वही कहना है जो कि नगरपालिका का था और इसी बात के लिये शपथपत्र भी निवेशित किए गए। प्रार्थी ने अपने शपथपत्र में कहा था कि हमारे रिक्शे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर नगरपालिका की सीमा के भीतर पहुँचाने आए थे जब कि नगरपालिका ने रोककर उन रिक्शों को जब्त कर लिया। नगरपालिका का शपथपत्र में कहना था कि रिक्शे लखनऊ नगरपालिका के भीतर जब किराए पर चल रहे थे उस समय पकड़े गए और रिक्शे नगरपालिका की अनुज्ञप्ति के बिना नहीं चलाए जा सकते।

दोनों पक्षों की बातों से केवल दो ही प्रश्नों पर

विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। १—क्या वे रिक्शे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर उन्हें पहुँचाने जा रहे थे? २—नगर पालिका की अनुज्ञप्ति उनके पास न होने से क्या उन्हें नगरपालिका की सीमा में प्रवेश करने का अधिकार था? दूसरे प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि नगरपालिका ने अपने २१ नवंबर १९५७ के प्रार्थनापत्र में यह बात मान ली थी कि रूपपुर खदरा से सवारी लेकर उन्हें पहुँचाने के लिये रिक्शे लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर प्रवेश कर सकते हैं। विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि वे रिक्शे नगरपालिका की सीमा के भीतर किराए पर चल रहे थे इसलिए जब्त किए गए या वे रूपपुर खदरा से सवारी लेकर नगरपालिका के भीतर केवल उन्हें पहुँचाने जा रहे थे।

यहाँ हमें विवादास्पद तथ्यों पर विचार नहीं करना चाहिए कारण कि उनका निर्णय शपथपत्र के आधार पर हो जाता है किंतु यहाँ निर्णय के लिये इस तथ्य के प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। दोनों ओर से साक्ष्य शपथपत्र द्वारा दिए गए। नगरपालिका ने कुछ सवारियों का बयान प्रमाण में दिया है जिनमें उनका कहना है कि हमलोग नगरपालिका की सीमा के भीतर किराया पर सवारी किए थे। इस साक्ष्य को या तो शपथ पत्र में होना चाहिए था या इन्हें साक्षी के रूप में खड़ा करके इनके साक्ष्य का परीक्षण करना चाहिए था। यहाँ दो में से एक भी नहीं हुआ इसलिए इनका बयान साक्ष्य के लिये प्रतिग्राह्य नहीं हो सकता। शपथपत्रों को देखने से यही आता है कि नगरपालिका इस बात को प्रमाणित नहीं कर सकी है कि इन रिक्शों ने सवारियों को नगरपालिका की सीमा के भीतर बैठाया था या रिक्शे सीमा के भीतर किराए पर चलते थे। अतः यह मान लिया जाता है कि इन रिक्शों ने सवारियाँ रूपपुर खदरा से ही लिया था तिस पर भी इसका महत्व अब इसलिए नहीं रह जाता है कि वे रिक्शे अब छोड़ दिए गए हैं।

इसके प्रमुख प्रश्न पर विचार करने के पहले यह आवश्यक है कि नगरपालिका की इस आपत्ति पर विचार कर लिया जाय कि ग्राम सभा को अनुज्ञप्ति प्रदान करने का अधिकार नहीं है। अपनी सीमा के भीतर चलनेवाले रिक्शों पर यह केवल कर लगा सकती है। यों तो इस मामले के निर्णय के लिये इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है फिर भी हम सोचते हैं कि पंचायत राज अधिनियम की धा० ३७ (डी०) (२) और नियम २२० और २२३ के अनुसार रिक्शा चलाने के लिये ग्राम सभा अनुज्ञप्ति प्रदान कर सकती है।

प्रार्थी का कहना है कि अनुज्ञप्ति हो चाहे न हो हमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद १९ (१) डी० और जी० के अनुसार लखनऊ नगरपालिका की सीमा में प्रवेश करने की स्वतंत्रता है। प्रार्थी के इस भ्रमण स्वातंत्र्य पर जो प्रतिबंध लगाया गया है वह नगरपालिका की उपविधि के अंतर्गत है इसलिए एतदर्थ उपविधि (बाईला) पर विचार करना पड़ेगा।

नगरपालिका की उपविधि में जो रिक्शे किराए पर चलते हैं उन्हीं के नियंत्रण आदि के लिये नियम बनाए गए हैं। यहाँ किराए पर चलना (प्लाइंग फार हायर) का ठीक अर्थ क्या है इस पर मतभेद है। नगरपालिका का कहना है कि सवारी ले जाते समय रिक्शे की यात्रा में यदि नगरपालिका का कुछ भी भाग पड़ता हो तो चाहे किराया नगरपालिका की सीमा के बाहर तय हुआ हो चाहे भीतर यह नगरपालिका की सीमा के भीतर रिक्शे का किराए पर चलना होगा।

नगरपालिका का यह कथन मान्य नहीं हो सकता। किराए पर चलने के लिये यह आवश्यक है कि रुक कर सवारियों की प्रतीक्षा की जाय और ज्योंही कोई सवारी रिक्शा को किराया पर ले लेती है कि यह "किराया पर चलना" हो जाता है। १९२२ के० बी० ५५३ में कहा गया था कि जब तक निम्नलिखित दो शर्तों का पालन नहीं हो जाता किसी गाड़ी का किराया पर चलना नहीं कहा जा सकता। शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) गाड़ी के चालक का या उस व्यक्ति का जिसके नियंत्रण में कि गाड़ी है प्रतीक्षा करना या सवारियों को बुलाना और उन सवारियों तथा उस

व्यक्ति के बीच पहले की किसी संविदा का न होना और।

(२) स्वामी का या उस व्यक्ति का जिसके नियंत्रण में गाड़ी है और जो प्रतीक्षा करने या सवारियों के बुलाने के लिये अधिकृत है उसके लिये यह आवश्यक है कि प्रतीक्षा करते समय या सवारियों के बुलाने के समय उस गाड़ी के धारण में हो।

इन दो शर्तों के पालन करने पर ही कहा जायगा कि गाड़ी किराया पर चलती है। यही बात ए० आई० आर० १९२८ मद्रास १६६ में भी मानी गई थी। इसलिए यहाँ जब किराया रूपपुर खदरा में तय हुआ और वहाँ से सवारियाँ लेकर रिक्शे चले तो उनकी इस यात्रा में नगरपालिका का यदि थोड़ा सा भाग पड़ता भी हो तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि नगरपालिका की उपविधि के अनुसार रिक्शे नगरपालिका की सीमा के भीतर किराए पर चलते हैं। अतः उपविधि से प्रभावित न होते हुए प्रार्थी के रिक्शों को लखनऊ नगरपालिका की सीमा के भीतर प्रवेश करने का अधिकार है और नगरपालिका उपविधि के बल पर उन रिक्शों को न तो रोक सकती है और न जब्त ही कर सकती है।

कन्टूनमेंट बोर्ड के रिक्शों और ग्रामसभा के रिक्शों के बीच में जो विभेदकरण की बात भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल कही गई थी उसमें कोई बल नहीं है क्योंकि नगरपालिका की उपविधि में ऐसी कोई विभेदकारी बात नहीं है।

प्रार्थी को साहाय्य प्रदान करने के लिये सामान्य क्रम में रिक्शों का नगरपालिका की सीमा के बाहर से सवारी लेकर नगरपालिका के भीतर निर्दिष्ट स्थान पर जाने के अधिकार को मान्यता दे देना ही पर्याप्त होता किंतु नगरपालिका जब प्रार्थी के इस अधिकार का विरोध अंत तक करती रही तो हम लोगों ने आवश्यक यह समझा कि लखनऊ नगरपालिका को निदेश किया जाय कि वह रूपपुर खदेरा से सवारी लेकर नगरपालिका की सीमा के भीतर निर्दिष्ट स्थान पर आने वाले या जब कि वे उन सवारियों को लौटती बार ले जा रहे हों तब

रिक्शों को जब्त न करे। किसी किराया पर चलनेवाली गाड़ी को उपविधि के अनुसार रोक रखने के नगरपालिका के अधिकार पर इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आदेश तद्नुसार।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १४८

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

मुजफ्फरनगर के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश की डिग्री दिनांक २९ अक्टूबर १९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० १९५।१९५८

२० मार्च १९५८

श्रीमती कलावती तथा अन्य — अपीलकर्तागण

वि०

कवल सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १।१९५१ धा० १६९, १७१, १७२, १७४, १५२, १५४—स्वामी यदि स्त्री हो तो उसे अपने खाते को दानपत्र में दे देने का अधिकार है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

यह वादी की अपील है। गंगाराम दखीलकार कृषक था और उसके पास एक मकान भी था। गंगाराम के मरने पर वह मकान उसकी विधवा स्त्री के धारण में आया और खेतों की वह दखीलकार कृषक हुई। जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने पर वह दसगुना लगान जमा करके उस खाते का भूमिधर हो गई।

१९५३ में उक्त विधवा ने उस मकान को और संपूर्ण खेतों को अपनी लड़की के एक लड़के कवल सिंह को भेंट कर दिया। वादीगण ने जो उसकी अन्य लड़कियों के लड़के हैं, यह वाद घोषणा के लिये निवेशित किया है कि हम लोग आरंभिक स्वामी गंगाराम के प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) हैं और हिंदू विधि के अनुसार चूँकि उनकी स्त्री को केवल जीवन पर्यंत का अधिकार था इसलिए उन्होंने जो संपत्ति का दानपत्र कवल सिंह

के पक्ष में लिखा है उनकी मृत्यु के बाद प्रभावशून्य होगा और मकान और खेतों के दान का बंधन हम प्रत्यावर्तीगण पर नहीं होगा।

अन्वीक्षा न्यायालय ने मकान के बारे में तो डिग्री दे दी किंतु खेतों के बारे में इसे उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर निर्णय हुआ कि वह विधवा उन खेतों की भूमिधर थी इसलिए जमींदारी विनाश अधिनियम के लागू होने पर वह दान दे सकती है और उसके पति के प्रत्यावर्तीगण (रिवर्सनर्स) इसको चुनौती नहीं दे सकते। इस प्रकार अपील के न्यायालय ने अन्वीक्षा न्यायालय के निर्णय को मान लिया।

मकान के बारे में अपील नहीं की गई है इसलिए तत्संबंधी निर्णय अब अंतिम निर्णय हो चुका है और उसकी सत्यता या असत्यता के बारे में विचार नहीं करना है।

इस अपील में वादी का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय गलत इसलिए है कि विधवा भूमिधर का अधिकार केवल जीवन पर्यंत का होता है अतः उसकी उसके द्वारा दान दिए जाने का बंधन उसकी मृत्यु के बाद प्रत्यावर्तीगण पर नहीं होना चाहिए।

भूमिधरी का ऐसा अधिकार परिनियम द्वारा बनाया गया और ऐसा परिनियम जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम के रूप में सर्वप्रथम बना इसलिए भूमिधरी के अधिकार की व्याप्ति आदि के लिये हमें उक्त अधिनियम के उपबंधों को ही केवल देखना है। अधिनियम के अंतर्गत कहीं ऐसा नहीं है कि किसी भूमिधर को जीवन पर्यंत का ही अधिकार होगा। यह नितांत स्पष्ट कर दिया गया है कि भूमिधरी के अधिकार का हस्तांतरण किया जा सकता है; इस हस्तांतरण के अधिकार के संबंध में केवल एक ही प्रतिबंध है और वह यह कि जिसके पास ३० एकड़ से अधिक भूमि है उसको दान या अन्य प्रकार से हस्तांतरण नहीं किया जा सकता। केवल इस एक प्रतिबंध को छोड़कर कोई अन्य प्रतिबंध अधिनियम के अंतर्गत नहीं है। दान संबंधी हस्तांतरण के संबंध में धारा १५४ एक विशिष्ट उपबंध है भी।

उत्तराधिकार क्रम के विषय में भी स्पष्ट कह दिया गया है कि वह इसी अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत होगा। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि श्यामकुँवर का अधिकार जीवन पर्यंत का ही था और वह पूर्णरूपेण दान नहीं कर सकती थी।

धा० १६६ और धा० १७२ (२) पर इस बात के लिये निर्भर किया गया कि श्यामकुँवर वह दान नहीं कर सकती थी जिससे उसके पति के प्रत्यावर्तीगण को हानि पहुँचे।

धा० १६६ में भूमिधर को इच्छापत्र द्वारा संपत्ति देने में भी पूर्णरूपेण रुकावट नहीं है। इस धारा में कहीं ऐसी बात नहीं है कि श्यामकुँवर जैसी विधवा का अधिकार केवल जीवन पर्यंत का है और इसलिए वह दानपत्र या इच्छापत्र द्वारा संपत्ति नहीं दे सकती। चाहे जो हो धारा १६६ में इच्छापत्र द्वारा हस्तांतरण करने में यदि थोड़ा बहुत प्रतिबंध लगाया गया है तो इसको यहाँ तक नहीं बढ़ाया जा सकता कि इसके अंतर्गत दान करने का अधिकार भी आ जाय।

धारा १७१ में भूमिधर के मरने पर उसके खाते के बारे में उत्तराधिकार का क्रम दिया हुआ है। किसी भी प्रकार विचार करें, इसमें व्यक्तिगत विधि (परसनल ला) के लिये कोई स्थान नहीं है।

धा० १७२ धा० १७१ की अपवादस्वरूप है। धा० १७२ में दिया हुआ है कि कुछ अवस्थाविशेष में यदि वह स्त्री अपने व्यक्तिगत विधि के अनुसार जीवन पर्यंत की अधिकारिणी है तो उसके पति के उत्तराधिकारी धारा १७१ के क्रमानुसार आएँगे और यदि व्यक्तिगत विधि के अनुसार वह स्त्री पूर्ण स्वामित्व रखती है तो उसके उत्तराधिकारियों का क्रम धा० १७४ के अंतर्गत होगा। फिर भी ये उपबंध उसी समय लागू हो सकते हैं जब कि वह स्त्री मरती है, विवाह कर लेती है, परित्याग (अबंडन) या अध्यर्पण (सरेंडर) कर देती है। दूसरे शब्दों में इसका परिणाम यही होता है कि यदि

अमुक बात हो जावे तो उसका उत्तराधिकारी कौन होगा ? इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि विधवा का अधिकार सीमित होता है और वह विधवा हिंदू विधि की तरह अपने सीमित अधिकार से परे हस्तांतरण नहीं कर सकती। इस मामले में धारा १७२ लागू नहीं होती और चूँकि श्यामकुँवर न तो अभी मरी है और न तो उसने अपनी संपत्ति का परित्याग किया है इसलिए वादीगण यह भी लाभ नहीं उठा सकते। परित्याग के संबंध में ए० आई० आर० १९५८ इलाहाबाद १०७ में निर्णय हो चुका है कि दान के विलेख का निष्पादन परित्याग (अबंडनमेंट) नहीं होता।

अतः विद्वान व्यवहार न्यायाधीश अपने निर्णय में ठीक थे कि श्यामकुँवर को दानपत्र लिखने में कोई रुकावट नहीं थी और वादीगण इस पर आपत्ति नहीं कर सकते। वादीगण के पक्ष में यह घोषणा नहीं की जा सकती कि श्यामकुँवर के मरने के बाद दानपत्र का बंधन हम लोगों पर नहीं होगा। भूमिधरी खाते के संबंध में वाद का उत्सर्जन ठीक हुआ है।

इस अपील में बल नहीं है इसलिए व्य० प्र० सं० की धा० ४१ नि० ११ के अंतर्गत यह उत्सर्जित की जाती है।

अपील करने की अनुमति के लिये प्रार्थना की गई किंतु स्वीकृत न हुई। अपील उत्सर्जित।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १५०

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

कानपुर के मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के संज्ञान (कागनिजेंस) दिनांक १५-२-१९५६ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० २७।१९५७।

(१८ जून १९५८ को निर्णीत)

शिव विलास तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

राज्य विपक्षी

दं० प्र० सं०, १८९८, धा० १९५ (१) (बी०) क्षेत्र - धारा में जो रुकावट का उपबंध है वह पूर्ण रूपेण नहीं है—अन्वेषण के समय यदि अपराध हुआ है तो न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित करने की आवश्यकता नहीं है—दं० संहिता १८६० धा० १९३, १९६।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

कानपुर के सत्र न्यायाधीश का यह अभिदेश है। शिवविलास की एक साइकिल थी। उसने इसे चंद्रमौलि को बेचा और फिर इसी साइकिल को बाबूराम को बेच दिया। उसी साइकिल की एक रसीद उसने पहले चंद्रमौलि को लिखा और फिर बाबूराम को। जब बाबूराम यह रसीद पा गए तो उन्होंने पुलिस को सूचना दी कि हमारी साइकिल चोरी चली गई है वह साइकिल चंद्रमौलि के पास से प्राप्त की गई।

जब पुलिस मामले की छानबीन कर रही थी उसी समय चंद्रमौलि ने बतलाया कि हमने यह साइकिल शिवविलास से खरीदी है और इसलिए चोरी का प्रश्न नहीं उठता। छानबीन के समय जिन जिन बातों का पता चला था उसके आधार पर पुलिस ने अंतिम प्रतिवेदन दे दिया कि मुकदमा चलने योग्य नहीं है।

पुलिस ने शिवविलास और बाबूराम के विरुद्ध दंड संहिता की धा० ४२६ और ४६८ तथा १०९ के अंतर्गत आरोपपत्र भेजा। मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत अपराध नहीं हुआ है वरन् यह अपराध दंड संहिता की धारा १९३ और १९६ का है। अतः मजिस्ट्रेट ने रामविलास के विरुद्ध धारा १९३ का आरोप लगाया और बाबूराम के विरुद्ध धारा १९६ का।

इन लोगों ने न्यायाधीश के यहाँ पुनरीक्षण किया। इसमें उनका कहना था कि दं० प्र० सं० की धारा १९५ (१) बी० के अनुसार धारा १९३ और १९६ के अंतर्गत अपराध का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब कि परिवाद किसी न्यायालय द्वारा निवेशित हो। चूँकि यहाँ ऐसा नहीं हुआ है इसलिए मजिस्ट्रेट को आरोप लगाने का अधिकार नहीं था।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह बात मान ली और उन्होंने कुछ रूलिंग्स के आधार पर अभिस्तात्र किया है कि धारा १९३ और १९६ के आरोप को अभिखंडित कर देना चाहिए।

इस अभिदेश में दोनों पक्षों के वकीलों की बात सुनने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अभिदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि धारा १९३ और १९६ का अपराध शिवविलास और बाबूराम ने उस समय किया जब कि पुलिस इसकी छानबीन कर रही थी। अर्थात् दं० प्र० सं० धारा १६९ के अंतर्गत अंतिम प्रतिवेदन देने के पहले ही अपराध हुआ। उस समय किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं हो रही थी। कार्यवाही तब आरंभ होती जब पुलिस धारा १६९ के अनुसार अंतिम प्रतिवेदन न देकर धारा १७३ में मुकदमा चलाने का प्रतिवेदनदेती। जैसा कि यह मुकदमा है किसी न्यायालय में कार्यवाही (प्रोसीडिंग) का शुरू होना तब कहा जाता है जब कि दं० प्र० सं० धा० १९० में बताए गए किसी भी ढंग पर मुकदमा चलाने के संबंध में संज्ञान (काग्निजेंस) लिया जाता है। यों तो दं० प्र० सं० धा० १६९ में अंतिम प्रतिवेदन मजिस्ट्रेट के अनुमोदन के लिये दिया जाता है किंतु अंतर यह है कि मजिस्ट्रेट उस समय न्यायालय का काम नहीं करता रहता, उस समय वह मजिस्ट्रेट का काम करता है।

अतः यहाँ विचारणीय प्रश्न केवल एक यही है कि जब दं० सं० की धा० १९३ और १९६ का अपराध उस समय नहीं होता जब कि किसी न्यायालय में कार्यवाही चल रही हो बल्कि छानबीन के समय ही जब अपराध हो गया रहता है तो संज्ञान (काग्निजेंस) लेने के पहले क्या यह आवश्यक है परिवाद न्यायालय द्वारा ही निवेशित हो ?

दं० प्र० सं० धा० १९५ (१) (बी०) कुछ धाराओं के अपराधों का संज्ञान लेने से रोकती है। इनमें से धारा १९३ और १९६ भी है। किंतु उसमें दिया हुआ है कि जब यह अपराध "न्यायालय में की कार्यवाही (प्रोसीडिंग) या कार्यवाही के संबंध में हो…" तब यह आवश्यक है कि परिवाद न्यायालय द्वारा हो। इसका अर्थ यह होता है कि यदि अपराध न्यायालय की कार्यवाही या कार्यवाही के संबंध में नहीं हुआ है तो न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित किए जाने की आवश्यकता नहीं है। इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन धाराओं के अंतर्गत अपराध उस परिस्थिति में भी हो सकते हैं जो कि न तो न्यायालय की कार्यवाही या कार्यवाही के संबंध में हों। यहाँ परिस्थिति ऐसी ही है। इसीलिए न्यायालय के परिवाद की आवश्यकता नहीं है। ए० आई० आर० १९१७ लाहौर २६७ और आई० एल० आर० २६ कलकत्ता ७८६ इसके समर्थन में हैं।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिदेश में तीन रूलिंग्स पर निर्भर किया है जिनमें से दो के तथ्य इस मुकदमे से भिन्न थे। १९५६ इलाहाबाद ११५ में जब प्रतिलिपि के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया उस समय कूट योजन (फोर्जरी) हुआ था। ऐसा ही झगड़ा जब उस मामले में उठा तो निर्णय हुआ था कि धारा में प्रयुक्त शब्द न्यायालय में की कार्यवाही है न कि शब्द "न्यायालय में की न्यायिक कार्यवाही" है अतः यह अपराध न्यायालय में की कार्यवाही के संबंध में हुआ है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित किया जाना आवश्यक है। इस मुकदमे में यह बात नहीं है। दूसरा मामला बंबई का था। उसमें मजिस्ट्रेट के यहाँ एक परिवाद निवेशित किया गया और मजिस्ट्रेट ने पुलिस को जब उसकी छानबीन करने का आदेश दिया तब पता चला कि मामला झूठा है। दं० सं० धा० २११ की कार्यवाही आरंभ करने के संबंध में निर्णय हुआ था कि मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद का निवेशित किया जाना आवश्यक है। इस मुकदमे से भी यह भिन्न है क्योंकि इसमें न्यायालय में कार्यवाही (प्रोसीडिंग) आरंभ हो चुकी थी।

३७ सी० एल० जे० ४२६ लाहौर अवश्य ही प्रार्थीगण की बात का समर्थन करता प्रतीत होता है। उसमें पुलिस को सूचना दी गई कि हमारी मोटर कार से एक घड़ी चुरा ली गई है। पुलिस ने जब इसकी छान-

बीन की तो पता चला कि घड़ी चोरी नहीं गई है बल्कि उसने उसे स्वयं रख लिया है तथा चोरी की सूचना गलत है। उसके ऊपर दं० सं० की धारा १९३ और २११ के अंतर्गत मुकदमा चलने को हुआ और इस संबंध में पुलिस ने जब आरोपपत्र दिया और मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया तब उच्च न्यायालय ने इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि चूँकि यह अपराध न्यायालय की कार्यवाही में हुआ है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद आवश्यक है। इसके निर्णय में विद्वान न्यायाधीश ने केवल सिंध के एक निर्णय पर निर्भर किया (ए० आई० आर० १९२९ सिंध १३२) और ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचनेवाला उन्होंने अपना कोई स्वतंत्र तर्क नहीं दिया और सिंध के निर्णय पर विचार करने से आता है कि मुकदमा इससे भिन्न था। सिंध के उपर्युक्त मुकदमे में प्रायः एक ही अंतर्विषय के दो प्रार्थना पत्र पुलिस को और एस० डी० एम० को दिए गए थे। पुलिस ने जब छानबीन किया तो पता चला कि मामला गलत है। धा० २११ के अंतर्गत जब आरोप लगाया गया तब अभियुक्त की आपत्ति थी कि न्यायालय द्वारा परिवाद के न रहने पर मजिस्ट्रेट को संज्ञान (काग्निजेंस) लेने का अधिकार ही नहीं था और अंत में अभियुक्त का यह कथन माना गया था। एक साथ ही प्रार्थना पत्र जब एस० डी० एम० और पुलिस दोनों को भेजा गया तो यह निष्कर्ष ठीक था कि न्यायालय में कार्यवाही आरंभ हो चुकी है। यह मामला ऐसा नहीं था जिसमें केवल पुलिस द्वारा छानबीन करते समय अपराध किया गया था। अतः अत्यंत संमान के साथ मैं लाहौर के इस निर्णय को मानने में असमर्थता प्रकट करता हूँ कि पुलिस की छानबीन के समय का अपराध न्यायालय की कार्यवाही के संबंध में होता है।

इस मामले में अपराध न्यायालय में कार्यवाही आरंभ होने के पहले पुलिस के छानबीन करनेवाली अवस्था में किया गया है इसलिए न्यायालय द्वारा परिवाद निवेशित करने की आवश्यकता नहीं है तथा मजिस्ट्रेट के संज्ञान (काग्निजेंस) पर आपत्ति नहीं की जा सकती। अभियुक्तों के विरुद्ध आरोपों पर आपत्ति

नहीं की जा सकती। अभिदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता। तदनुसार यह अस्वीकृत होता है।

अभिदेश अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्च न्यायालय १५२

न्यायमूर्ति आर० के० चौधरी

बिजनौर के सत्र न्यायाधीश के आपराधिक पुनरीक्षण सं० ६।१९५७ में दिए गए आदेश दिनांक ९-८-५७ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० १२६२।१९५७।

(११ मार्च १९५८ को निर्णीत)

विश्वंभर दयाल तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०—

राज्य, द्वारा शबीर अहमद— विपक्षी

दं० प्र० संहिता १८९८, धा० ३६९—अनुपस्थिति में पुनरीक्षण को उत्सर्जित करनेवाला आदेश निर्णय नहीं होता इसलिए इसकी सुनवाई फिर से हो सकती है।

न्यायमूर्ति चौधरी—

विपक्षी शबीर अहमद प्रार्थीगण पर दं० संहिता की धा० ४०६ के अंतर्गत मुकदमा चला रहा था। उसके परिवाद को मजिस्ट्रेट ने दं० प्र० सं० की धारा २०३ के अंतर्गत उत्सर्जित कर दिया। परिवाद (कंप्लेंट) के उत्सर्जन का आदेश दिनांक १४-१-५७ को पारित किया गया। इस आदेश के विरुद्ध शबीर अहमद ने पुनरीक्षण निवेशित किया। विद्वान् सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण को अनुपस्थिति में दिनांक ९-८-५७ को अस्वीकृत कर दिया। अस्वीकृति का एक छोटा सा आदेश दिया गया—"प्रार्थी की ओर से कोई नहीं है। अस्वीकृत।"

इस पर शबीर अहमद ने पुनर्विचार प्रार्थनापत्र दिया कि उस दिन न्यायालय में पुकार बहुत पहले ही हो जाने से हमारे वकील उपस्थित न हो सके इसलिए अस्वीकृति का आदेश निराकृत कर दिया जाय। विद्वान्

सत्र न्यायाधीश ने अनुपस्थिति के इस कारण को पर्याप्त माना और आदेश दिया कि यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र फिर से सुनवाई के लिये पुनर्स्थापित किया जाय। यह आदेश १३-४-१९५७ को दिया गया था।

इसके विरुद्ध जो यह पुनरीक्षण है उसमें प्रार्थी की ओर से उच्चन्यायालय और सत्र न्यायाधीश के तत्संबंधी अधिकार के बारे में अनेक रूलिंग्स दी गई हैं जिसमें दं० प्र० सं० की धारा ३६६ के अंतर्गत निर्णय को बदलनेवाले प्रतिबंध की चर्चा हुई थी। एक प्रमाण १९४६ ए० आई० आर० १५४ का है जिसमें केवल यही कहा गया था कि दं० प्र० सं० के अंतर्गत व्य० प्र० सं० के आ० ९ नि० ९ और आ० ४१ नि० १६ जैसा कोई उपबंध नहीं है और जब पहले के न्यायालय ने परिवाद (कम्प्लेंट) को दं० प्र० सं० की धारा २०३ के अंतर्गत उत्सर्जित कर दिया है तो यदि परिवादी की बात सत्य है तो उन्हीं तथ्यों पर उसे दूसरा परिवाद निवेशित करने में कोई रुकावट नहीं है। इसके विरुद्ध विपक्षी की ओर से ए० आई० आर० १९२३ मद्रास ४२६ का अभिदेश दिया गया है। यह प्रमाण प्रार्थी के प्रमाण के पहले का है किंतु प्रार्थीवाली रूलिंग मद्रास १९४६ में इसकी चर्चा नहीं है।

विद्वान् सत्र न्यायाधीश का १३-४-५७ का आदेश दो कारणों से ठीक नहीं है। १—जब कि पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र द्वारा हो तो उस प्रसंग में दं० प्र० सं० में कहीं ऐसा नहीं दिया गया है कि वह प्रार्थी की अनुपस्थिति के आधार पर उत्सर्जित किया जा सके। २—वह आदेश निर्णय (जजमेंट) नहीं था जिस पर दं० प्र० संहिता या प्रतिबंध लगता कारण कि उसका निर्णय तत्त्व पर नहीं हुआ था।

इसलिए जब यह निर्णय नहीं था तो सत्र न्यायाधीश इसकी सुनवाई फिर से कर सकते थे। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९२३ मद्रास ४२६ है। एक बात अवश्य है कि न्यायाधीश का विचार इसको पुनर्स्थापित (रिस्टोर) करने का था और इसके लिये पुनर्स्थापना का कोई नियम है नहीं किंतु पुनर्स्थापना से यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन्होंने इसकी फिर से सुनवाई की इसलिए यह ठीक ही है।

दूसरी आपत्ति है कि परिवादी ने अनुपस्थिति का जो कारण दिखलाया है वह पर्याप्त नहीं है किंतु इस संबंध में विद्वान् न्यायाधीश ने जब न्यायिक स्वविवेक का प्रयोग किया है तो उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। दूसरे जब यह तय हो चुका है कि अनुपस्थिति में उत्सर्जन का आदेश ठीक नहीं है तो फिर अनुपस्थिति के कारण की पर्याप्तता का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १५३

आर० दयाल एवं बी० दयाल न्यायमूर्तिगण

रामपुर के जिला न्यायाधीश के वाद सं० १९।१ १९५१ प्रकीर्णक सं० २३।१९५६ में दिए गए निर्णय दिनांक १०-११-१९५६ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण सं० २९९।१९५७।

(२१ अप्रैल १९५८)

मुहम्मद नियामतुल्ला खाँ — प्रार्थी

वि०

उ० प्र० राज्य, द्वारा नजीममल-रामपुर— विपक्षी

सामान्य नियम (व्यवहार) (इलाहाबाद उच्च न्यायालय नि० ५८३ परिच्छेद २-उदाहरण १—जो पक्ष सफल हुआ उसे पूरा व्यय डिग्री बनाते समय दे दिया गया—बाद में हारे हुए पक्ष ने पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के दिया जो उत्सर्जित हुआ—वही वकील इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र विरोध में थे—वकील का यह शुल्क (फीस) भी सफल पक्ष को अलग से दिलाया जायगा।

न्यायमूर्ति आर० दयाल—

निम्नलिखित प्रश्न इस न्यायासन के समक्ष निर्णय के लिये भेजा गया है:—

"मुकदमें का निर्णय करते समय डिग्री में यदि पूर्ण

विधिक शुल्क आ गया है और इसके बाद यदि विपक्षी निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिये प्रार्थनापत्र देता है जो कि अंततोगत्वा उत्सर्जित हो जाता है और यदि जो पक्ष सफल हुआ था उसने अपने उसी वकील को इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के विरोध में बहस करने के लिये रखा था तो क्या पुनर्विचार प्रार्थनापत्र के संबंध में उस वकील का शुल्क डिग्री में अलग से रखा जा सकता है ?"

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि अधिकतम विधिक शुल्क आरंभिक डिग्री में आ चुका है इसलिए सामान्य नियम (व्यवहार) के नि० ५८३ के अनुसार पुनर्विचार के संबंध में वकील का शुल्क अलग से डिग्री में नहीं लाया जा सकता। यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। नि० ५८३ और उसके उदाहरण १ के देखने से प्रतीत होता है कि उसमें केवल वही कार्यवाही आती है जो कि वाद के अंतिम निर्वर्तन के पहले की प्रक्रियाओं से संबंधित रहती है और उन अन्य कार्यवाही से संबंध नहीं रखती जो कि वाद से तो संबंधित हैं किंतु डिग्री के पारित होने के बाद की कार्यवाही हैं। पुनर्विचार प्रार्थनापत्र अपील निवेशित करने का एक वैकल्पिक (आल्टरनेटिव) उपाय है। इस तथ्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा कि पुनर्विचार प्रार्थनापत्र उसी न्यायालय में दिया गया है।

अतः हमारे विचार से यदि आरंभिक डिग्री में पूरा विधिक शुल्क आ चुका है तब भी इस पुनर्विचार प्रार्थनापत्र से संबंधित शुल्क अलग से आना चाहिए।

प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है संबंधित न्यायासन को यह संमति भेज दी जाय।

विधि पत्रिका (१९६०) १९५८ इला० उ० न्या० १५४

मेरठ के व्यवहार न्यायाधीश के व्यवहार अपील सं० ७।१९४८ के निर्णय दिनांक १८-५-१९४८ के विरुद्ध एस० ए० सं० ११६२।१९४८

(२६ जुलाई १९५८ को निर्णीत)

भरत तथा अन्य — अपीलकर्तागण
वि०
खजान सिंह तथा अन्य — उत्तरवादीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १९५१, धारा ६ अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) के धारण को मान्यता दी गई।

न्यायमूर्ति देसाई—

प्रतिवादीगण के विरुद्ध धारण (पोजेशन) की एक डिग्री हुई थी उसी के विरुद्ध प्रतिवादियों द्वारा यह अपील निवेशित की गई है।

वादीगण का वादपत्र में कहना था कि हम लोग इस विवाद ग्रस्त भूमि के स्वामी हैं जो अकबरपुर सागर के खेवट खाता सं० १ में है तथा प्रतिवादीगण ने हमारी अनुपस्थिति में और बिना हमारी सहमति के एक मकान बना लिया है और मकान के बाद बची हुई भूमि को अपने प्रयोग में ला रहे हैं अतः उसका अधिनिष्कासन करके धारण दिला दिया जाय।

जमींदारी विनाश अधिनियम की धा० ४ में है कि एक निश्चित तिथि को जो विज्ञप्ति द्वारा सूचित की जायगी सारी संपदा (स्टेट) उ० प्र० राज्य में निहित हो जायगी। अधिनियम में "संपदा" की जो परिभाषा दी गई है उसमें वाद विषय की भूमि आती है। प्रतिवादीगण का कहना है कि ज० वि० की धारा ४, ६ और ९ के अनुसार वादियों का स्वत्व समाप्त हो चुका है और हम लोग अधिनिष्कासित नहीं किए जा सकते इसलिए नीचे के न्यायालय की डिग्री अभिखंडित कर दी जाय।

वादीगण ने यह वाद अपने स्वामित्व अधिकार के बल पर विवेशित किया है। यह स्वामित्व अधिकार १-७-५२ (निहित होने की तिथि) को समाप्त हो गया इसलिए वाद का प्रमुख आधार ही अब नहीं रहा। वादीगण ने धारण के बल पर इस वाद में डिग्री

नहीं माँगी है क्योंकि यह मान्य है कि धारण अपील-कर्ता का है। उसने स्वत्व (टाइटिल) पर निर्भर किया है और उसका धारण स्वत्व निरपेक्ष नहीं हो सकता। अस्तु जब उसका स्वत्व (टाइटिल) चला गया तो उसके साथ उसका धारण का अधिकार भी समाप्त हो गया। इस प्रकार निहित होने की तिथि को न तो उसके (वादी के) पास स्वत्व था, न धारण और न तो धारण का अधिकार ही था। यदि कोई अपने धारण के आधार पर धारण वापस पाना चाहता है तो उसे ६ महीने के भीतर वाद निवेशित करना चाहिए नहीं तो उसे अपने स्वत्व के आधार पर वाद निवेशित करना पड़ेगा और अपना स्वत्व प्रतिवादी से बड़ा प्रमाणित करना पड़ेगा। यहाँ निहित होने की तिथि को उसका कोई बड़ा स्वत्व नहीं था।

जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत इस मकान को उससे संबद्ध क्षेत्रफल के साथ मानो सरकार ने प्रतिवादीगण के साथ बंदोबस्त कर दिया है क्योंकि यह मान्य है कि उसका स्वामी प्रतिवादी है और यह संपदा राज्य सरकार में निहित हो चुकी है।

हमारे इस निष्कर्ष के समर्थन में निम्नलिखित निर्णय हैः—

(१) मनोहरलाल वि० सुलह कुमार एस० ए० सं० १६८१।१६५० १७–१०–१६५२ को निर्णीत।

(२) तिलक राम वि० राम सिंह एस० ए० सं० ६५।१६४८ –१४–७–१६५२ को निर्णीत।

(३) सय्यद मुहम्मद रजा वि० रामलाल १६५५ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्चन्यायालय) ११८।

इसके विरुद्ध २ निर्णय दिखलाए गए। वे हैं १६५३ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ११८ और १६५४ ए० एल० जे० ६६३। इसमें निर्णय हुआ था कि धा० ६ का लाभ विधिक स्वामी को ही दिया जा सकता है, अनधिप्रवेशी को नहीं। अत्यंत संमान के साथ मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। इसमें "विधिक" शब्द जोड़ने का अधिकार न्यायालय को नहीं है क्योंकि यह सर्वथा स्पष्ट है। दूसरे, विधान मंडल ने यदि अनधि-प्रवेशी के अधिकार को मान्यता दी है तो इसमें कोई अस्वाभाविकता भी नहीं है क्योंकि निहित होने के परिणाम स्वरूप जब विधिक स्वामी के स्वत्व अधिकार सब समाप्त हो चुके तो अनधिप्रवेशी ही बच रहता है और इसलिए इसी के ही अधिकार को मान्यता दी गई। मान लिया जाय कि यदि उस पर अनधिप्रवेशी का धारण नहीं रहता तब भी यह संपदा उसके आरंभिक स्वामी की न होती वरन् यह राज्य सरकार में निहित हो जाती। निहित होने की तिथि १–७–१६५२ को वादी उसका स्वामी नहीं रह गया और धा० ६ के अनुसार प्रतिवादीगण उसके स्वामी हुए इसलिए यह मामला अब राज्य सरकार और अनधिप्रवेशी (प्रति-वादीगण) के बीच का रह गया है और राज्य सरकार यदि अनधिप्रवेशी के अधिकार को मान्यता देती है तो इसमें कोई गलती या विचित्रता नहीं है।

विधान मंडल ने धारा ६ में जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनका अर्थ विस्तृत होता है। मकान के बारे में ये शब्द विधि संमति रूप से बनाए गए और विधि विरुद्ध बनाए गए दोनों प्रकार की अवस्थाओं में लागू होते हैं। विधान मंडल ने यदि विस्तृत अर्थवाली भाषा का प्रयोग किया है तो फिर इसकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह विशिष्ट रूप से यह कहे कि धारा ६ अनधिप्रवेशियों के लिये भी लागू होगी। मध्यवर्ती के साथ ऐसा मकान का बंदोबस्त होना तब माना जाता जब कि मकान उसका होता अन्यथा नहीं। इन कारणों से हम १६५३ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) ११८ और १६५४ ए० एल० जे० ६६३ के निर्णय को मानने में असमर्थ हैं। हमारे मत का समर्थन जो उपर्युक्त तीन निर्णय करते हैं उनका अनुसरण किया जाता है।

अपील स्वीकृत होती है और नीचे के न्यायालय द्वारा पारित डिग्री निराकृत की जाती है। वादी–उत्तर-वादी का वाद उत्सर्जित होता है। परिस्थिति के अनुसार आदेश दिया जाता है कि इस अपील का परिव्यय दोनों पक्षों पर रहेगा किंतु वादी–उत्तरवादी नीचे के न्यायालय का व्यय प्रतिवादी अपीलकर्ता से प्राप्त करेगा।

अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उ० न्या० १५६

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

फैजाबाद के मुंसिफ श्री० आर० एस० सिंह के वाद सं० २४२।५० में दिए गए निर्णय दिनांक १५-६-१६५० के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण सं० १३२२।१६५०

(१५ फरवरी १६५७)

शोभा — वादी अपीलकर्ता

वि०

रामफल — प्रतिवादी विपक्षी

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम, १८७८ धा० ६, ७—धारा ६ के अंतर्गत वाद - वादी के धारण को वैधिक (जुरिडिकल) होना चाहिए।

न्यायमूर्ति टंडन—

वादी ने एक वाद विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत निवेशित किया था। उसमें उसने एक भूमि का धारण वापस माँगा था। मुंसिफ ने वाद उत्सर्जित कर दिया उसी के विरुद्ध यह पुनरीक्षण है।

प्रतिवादी का कहना था कि मैं वादी को यह खेत सौंप कर विदेश चला गया और उससे कह दिया था कि वह खेत जोतकर उसकी उपज उसके अवयस्क छोटे भाई को दिया करे। प्रतिवादी के कहने के अनुसार ८, १० वर्ष पहले उसने इस प्रकार प्रबंध किया था और जब वह १६४७ में वापस आया तो खेत को लेकर स्वतः जोतने लगा इस प्रकार वह अब भी धारण में है।

वादी ने प्रतिवादी के इस कथन से भिन्न तथ्य दिया था। वादी के कहने के अनुसार प्रतिवादी ने बिना किसी अधिकार के उसे ३-७-१६५० धारणाच्युत कर दिया था। उसने २५-७-१६५० को धारण (पोजेशन) के लिये वाद निवेशित किया था इसलिए यह ६ महीने के भीतर था।

पटवारी ने कुछ प्रवृष्टि (एंट्री) प्रतिवादी के विरुद्ध की थी उसके बारे में प्रतिवादी का कहना है कि उसका बंधन हम पर नहीं है।

पक्ष और विपक्ष के साक्ष्यों के परीक्षण के बाद मुंसिफ ने निर्णय दिया कि—

"मैं प्रतिवादी के कथन को सत्य मानता हूँ और यह कि वास्तव में प्रतिवादी कानून की दृष्टि में स्वतः इन खेतों के धारण में है। इसलिए इस वादपद का निर्णय वादी के विरुद्ध जाता है।"

उसमें यह स्पष्ट नहीं है कि किन किन तिथियों को वह धारण में रहा किंतु जब मुंसिफ ने कह दिया कि "प्रतिवादी के कथन को सत्य मानता हूँ" तो इस प्रतिवादी ने कहा है कि मैं १६५० के ८, १० वर्ष पहले विदेश गया था और खेत वादी को दे दिया था कि वह उसकी उपज छोटे भाई को देता रहे। उसने कहा है कि मैं १६४७ में लौटा और तभी से वह खेत लगातार हमारे धारण में चला आ रहा है। मुंसिफ के कथनानुसार प्रतिवादी की ये सब बातें ठीक हैं—और यदि ठीक हैं तो धारणा प्रतिवादी का है न कि वादी का।

मुंसिफ ने जो यह लिखा है "कानून की दृष्टि में प्रतिवादी धारणा में है" उसके आधार पर कहा गया कि विद्वान् मुंसिफ ने स्वत्व (टाइटिल) के प्रश्न पर विचार किया है जिसका कि उन्हें अधिकार नहीं था। यों तो विद्वान् मुंसिफ ने शब्द "कानून की दृष्टि" में का प्रयोग किया है किंतु उन्होंने स्वत्व के बारे में कोई जाँच नहीं की है इसलिए यह निश्चित है विद्वान् मुंसिफ स्वत्व के प्रश्न पर नहीं गए हैं।

विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ७ और ६ के प्रयोजन के लिये यह आवश्यक है कि जो पक्ष धारण वापस चाहता हो उसका धारण वैधिक (जुरिडिकल) होना चाहिए। नौकर या नियुक्ती या उप का धारण जो उन्हें स्वामी अपने लाभ के लिये देता है वह वास्तव में स्वामी का ही धारण होता है। ऐसे व्यक्ति जो वास्तविक अध्यासी (आकूपैंट) होते हैं वे अपने स्वामी के लिये धारण रखते हैं।

आई० एल० आर० २२ कलकत्ता ५६२ में कहा गया था कि वादी का धारणा वैधिक धारणा नहीं है इसलिए विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ६ में उसका मुकदमा चल नहीं सकता।

यही सिद्धांत इस मामले में भी लागू होता है। अतः यदि प्रतिवादी की ओर से वादी धारण में रहा है तो विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ६ के अनुसार उसका धारण धारण नहीं है और इस प्रकार वह किसी भी साहाय्य (रिलीफ) का अधिकारी नहीं है।

परिणामतः प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इलाहाबाद उच्चन्यायालय १५७

डी० एन० राय और एस० एन० सहाय न्यायमूर्तिगण

सरकारी आपराधिक अपील सं० १७३६।१९५५ आपराधिक अपील सं० ११६० और १३६३।१९५५ से संबंधित।

२८ अप्रैल १९५८

राज्य — अपील कर्ता

वि०

सिद्धनाथ राय उपनाम सिद्धी राय तथा अन्य-उत्तरवादीगण

गाजीपुर के सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक २९-७-१९५५ के विरुद्ध आपराधिक सरकारी अपील।

(अ) दंड संहिता १८६० धा० ९५ से ११०—जब किसी अनधिप्रवेशी का कोई कार्य चोरी के समान हो तो उसके स्वामी को यह अधिकार है कि वह उन्हें बलपूर्वक बाहर निकाल दे और संपत्ति को ले जाने से रोक दे और इसमें यदि परिस्थिति के अनुसार चोट पहुँचाता है तो भी वह आत्म प्रतिरक्षा (सेल्फ डिफेंस) का अधिकारी है—किंतु जब आपराधिक कार्य पूरा हो गया रहता है तब परिस्थिति दूसरी हो जाती है।

(ब) आपराधिक अन्वीक्षा - अभियुक्त ने यदि अपराध को दं० सं० के सामान्य अपवादों के अंतर्गत कहा है किंतु यदि तत्संबंधी प्रमाण तत्कालीन स्थिति को प्रमाणित न कर सके और जब न्यायालय संपूर्ण साक्ष्यों के परीक्षण के बाद संदेह में पड़ जाय तो इस आधार पर अभियुक्त को छोड़ दिए जाने का अधिकार है।

न्यायमूर्ति राय—

सिद्धनाथ राय के साथ रघुपति राय, रामजतन राय तथा बेलाल पर दं० संहिता की धा० ३०२ और ३२३ (धा० ३४ के साथ पठित) का आरोप लगा था। आरोप था कि उन लोगों ने हरी जी का वध किया है और विश्वनाथ राय को साधारण चोटें पहुँचाई हैं और यह सब करने में उनका अभिप्राय एक समान था। धारा ३०२ के आरोप से चारों अभियुक्त छोड़ दिए गए। दं० सं० की धारा ३०४ भाग १ के अंतर्गत केवल सिद्धनाथ राय की दोषसिद्धि हुई है। चारों की दोषसिद्धि धा० ३४ के साथ पठित धारा ३२३ में हुई है। सिद्धनाथ ने अपनी अपील अलग से निवेशित की है। इनके अतिरिक्त दूसरे तीन अभियुक्तों ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध एक दूसरी अपील निवेशित की है तथा सरकार ने इन चारों की धा० ३०२।३४ के आरोप से दोषमुक्ति के विरुद्ध तीसरी अपील निवेशित की है। इन तीनों की सुनवाई एक साथ हुई है और इनका निर्वर्तन एक ही निर्णय में किया जाता है।

यह मान्य है कि २१ अक्टूबर १९५४ को झगड़ा हुआ और इन चारों अभियुक्तों के हरी जी और विश्वनाथ राय पर आक्रमण करने के फलस्वरूप हरी जी की मृत्यु हुई और विश्वनाथ राय को साधारण चोट आई अतः यहाँ केवल निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना है १—क्या चारों अभियुक्त आत्म प्रतिरक्षा के अधिकार का लाभ उठा सकते हैं और क्या इन लोगों ने इस अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है ? २—यदि ऐसी बात नहीं है तो क्या चारों ने दं० संहिता की धा० ३०२।३४ के अंतर्गत अपराध किया है या क्या सिद्धनाथ राय ने अकेले दं० संहिता की धा० ३०४ भाग १ के अंतर्गत अपराध किया है ?

अभियोजन की ओर से और अभियुक्तों की ओर से साक्षी आए हैं और उनका परीक्षण हुआ है। इनके साक्ष्यों से यह प्रमाणित है कि अभियोजन साक्षी विश्वनाथ और उसके पुत्र हरी जी मृतक और अभियुक्त सिद्धनाथ से बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। दोनों दल अलग अलग रह कर खेती करते थे। यह शत्रुता एक खेत के झगड़े से आरंभ हुई थी।

विश्वनाथ राय ने अभियुक्त सिद्धनाथ के दो बैल बलपूर्वक छीन लिया था और वे बैल विश्वनाथ की छावनी पर रहते थे। एक दिन सिद्धनाथ आदि वहाँ से अपने बैल ले आए और इसमें विश्वनाथ ने कोई रुकावट इसलिए नहीं डाली कि वह अकेला था।

घटना के दिन विश्वनाथ और हरी जी हथियार से सज्जित होकर बैल पुनः छीन ले जाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर आए और उस समय वे बैल सिद्धनाथ के खेत में चल रहे थे। विश्वनाथ और हरी जी ने वहाँ पहुँच कर सिद्धनाथ और बेलाल को ललकारा कि बैल ले जा रहे हैं यदि हिम्मत हो तो रोकें। इस पर जहाँ तहाँ से अभियुक्त गण कुछ लाठी लेकर कुछ भाला लेकर दौड़े और दोनों दल खेत से थोड़ी दूर पर भिड़ गए।

अभियोजन का कहना है कि पहला आक्रमण अभियुक्तों की ओर से हुआ और अभियुक्तों का कहना है कि पहला आक्रमण विश्वनाथ और हरी जी ने किया। सत्र न्यायाधीश का कहना है कि अभिलेख पर कोई बात ऐसी नहीं है जिससे पता चल सके कि पहला आक्रमण किधर से हुआ। किंतु विद्वान् सत्र न्यायाधीश इस तथ्य को छोड़ गए कि रघुपति अभियुक्त ने उपार्पण मजिस्ट्रेट के समक्ष यह बयान दिया था कि विश्वनाथ और हरी ने पहला आक्रमण किया और इसका समर्थन बनवारी (डी० डब्ल्यू० ५) के साक्ष्य से होता है और परिस्थिति के अनुसार यही संभव भी प्रतीत होता है।

अभियोजन कहानी है कि अभियुक्तों ने तुरत पहुँच कर आक्रमण कर दिया और विश्वनाथ तथा हरी जी के आक्रमण अपने बचाव के लिये थे किंतु इसकी चर्चा प्रथम सूचना प्रतिवेदन में नहीं है जिसे चौकीदार ने किया था। यह बात जब चौकीदार से पूछी गई तो उसने कहा कि मैंने प्र० सू० प्र० में इसे लिखाया है किंतु जब उसे दिखाया गया कि प्र० सू० प्र० में यह बात नहीं है तो वह इसका कुछ कारण न बता सका। अतः विश्वनाथ और हरी जी आक्रामक थे और उन्होंने ही सब से पहले लाठी से आक्रमण किया था।

अभियोजन ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि अभियुक्तों को चोट नहीं आई। किंतु साक्षियों और डाक्टर के प्रतिवेदन से यह प्रमाणित है कि अभियुक्तों को भी चोटें आईं।

अभियोजन की ओर से सच्ची बात छिपाने का प्रयत्न किया गया है। हमारा निष्कर्ष है कि बैल सिद्धनाथ अभियुक्त के थे और विश्वनाथ तथा हरी जब तैयार होकर बैल छीनने के लिये आए तो वे बैल सिद्धनाथ के खेत में नधे थे। विश्वनाथ और हरी ने अभियुक्त की भूमिपर अनधिप्रवेश किया और वे आक्रामक थे।

पहले पहल विश्वनाथ और हरी ने लाठी से रघुपति अभियुक्त के सिर पर मारा जो कि भारी चोट पहुँचा सकता था और तब इसी के बाद दोनों ओर से भाले और लाठियाँ चलने लगीं और दोनों ओर को चोटें पहुचीं। हरी जी की मृत्यु इसी बीच सिद्धनाथ अभियुक्त के भाले से हो गई। अभियुक्तों ने अपने और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिये आक्रमण किया था। जब परिवादी बैल लेने गए तो अभियुक्तों की ओर से कोई भय नहीं था। परिवादी का इस संपत्ति पर कोई स्वत्व रहा भी हो तो उसके लिये उपाय अदालत में थी न कि बल प्रयोग। परिवादी पहले इस संपत्ति को शांति पूर्वक धारण किए था और अभियुक्तों ने जब इसे छीना तब कोई झगड़ा नहीं हुआ तो इस प्रकार धारण छोड़ने में उन्होंने अपनी सहमति कुछ समय तक दी और तब फिर जो वे बल पूर्वक पुनः छीन लाने को तैयार हुए वह गलत था। इसके लिये उन्हें अदालत में ही जाना चाहिए था।

अभियुक्तगण झगड़ा करने के लिये तैयार होकर नहीं गए थे। जो संपत्ति उनके धारण में थी उसकी धारणाच्युति की संभावना जब सहसा उत्पन्न हो गई तो वे अपनी बचत में आक्रमण कर सकते थे। इतना शीघ्र

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५७

भजनलाल चतुर्वेदी न्यायिक सदस्य
(राजस्व मंडल)

जगदीशपुर, कोपाची पूरब, बलिया

बनारस प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २७ फरवरी १९५६ के आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० १२--बी० १९५५।५६)

१५ मार्च १९५८

मथुरा कोइरी　　अपीलकर्ता

विरुद्ध

मनोरिया श्रीमती, तथा अन्य　　उत्तरवादीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १९४७, धारा ८५-उ० प्र० भूराजस्व अधिनियम, १९०१--दाखिल खारिज के मुकदमे में उक्त अधिनियम की धा० ८५ का क्षेत्र--

भजनलाल चतुर्वेदी न्यायिक सदस्य--

देवराज ४ अक्टूबर १९४९ को मरा। श्रीमती मनोरिया ने अपने को देवराज मृतक की विधवा कहकर अपने नाम से दाखिल खारिज के लिये तहसीलदार के यहाँ प्रार्थनापत्र दिया। तहसीलदार ने भूराजस्व अधिनियम की धारा ३५।४१--ए० के अंतर्गत इसे अदालती पंचायत में भेज दिया। अदालती पंचों ने दो निर्णय दिया। एक निर्णय जो श्रीमती मनोरिया के पक्ष में था उस पर तीन पंचों के हस्ताक्षर थे; दूसरा निर्णय जो उसके विपक्ष में था उस पर ४ पंचों के हस्ताक्षर थे। इस दूसरे निर्णय में श्रीमती मनोरिया को देवराज की विधवा नहीं माना गया था वरन् उसे किसी रामू की विधवा कहा गया था। इनमें से दो पंच दोनों निर्णयों में संमिलित थे। एस०डी०ओ०बलिया के यहाँ जब प्रार्थनापत्र दिया गया तब उन्होंने पंचायत अदालत का यह निर्णय इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि उस पर पंचों के हस्ताक्षर नहीं हैं और दूसरे निर्णय में विरोध नितांत स्पष्ट है और इसलिए वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। यह अधिकार उन्हें पंचायत राज अधिनियम की धा० ८५--(१) बी० के अंतर्गत दिया गया था। अभिखंडन के बाद उसके परिणाम क्या क्या हो सकते हैं यह उक्त धारा के उपवाक्य ४ में दिया हुआ है और इसी पर इसका विवाद आधारित है।

इस उपवाक्य में दिया हुआ है कि एस० डी० ओ० यदि उपर्युक्त ढंग से अभिखंडित कर दें तो पक्ष को किसी राजस्व न्यायालय में जिसे कि इसकी सुनवाई का अधिकार हो कार्यवाही करने का अधिकार होगा और इस नवीन कार्यवाही की अवधि के संबंध में कहा गया कि एस० डी० ओ० के और अदालत पंचायत में जितने समय तक मुकदमा रहा है वह समय जोड़ा नहीं जायगा।

इस अधिकार के बल पर श्रीमती मनोरिया ने अदालत पंचायत में दाखिल खारिज के लिये एक प्रार्थना पत्र फिर दिया। यह १०-८-१९५२ को दिया गया था जब कि जमीदारी विनाश अधिनियम लागू हो चुका था और संशोधन के अनुसार अदालत पंचायत को दाखिल खारिज के मुकदमें सुनने का अधिकार दिया गया था। पंचायती अदालत ने इसे बलिया के तहसीलदार के पास भेजा और नायब तहसीलदार ने जो तहसीलदार का काम करते थे इस अभिस्तावना के साथ एस० डी० ओ० के पास भेजा कि श्रीमती मनोरिया का नाम मृतक देवराज के विधिक उत्तराधिकारी के स्थान पर लिखने का आदेश दिया जाय। एस० डी० ओ० ने निर्णय दिया कि मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है अतः देवराज के स्थान पर उसका नाम लिख दिया जाय। मथुरा कोइरी ने इस आदेश के विरुद्ध जिलाधीश के यहाँ अपील की और जिलाधीश ने अपील इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि जब धारा ८५ के अंतर्गत अदालत पंचायत का अधिक्षेत्र अभिखंडित कर दिया गया था तो कोई नियम नहीं है कि मनोरिया फिर अदालत पंचायत में प्रार्थनापत्र दे। मनोरिया ने इस आदेश के विरुद्ध अतिरिक्त आयुक्त के यहाँ अपील किया। इस अपील में निर्णय हुआ कि नियमानुसार

एस० डी० ओ० के आदेश की अपील आयुक्त के यहाँ होनी चाहिए जिलाधीश के यहाँ नहीं इसलिए जिलाधीश का अपील स्वीकृतिवाला आदेश उनके अधिक्षेत्र के बाहर था। इसके परिणाम स्वरूप एस० डी० ओ० का आदेश पुनर्स्थापित हुआ। मथुरा कोइरी अब यहाँ तृतीय अपील में आया है।

मथुरा कोइरी की ओर से निम्नलिखित प्रतर्क रखे गए हैं:—

१ भूअभिलेख नियमावली परिच्छेद ८१ (३) के अंतर्गत पंचायत अदालत में पुनः प्रार्थनापत्र देने का अधिकार नहीं था क्योंकि पंचायत अदालत का अधिक्षेत्र एक बार अभिखंडित हो चुका था। इसके बारे में एक प्रमाण १६५४ इलाहाबाद ७२१ को अभिदेश किया गया। यह एक आपराधिक मामला था किंतु अपीलकर्ता के विद्वान् वकील के अनुसार उसमें के सिद्धांत इसमें लागू होते हैं। इस रूलिंग में यह निर्णय हुआ था कि अधिक्षेत्र अभिखंडित होने पर जो मजिस्ट्रेट समर्थ हो उसके न्यायालय में सुनवाई होनी चाहिए। विद्वान् वकील के कथनानुसार अधिक्षेत्र अभिखंडन से कार्यवाही की समाप्ति नहीं होती जिसके फलस्वरूप नए सिरे से कार्यवाही आरंभ हो बल्कि इसका तात्पर्य केवल इतना ही होता है कि जिस न्यायालय ने कार्यवाही अभिखंडित किया है वह या तो इसकी सुनवाई स्वतः करे या समर्थ न्यायालय में सुनवाई के लिये स्थानांतरित कर दे। अपीलकर्ता का कहना है कि पंचायत अदालत में पुनः प्रार्थनापत्र निवेशित करना गलत है।

२—चूँकि जिलाधीश के आदेश की अपील आयुक्त के यहाँ नहीं हो सकती थी इसलिए विद्वान आयुक्त को जिलाधीश के आदेश के निराकरण का अधिकार नहीं था।

(३) श्रीमती मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है या रामू की यह तथ्य का प्रश्न है, नीचे के न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया है और अपील भी जो निवेशित की गई है वह एक मात्र विधि के प्रश्न पर है इसलिए तथ्य के प्रश्न पर विचार नहीं होना चाहिए।

श्रीमती मनोरिया के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि निर्णय को मान्यता देने के लिये यह आवश्यक है कि सभी पंच हस्ताक्षर बनावें। यहाँ ऐसा नहीं हुआ था इसलिए प्रक्रिया ठीक न होने से यह अभिखंडित की गई।

२—जब जमींदारी विनाश अधिनियम लागू हुआ तो उसमें दाखिल खारिज के मुकदमे का अधिक्षेत्र एकमात्र न्याय पंचायत को दिया गया। इसीलिए १० अगस्त १६५२ को दूसरा प्रार्थनापत्र अदालत पंचायत में दिया गया और उस समय तक जमींदारी विनाश अधिनियम लागू हो चुका था।

(३) विद्वान् एस० डी० ओ० ने प्रक्रिया के अनुसार अनेक साक्ष्यों का परीक्षण किया और तब इस तथ्य पर निर्णय दिया कि श्रीमती मनोरिया देवराज मृतक की विधवा है।

(४) निहित होने की तिथि के बाद दिनांक १० अगस्त १६५२ को यह प्रार्थनापत्र दिया गया है इसलिए यों तो बोर्ड का अधिकार असीम है किंतु इस परिस्थिति में तीसरी अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

हमारे विचार से पंचायत राज अधिनियम की धारा ८५ (४) के अंतर्गत कार्यवाही राजस्व न्यायालय में चल सकती है और इसके लिये तीन परिस्थितियाँ हो सकती हैं:—

१—मजिस्ट्रेट स्वतः अभिलेख मँगाकर सुनवाई करें।

२—स्थानांतरण कर दें, या

३—नए सिरे से कार्यवाही आरंभ की जाय। यदि इनमें से एक कार्यवाही की गई है तो दूसरी साथ साथ नहीं चलेगी। यदि मजिस्ट्रेट ने प्रथम दो का आश्रय लिया है और जमीदारी विनाश अधिनियम लागू हो गया तो समझा जायगा कि वाद निहित होने की तिथि के पहले से विचाराधीन है नहीं तो तीसरी अवस्था में समझा जायगा कि कार्यवाही समाप्त हो गई थी। एस०

डी० ओ० का वह आदेश, जिससे कार्यवाही अभिखंडित की गई उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई है अतः उक्त आदेश द्वारा कार्यवाही समाप्त हो गई थी।

१० अगस्त १९५२ का प्रार्थनापत्र ठीक था। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने जो जिलाधीश का आदेश निराकृत कर दिया था वह ठीक था।

यहाँ यदि नीचे के न्यायालय ने तत्व पर विचार नहीं किया तो भी कोई अन्याय नहीं हुआ कारण कि यदि मथुरा को यह प्रमाणित करना है कि मनोरिया देवराज की विधवा नहीं है तो वह व्यवहार न्यायालय में घोषणात्मक वाद विवेशित कर सकता है—इस दाखिल खारिज के मुकदमें को रोक रखने में कोई औचित्य नहीं है। दूसरे, मथुरा कोइरी देवराज के अधिकार को ही इनकार कर जाता और एक बार ऐसा हुआ भी कि जब पंचायत में यह मुकदमा चला रहा था तभी राधा कोइरी ने एक परिवाद मनोरिया के विरुद्ध दिया जिसमें उसे रामो की विधवा कहा था। इसलिए नीचे का निर्णय ठीक था कि मनोरिया देवराज की विधवा है।

इस अपील में बल नहीं है इसलिए उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ५९

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्तू

उच्च न्यायालय

जौनपुर के प्रथम अतिरिक्त न्यायाधीश के व्यवहार अपील सं० १६३।१९४७ में दिए हुए निर्णय और डिग्री दिनांक १७ नवंबर १९५० के विरुद्ध द्वितीय अपील सं० ३९५।१९५१

११ दिसंबर १९५७

रामलाल तथा अन्य — अपीलकर्ता गण

वि०

मँगरी श्रीमती, तथा अन्य — उत्तरवादी गण

उ० प्र० भूधारण अधिनियम, १९३९, धा० ३४— हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम धा० १४—शरह मुअयन (फिक्स्ट रेट टेनेंसी) के खेतों के उत्तराधिकार क्रम में विधवा के उत्तराधिकारी आते हैं।

न्यायमूर्ति गुर्तू—

शरह मुअय्यन (फिक्स्ट रेट टेनेंसी) के कुछ खेतों का अंतिम पुरुष स्वामी रघुनाथ था। वह श्रीमती मँगरी को अपनी विधवा स्त्री छोड़कर मरा। श्रीमती मँगरी ने वाद विषय की संपत्ति के विषय में एक दानपत्र रामसुरजन को लिख दिया।

यह वाद रामलाल द्वारा निवेशित किया है जो प्रत्यावर्ती (रिवर्शनर) है और उसने इसे अन्य प्रत्यावर्तियों की ओर से भी निवेशित किया है कि घोषणा की जाय उक्त दानपत्र श्रीमती मँगरी की मृत्यु के बाद इन प्रत्यावर्तियों के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

यह मुकदमा लड़ा गया। अंत में अन्वीक्षा न्यायालय ने इसे उत्सर्जित कर दिया। नीचे के न्यायालय में जब अपील निवेशित की गई तो उसने भी यह वाद इस आधार पर उत्सर्जित कर दिया कि रामलाल (वादी) के पिता गज्जू से और श्रीमती मँगरी से पहले ही एक समझौता हो चुका था जिसमें आधा भाग मँगरी को मिला और आधा गज्जू, वादी के पिता को। गज्जू इस आधी संपत्ति का उपभोग करते हुए जब मर गया तो रामलाल (वादी इसके धारण में आया इसलिए यदि श्रीमती मँगरी ने अपने आधे भाग को दान में दे दिया तो रामलाल उस पर आपत्ति नहीं कर सकता।

जब यह द्वितीय अपील निवेशित की गई तो उस समय हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू हो चुका था। इस अधिनियम की धारा १४ के अंतर्गत विधवा के जीवनपर्यंत तक का अधिकार समाप्त करके उसे पूर्ण अधिकार दिया गया। उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा ३४ के अंतर्गत शरहमुअयन (फिक्स्टड रेट टेनेंसी) इस मुकदमें की परिस्थिति में हिंदू विधि से शासित थी। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू होने से यह इसी

अधिनियम से शासित होने लगी। इस अधिनियम की धारा १४ के अनुसार विधवा संपदा विस्तृत होकर पूर्ण संपदा हो गई; प्रत्यावर्तीगण इस अधिनियम के लागू होने के बाद रह नहीं गए क्योंकि हिंदू विधि का यह अधिकार अब मान्य नहीं रहा।

अतः श्रीमती मँगरी के उत्तराधिकारी इसके स्वामी होंगे। उसके पति के उत्तराधिकारी अब प्रत्यावर्ती नहीं रहे।

उपर्युक्त कारणों से यह अपील असफल होती है।

विशेष अपील निवेशित करने की अनुमति माँगी गई और स्वीकार की जाती है।

अपील उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६०

भजनलाल चतुर्वेदी और बी० पी० शाही न्यायिक सदस्य (राजस्व मंडल)

शिवपुर दीयर, बलिया

वाराणसी प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १० जून १९५५ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थना पत्र सं० १।१९५५–५६)

२९ अक्टूबर १९५७

देहरी राय इत्यादि — अपीलकर्तागण

विरुद्ध

रंग सिंह — उत्तरवादीगण

अ—भारतीय संविधान अनुच्छेद ३ (डी०)—राज्य (स्टेट) का सीमा परिवर्तन संबंधी विवाद न्यायिक मामला नहीं है इसलिए तत्संबंधी विवाद का निबटारा संसद अनुच्छेद ३ (डी०) के अंतर्गत करता है—ऐसी आपत्ति का राजस्व न्यायालय की प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ब) कागजों की शुद्धि—प्रार्थी के नाम की प्रवृष्टि यदि १३५५ फ० तक हो और १३५६ फ० में बिना किसी न्यायालय के आदेश से परिवर्तन कर दिया गया हो तो यह खतौनी की शुद्धि का मामला है और घोषणात्मक वाद निवेशित करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

न्यायिक सदस्य, भजनलाल चतुर्वेदी—

यह मुकदमा पुराने भूराजस्व अधिनियम के अंतर्गत था इसलिए तृतीय अपील संधार्य है और इस तथ्य पर उभय पक्ष सहमत हैं।

तथ्य इस प्रकार है कि देहरी राय ने अन्य प्रार्थियों के साथ कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थनापत्र दिया। प्रार्थियों का कहना है कि अनुसूची ए० पर देहरी राय का धारण अकेले है और अनुसूची बी० पर उनका धारण और प्रार्थियों के साथ है। प्रार्थियों का कहना है कि हम लोग विपक्षियों की अनुमति से लगान देकर धारण में हैं किंतु पटवारी ने विपक्षी से मिलकर हमारा नाम १३५६ फ० में हटा दिया इसलिए कागज शुद्ध किए जायँ।

विपक्षियों ने इस पर आपत्ति की कि वाद विषय की संपत्ति बिहार में पड़ती है इसलिए इस न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रार्थीगण कभी धारण में नहीं रहे और न तो उनके साथ भूमि का बंदोबस्त किया गया।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि भूमि बिहार में पड़ती है इसलिए उत्तर प्रदेश के न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है। अपील पर बलिया के जिलाधीश ने इस निर्णय को उलट दिया और आदेश दिया कि सुनवाई तत्व पर की जाय। इस पर एस० डी० ओ० ने सुनवाई के बाद निर्णय दिया कि यह विवाद मूलभूत अधिकार से संबद्ध है इसलिए इसका निर्णय नियमानुसार निवेशित वाद में होना चाहिए। इसके विरुद्ध दो अपीलें की गईं। एक अपील सं० ६४ देहरी राय तथा अन्य प्रार्थियों ने की और दूसरी अपील सं०

६८ राम परवेश हज्जाम ने की। जिलाधीश ने अपील सं० ६४ स्वीकार किया और अपील सं० ६८ उत्सर्जित। इसके विरुद्ध दो अपीलें हुईं और उनमें विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने निर्णय दिया कि इसमें कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता। उन्होंने शुद्धि के लिये दिए हुए प्रार्थनापत्रों को उत्सर्जित कर दिया। इसी आदेश के विरुद्ध देहरी राय तथा अन्य यहाँ तृतीय अपील में आए हैं।

प्रार्थी अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—मामला कितना हूँ उलझन का क्यों न हो जब कागजों की शुद्धि के लिये प्रार्थना धारण (पोजेशन) के आधार पर की जाती है तो यह शुद्धि का ही मामला होता है न कि घोषणा (डिक्लेशरेशन) का।

२—प्रार्थीगण ६ वर्ष की लंबी अवधि से शिकमी चले आ रहे हैं विपक्षी रंग सिंह ने स्वयं उन्हें लगान की रसीद दिया है तथा विपक्षीगण ने यह प्रमाण कहीं नहीं दिया कि इस बंदोबस्त में कोई धोखा हुआ है इसलिए विपक्षी इस बंदोबस्त को इनकार नहीं कर सकते।

३—श्री रंग सिंह का नाम १३५६ फ० की खतौनी में नहीं है और उनका धारण भी नहीं है।

४—केवल रंग सिंह को छोड़कर अन्य विपक्षियों ने समझौता कर लिया है और प्रार्थियों के प्रार्थनापत्र का समर्थन किया है इसलिए इसे कार्यरूप में परिणित करना चाहिए।

विपक्षियों के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—यह मामला साधारण नहीं है वरन् इसमें स्वत्व (टाइटिल) का प्रश्न भी है जो कि घोषणात्मक वाद में विचारणीय होता।

२—समझौता के लिये कहा गया है कि यदि केवल तीन साझेदारों ने इसे स्वीकार किया है तो इससे कोई वैध स्वत्व नहीं मिल सकता।

३—समझौता के आधार पर जो धारण होता है वह पूर्ण धारण नहीं होता।

४—शिकमी लगान की दर केवल ३ रु० बीघा है जो इतनी कम है कि इसे झूठा ही समझना चाहिए।

५—वाद विषय की संपति जहाँ स्थित है उसके विषय में उत्तर प्रदेश और बिहार सरकार में लिखापढ़ी चल रही है और जब तक इसका निबटारा नहीं हो जाता उत्तर प्रदेश के किसी राजस्व न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिक्षेत्र नहीं है।

यह मान्य है कि प्रार्थी गण १३५५ फ० में शिकमी लिखे हुए हैं। यह भी मान्य है कि यह भूमि पहले बंधक थी जिसका निष्क्रयण प्रतिवादीगण वर्ग १ ने प्रतिवादी गण वर्ग २ से किया और इसी के बाद पटवारी ने स्वामियों का नाम विवरण स्तंभ में लिख दिया।

सीमा के विवाद के संबंध में बलिया के जिलाधीश श्री हबीब अहमद सिदिकी आई० ए० एस० ने लिखा था कि सीमा संबंधी झगड़ा अभी भी चल रहा है और यह मानकर कि यह गाँव बिहार में पड़ता है यदि बलिया के न्यायालय को शुद्धि का अधिकार न दिया गया तो इस बीच पटवारी कागजों को लिखने में मनमानी करेंगे और कोई इसको रोकनेवाला न रहेगा।

जिलाधीश के इस विचार पर आपत्ति की गई है कि शासन की अच्छाई बनाए रखने के लिये तो यह विचार ठीक है किंतु यह न्यायिक विचार नहीं है। विद्वान् वकील का कहना है कि अधिक्षेत्र के प्रश्न पर निर्णय पहले होना चाहिए और जब तक यह तय न हो जाय कि बलिया के न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है तब तक यहाँ के न्यायालय के निर्णय देने का कोई अर्थ नहीं है।

हमारे विचार से सीमा परिवर्तन संबंधी विवाद न्यायिक मामला नहीं है इसका निर्णय संसद भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३ (डी०) के अंतर्गत इसके परंतुक के अधीन करता है। यदि सीमा आयोग ने उत्तर प्रदेश के पक्ष में निर्णय नहीं दिया तो संविधानीय और

वैधानिक कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद ३ के अनुसार की जायगी। इस झगड़े से राजस्व न्यायालय का कुछ संबंध नहीं है अतः इस मामले के प्रयोजन के लिये ऐसे अभिकथन का कोई प्रभाव नहीं है।

प्रार्थीगण पटवारी के कागजों में १३५५ फ० तक हैं। बिना किसी न्यायालय के आदेश के १३५६ फ० परिवर्तन कर दिया गया। यह स्पष्टतः खतौनी की शुद्धि का प्रश्न है और प्रार्थियों को बाध्य करने का कोई प्रश्न नहीं उठता कि वे घोषणात्मक वाद निवेशित करें।

राम परवेश हज्जाम भी विधिक शिकमी है अतः जिलाधीश का इसके विरुद्ध दिया हुआ आदेश ठीक नहीं था।

परिणामतः अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति के अधीन मैं आदेश देता हूँ कि देहरीराय का नाम और प्रार्थियों के साथ जिसमें राम परवेश हज्जाम भी संमिलित रहेगा १३५६ फ०की खतौनी में शिकमी में लिखा जाय। परिव्यय सामान्य।

यह अपील सं० १ और २ १९५५-५६ में लागू होगा।

बी० पी० शाही—आपत्ति पढ़ा। प्रस्तावित आदेश में सहमति प्रकट करता हूँ।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६२

कृषि आयकर पुनरीक्षण सं० २२१ से २२५।१९५७

जिला बहराइच

(३१ जनवरी १९५८)

बेनी प्रसाद सिंह — प्रार्थी

विरुद्ध

राज्य — विपक्षी

उत्तर प्रदेश कृषि आयकर अधिनियम १९४८—

व्य० प्र० संहिता ५।१९०८ धारा ११—एक कर निर्धारण प्राधिकरण ने पहले वर्ष परिवार को संयुक्त मानकर कर निर्धारण किया—दूसरे वर्ष इसमें परिवर्तन करने के लिये परिस्थितियाँ—

न्यायालय द्वारा—

फैजाबाद प्रभाग के आयुक्त के आदेश के विरुद्ध ५ पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र आए हैं। इसमें प्रमुख विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि क्या उत्तरवर्ती करनिर्धारण प्राधिकरण पर पूर्ववर्ती प्राधिकरण के निर्णय का बंधन है?

दो प्रमाण दिए गए हैं जिनमें कहा गया था कि कृषि आयकर के मामलों में व्य० प्र० सं० लागू नहीं होती और प्राङ् न्याय (रेस जुडिकेटा) का सिद्धांत लागू नहीं होता कारण कि कर वर्ष प्रति वर्ष बदलता रहता है फिर भी अनेक निर्णयों में यह तय हो चुका है कि यदि पहले वर्ष में बँटवारा माना गया है तो उसको उत्तरवर्ती प्राधिकरण सिवा वैध कारणों के आधार पर बदल नहीं सकता।

किस आधार पर उत्तरवादी प्राधिकरण अपने पूर्ववर्ती प्राधिकरण का निर्णय बदल सकता है यह १९५३ ए० आई० आर० नागपुर २१ में दिया गया है। इस निर्णय में निम्नलिखित परिस्थितियाँ बतलाई गई हैं:—

१—पहलेवाला निर्णय पूरी जाँच करने के बाद नहीं दिया गया था,

२—पहलेवाला निर्णय मनमाना था और

३ ऐसे नए तथ्य प्रकाश में आवें जो कि यदि पहले ही जानकारी में रहे होते तो वैसा निर्णय न हुआ होता।

नागपुर उच्च न्यायालय ने यह भी कहा था कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियाँ नहीं हैं तो पहले के निर्णय से सहमत न होने पर भी उसे बदला नहीं जा सकता। पहले के निर्णय के विरुद्ध निर्णय दिए जाने योग्य परिस्थितियाँ हैं—इसका भार राज्य पर है। इस मामले में ऐसी कोई बात नहीं है। यह प्रमाणित नहीं किया गया

कि पहलेवाला निर्णय मनमाने ढंग पर दिया गया था या उसकी पूरी जाँच नहीं हुई।

परिणामतः पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है और विद्वान् आयुक्त का आदेश निराकृत किया जाता है। इसका प्रतिप्रेषण किया जाता है कि पक्ष अपने अपने साक्ष्य दें। यदि पहलेवाले निष्कर्ष को बदलना हो तो उपर्युक्त तीन नियमों के अनुसार ही परिवर्तन हो।

यह आदेश पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० २२१ से २२५ १६५७ जिला बहराइच में लागू होगा।

—पुनरीक्षण स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद (राजस्व) ६३

बी० एल० चतुर्वेदी, न्यायिक सदस्य, (राजस्व मंडल)

लदलावस, सिकंदराबाद, बुलंदशहर

मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक २६ अक्टूबर १६५३ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० २२५।१६५३-५४)

३० अक्टूबर, १६५७

तुलसीराम — अपीलकर्ता

विरुद्ध

रामचंद्र — उत्तरवादी

उ० प्र० चकबंदी अधिनियम ५।१६५४--धारा १२ (५)--वाद या कार्यवाही का रोक रखा जाना इस शर्त के अधीन नहीं है कि पहले स्वत्व के प्रश्न का अभिदेश पंच को कर दिया जाय--नई धारा १२ (५) विचाराधीन मामलों में भी लागू होती है।

न्यायिक सदस्य बी० एल० चतुर्वेदी—

इस अपील में केवल इसी प्रश्न पर बहस है कि चकबंदी अधिनियम की धारा १२ (५) के अंतर्गत कार्यवाही रोक रखी जा सकती है कि नहीं। अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि पहले की धारा १२ (५) और नई धारा १२ (५) एक समान नहीं हैं। उनका कहना है कि पहले के अधिनियम के अनुसार अभिदेश करने के बाद कार्यवाही रोकी जा सकती है और चूँकि यहाँ अभिदेश नहीं हुआ है इसलिए कार्यवाही रोकी नहीं जा सकती। उनका यह भी कहना है कि धारा का प्रभाव अतीत प्रभावी नहीं है।

इस धारा का संबंध प्रक्रिया से है इसलिए निश्चय ही यह अतीतप्रभावी है। १६५३ के अधिनियम में कार्यवाही का रोक रखा जाना और स्वत्व के प्रश्न पर पंच को अभिदेश सहवर्ती कार्यवाही थी। १६५४ के अधिनियम की धारा १२ (४) के अंतर्गत इन कार्यवाहियों के लिये ऐसा कोई सहवर्ती विधान नहीं है। वह इसलिए है कि चकबंदी अधिकारी धारा ११ के अंतर्गत विवरण आदि से जब समझता है कि इसमें स्वत्व का प्रश्न है तो पहले वह व्यवहार न्यायाधीश को अभिदेश करेगा और व्यवहार न्यायाधीश पंच को। यदि कार्यवाही रोकी नहीं गई है तो इन अभिदेशों का कुछ अर्थ नहीं होगा। अतः नए अधिनियम में पहले कार्यवाही रोक दी जानी चाहिए और तब अभिदेश करना चाहिए। प्रक्रिया में यह परिवर्तन हुआ है इसलिए विचाराधीन वादों में भी यह लागू होगा। अतः इस कथन में बल नहीं है कि चूँकि पंच को अभिदेश अभी तक नहीं किया गया है इसलिए कार्यवाही को रोकना नहीं चाहिए।

परिणामतः अपीलें चकबंदी अधिनियम १६५४—धारा १२ (५) में रुकी रहेंगी।

——

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद (राजस्व) ६४

(राजस्व मंडल)

एस० एन० मित्रा न्यायिक सदस्य (राजस्व मंडल)

सरखुर्द, बिधुना, इटावा

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक

२३ मई १६५८ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ६४।१६५६-५७)

३० अगस्त १६५८

दीनदयाल अपीलकर्ता

विरुद्ध

फदलू तथा अन्य उत्तरवादीगण

(अ) उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १।१६५१, धा० २२९ बी०, २३४ ए०, २४० एच० (२)—प्रतिकर अधिकारी के समक्ष आपत्ति उठाने पर अपील का न्यायाधिकरण (फोरम) इन मामलों में द्वितीय अपील हो सकती है।

(ब) व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० २२ नि० ३—पक्ष—मृत्यु के बाद वकील ने बिना वकालत नामा के पक्ष बनाने का प्रार्थनापत्र दिया—पक्ष बनने के लिये ऐसा प्रार्थनापत्र उत्सर्जित होगा—

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा —

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है।

उ० प्र० ज० वि० तथा भूमि सुधार अधिनियम की धा० २४०—जी० के अंतर्गत दीनदयाल ने अपने नाम से प्रतिकर निर्धारण के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया कि विपक्षी गलत ढंग से अधिवासी लिखा हुआ है और वह गलती से सीरदार हुआ है। उसका कहना है कि मैं प्रमुख कृषक हूँ तथा धारण में हूँ इसलिए विवादग्रस्त भूमि में धारा २४० ए० लागू नहीं होती।

विपक्षी ने इसका विरोध किया कि हम ८।६ वर्ष से इसके धारण में है और हमारा अधिवासी और तत्पश्चात सीरदार होना ठीक है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि विपक्षी १३५६ फ० में धारण में था तथा ३० अक्टूबर १६५४ को धारण में था और प्रार्थनापत्र उत्सर्जित कर दिया। अपील करने पर विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने अन्वीक्षा न्यायालय के इसी निर्णय को मान लिया और अपील उत्सर्जित कर दिया।

उत्तरवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

१—धारा २४०—एच० (२) (ए०) में है कि निर्वर्तन के लिये इस प्रकार का प्रार्थनापत्र उस अदालत में भेज दिया जायगा जिसे धारा २२६ बी० धारा २३४ ए० के साथ पठित के मामलों के सुनने का अधिकार हो और इस प्रकार उस उपवाक्य के अनुसार इस न्यायालय में द्वितीय अपील नहीं हो सकती।

२—अपील का अधिकार प्रक्रिया (प्रोसीजर) का अधिकार है और जमींदारी विनाश अधिनियम की अनुसूची २ में धारा २४० नहीं दी गई है इसलिए द्वितीय अपील निवेशित नहीं की जा सकती।

३—धारा २४० प्रतिकर दिए जाने से संबंध रखती है इसीलिए द्वितीय अपील का कोई उपबंध नहीं है।

४—दीनदयाल अपीलकर्ता की मृत्यु हो चुकी है। उसके विधिक प्रतिनिधि को पक्ष बनाने के लिये जो प्रार्थना पत्र दिया गया वह बी० एल० जायसवाल द्वारा है किंतु उनके नाम से वकालतनामा नहीं है अतः उन्हें प्रार्थनापत्र देने का कोई अधिकार नहीं था और केवल इसी आधार पर प्रार्थनापत्र असफल हो जाना चाहिए।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि जहाँ प्रतिकर दिए जाने के संबंध में ऐसी परिस्थिति में आपत्ति की जाय तो इसे उस न्यायालय को अभिदेश कर देने का उपबंध है जो धारा २२६ बी०, धारा २३४ ए० के साथ पठित वाले मामलों को सुन सकता हो तथा इसकी सुनवाई उसी प्रकार होगी मानो यह वाद (सूट) हो। धारा २२६ बी० जमींदारी विनाश अभिनियम की अनुसूची २ में है इसलिए यहाँ द्वितीय अपील ठीक है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कथन ठीक प्रतीत होता है क्योंकि अभिदेश कर देने पर यह वाद (सूट) के समान चलता रहेगा और जब अनुसूची २ में धारा २२६ बी० है तो यहाँ यह द्वितीय अपील संधार्य है।

दीनदयाल अपीलकर्ता मर गया है। अभिलेख पर कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह प्रमाणित हो कि श्री जायसवाल जी के पक्ष में कोई वकालतनामा लिखा गया। अतः श्री जायसवाल को पक्ष बनाने के लिये प्रार्थनापत्र देने का अधिकार नहीं था। यह द्वितीय अपील उसी आधार पर असफल होती है।

Furnish	प्रदान, देना, प्रस्तुत करना, उपस्करण, सुसज्जित करना
„ satisfactory evidence	संतोषजनक साक्ष्य प्रस्तुत करना
„ security	प्रतिभूति देना
Further	और भी, आगे, इसके अतिरिक्त, अतः परं, ततः परं, और
„ enquiry	और जाँच
„ evidence	और साक्ष्य
„ increment	भावी वृद्धि
„ information	और सूचना
„ list	अगली सूची
„ period	और अवधि

G

Gain	लाभ, पाना, प्राप्त करना, लाभ उठाना, अर्जित करना
„ and loss	लाभ और हानि, लाभालाभ
„ by knowledge	ज्ञानार्जित
Gains of learning	विद्या लाभ
Gallery	दीर्घा, वीथिका
Gamble	द्यूत, जुआ, जुआ खेलना
Gambling contract	द्यूत संविदा
Game	क्रीड़ा, आखेट, शिकार
„ Act	आखेट अधिनियम
„ shooting rule	आखेट नियम
Gaming contract	द्यूत संविदा
Gap	अंतर अंतराल, अवकाश
Gate	द्वार, कपाट
„ keeper	द्वारिक, द्वारपाल
„ sentry	द्वारप्रहरी
„ way	प्रवेश द्वार, द्वारमार्ग
Gather	एकत्रित करना, इकट्ठा करना, संग्रह करना
Gathering	जन समूह
G. A. T. T. (General Agreement on Tariffs and Trade)	प्र० व्या० सा० स० (प्रशुल्क और व्यापार पर सामान्य समझौता)
Gazette	राजपत्र
Gazetted	राजपत्रित
„ holiday	राजपत्रित छुट्टी, राजपत्रित पर्वावकाश

Gazetted post	राजपत्रित पद
Gazetted rank	राजपत्रित पदस्थिति
Gazetteer	विवरणिका
Gazette of India	भारत राजपत्र, केंद्रीय राजपत्र
„ order	राजपत्र आदेश
General	(१) सामान्य, अविशेष, सर्वीय (२) महा (३) सेनानी
„ account	सामान्य लेखा
„ administration	सामान्य प्रशासन
„ adviser	महा मंत्रणाकार
„ agent	सामान्य अभिकर्ता
„ application	सामान्य प्रयोग
„ assumpsit	सामान्य आश्राव
„ Average Act	सामान्य माध्य अधिनियम
„ balance	सामान्य शेष
„ „ book	सामान्य शेष पुस्त
„ body	सामान्य निकाय
„ Book Circular	सामान्य पुस्तक परिपत्र
„ branch	सामान्य शाखा
„ character	सामान्य ख्याति
„ Clauses Act	साधारण परिभाषा अधिनियम
„ count	सामान्थ पाद (जो सामान्यतः वादी के दावे को बतलावे)
„ damages	सामान्य हानिपूर्ति
„ demurrer	सामान्य विध्यापत्ति
„ diary	सामान्य दैनंदिनी
„ election	महानिर्वाचन, साधारण निर्वाचन, बड़ा चुनाव
„ issue	सामान्य वाद पद
Generality	सामान्यता, व्यापकता
General jail delivery	सामान्य कारामोचन, सामान्य कारामुक्ति
„ jurisprudence	सामान्य विधिशास्त्र
„ law	सामान्य नियम
„ legacy	सामान्य रिक्थ
„ letter of credit	सामान्य प्रत्यय पत्र
„ lien	सामान्य धारणाधिकार, सामान्य ग्रहणाधिकार
„ manager	महा प्रबंधक
„ power of disposition	सामान्य व्यवस्थापन शक्ति

General provident fund	सामान्य भविष्य निधि
„ rules of proccedure	सामान्य प्रक्रिया नियम, कार्य विधि
„ statute	सामान्य परिनियम
„ traverse	सामान्य उत्खंडन
„ verdict	सामान्य संनिश्चय
„ warranty	सामान्य अध्याभूति
Generation	संतति, पीढ़ी
Genius	प्रतिभा, प्रज्ञा
Genuine	(१) यथार्थ (२) सत्य, प्रामाणिक, मौलिक
„ and authentic	सच्चा और प्रामाणिक
Gestation	गर्भावधि, गर्भावस्था
„ period	गर्भावधि
Gesture	चेष्टा, अंग विक्षेप, संकेत
Ghastly	भयावह, कराल, भयानक, पैशाचिक
Gift	उपहार, परिदान, देन, भेंट, दान
„ gratuity on reward offered in good faith (G. B. C.)	सद्भावना से दिया गया उपहार, उपदान या पारतोषिक
Gift in futuro	भावी परिदान
„ made in contemplation of death	मरणोन्मुख परिदान
„ before the nuptial fire	यौतुक
„ to a class	वर्गदान
Give	(१) देना, (२) उत्पन्न करना
„ a blow	प्रहरण, प्रहार करना
„ an account	लेखा देना
„ authority to	प्राधिकार देना
„ effect	कार्यान्वित करना
„ in marriage	कन्यादान देना
Given under my hand and the seal of the court	मेरे हस्ताक्षर और न्यायालय मुद्रा के साथ दिया गया
Give out by contract	ठेके पर देना
„ precedence	पूर्वता देना, पहले रखना
„ up	परित्याग करना, छोड़ देना
Giving a satisfactory account of oneself	अपने बारे में संतोषजनक उत्तर देना
Giving false evidence	मिथ्या साक्ष्य देना
Glance	दृष्टिपात, दृक्पात

Gloss	टिप्पणिका
Godown	कोष्ठागार, कोठार
„ keeper	कोष्ठागारिक
Going armed	सायुध जाना
Go into liquidation	का अवसायन होना
Good	अच्छा, समुचित, साधु, सु, सद्, हित, कल्याण
„ administration	सु प्रशासन
„ and sufficient cause	समुचित और पर्याप्त कारण
„ behaviour	सद्व्यवहार
„ character	सच्चरित्र
„ conduct adolescent prisoner	सदाचारी किशोर बंदी
„ consideration	समुचित प्रतिफल
„ faith	सद्भाव, सद्भावना, अप्रमाद
„ name	सुख्याति
„ offices	मध्यस्थता, सौजन्य
„ order	सुव्यवस्था
„ reasons for transfer	स्थानांतरण के लिये पर्याप्त कारण
Goods and chattels	वस्तुएँ और स्वापत्तेय
„ booking	वस्तुएँ भेजना
„ in transit	मार्गस्थ वस्तुएँ
„ on consignment	परेषण वस्तुएँ
„ pledged	प्राधिदत्त वस्तुएँ
Good will	ख्याति
Go to law	वाद आरंभ करना
Govern	शासन करना, विनियमित करना
Governed by	(१) से शासित (२) के अधीन, से नियंत्रित
Governing body	शासी निकाय
Government	शासन
„ advocate	शासकीय अधिवक्ता
„ analyst	शासकीय विश्लेषयिता
„ bill	शासकीय विधेयक, शासन विधेयक
„ Book Circular	शासन पुस्तक परिपत्र
„ draft	शासकीय विकर्ष
„ House	राजभवन
„ litigation	शासकीय वादकरण

Government Management of Private Estates Act	वैयक्तिक संपदाओं का शासकीय प्रबंध अधिनियम
Government of India Act	भारत शासन अधिनियम
" " " Devolation Act	भारत शासन प्रक्रामण अधिनियम
" " " proposal	भारत शासन की प्रस्थापना (सुझाव)
" " " order	भारत शासन आदेश
" pleader	शासन अभिवक्ता
" Premises Eviction Act	शासन स्थान (अधिनिष्कासन) अधिनियम
" Savings Banks Act	शासन संचयाधिकोश अधिनियम
" servant	शासन सेवक
" servants conduct rules	शासन सेवक आचरण नियम
" service	शासन सेवा
" instructions	शासन के अनुदेश
" solicitor	शासकीय वादेक्षक
Governor	राज्यपाल, शासक
" designate	नामोद्दिष्ट राज्यपाल
" General of India	भारत महाशासक
" in council	सपरिषद् राज्यपाल
Governor's assent	राज्यपाल की अनुमति
" box	शासन प्रकोष्ठ
Grace	अनुग्रह, दया
" period	अनुग्रहावधि
Gradation	क्रम बंध
" list	पदक्रम सूची
Grade	क्रम, श्रेणी (क्रि०) क्रम बंधन, श्रेणी स्थापन
" of a court	न्यायालय का वर्ग
Gradings or cadres of posts	पदों के प्रक्रम अथवा संवर्ग
Gradual	उत्तरोत्तर, क्रमिक, क्रमशः
" tax	उत्तरोत्तर कर
Graduate	स्नातक
" in law	विधि स्नातक
Grand jury	महाशसजनी
" larceny	बड़ी चोरी
" old village officers	वयोवृद्ध ग्राम अधिकारी
Grand paernt	महाजनक
" son	पौत्र, पोता, नाती

Grand total	महायोग
Grant	अनुदान
„ earned leave	अर्जित अवकाश देना
Granted	अनुदत्त
Grantee	अनुदान ग्रहीता
Granter	अनुदाता
Grant of land	भूमि का अनुदान
„ „ powers	शक्ति प्रदान
„ „ proprietory rights	स्वामित्वाधिकार देना
Grantor	अनुदाता
Grant relief	सहायता देना
„ sanction	संमोदन देना
Grants-in-aid	सहायक अनुदान
„ -perpetuity	शाश्वत अनुदान
Gratification	परितुष्टि
Gratuitous	निःशुल्क
„ bailee	निःशुल्क उपनिहर्ता
„ bailment	निःशुल्क उपनिधान
„ deeds	निःशुल्क विलेख
Gratuity	उपदान
„ benefit	उपदान लाभ
Grave	गुरु, गंभीर, भारी, घोर
„ crime	घोर अपराध
„ emergency	गंभीर आपात, भारी आपात
„ misconduct	घोर दुर्व्यवहार
„ mistake	घोर भूल
Grazing land	गोचर, चर भूमि
„ revenue	चरण आगम
„ rights	चारण अधिकार, चराई के अधिकार
Grim	निष्ठुर, कठोर भयंकर
Gross	स्थूल २ सकल ३ घोर ४ अश्लील
in gross	अधिकारों का स्वतंत्र अस्तित्व में होना, अनुपाबद्ध
„ abuse	घोर, दुरुपयोग
„ amount	सकल धनराशि
„ „ of interest	वृद्धि की सकल धन राशि
„ annual income	सकल वार्षिक आय

„ circulation of notes	अर्थपत्रों का सकल परिचलन
„ insubordination	घोर अवज्ञा
„ moral turpitude	घोर नैतिक पतन
„ neglect	घोर उपेक्षा
„ negligence	घोर प्रमाद
„ profit	सकल लाभ
Ground	१, भूमि, स्थल २, आधार, कारण
„ lease	भूमि पट्टा
Groundless	निराधार
„ complaint	निराधार परिवेदना
Ground Liaison Officer	संपर्क अधिकारी
Grounds for belief	विश्वास के आधार
„ of decision	विनिश्चय के आधार
„ „ enquiry	परिपृच्छा या जाँच के आधार
Ground tax	भू कर
Group	समूह, वर्ग, विषय वर्ग
Grove	वनिका, उपवन, निकुंज
Grow	बढ़ना, उगना, कृषिकरण उत्पादन
Growth	वृद्धि
Gurantee	१ (व्यक्ति) प्रत्याभू २ (संविद) प्रत्याभूति
Guarantee	प्रत्याभवन, प्रत्याभूति देना
„ bond	प्रत्याभूति बंध
Guaranteed	प्रत्याभूत
Guarantor	प्रत्याभू
Guaranty	१ (संविद्) प्रत्याभूति २ (व्यक्ति) प्रत्याभू
Guard	रक्षा करना, रक्षण
„ against	प्रतिरक्षण, प्रतिरक्षा करना
Guardian	प्रतिपालक, संरक्षक
„ ad litum	वाद कालीन प्रतिपालक
„ appointed or declared	नियुक्त अथवा घोषित प्रतिपालक
Guardians and wards act	प्रतिपालक तथा प्रतिपाल्य अधिनियम
Guardianship	प्रतिपालकत्व
„ certificate	प्रतिपालकत्व प्रमाणपत्र
Guard of honour	संमानार्थ सेना प्रदर्शन
Guess	अनुमान करना, ताड़ना
Guidance	मार्ग प्रदर्शन

Guide	१ मार्ग प्रदर्शक, नेता २ प्रदर्शिका
Guider	मार्ग दर्शक
Guilt	अपराध
Guilty mind	अपराधी मन, पापी मन
„ of contravention	उल्लंघनापराधी
Gun-fire	गोलन
„ license	नलिका अनुज्ञप्ति

H

Habeas corpus	बंदि प्रत्यक्षीकरण
Habit	स्वभाव, अभ्यास, व्यसन
Habitancy	१—वास २—जनसंख्या
Habitation	वास, वासस्थान
Habitual	आभ्यासिक
„ carnal intercourse	आभ्यासिक संभोग
„ defaulter	आभ्यासिक अशोधी
„ drunkurd	आभ्यासिक मद्यप, पियक्कड़
„ drunkerness	आभ्यासिक मदोन्मत्तता
„ indebtedness	आभ्यासिक ऋणग्रस्तता
„ insanity	सतत उन्मत्तता, सतत पागलपना
„ intoxication	आभ्यासिक मत्तता
Habitually	अभ्यासतः, स्वभावतया, सतत, साधारणतया
Habitual neglect of duty	आभ्यासिक कर्तव्योपेक्षा
„ offender	आभ्यासिक अपराधी
Habituate	स्वभाव पड़ना, अभ्यास पड़ना या डालना
Habituation	अभ्यस्त होना, स्वभाव होना
Half	(१) अर्द्ध, आधा (२) अर्द्ध भाग
„ and half	आधा आधा
„ average pay	अर्द्ध माध्यम वेतन
„ a year	आधा वर्ष
Half-blood	सौतेला
„ blooded	१—सौतेला २—संकर
„ bred	संकर जाति
„ brother	सौतेला भाई
„ caste	संकर जाति
„ pay leave	अर्द्ध वेतन अवकाश
„ rate scholar	अर्द्ध शुल्क छात्र

अधिनियम खंड

(पूर्वानुबद्ध)

तो प्रार्थी पर जिस दिन इनकार की या अस्वीकृत की सूचना, जैसी परिस्थिति हो तामील होती है उस तिथि से तीन महीने के भीतर उच्च न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है और उच्च न्यायालय यदि अपील के न्यायाधिकरण के निर्णय को ठीक नहीं समझता है तो वह अपील के न्यायाधिकरण से माँग कर सकता है कि वह इसे उच्च न्यायालय में भेज दे और इस प्रकार की माँग पर अपील का न्यायाधिकरण मामले को भेज देगा

किंतु प्रतिबंध है कि यदि किसी स्थिति में जब कि कर-दाता अपील के न्यायाधिकरण से माँग करता है कि वह मामले को उच्च न्यायालय में भेज दे और अपील का न्यायाधिकरण इस आधार पर इसे अस्वीकार कर देता है कि विधि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता तो करदाता पर जिस दिन इसे भेजने से इनकार करने वाली सूचना की तामीली होती है उस तिथि से ३० दिन के भीतर कर-दाता मामले को हटा सकता है और इस प्रकार हटाने पर उपधारा (१) के अंतर्गत दिया हुआ शुल्क उसे वापस कर दिया जायगा।

(४) उच्च न्यायालय में भेजने के समय उसमें तथ्यों की चर्चा रहेगी, अपील के न्यायाधिकरण का निष्कर्ष रहेगा और विधि का वह प्रश्न रहेगा जो कि उस अवस्था में उत्पन्न हुआ है।

(५) यदि उच्च न्यायालय जितनी बातें दी गई हैं उससे संतुष्ट नहीं है कि वे उक्त प्रश्न पर निर्णय देने के लिये पर्याप्त हैं तो वह अपील के न्यायाधिकरण को निर्देश कर सकता है कि तदनुसार वह इसमें संशोधन करे।

(६) ऐसे मामले की सुनवाई के पश्चात् उच्च न्यायालय उसमें उठाए गए विधि के प्रश्न का निर्णय करेगा और ऐसा करने में यदि वह आवश्यक समझे तो विधि के प्रश्न के स्वरूप को बदल सकता है और तब निर्णय दे सकता है जिसमें वे सभी आधार रहेंगे जिस पर कि निर्णय आधारित है तथा वह निर्णय की एक प्रति, जो निर्णय न्यायालय की मुहर और रजिस्ट्रार हस्ताक्षर के साथ रहेगा, अपील के न्यायाधिकरण को भेज देगा और अपील का न्यायालय उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो कि ऐसे निर्णय के अनुकूल मामले के निर्वर्तन के लिये आवश्यक हो।

(७) जहाँ किसी कर निर्धारण की धनराशि उच्च-न्यायालय में अभिदेश के फल स्वरूप कम कर दी गई है और यदि कोई धनराशि संपत्ति कर के रूप में अधिक दे दी गई है तो वह उस व्याज के साथ वापस कर दी जायगी जिसे कि आयुक्त स्वीकार करें और आयुक्त ऐसे अभिदेश के परिणाम की प्राप्ति के ३० दिन के भीतर उच्च न्यायालय को जब इस बात की सूचना दे दें कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये अनुमति प्राप्त करने का विचार है तो उच्च-न्यायालय जब तक आदेश नहीं देता है जिससे कि आयुक्त को यह अधिकार प्राप्त हो कि रुपया वापस दिया जाना तब तक के लिये रोक रखा जाय जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय से अपील का निर्णय न हो जाय।

(८) उच्च न्यायालय में किसी अभिदेश का परिव्यय न्यायालय के स्वविवेक पर रहेगा।

(९) भारतीय अवधि अधिनियम १९०८ की धारा ५ इस धारा के अंतर्गत उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र देने में लागू होगी।

२८—उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई

जब कोई मामला धारा २७ के अंतर्गत उच्च न्यायालय को भेजा जाय तो इसकी सुनवाई उस न्यायालय द्वारा होगी जिसमें दो से कम न्यायाधीश नहीं रहेंगे और इसका निर्णय ऐसे न्यायाधीशों की संमति के अनुसार या उसकी बहुमत, यदि कोई हो, के अनुसार होगी।

किंतु प्रतिबंध है कि जब इस प्रकार बहुमत न हो तो न्यायाधीश विधि (ला) के उस प्रश्न का जिस पर वे असहमत हैं उल्लेख कर देंगे और तब केवल उसी विषय पर मामले की सुनवाई उच्चन्यायालय के एक या एक से अधिक न्यायाधीशों द्वारा होगी और इस विषय का निर्णय जिन न्यायाधीशों ने सुनवाई की है उनकी बहुमत के

अनुसा[illegible] और इस बहुमत में उन न्यायाधीश की भी संमति [illegible]मलित है जिन्होंने पहले इसकी सुनवाई की थी।

२६—सर्वोच्च न्यायालय में अपील

(१) धारा २७ के अंतर्गत जो मामला उच्चन्यायालय को भेजा गया हो उस पर के निर्णय के विरुद्ध उन सभी अवस्थाओं में जब कि उच्चन्यायालय प्रमाणित कर दे कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिये यह मामला उपयुक्त है तो सर्वोच्च न्यायालय में अपील होगी।

(२) जब उच्चन्यायालय का निर्णय इस धारा के अंतर्गत अपील में परिवर्तित या बदल दिया गया हो तो सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय धारा २७ उपधारा (६) में दिए गए प्रकार से कार्यान्वित होगा।

(३) उच्चन्यायालय में जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी परिव्यय (कास्ट्स) के दिए जाने के आदेश के निष्पादन के संबंध में प्रार्थनापत्र दिया जाय तो यह निष्पादन के लिये आदेश को उच्चन्यायालय के नीचे के किसी भी न्यायालय में भेज सकता है।

अध्याय ७

संपत्ति कर का भुगतान एवं प्रत्यादान (रिकवरी)

३०—माँग की नोटिस—

जब इस अधिनियम के अंतर्गत पारित आदेश के परिणाम स्वरूप कोई कर या अर्थ दंड किसी के यहाँ बाकी रह गया है तो संपत्ति कर अधिकारी करदाता पर या अन्य व्यक्ति पर जो कि ऐसे कर या अर्थ दंड का देनदार हो निर्धारित प्रपत्र पर माँग की एक नोटिस तामील करेंगे और उसमें उस धनराशि का उल्लेख रहेगा जो देय है तथा समय भी दिया रहेगा जिसके बीच यह देय होगी।

३१—कर एवं अर्थदंड का प्रत्यादान (रिकवरी)

(१) धारा ३० के अंतर्गत जारी की हुई माँग की नोटिस में जो धनराशि दी गई रहेगी वह समय के भीतर उस स्थान पर और उस व्यक्ति को दे दी जायगी जिसके बारे में नोटिस में दिया रहेगा, या नोटिस में यदि इस प्रकार समय नहीं दिया हो तो इसका भुगतान नोटिस तामीली के दूसरे महीने के पहले दिन को या उसके पहले हो जायगा और जो करदाता इस प्रकार भुगतान न कर सका हो तो वह बाकीदार समझा जायगा।

(२) जब किसी करदाता पर कर निर्धारण उस परिसंपत् के बारे में किया गया है जो कि भारत के बाहर के देश में स्थित है और जिस देश के नियमानुसार वहाँ से भारत में रुपया भेजे जाने का निषेध है या रुकावट है तो उस देश में स्थित परिसंपत् पर लगाए गए कर के बारे में संपत्तिकर अधिकारी करदाता को बाकीदार जैसा नहीं मानेंगे और उसे कर के उस भाग के संबंध में बाकीदार न मानना तब तक जारी रखेंगे जब तक कि रुपया भेजने का निषेध या रुकावट दूर न हो जाय।

(३) इस धारा के अंतर्गत किसी बात के रहते हुए भी जब करदाता ने धारा २३ के अंतर्गत अपील निवेशित किया हो तो संपत्ति कर अधिकारी यदि चाहें तो करदाता को बाकीदार तब तक के लिये न समझें जब तक कि अपील का निर्वर्तन नहीं हो जाता।

३२—प्रत्यादान (रिकवरी) के ढंग—

आयकर अधिनियम की धारा ४६ और ४७ की उपधाराएँ (१), (१ ए०), (२), (३), (४), (५) (५ ए०) (६) और (७) के उपबंध लागू होंगे मानों उक्त उपबंध इसी अधिनियम के उपबंध हैं और उनका अभिदेश आयकर या आयकर अधिनियम के अंतर्गत लगाए गए अर्थदंड की धन राशि के बजाय संपत्ति कर या इस अधिनियम के अंतर्गत की धनराशि जो दंडस्वरूप लगाई गई है होगा तथा आयकर अधिकारी और आयकर के आयुक्त के बजाय संपत्ति कर अधिकारी और संपत्ति कर के आयुक्त का होगा।

३३—कुछ परिस्थितियों में हस्तांतरिती (ट्रांसफरी) का दायित्व।

(१) जहाँ धारा ४ में दिए गए उपबंधों के कारण उस अधिनियम के अंतर्गत दिए गए व्यक्तियों में से किसी को हस्तांतरण किए गए किसी परिसंपत् के मूल्य के बारे

में आवश्यकता पड़ती है कि किसी व्यक्ति की शुद्ध संपत्ति में यह संमिलित किया जाय तो वह व्यक्ति जिसके नाम से यह परिसंपत् है किसी भी विधि को प्रतिकूल रहते हुए भी इस संबंध में संपत्ति कर अधिकारी द्वारा माँग की नोटिस तामील होने पर करदाता पर निर्धारित कर के उस भाग का देनदार होगा जो उसके नाम की उपर्युक्त परिसंपत पर लगाया गया है।

किंतु प्रतिबंध है कि जहाँ पर ऐसी परिसंपत् एक से अधिक व्यक्तियों के संयुक्त धारण में है तो वे लोग सामूहिक रूप से और अलग अलग इस प्रकार संयुक्त परिसंपत् के मूल्य पर लगाए गए कर के देनदार होंगे।

(२) जहाँ ऐसा कोई व्यक्ति जिसका अभिदेश उपधारा (१) में हुआ है उससे माँगे गए किसी कर को नहीं दे देता है तो समझा जायगा कि वह करदाता ऐसी धनराशि के संबंध में बाकीदार है और प्रत्यादान (रिकवरी) से संबंध रखनेवाले इस अधिनियम के समस्त उपबंध तद्नुसार लागू होंगे।

३४—कुछ परिस्थितियों में अचल संपत्ति के हस्तांतरण की रजिस्ट्री के बारे में रुकावट—

भारतीय रजिस्ट्री अधिनियम १६०८ की धारा १७ की उपधारा (१) उपवाक्य ए०, बी०, सी० या ई० के उपबंधों के अनुसार जहाँ किसी विलेख (डाकूमेंट) की रजिस्ट्री आवश्यक हो और उस विलेख का अभिप्राय कृषि भूमि को छोड़कर किसी अन्य संपत्ति में किसी व्यक्ति के अधिकार स्वत्व या हित का हस्तांतरण, अर्पण, उसके सीमित करने या उसके उपशमन करने का हो और जिस संपत्ति का मूल्य निर्धारण १ लाख रुपए से अधिक का हो तो उक्त अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त रजिस्ट्री का कोई अधिकारी उसकी रजिस्ट्री तब तक नहीं करेगा जब तक प्रमाणित न हो कि:—

(अ) ऐसे व्यक्ति ने इस अधिनियम के अंतर्गत समस्त वर्तमान दायित्वों का या तो भुगतान कर दिया है या पहले से भुगतान का प्रबंध कर रखा है, अथवा—

(ब) विलेख (डाकूमेंट) की रजिस्ट्री से इस अधिनियम के अंतर्गत समस्त दायित्वों के प्रत्यादान (रिकवरी) में कोई रुकावट नहीं पड़ेगी।

अध्याय ८

विविध

३५—अशुद्धियों की शुद्धि—

आदेश पारित करने की तिथि से चार वर्ष के भीतर किसी भी समय आयुक्त, संपति कर अधिकारी अपील के सहायक आयुक्त और अपील का न्यायाधिकरण स्वतः उस अशुद्धि की शुद्धि कर सकते हैं जो अभिलेख पर स्पष्ट हो और उसी अवधि के भीतर आयुक्त संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त, अपील का न्यायाधिकरण जैसी स्थिति हो करदाता द्वारा अवगत होने पर कोई ऐसी अशुद्धि को शुद्ध कर देंगे;

किंतु प्रतिबंध है कि करनिर्धारण वृद्धि करनेवाली कोई शुद्धि तब तक नहीं की जायगी जब तक कि करदाता को इस मामले में अपनी बात कहने का अवसर न दे दिया गया हो।

३६—अभियोजन (प्रासक्यूशन)

(१) यदि कोई व्यक्ति युक्तियुक्त कारण के बिना (अ) धारा १४ में के विवरण को समय के भीतर नहीं देता है;

(ब) धा० १६ की उपधारा (२) या उपधारा (४) के अंतर्गत नोटिस में दी गई तिथि को या उसके पहले नोटिस में लिखे गए लेखा, (एकाउंट्स) अभिलेख, (रिकार्डस) विलेख, (डाकूमेंट्स) को उपस्थित नहीं करता या करवा देता;

(स) धा० ३८ के अंतर्गत वह संपति कर अधिकारी को निर्दिष्ट अवधि के भीतर विवरण या सूचना जिसे देने के लिये वह बाध्य है; नहीं देता तो;

मजिस्ट्रेट के समक्ष दोष सिद्ध होने पर वह अर्थ दंड से दंडित होगा जो कि दस रुपए प्रतिदिन तक का हो सकता है और यह उस अवधि तक चलता रहेगा जब तक उसकी चूक (डिफाल्ट) चलती रहती है।

(२) यदि कोई व्यक्ति धा० १४ या धारा २३ या धा० २४ या धा० २६ में सत्यापन (वेरीफिकेशन) में ऐसा बयान देता है जिसे वह या तो जानता है कि झूठा है

या उसका विश्वास है कि झूठा है या उसके सत्य होने में उसका विश्वास नहीं है तो वह साधारण कारावास के दंड से दंडित होगा जो कि १ वर्ष तक का हो सकता है अथवा उसे अर्थ दंड दिया जा सकता है जो एक हजार रुपए तक हो सकता है या दोनों प्रकार के दंड से दंडित हो सकता है।

(३) किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध के लिये इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही सिवा आयुक्त के कहने पर किसी अन्य प्रकार से नहीं की जायगी।

(४) आयुक्त कार्यवाही निवेशित होने के या तो पहले या बाद में ऐसे किसी अपराध में सुलह कर सकते हैं।

व्याख्या—इस धारा के प्रयोजन के लिये "मजिस्ट्रेट" का तात्पर्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट, या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट से है जो केंद्रीय सरकार द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों की अन्वीक्षा करने के लिये विशेष प्रकार से अधिकृत हों।

३७—शपथ पर साक्ष्य लेने का अधिकार इत्यादि।

आयुक्त, संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त तथा अपील का न्यायाधिकरण इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये वही अधिकार रखेंगे जो कि निम्नलिखित मामलों की अन्वीक्षा करते समय व्यवहार प्रक्रिया संहिता, १९०८ के अंतर्गत न्यायालय को दिया है;

(अ) किसी व्यक्ति को उपस्थित होने के लिये बाध्य करना और शपथ पर उसका परीक्षण करना;

(ब) विलेखों के अन्वेषण (डिस्कवरी) और उनके प्रस्तुत करने की माँग;

(स) शपथपत्र पर साक्ष्य लेना

(द) साक्षियों के परीक्षण के लिये आयोग (कमीशन) का जारी किया जाना

और आयुक्त, संपति कर अधिकारी, अपील के सहायक आयुक्त अथवा अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष किसी भी कार्यवाही को समझा जायगा कि भारतीय दंड संहिता की धा० १९३ और २२८ के अभिप्राय के अंतर्गत न्यायिक कार्यवाही है।

३८—सूचना विवरण और अभिकथन (स्टेटमेंट)

जहाँ किसी व्यक्ति द्वारा देय संपतिकर को निश्चित करते समय संपति कर अधिकारी आवश्यक समझते हैं कि किसी व्यक्ति, कंपनी, सार्थ (फर्म), हिंदू अविभाजित परिवार या किसी अन्य व्यक्ति से कोई सूचना प्राप्त की जाय या बयान लिया जाय तो संपति कर अधिकारी एक नोटिस तामील कर सकते हैं जिसके द्वारा वे ऐसे व्यक्ति, कंपनी, सार्थ (फर्म), हिंदू अविभाजित परिवार या अन्य व्यक्ति से माँग कर सकते हैं कि वह नोटिस में दिए गए विषय पर ऐसा बयान या इस प्रकार की सूचना नोटिस में दी हुई तिथि को या उसके पहले निवेशित करे और वह व्यक्ति तथा संबंधित प्रमुख अधिकारी या हिंदू अविभाजित परिवार का कर्ता जैसी स्थिति हो, किसी भी विधि (ला) के प्रतिकूल रहते हुए भी संपति कर अधिकारी को ऐसा बयान या इस प्रकार की सूचना देने के लिये बाध्य होगा।

किंतु प्रतिबंध है कि कोई भी विधि व्यवसायी इस धारा के अंतर्गत कोई बयान या सूचना देने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता जो कि उसके व्यवसाय के संबंध में प्राप्त की गई सूचना पर आधारित है और जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम १८७२ की धारा १२६ के अंतर्गत अनुमित नहीं है।

३९—कार्यवाही की विचाराधीनावस्था में ही प्राधिकारियों के स्थानांतरण का प्रभाव।

जब कभी इस धारा के अंतर्गत किसी कार्यवाही के संबंध में किसी संपत्तिकर अधिकारी का अधिक्षेत्र प्रयोग समाप्त हो जाता है और इसके स्थान पर दूसरा प्राधिकारी आ जाता है जिसे अधिक्षेत्र है और वह इसका प्रयोग करता है तो इस प्रकार उत्तरवर्ती प्राधिकारी कार्यवाही को उस अवस्था से आरंभ कर सकता है जहाँ पर उसके पूर्ववर्ती प्राधिकारी ने उसे छोड़ा था।

४०—अवधि (लिमिटेशन) के समय की गणना—

इस अधिनियम के अंतर्गत अपील अथवा धारा २७ के अंतर्गत प्रार्थनापत्र के लिये निर्धारित अवधि के समय की गणना करते समय वह दिन जिस दिन कि वह प्रश्नगत आदेश पारित हुआ था ऐसे आदेश की प्रतिलिपि प्राप्त करने में आवश्यक समय को छोड़ दिया जायगा।

४१—नोटिस की तामीली

(१) इस अधिनियम के अंतर्गत नोटिस या अवाप्ति (रिक्विजिशन) उसमें दिए गए नामवाले व्यक्ति पर या तो डाक से तामील होगी या मानो यह समन है जो कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता; १९०८ के अंतर्गत किसी न्यायालय द्वारा जारी किया गया है।

(२) इस प्रकार की नोटिस या अवाप्ति यदि सार्थ (फर्म) या हिंदू अविभाजित परिवार पर तामील करना हो तो यह सार्थ के किसी भी सदस्य के नाम से होगी अथवा परिवार के किसी वयस्क सदस्य के नाम से या कर्ता के नाम से रहेगी या व्यक्तियों के किसी अन्य समुदाय की स्थिति में उसके प्रमुख अधिकारी के नाम से रहेगी।

४२—सूचना को प्रकट करने का निषेध

(१) उपधारा २ के उपबंधों के अधीन आयकर अधिनियम की धारा ५४ के उपबंध समस्त लेखाओं या बयान, विलेख साक्ष्य अथवा शपथपत्र में जो कि इस अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में या उसके प्रसंग में दिए गए हैं, प्रस्तुत किए गए हैं या प्राप्त किए गए हैं लागू होंगे जैसा कि उस अधिनियम के अंतर्गत समान विवरण में या उसके संबंध में लागू होते हैं, जो कि इस संशोधन के अधीन होगा कि उपधारा (२) के उपवाक्य (डी०) का "कोई आयकर प्राधिकारी" या उस अधिनियम की उपधारा ५ का "आयुक्त" का अभिप्राय निकाला जायगा कि यह क्रम से "कोई संपत्ति कर प्राधिकारी" और "संपत्ति कर का आयुक्त" है।

(२) आयकर अधिनियम की धारा ५४ में दी गई कोई बात किसी उस विवरण के प्रकट करने में लागू नहीं जिसका अभिदेश उपधारा (१) में किसी उस व्यक्ति से हैं जो कि इस अधिनियम के निष्पादन में कार्य करता है या आयकर अधिनियम या संपदा शुल्क अधिनियम १९५३ में काम करता है और जहाँ पर यह आवश्यक और वांछनीय है कि इस अधिनियम या उपर्युक्त अन्य अधिनियमों के प्रयोजन के लिये इसे उस व्यक्ति के समक्ष प्रकट कर दिया जाय।

४३—अधिक्षेत्र की रुकावट

किसी व्यवहार (सिविल) न्यायालय में इस अधिनियम के अंतर्गत कर निर्धारण को निराकृत करने या उसके संशोधन के लिये कोई वाद निवेशित नहीं किया जा सकता तथा सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध इस अधिनियम के अंतर्गत सद्विचार से किए गए या सद्विचार के अभिप्राय से किए जानेवाले किसी काम के लिये कोई अभियोजन, वाद या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं चलाई जायगी।

४४—संपतिकर के प्राधिकारियों के समक्ष अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थिति।

कोई कर दाता जिसे किसी संपति कर के प्राधिकारी या अपील के न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार है या उसकी उपस्थिति की माँग इस अधिनियम के अंतर्गत किसी कार्यवाही या जाँच के संबंध में की गई है तो सिवा उस स्थिति के जब कि माँग की गई है कि इस अधिनियम के अंतर्गत वह स्वयं उपस्थित हो, वह इस संबंध में लिखित रूप से अधिकृत व्यक्ति द्वारा उपस्थित हो सकता है जो कि उसका संबंधी हो, या नियमित रूप से करदाता द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति हो अथवा विधि व्यवसायी हो या शास प्राप्त लेखापाल हो या कोई अन्य व्यक्ति जो निर्धारित की जानेवाली योग्यता रखता हो।

व्याख्या—

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये—

(अ) "करदाता द्वारा नियमित रूप से नियुक्त कोई व्यक्ति" की अभिव्यक्ति में अनुसूचित (शेड्यूल्ड) बैंक का कोई अधिकारी संमिलित है जिसके साथ करदाता

चालू खाता रखता है या अन्य नियमित लेन देन करता रहता है;

(ब) "शास प्राप्त लेखा पाल" का तात्पर्य उस शास प्राप्त लेखा पाल से है जिसकी परिभाषा शास प्राप्त लेखापाल अधिनियम १९४९ में दी गई है।

४५—कुछ मामलों में अधिनियम का लागू न होना।

इस अधिनियम के उपबंध—

(अ) किसी बैंकिंग कंपनी में लागू नहीं होंगे जिसकी परिभाषा बैंकिंग कंपनी अधिनियम १९४९ की धारा ५ में दी गई है;

(ब) आगोप अधिनियम (इश्योरेंस ऐक्ट) १९३८ के अभिप्राय के अंतर्गत किसी आगोपक (इश्योरर) की स्थिति में लागू नहीं होंगे।

(स) कोई कंपनी जो इस उद्देश्य से स्थापित की गई है कि वह भारतीय वैयक्तिक उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करे और यह सहायता चाहे ऋण देकर चाहे अग्रिम देकर या इन उद्योगों की पूँजी में योग देकर हो तथा किसी भी स्थिति में जहाँ केंद्रीय सरकार ने इस प्रयोजन के लिये अग्रिम (ऐडवांस) विशेष या तो दिया है या देने को राजी हुई है या कंपनी द्वारा भारत के बाहर से किसी भी संस्था से लिए हुए ऋण के भुगतान की प्रत्याभूति (गरांटी) दिया है या देने को राजी हुई है;

किंतु प्रतिबंध है कि उपवाक्य डी० द्वारा दी गई छूट उसमें अभिदिष्ट कंपनियों में केवल ५ लगातार कर निर्धारण वर्षों के लिये लागू होगा जिसका प्रारंभण जिस तिथि को कंपनी की स्थापना हुई है उस तिथि के बाद होनेवाले कर निर्धारण वर्ष से होगा; और वह अवधि उस अवस्था में जब कि कंपनी की स्थापना इस अधिनियम के प्रारंभण से पहले हो चुकी हो इस अधिनियम के अनुसार स्थापना की तिथि से गिनी जायगी मानो इसकी स्थापना की तिथि को या उस तिथि से यह अधिनियम लागू था।

व्याख्या:—

उपवाक्य द, (डी०) के प्रयोजनों के लिये 'औद्योगिक उपक्रम' (इंडस्ट्रियल अंडरटेकिंग) का तात्पर्य उस उपक्रम से है जो निर्माण, उत्पति, माल या वस्तुओं के विधायन (प्रासेसिंग) से संबंधित हो अथवा खान खोदने या बिजली की उत्पति या वितरण या शक्ति के किसी अन्य प्रकार से संबंध रखता हो;

य—कोई कंपनी जो एकमात्र जहाजों द्वारा यात्रियों या माल को बाहर भेजने का व्यापार करती हो।

र—कोई वह कंपनी जिसकी रजिस्ट्री कंपनी अधिनियम, १९५६ की धारा २५ के अंतर्गत हुई हो।

४६—नियम बनाने का अधिकार—

(१) बोर्ड राजकीय गजट में विज्ञप्ति द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों को काम में लाने के लिये नियम बना सकता है।

(२) विशिष्टतः और पिछले अधिकारों की सामान्यता को हानि न पहुँचाते हुए इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियम निम्नलिखित प्रकार की बातों के संबंध में विधान कर सकते हैं :—

(अ) वह ढंग जिससे किसी परिसंपत् का बाजार-मूल्य निर्धारित किया जाय;

(ब) वह प्रपत्र जिस पर इस अधिनियम के अंतर्गत विवरण बनाया जायगा और वह ढंग जिस पर ऐसा विवरण सत्यापित होगा;

(स) वह प्रपत्र जिसपर इस अधिनियम के अंतर्गत अपील या प्रार्थनापत्र दिए जा सकते हैं और वह ढंग जिस ढंग पर कि ये सब सत्यापित होंगे;

(द) इस अधिनियम के अंतर्गत माँग की नोटिस का प्रपत्र;

(य) वह क्षेत्र जिसके लिये मूल्य निर्धारकों की सूची बनाई जा सकती है;

(२) कोई अन्य मामला जो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये निर्धारित किया जा चुका है या निर्धारित किया जा सकता है;

(३) इस धारा द्वारा नियम बनाने के दिए हुए अधिकार में उसके पहले अवसर के प्रयोग में नियमों को या उनमें से किसी नियम को अतीत प्रभावी बनाने का अधिकार भी संमिलित है और यह प्रभाव उस तिथि से होगा जो कि इस अधिनियम के प्रारंभण के पहले की न हो।

(४) इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए समस्त नियम बन जाने के बाद तुरत संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जायँगे और वे उन संशोधनों के अधीन होंगे जिसे संसद उस सत्र में जिसमें कि वे नियम रखे गए हैं, करे या उस सत्र में करे जो ठीक उसके बाद हो।

अनुसूची (शेड्यूल)

संपत्ति कर की दर

भाग १

(अ) प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति में —कर की दर

(१) पहले २ लाख रुपये की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—½%

(३) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—१%

(४) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—१½%

(ब) प्रत्येक हिंदू अविभाजित परिवार की स्थिति में:—

(१) पहले चार लाख रुपये की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) दूसरे ६ लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—½%

(३) दूसरे १० लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—१%

(४) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—१½%

भाग २

प्रत्येक कंपनी की स्थिति में कर की दर—

(१) पहले ५ लाख रुपए की शुद्ध संपत्ति पर—कुछ नहीं।

(२) शुद्ध संपत्ति के शेष पर—½%

किंतु प्रतिबंध है कि जब एतत् पश्चात् विहित ढंग पर गणना करने से किसी कंपनी को वास्तविक हानि हुई है और उस वर्ष के संबंध में उसने अपनी पूँजी साम्य पर कोई लाभांश घोषित नहीं किया है तो संबद्ध वर्ष के लिये कर की दर कुछ नहीं होगी।

उपर्युक्त परंतुक में जिस हानि की चर्चा हुई है उसकी गणना आयकर अधिनियम की धा० ८, ९, १० और १२ के उपबंधों के अनुसार होगी किंतु इसमें से वह छूट निकाली नहीं जायगी जिसका अभिदेश धा० १० (२) के उपवाक्य (६) के परंतुक के परिच्छेद (ब), उस अधिनियम की धारा १० (२) के उपवाक्य से उपवाक्य तक है अथवा वह छूट भी नहीं निकाली जायगी जो पहले वर्षों की हानि से आई है।

बिहार राज्य के प्रार्थनापत्रों में कुछ प्रार्थी व्याधा हैं जो मांस बेचने का व्यापार करते हैं कुछ मरे हुए जानवरों की खाल को सिझाकर उसको बेचते हैं, कुछ प्रार्थी जानवरों की चर्बी और उनकी अँतड़ियों से सरेस आदि बनाकर व्यापार करते हैं और कुछ जानवरों के खून का निर्जलयीकरण करके उस पदार्थ का व्यापार करते हैं और उसी पर जीवनयापन करते हैं। इसमें प्रार्थी सं० १ और २ व्याधा हैं और उनके कहने के अनुसार वे "कसाई" कहे जाते हैं। "कसाई" और "चिक" में अंतर यह होता है कि "कसाई" पशुओं का बध करके उनके मांस आदि का व्यापार करते हैं और "चिक" केवल भेंड़ों और बकरियों, बकरों का बध करके उसका व्यापार करते हैं। बिहार के इन तीन प्रार्थनापत्रों के सभी प्रार्थी भारत के नागरिक हैं।

बिहार में इस संबंध में जो विधेयक पारित हुआ वह बिहार गजट में २० अप्रैल १९५३ को प्रकाशित हुआ। आरंभिक विधेयक में गोबध के संबंध में जो उपबंध था उसमें केवल गायों और गायों के तीन वर्ष से कम आयु-वाले बछड़ों के बध का ही निषेध था किंतु जब यह प्रवर समिति के समक्ष पहुँचा तो इसकी व्याप्ति और बढ़ा दी गई। इस अधिनियम की धारा १ तुरत लागू हुई और शेष अधिनियम धारा १ (३) के अंतर्गत विज्ञप्ति होने पर लागू होने को था। इसके पहले ही प्रार्थी ने इस न्यायालय में प्रार्थनापत्र निवेशित कर दिया और उसमें उसकी एक प्रार्थना यह भी थी कि बीच में ही एक आदेश पारित करके बिहार सरकार को रोक दिया जाय कि धा० १ (३) के अंतर्गत की विज्ञप्ति निर्णय होने तक रोके रहे। विद्वान् सालिसिटर जनरल ने बिहार सरकार की ओर से इसे माना कि सरकार निर्णय होने के पहले विज्ञप्ति नहीं करेगी।

उ० प्र० राज्य के विरुद्ध प्रार्थीगण मुसलमान हैं जो या तो व्याधा हैं या चमड़े का व्यापार करते हैं। ये लोग भारत के नागरिक हैं। इन्होंने इस प्रार्थनापत्र में उ० प्र० अधिनियम १, १९५६ की वैधता पर आपत्ति की है और उनकी प्रार्थना है कि परमादेश लेख जारी करके उ० प्र० सरकार को रोक दिया जाय कि उक्त अधिनियमों के उपबंधों द्वारा वह प्रार्थीगण के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप न करें।

शेष प्रार्थनापत्रों में भी सभी प्रार्थी मुसलमान हैं और वे या तो व्याधा हैं, या चमड़े का व्यापार करते हैं या सरेस आदि बनाकर या खून का निर्जलयीकरण करके इन पदार्थों का व्यापार करते हैं। कुछ प्रार्थी जो पहले मध्यप्रदेश में रहते थे वह भाग राज्य पुनः संघटन के बाद बंबई राज्य में चला गया इसलिए बंबई राज्य को भी उत्तरवादी बनाना पड़ा। इसमें उन्होंने मध्यप्रांत और बरार अधिनियम ५२।१९४९ (तत्पश्चात् संशोधित) की वैधता पर आपत्ति किया है।

संवैधानिकता के प्रश्न पर जो तर्क यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं उनको समझने के लिये संविधान के अनुच्छेद ४८ को समझ लेना आवश्यक है। अनु० ४८ सरकार की नीति के निर्देशक सिद्धांत से संबंध रखता है। अनु० ३७ के अनुसार निर्देशक सिद्धांत किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं किए जा सकते फिर भी देश के शासन के बारे में ये मूलभूत आधार होते हैं।

"कृषि एवं पशु पालन का संघटन–(४८)–सरकार कृषि और पशुपालन का संगठन आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग पर करने का प्रयत्न करेगी और विशिष्ट रूप से नसल के संरक्षण तथा उसकी उन्नति के उपाय करेगी और गायों और बछड़ों तथा अन्य दूध देनेवाले या बोझ ढोनेवाले पशुओं के बध का निषेध करेगी।"

प्रार्थियों के विद्वान् वकील का कहना है कि—

कृषि और पशुपालन का संगठन आधुनिक और वैज्ञानिक ढंग पर करना ही प्रमुख उद्देश्य है और इसलिए इसमें के बादवाले अंश (जैसे बध निषेध आदि) उसके सहायक मात्र हैं, स्वतंत्र नहीं।

इसके समर्थन में प्रार्थियों का कहना है कि—

अ—अनुच्छेद ४८ के किनारे की टिप्पणी में "कृषि और पशुपालन का संगठन" ही लिखा है।

ब—संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची २ में की १५ वीं प्रवृष्टि में केवल यही लिखा है—"पशु वंश का परिरक्षण, संरक्षण एवं उन्नति तथा पशु बीमारियों की रोकथाम; पशु चिकित्सा की शिक्षा एवं तत्संबंधी व्यवसाय"।

स—अन्यत्र कहीं पशुवध के लिये विधान संबंधी शीर्षक है ही नहीं।

उत्तरवादियों की ओर से कहना है कि अनुच्छेद ४८ के तीनों बातें अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं, कोई किसी के अधीन नहीं है।

ये उपबंध पहले के अधीन हैं या सब स्वतंत्र हैं इस विवादास्पद बात पर निर्णय देने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसमें दिए हुए जानवरों के वध का निषेध तो स्पष्ट है ही। जो जानवर दिए गए हैं वे हैं—गाय, बछड़े तथा अन्य दूध देनेवाले और बोझा ढोनेवाले जानवर। इसका तात्पर्य यह है कि यह संरक्षण उन जानवरों को नहीं मिल सकता जो कि किसी समय बोझा ढोते थे या दूध देते थे किंतु अब न तो वे बोझा ढोते हैं और न तो दूध देते हैं।

तात्पर्य यह कि "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति के लिये" ही तीनों अधिनियम बने हैं अंतः इसी प्रसंग एवं इसी पृष्ठभूमि पर तीनों अधिनियम की वैधता पर विचार करना है।

उत्तरप्रदेश के अधिनियम द्वारा गाय, बैल, साँड़ और गाय के बछड़ों के वध का निषेध है। मध्य प्रदेश के अधिनियम में गाय, बैल, साँड़ के वध का पूर्ण निषेध है किंतु कुछ प्रतिबंधों का पालन करते हुए भैंस, भैंसा और पड़वा का वध किया जा सकता है। बिहार के अधिनियम में गो जाति (बोवाईन) के समस्त जानवरों के वध का निषेध है जिसमें भैंस, भैंसा, पड़वा भी आ जाते हैं।

इसकी सुनवाई के बीच में गोरक्षण संबंधित प्रांतीय एवं अखिल भारतीय स्तर की कुछ संस्थाओं ने इस कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति माँगा। सर्वोच्च न्यायालय नियम के आ० ४१ नि० २ में है कि भारत महान्यायवादी (अटार्नी जनरल आफ इंडिया) और राज्यों के महाधिवक्ताओं (ऐडवोकेट जनरल्स) को ही बीच में आकर कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है। तृतीय पक्ष को कार्यवाही में संमिलित करने के लिये कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है फिर भी सर्वोच्च न्यायालय अपने अंतर्भूत अधिकारों के प्रयोग द्वारा तृतीय पक्ष को संमिलित होने के लिये अनुमति केवल उसी अवस्था में देता है जब कि वह तृतीय पक्ष सर्वोच्च न्यायालय में या उच्च न्यायालय में विचाराधीन किसी मामले में पक्ष हो और उसमें विचाराधीन प्रश्न समान हो तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय उसके मामले को भी समाप्त कर देगा, ऐसी स्थिति हो। यहाँ अनुमति के लिये प्रार्थना करनेवाले कहीं पर इस प्रकार पक्ष नहीं हैं इसलिए उन्हें भाग लेने की अनुमति देना ठीक नहीं है। विषय महत्वपूर्ण है इसलिए पंडित ठाकुर दास भार्गव को न्याय परामर्शक (अमिकस क्यूरी) के रूप में उपस्थित होने की अनुमति दी जाती है।

पंडित ठाकुरदास भार्गव ने एक आरंभिक आपत्ति उठाई कि संविधान के अनुच्छेद ४८ में दिया हुआ निदेशक (डाइरेक्टिव) सिद्धांत यद्यपि न्यायालयों द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता फिर भी देश के शासन के ये मूल भूत आधार हैं और इनका बंधन राज्य (स्टेट) पर है और इसलिए संविधान के अध्याय ३ में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) प्रदान किया गया है वह निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के अधीन है क्योंकि निदेशक सिद्धांत राज्य के लिये मूलभूत बंधन होते हैं। उनका कहना है कि ये अधिनियम जो निदेशक सिद्धांत के अंतर्गत "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति" के लिये बनाए गए हैं वे मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट्स) के ऊपर हैं। इस प्रतर्क को मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं क्योंकि अनुच्छेद १३ (२) में स्पष्ट कह दिया गया है कि राज्य सरकार कोई ऐसा अधिनियमन नहीं करेगी जो कि संविधान के अध्याय ३ द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का हनन करता है या उन्हें सीमित करता है। संविधान की संतुलित

व्याख्या आवश्यक है। सरकार निदेशक सिद्धांत को कार्यान्वित करेगी किंतु यह देखना पड़ेगा कि इससे मौलिक अधिकार पर धक्का न पहुँचे नहीं तो मौलिक अधिकार नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। ए० आई० आर० १९५१ सर्वोच्च न्या० २२६ में कहा गया था, "राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत को मौलिक अधिकारों के अध्याय की पुष्टि एवं उसकी सहायता करना है।"

प्रार्थियों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ (१) के अंतर्गत धार्मिक स्वातंत्र्य के संबंध में आपत्ति उठाई है। यह बात केवल एक स्थल पर साधारण ढंग पर उन्होंने कही है कि बकरीद को गोवध करना हमारा धार्मिक अधिकार है जो कि अनुच्छेद २५ (१) के संरक्षण के अंतर्गत है। प्रार्थियों का यह कथन भी मान्य नहीं हो सकता कारण कि यों तो यहाँ पर कोई मौलवी आए नहीं जो कि कुरान के आधार पर गो बध को अनिवार्य धार्मिक कृत्य का होना प्रमाणित करते किंतु मुसलमान धर्म के धर्मग्रंथों में लिखा है कि एक व्यक्ति बकरे का वध करे या परिवार के ६ और व्यक्ति मिलकर एक गाय का वध करें। गाय का बध वैकल्पिक है अनिवार्य नहीं। यह केवल आर्थिक दृष्टिकोण से रखा गया है।

प्रार्थियों की ओर से कहा गया कि चूँकि बहुत समय समय से धर्म के लिये गो बध होता आया है इसलिए अब यह धर्म का एक अविच्छिन्न अंग हो गया और इसीलिये अनुच्छेद २५ (१) का लाभ दिया जाना चाहिए। यह बात भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि इस बात का प्रमाण है कि मुगल सम्राट् बाबर ने धर्म के लिये गो वध बंद करा दिया था और अपने पुत्र हुमायूँ को इसके अनुसरण की सलाह दी थी। मैसूर के नवाब हैदरअली तथा अहमदशाह ने गो वध को अपराध माना था। इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि आज भी मुसलमानों की पर्याप्त संख्या बकरीद के दिन गो बध नहीं करती। अभिलेख पर कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह जाना जा सके कि अपने धार्मिक विचारों एवं विश्वासों की अभिव्यक्ति के लिये उस दिन बाह्य कृत्यों द्वारा गाय का वध अनिवार्य है। इस आपत्ति में बल नहीं है।

प्रार्थियों की दूसरी आपत्ति है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद १४ के अंतर्गत वे विधि (ला) के समान संरक्षण से बंचित रखे जाते हैं। उनका कहना है कि प्रार्थीगण मुसलमान कसाई हैं और गोमांस का व्यापार करते हैं इसलिए इस अधिनियम से केवल प्रार्थियों को ही हानि पहुँची है क्योंकि दूसरा वर्ग जो चिकों का है और जो बकरों और भेड़ों के माँस का व्यापार करता है इस अधिनियम से तनिक भी प्रभावित नहीं होता। प्रार्थियों का कहना है कि विभेदकरण के लिये हम लोगों को छाँट कर निकाला गया है जो अनुच्छेद १४ के प्रतिकूल पड़ता है।

अनुच्छेद १४ का तात्पर्य, इसका क्षेत्र और इसका प्रभाव अनेक निर्णयों में बतलाया गया है जो चिरंजीलाल चौधरी वि० भारत संघ (ए० आई० आर० १९५१ सर्वोच्च न्या० ४१) से आरंभ होकर राम कृष्ण डालमिया वि० न्यायाधीश टेंडोलकर (ए० आई० आर० १९५८ सर्वो० न्या० ५३८) के साथ समाप्त हुआ है। यह सिद्धांत अब सुसंस्थापित हो चुका है कि जब कि अनुच्छेद १४ वर्ग विधायन का निषेध करता है यह विधायन के लिये युक्तिसंगत वर्गीकरण का निषेध नहीं करता और इस प्रकार अनुमित वर्गीकरण के प्रतिबंध को पूरा करने के लिये दो शर्तों का पालन आवश्यक है:—

(१) वर्गीकरण बुद्धिगम्य विभेद पर आधारित होना चाहिए जो कि एक समुदाय के व्यक्तियों या वस्तुओं में दूसरे समुदाय से अंतर रखता हो।

(२) ऐसा विभेदकरण उस उद्देश्य से युक्ति संगत संबंध रखता हो जिसकी प्राप्ति का प्रयत्न प्रश्नगत् परिनियम द्वारा किया जाता हो।

वर्गीकरण विभिन्न आधारों, जैसे भौगोलिक आदि पर आधारित होना चाहिए। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि वर्गीकरण के आधार और विचाराधीन अधिनियम के उद्देश्य में संबंध होना चाहिए। इस न्यायालय के कतिपय निर्णयों द्वारा यह सिद्धांत निश्चित हो चुका है कि किसी अधिनियमन (एनैक्टमेंट) के पक्ष में अभिधारणा

(प्रेजंप्शन) सर्वदा संवैधानिकता की ही रहती है और जो व्यक्ति इसको चुनौती देता है उसको यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उस अधिनियम द्वारा संविधान के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया गया है। विधान मंडल जनता की आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझता है और विधि (ला) उन्हीं समस्याओं के लिये बनाता है जो अनुभव द्वारा उसे आवश्यक प्रतीत होता है इसलिए विभेदकरण पर्याप्त दृढ़ अधारों पर आधारित रहता है। संवैधानिकता की अभिधारणा (प्रेंजप्शन) के लिये न्यायालय को सामान्य ज्ञान, सामान्य व्यवहार, समय समय के इतिहास पर विचार करना चाहिए और उन तथ्यों की प्रत्येक स्थिति की कल्पना कर लेनी चाहिए जो विधान के समय वर्तमान रही हों। अतएव हमें प्रश्नगत् अधिनियमों की वैधता इन सिद्धांतों के आधार पर करनी है।

इन अधिनियमों का अधिनियम "पशुधन के परिरक्षण संरक्षण और उन्नति" के लिये हुआ है। अधिनियमों का यही उद्देश्य है। गाय बैलों आदि की उपयोगिता निश्चय ही भेड़ों और बकरियों से अधिक है अतः इनकी उपयोगिता के विचार से इन दो प्रकार के जानवरों के दो समुदाय बनाए गए हैं। 'कसाई' और 'चिक' के व्यवसायों का प्रभाव समाज पर अलग अलग पड़ता है। "कसाई" जो गायों आदि को काटते हैं अपने व्यवसाय विशेष के कारण एक वर्ग विशेष में आ जाते हैं। यह वर्गीकरण युक्ति संगत विभेद पर आधारित है और उन्हें एक निश्चित वर्ग में रखता है तथा यह वर्ग उस वर्ग ("चिकों") से अंतर रखता है जो कि केवल भेड़ों और बकरियों को काटता है। यह विभेदकरण प्रश्नगत् अधिनियम के उद्देश्य (पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति) से निकट संबंध भी रखता है। यहाँ यह विभेदकरण उपर्युत शर्तों का पालन करता है। इसलिए सर्वथा ठीक है। यहाँ प्रार्थीगण विधि के समान संरक्षण से बंचित नहीं किए जाते। किसी अधिनियम के संबंध में अभिधारणा इसकी संवैधानिकता के पक्ष में होती है और यहाँ पर प्रार्थीगण ने इसके विरुद्ध यह प्रमाणित नहीं किया कि अधिनियम असंवैधानिक है जिसके प्रमाण का भार उन्हीं पर था। इसलिए अनुच्छेद १४ पर की उनकी आपत्ति अमान्य होती है।

प्रार्थियों के विद्वान वकील ने अंततोगत्वा अनुच्छेद १९ (१) (जी०) पर निर्भर किया है। इसके उत्तर में कहा गया है कि इनका अधिनियमन अनुच्छेद ४८ के अनुसार "पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति के लिये" हुआ है न कि अनुच्छेद १९ (१) जी० के अधिकारों के हनन के लिये इसलिए परोक्ष में यदि १९ (१) जी० के अधिकार पर आघात भी पहुँचता है तो भी इसे असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता। इसके समर्थन में ए० के० गोपालन वि० मद्रास राज्य। (ए० आई० आर० १९५० सर्वोच्च न्यायालय २७) का अभिदेश किया गया। इसमें माननीय मुख्य न्यायाधिपति कानिया का विचार था कि जब कोई विधान प्रत्यक्ष रूप से भाषण एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य आदि पर रुकावट डालता है केवल तभी अनुच्छेद १९ का आश्रय लिया जा सकता है किंतु उस स्थिति में जब कि विधान का प्रत्यक्ष उद्देश्य दूसरा होता है और केवल परोक्ष में मूलभूत अधिकारों पर आघात पहुँचता है तो अनु० १९ के उपबंधों की सहायता नहीं प्राप्त की जा सकती। इसी आधार पर कहा गया कि यहाँ अनुच्छेद ४८ के अभिप्राय के अनुसार अधिनियम का प्रत्यक्ष उद्देश्य पशुधन की रक्षा आदि करना है और इसके द्वारा परोक्ष में यदि मौलिक अधिकारों पर आघात पहुँचता है तो अनुच्छेद १९ (१) (जी०) के अंतर्गत आपत्ति संधार्य नहीं है।

यहाँ पर हमारे समक्ष परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। अनुच्छेद ४८ के निदेशक सिद्धांत (डाइरेक्टिव प्रिंसिपुल) के अंतिम भाग में दिया हुआ है कि सरकार कुछ विशेष जानवरों के बध का निषेध करेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस निदेश (डाइरेक्टिव) का पालन केवल उसी समय किया जा सकता है जब कि कसाइयों या अन्य बधिकों को उनका बध करने से मना किया जाय। अतः इसमें संदेह नहीं कि इस विधायन (लेजिस्लेशन) का प्रार्थी (कसाइयों) पर प्रभाव प्रत्यक्ष है और ज्योंही वे लागू होते हैं उनका प्रभाव तत्क्षण पड़ने लगेगा।

उत्तरवादी के विद्वान वकील का कथन मान्य नहीं हो सकता अतः अनुच्छेद १९ (१) जी० के तथाकथित अतिक्रमण के प्रश्न पर विचार करने के लिये उसके तत्व पर आना है।

अनुच्छेद १९ (१) जी० के अंतर्गत प्रार्थियों का कहना है कि अधिनियम के लागू होने से हमें अपने व्यवसाय को पूर्णतया बंद कर देना होगा। उनका कहना है कि सरकार व्यवसाय में कुछ प्रतिबंध लगा सकती है किंतु इसे पूर्णरूपेण बंद नहीं कर सकती। प्रत्येक नागरिक को व्यवसाय का जो अधिकार है सरकार उसे केवल नियंत्रित ही कर सकती है पूर्णरूपेण समाप्त नहीं कर सकती।

उत्तरवादियों का कहना है कि नागरिक को व्यवसायिक स्वतंत्रता है किंतु यदि उसके केवल किसी एक भाग पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है तो वह यह आग्रह नहीं कर सकता है कि हम वही व्यवसाय करेंगे जिसपर प्रतिबंध लगाया गया है। उदाहरण के लिये कहा गया कि यदि मान लिया कि खादी के प्रचार के लिये बहुत ऊँचे स्तर के कपड़ों के निर्माण या विक्रय पर रोक लगा दिया जाता है तो कोई व्यापारी यह नहीं कह सकता कि चूँकि हम केवल बहुत ऊँचे स्तर के कपड़ों का निर्माण और विक्रय करते थे इसलिए हमारे व्यवसाय पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया। कहा गया कि व्यापार के केवल एक भाग पर रोक लगाई गई है इसलिए प्रार्थीगण तत्सबद्ध दूसरा व्यापार कर सकते हैं।

यहाँ प्रार्थियों के व्यापार पर केवल प्रतिबंध ही लगाया गया है पूर्ण रुकावट नहीं है कारण कि उत्तरप्रदेश में यदि गाय, बैल आदि के बध का निषेध है तो वे भैंस बकरी आदि काट सकते हैं। मध्यप्रदेश में भी पूर्ण रुकावट नहीं है। बिहार में यों तो गो जाति के वंशों के काटने का निषेध है जिसमें भैंस भी आ जाती है तो भी वे बकरी या भेंड काटकर अपना व्यापार कर सकते हैं। तात्पर्य है कि रुकावट पूर्ण रुपेण नहीं है। इस विषय पर विचार करते हुए हमें अनु० १९ (६) के अंतर्गत अनुमित प्रतिबंध के बारे में निर्णय देने की आवश्यकता नहीं है कि क्या ऐसा प्रतिबंध बढ़ाकर पूर्ण रुकावट (टोटल प्राहिबिशन) तक पहुँचाया जा सकता है। जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह केवल यही है कि ये प्रतिबंध सामान्य जनता के हित में युक्तियुक्त हैं कि नहीं।

अनुच्छेद १९ (६) उस विधि की रक्षा करता है जो सामान्य जनता के हित में अनुच्छेद १९ (१) (जी०) के अधिकार पर प्रतिबंध लगाता है। इसकी युक्तियुक्तता के निश्चय का भार न्यायालय पर है किंतु इसका निश्चय निरपेक्षतः (ऐब्सट्रक्ट) या किसी एक व्यक्ति के विचार से नहीं किया जायगा कारण कि यह किसी न किसी व्यक्ति के लिये तो दुखःदायी होगा ही। न्यायालय को देखना है कि क्या ये प्रतिबंध सामान्य जनता के हित में युक्ति संगत है ?

ए० आई० आर० १९५२ सर्वो० न्या० १९६ में इस न्यायालय ने युक्तिसंगत होने के बारे में कुछ बातें बतलाई हैं। उसमें बतलाया गया है कि युक्तियुक्तता के परीक्षण के लिये कोई निरपेक्ष माप या किसी ऐसे सामान्य स्तर का निर्धारण नहीं किया जा सकता जो सभी परिस्थितियों में एक समान लागू हों। इसके परीक्षण के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना है :—उस अधिकार की प्रकृति जिसका हनन करना कहा जाता हो, प्रतिबंध लगाने का मुख्य प्रयोजन, उसके द्वारा दूर की जानेवाली बुराई की सीमा और आवश्यकता, प्रतिबंध का अनुपाततः न होना और उस समय का वातावरण। न्यायालय को इस विषय पर निर्णय देते समय उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिए। बिहार राज्य वि० दरभंगा के कामेश्वर सिंह ए० आई आर० १९५२ सर्वो० २५२ में मुख्य न्यायाधिपति महाजन ने अपना विचार व्यक्त किया था कि—"जनता के लिये हितकर क्या है इसका सबसे उत्तम निर्णायक विधानमंडल है…"। ये सब न्यायालय की सुविधा के लिये बतलाए गए हैं फिर भी विधि की वैधता पर निर्णय देने का उत्तरदायित्व

न्यायालय पर है और संविधान द्वारा दिए हुए इस पवित्र कर्तव्य से न्यायालय को जी नहीं चुराना चाहिए। अतः इस न्यायालय द्वारा निश्चित किए हुए सिद्धांतों के आधार पर हमें इस समस्या पर विचार करना है।

देश में दूध देनेवाले पशु, अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले पशु बहुत कम हैं। स्वास्थ्य सुधार और पौष्टिक पदार्थ तथा पर्याप्त भोजन के लिये पशुओं की उन्नति आवश्यक है। वर्तमान और भविष्य के लिये पशुओं के चारे का प्रबंध होना चाहिए किंतु देश में चारा बहुत कम है और यदि अनुपयोगी पशुओं को ज्यों का त्यों रहने दिया जायगा तो निश्चय ही उपयोगी पशु अपनी आवश्यकतानुसार पौष्टिक चारा नहीं पा सकेंगे। गोसदन की स्थापना से भी इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता क्योंकि वह बहुत मँहगा पड़ेगा और देश का बहुत सा धन जो अनुपयोगी पशुओं के लिये व्यय होगा उससे और आवश्यक काम किया जा सकता है। दूसरे, उपयोगी और अनुपयोगी का विचार न करते हुए यदि पशु बध पर पूर्ण रूपेण प्रतिबंध लगा दिया जायगा तो कसाइयों या चमड़े का व्यापार करनेवालों का व्यापार यदि पूर्ण रूपेण बंद नहीं हो जायगा तो धक्का अवश्य लगेगा। निर्धन जनता का एक बहुत बड़ा भाग अपने मुख्य भोजन और प्रोटीन आदि पौष्टिक पदार्थ से वंचित रह जायगा।

हम जानते हैं कि छोटे बछड़े और बछिया आदि का माँस मँहगा बिकता है इसलिए आगे की उनकी उपयोगिता पर बिना विचार किए हुए कसाइयों को बेच दिए जाते हैं। इस प्रसंग में गाय के लिये विशेष रक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि भैंस की अपेक्षा गाय कम दूध देती है और बड़े बड़े नगरों में स्थान की कमी के कारण तथा समुचित चारे का प्रबंध न होने से जो गाएँ दूध देना बंद कर देती हैं उनका रखना बहुत मँहगा पड़ता है इसलिए ग्वाले जो प्रायः हिंदू होते हैं गाय की आयु या आगे की उपयोगिता का तनिक भी ध्यान न रखते हुए ३० से ५० रु० प्रति गाय की दर से काटने के लिये बेच देते हैं और भाँति भाँति के उपाय से उसे प्रमाणित करते हैं कि वह बूढ़ी हो गई है या उसे लँगड़ी कर देते हैं ताकि नगरपालिका के पशु के डाक्टर द्वारा वह बध करने के लिये प्रमाणित कर दी जाय। इस प्रकार केवल आर्थिक कारणों से अल्पायु में उपयोगी जानवर बध करने के लिये बेच दिए जाते हैं। इस संबंध में गाय और बछड़ों के संरक्षण की बहुत ही अधिक आवश्यकता है क्योंकि भैंस की अपेक्षा गाय दूध कम देतीं है और दूध देना बंद करने पर उनके रखने में घाटा होता है अपेक्षाकृत भैंस के क्योंकि भैंस से यह आशा रहती है कि अगले बार जब वह दूध देगी तो उसे इतनी अधिक आय होगी कि घाटा पूरा हो जायगा। दूसरे, गाय का मांस भैंस से मँहगा बिकता है। बैल और साँड़ो की भी स्थिति दूसरी होती है क्योंकि बैल और साँड़ इतना महत्वपूर्ण काम करते हैं कि जब तक वे काम के योग्य रहते हैं तब तक उनका मूल्य उनके केवल माँस के मूल्य से बहुत ही अधिक रहता है और किसी भी किसान को काम में आनेवाले बैलों को काटने के लिये बेचने में कोई लाभ न होगा। यही बात अभिजनन वाले साँड़ों के संबंध में भी है। अतः गाय और बछड़े की अपेक्षा इनके संरक्षण की आवश्यकता कम है।

दूसरा प्रश्न है कि जानवरों के बध पर प्रतिबंध का क्षेत्र क्या होना चाहिए। एक मत है कि सभी जानवरों का बध सरकार द्वारा विनियमित होना चाहिए और यह कि दी हुई आयु के नीचे के जानवरों या उन जानवरों के बध की अनुमति नहीं देना चाहिए जो कि किसी प्रकार से अयोग्य न हो गए हों। इस सिद्धांत को कार्यरूप में परिणित किया गया है किंतु पशुओं के डाक्टरों पर दबाव डालकर या नगरपालिका की सीमा के बाहर ले जाकर उपयोगी पशुओं का बध कर दिया जाता है। इसमें ग्वालाओं की आर्थिक दशा तथा कृषकों की असहायावस्था का भी बहुत बड़ा हाथ रहता है। दी हुई आयु के ऊपर के बैलों और साँड़ों तथा भैंसों आदि के बध करने का आदेश उनके लिये तो पर्याप्त हो सकता है किंतु गायों के लिये यह पर्याप्त संरक्षण नहीं हो सकता। बूढ़ी और अयोग्य गायों के भी पक्ष में यह अपवाद सामयिक प्रतीत होता है।

समस्या पर सविस्तर विचार करने के बाद और विधान की वैधता के पक्ष में अभिधारणा के आधार पर संविधान द्वारा दिए हुए कर्तव्यों का पालन करना है और इसलिए प्रतिबंध की युक्तियुक्तता के निर्णय के लिये हमें वस्तुनिष्ठ एवं वास्तविक ढंग पर विचार करना है। इस प्रकार विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि :—

(१) यह कि किसी भी आयु की गाय और गाय के बछड़े और बछिया तथा भैंस की पड़िया और पड़वा के बध का पूर्णरुपेण निषेध वैध है तथा अनुच्छेद ४८ के निदेशक सिद्धांतों के अनुकूल है।

(२) यह कि भैंस, अभिजनन साँड़, काम करने वाले बैल (पशु और भैंसा) जब तक दुधारु हैं या बोझा ढोने के काम में आते हैं तब तक उनके बध का पूर्णरुपेण निषेध युक्तिसंगत और वैध है।

(३) यह कि भैंस, साँड़ और बैल (पशु या भैंस) जब कि वे दूध देने योग्य न रह जाँय या अभिजनन या काम करने या बोझा ढोने योग्य न रह जाँय तब भी उनके बध का पूर्णरुपेण निषेध सामान्य जनता के हित में युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता।

इस आधार पर प्रश्नगत् अधिनियमों का परीक्षण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और घोषणा करते हैं कि बिहार का अधिनियम जहाँ तक यह सभी आयु की गायों, बछिया, बछवा, पड़िया, पड़वा के बध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है और हमारा निष्कर्ष है कि जहाँ तक यह भैंस, अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले बैल (पशु और भैंस) के बध का पूर्णरूपेणनिषेध बिना आयु निर्धारण या उपयोगिता का बिना विचार किए करता है वह प्रार्थियों के अनुच्छेद १९ (१) जी० के अंतर्गत के अधिकार का हनन करता है और उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है।

उत्तरप्रदेश के अधिनियम के संबंध में हमारा निष्कर्ष है कि जहाँ तक यह किसी भी आयु की गाय, बछड़े और बछिया के बध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है किंतु हमारा निर्णय है कि जहाँ तक इसका विचार है कि अभिजनन साँड़, काम करनेवाले बैलों के बध का पूर्णरूपेण निषेध बिना इनकी आयु और उपयोगिता पर विचार किए हुए कर दिया जाय वहाँ तक यह अनुच्छेद १९ (१) जी० के प्रतिकूल पड़ता है और उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है।

इसी प्रकार मध्यप्रदेश के अधिनियम के बारे में हम घोषणा करते है कि जहाँ तक यह किसी भी आयु की गाय, बछड़े और बछिया के बध का निषेध करता है वहाँ तक यह संविधानतः वैध है किंतु जहाँ यह अभिजनन साँड़ और काम करनेवाले बैलों के बध का निषेध बिना उनकी आयु और उपयोगिता पर विचार किए करता है उस सीमा तक यह प्रभावशून्य है। हमारा निर्णय यह भी है जहाँ यह अधिनियम अन्य जानवरों का बध उसमें दिए गए प्राधिकारियों द्वारा स्वीकत प्रमाणपत्र से विनियमित करता है, वैध है।

अतएव उत्तरवादी राज्यों को निदेश किया जाता है कि जहाँ तक भिन्न भिन्न अधिनियम प्रभावशून्य घोषित हो चुके हैं उनको लागू न करें। इन प्रार्थनापत्रों के परिव्यय (कास्ट्स) का भार पक्षों पर रहेगा।

आदेश तद्नुसार

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ सर्वोच्च न्यायालय ८३

२३ मई १९५८

बी० पी० सिनहा, एस० जफर इमाम तथा जे० एल० कपूर न्यायमूर्तिगण

रजिया बेगम — अपीलकर्ता

वि०

साहेबजादी अनवर बेगम तथा अन्य— उत्तरवादीगण

व्यवहार अपील सं० ६६५।१९५७

व्य० प्र० संहिता (१९०८), धा० ११५ और ११, आ० १ नि० १० (२) आ० ८ नि० ५ और आ०

१२ नि० ६—पक्षों के जोड़े जाने का प्रश्न आरंभिक अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का प्रश्न है या न्यायिक स्वविवेक का—सामाजिक स्थिति की घोषणा के लिये वाद (सूट) में पक्षों का जोड़ा जाना – वाद के अभिकथन को मान लेने का प्रभाव—घोषणात्मक डिग्री का परिणाम - विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ और प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) - विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) धारा ४२ और ४३

न्यायमूर्ति बी० पी० सिनहा—

नीचे के दोनों न्यायालयों के समान निर्णय के विरुद्ध यह अपील विशेष अनुमति पर आई है। इस अपील में व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० (२) की व्याख्या का प्रश्न है तथा देखना है कि इस मामले की परिस्थिति में वे किस सीमा तक लागू होते हैं।

१९५७ में वादी अपीलकर्ता ने हैदराबाद के राजकुमार के विरुद्ध एक वाद निवेशित किया कि वह राजकुमार की विवाहिता पत्नी है, विवाह १९४८ में शिया पद्धति के अनुसार संपन्न हुआ और यह तथ्य राजकुमार की जान पहचान के समस्त लोगों को विदित है। वादी का कहना है कि राजकुमार विवाह के तथ्य को छिपाना चाहते हैं ताकि परिवार के सदस्यों को इस बात का निश्चय हो जाय कि वादी राजकुमार की विवाहिता पत्नी नहीं है। वादी का कहना है कि इस विवाह से तीन लड़कियाँ भी पैदा हुई हैं। वादपत्र में दूसरी बात कही गई कि विवाह के पूर्व राजकुमार वादी अपीलकर्ता को २००० रु० प्रति माह 'खर्चे ये पानदान' को देने के लिये तैयार हुए थे किंतु १९५३ से उन्होंने यह रुपया देना बंद कर दिया है। इन बातों के आधार पर उसने दो घोषणा (डिक्लेरेशंस) की माँग की है। (१) घोषित किया जाय कि वादी प्रतिवादी की विधि विहित विवाहित पत्नी है। (२) वादी के के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध एक डिग्री पारित की जाय कि वादी, प्रतिवादी से 'खर्चे ये पानदान' का २००० रु० प्रतिमास पाने की अधिकारिणी है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वादी ने 'खर्चे ये पानदान' का बकाया रुपया नहीं माँगा। १० दिन के बाद ही राजकुमार ने लिखित प्रतिवाद निवेशित किया जिसमें उन्होंने वादी की सभी बातें मान लीं।

उसी दिन (१) साहबजादी अनवर बेगम और (२) राजकुमार सहामत अली खाँ (अवयस्क) जो अपनी माता साहबजादी अनवर बेगम की संरक्षता में था, की ओर से व्य० प्र० सं० के आ० १ नि० १० (२) के अंतर्गत प्रार्थनापत्र दिया गया। उत्तरवादी सं० १ साहबजादी ने अपने को राजकुमार की विधि विहित विवाहिता पत्नी कहा तथा उत्तरवादी सं० २ को राजकुमार का पुत्र कहा जो उत्तरवादी सं० १ से पैदा हुआ था। इसके अतिरिक्त उस प्रार्थनापत्र में कहा गया था कि वादी का स्वयं कहना है कि प्रतिवादी राजकुमार उसके विवाह को इनकार करना चाहते हैं इसलिए कहा गया है कि हम प्रार्थीगण भी समान रूप से वादी के विवाह को, उसके अधिकार को और उसकी सामाजिक स्थिति को इनकार करेंगे। दोनों उत्तरवादियों ने इस प्रार्थनापत्र में कहा कि यह वाद साजिश से निवेशित किया गया है कि उत्तरवादी १ और २ के प्रतिवादी से संबंध पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े और प्रतिवादी की संपदा पर प्रार्थियों का अधिकार समाप्त कर दिया जाय।

वादी ने उत्तरवादियों (१ और २) के पक्ष बनने के प्रार्थनापत्र का उत्तर दिया। उसने पक्ष बनाए जाने का विरोध किया कि:—

१—प्रार्थी के अधिकार का हनन अनिश्चित घटनाओं पर निर्भर है जो घट भी सकती हैं और नहीं भी घट सकतीं जैसे प्रार्थी का प्रतिवादी राजकुमार की मृत्यु के बाद भी जीवित रहना तथा अन्य परिस्थितियाँ।

२—वाद में कोई गंभीर लड़ाई नहीं है क्योंकि प्रतिवादी ने वाद को मान लिया है।

३—प्रार्थीगण (उत्तरवादी सं० १ और २) न तो आवश्यक और न तो उचित पक्षों (नेससरी ऐंड प्रापर पार्टीज) में से हैं।

४—प्रार्थियों ने जब इस वाद को साजिशी कहा है

तो इस वाद के निर्णय का बंधन उन पर नहीं होगा क्योंकि वे इसमें पक्ष नहीं हैं।

५—प्रार्थियों ने वादी को लड़ाकर बहुत समय तक हैरान करने के विचार से ही यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया है।

राजकुमार (प्रतिवादी) ने पक्ष बनने के इस प्रार्थनापत्र का विरोध किया और प्रार्थनापत्र के उत्तर में कहा कि:—

१—प्रथम उत्तरवादी हमारी पत्नी है और द्वितीय उत्तरवादी हमारा पुत्र है।

२—प्रार्थियों के अधिकार पर इस मुकदमें के निर्णय का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि मुसलमान प्रथा के अनुसार एक व्यक्ति एक समय चार स्त्री तक रख सकता है।

३—हमारे पिता, हैदराबाद के निजाम इस मुकदमें में उलझन पैदा करना चाहते हैं और उन्हीं के कारण प्रार्थी ने इस प्रकार का अनावश्यक प्रार्थनापत्र दिया है।

इन सभी बातों पर विचार करने के बाद अन्वीक्षा न्यायालय ने उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनाने का निदेश निम्नलिखित आधार पर दिया:—

१—अभिलेख के देखने से वादी और प्रतिवादी के बीच साजिश की संभावना प्रतीत होती है।

२—विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४२ के अंतर्गत जिस घोषणा की माँग की गई है उसका देना विवेक पर निर्भर करता है और उसे अधिकार के आधार पर प्रदान नहीं किया जा सकता।

३—प्रार्थियों के रहने से मुकदमे के भेद को जानने में न्यायालय को बहुत सुविधा होगी।

४—प्रार्थियों के इस कथन में बहुत बल है कि इस मुकदमे में दी गई घोषणा (डिक्लेरेशन) का बंधन विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ के अंतर्गत प्रार्थियों पर होगा इसलिए अपनी बात कहने के लिये उन्हें पक्ष बनने का अवसर देना चाहिए।

५—वर्तमान झगड़े का पूर्णरूपेण निवटारा करने के लिये प्रार्थियों का रहना आवश्यक है।

व्य० प्र० सं० की धारा ११५ के अंतर्गत आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय में जब इस आदेश के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया गया तो उच्च न्यायालय ने भी अन्वीक्षा न्यायालय की बात मानी और कहा कि जब विवाह को इतनी पवित्रता प्रदान की जाती है तो प्रार्थियों (उत्तरवादी सं० १ और २) को वादी की सामाजिक स्थिति को चुनौती देने का अवसर देना गलत नहीं और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह अनावश्यक मुकदमेबाजी है क्योंकि उत्तरवादी सं० १ और २ की जो माँग है उससे विधि का प्रभाव संलग्न है। ऐसी स्थिति में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उत्तरवादी १ और २ मुकदमे के आवश्यक पक्ष नहीं हैं।

विशेष अनुमति पर यह अपील निवेशित की गई है।

अपील के समर्थन में विद्वान् महान्यायवादी (अटार्नी जनरल) का कहना है कि न्यायालय को दोनों उत्तरवादियों को प्रतिवादी बनाने का अधिक्षेत्र नहीं था। उन्होंने संहिता के आ० १ नि० १० (२) के संबद्ध अंश पर निर्भर किया। वह इन शब्दों में है:—

"(२)...उन व्यक्तियों का नाम जिसे या तो वादी या प्रतिवादी में रहना चाहिए था अथवा न्यायालय के समक्ष जिसकी उपस्थिति इसलिए आवश्यक हो कि न्यायालय पूर्ण रूप से एवं प्रभावपूर्ण ढंग से वाद में जितने प्रश्न उठे हैं सबका निर्णय कर सके, जोड़ दिया जाय।"

विद्वान् महा न्यायवादी का कहना है कि (उत्तर वादी सं० १ और २) "...में रहना चाहिए था" में नहीं आते कारण कि स्पष्टतः इसका अभिदेश आवश्यक पक्ष से इस अर्थ में है कि उनके बिना वाद का निर्णय पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। विद्वान् महान्यायवादी का कहना है कि वाद के समस्त प्रश्नों के निर्णयार्थ उत्तरवादियों का रहना आवश्यक नहीं है क्योंकि उत्तरवादी सं० १ और २ को राजकुमार की संपदा में कोई वर्तमान अधिकार नहीं है। राजकुमार की संपदा के उत्तराधिकार की संभाव्यता इस मुकदमें में उनके आने का कोई निहित (वेस्टेड) या घटनापेक्ष (कंटिंजेंट) अधिकार नहीं देता।

इस विषय पर दो प्रकार के निर्णय हैं, एक संकुचित और दूसरा विस्तृत । संकुचितवाला सबसे महत्वपूर्ण निर्णय १८९२-१ चांसरी ४८७ हैं जिसके समान भारत का निर्णय ए० आई० आर० १९२६ मद्रास ८३६ है । इसमें निर्णय हुआ था जिस व्यक्ति का वादविषय से सीधा संबंध (इंटरेस्ट) हो उसी को पक्ष बनाने का न्यायालय का अधिक्षेत्र है न कि उस व्यक्ति को जिसका संबंध (इंटरेस्ट) व्यापारिक या परोक्ष में है । एक निर्णय और हुआ था कि उसी व्यक्ति को पक्ष बनाने की अनुमति देना चाहिए जिसका विधिक संबंध (लीगल इंटरेस्ट) हो; यह विधिक संबंध उस अर्थ में नहीं है जिस अर्थ में विधिक संबंध (लीगल इंटरेस्ट) और साम्यिक संबंध (इक्युटिबुल इंटरेस्ट) का अंतर समझा जाता है वरन् विधिक संबंध से तात्पर्य इतना ही है कि जिसे विधि मान्यता देता है ।

आई० एल० आर० मद्रास ५२ में इसके विस्तृत अर्थ में निर्णय दिया गया था कि एक ही प्रश्न पर विरोधी निर्णयों को रोकने के लिये और तत्संबंधी विषय पर प्रभावपूर्ण और पूर्णनिर्णय देने के लिये न्यायालय को अधिकार है कि पक्ष बनावे किंतु इसमें कहा गया था कि पक्ष बनाने का अधिकार यों तो न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है पर इसका प्रयोग न्यायिक ढंग पर करना चाहिए अर्थात् न्यायालय को देखना चाहिए कि पक्ष बनाने से उस पक्ष पर अन्याय न हो जो कि पहले से ही अभिलेख पर है ।

मद्रास के दो निर्णयों में विरोधी बात इस विषय पर कही गई थी कि सरकार को पक्ष बनाने का अवसर देना चाहिए या नहीं । एक मामला उत्तर प्रदेश का था जिसमें उत्तर प्रदेश सरकार के बनाए गए एक अधिनियम की वैधता पर आपत्ति की जा रही थी । उ० प्र० सरकार ने उस पर और आधिकारिक निर्णय दिए जाने के लिये पक्ष बनाए जाने की प्रार्थना की । सुलेमान न्यायाधीश और वरदचारियर न्यायाधीश ने उ० प्र० सरकार को पक्ष बनाया किंतु दूसरे आधार पर । विद्वान् सुलेमान न्यायाधीश का विचार था कि यद्यपि सरकार का मुकदमें से संबंध परोक्षतः (इंडाइरेक्टली) है पर सरकार को पक्ष बनाना न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है । वरदचारियर न्यायाधीश का विचार था कि सरकार उस स्थिति में नहीं है जिसमें कि तृतीय पक्ष रहता है । सरकार जनता की रक्षक है इसलिए उससे भी यह माँग करना कि कोई आर्थिक संबंध दिखलावे तभी उसे पक्ष बनाया जा सकता है, ठीक नहीं है । सरकार को पक्ष बनाने का जहाँ तक संबंध है न्याय और सुविधा के विस्तृत आधार पर इसको देखना चाहिए न कि केवल व्य० प्र० संहिता के उपबंध को ही ।

१८९२-१ चांसरी ४८७ में कहा गया था कि यह प्रश्न विवेक (डिस्क्रीशन) का नहीं है वरन् अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का है किंतु भारतवर्ष के न्यायालयों ने इसे आरंभिक अधिक्षेत्र का प्रश्न नहीं माना है । कभी कभी व्य० प्र० संहिता की धारा ११५ के सीमित अर्थ में अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का यह प्रश्न हो सकता है ।

पक्ष बनाए जाने के इस विषय पर जितने निर्णय हुए हैं उससे यह तय हो चुका है कि प्रार्थी का वाद-विषय से सीधा संबंध रहना चाहिए—चाहे यह चल संपत्ति के बारे में हो या अचल संपत्ति के । किंतु इस मामले में बात दूसरी है । यहाँ हमारा संबंध मुख्यतया सामाजिक स्थिति (स्टेटस) की घोषणा के लिये है जब कि पहले वाले निर्णयों का संबंध संपत्ति के अधिकार से था ।

इस संबंध में विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४२ पर ध्यान देना है । उसके अनुसार जो लोग वादी के विधिक स्वभाव (लीगल कैरेक्टर) को इनकार करते हैं या इनकार करना चाहते हैं वे वाद के आवश्यक पक्ष होंगे । वादी के पति ने कहीं स्पष्टतः वादी को पत्नी होने से इनकार नहीं किया है । वादी ने जिस वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) की चर्चा की है उसमें उसका केवल यही कहना है कि प्रतिवादी–राजकुमार उसे खुलेआम अपनी विवाहिता पत्नी स्वीकार करने से इनकार करते हैं । वादी के कहने के अनुसार उसी के ही नहीं वरन् उसकी तीनों लड़कियों के अधिकार पर बादल छा गए हैं । इसका परिणाम यह है कि उसे परिवार के अन्य सदस्य जिसमें उत्तरवादी सं० १ और २ भी

हैं उसके विवाह को इनकार करने से संबंधित हैं। ऐसी स्थिति में वादी यदि बहुत सतर्क न रहती और उत्तरवादी सं० १ और २ को भी प्रतिवादी बना देती तो वे मुकदमे से इस आधार पर न छोड़े जाते कि वे व्यर्थ ही पक्ष बना दिए गए हैं और यह कि उनके विरुद्ध कोई वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) नहीं है। वे निश्चय ही मुकदमे के आवश्यक पक्ष होते और इस बात के निश्चय के संबंध में कि उत्तरवादी सं० १ और २ का पक्ष बनाया जाना ठीक है या गलत, यह बात बहुत महत्वपूर्ण है।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि धारा ४२ के अंतर्गत की घोषणा (डिक्लेरेशन) न्यायालय के विवेक (डिस्क्रीशन) पर निर्भर करती है। अपीलकर्ता ने जो दूसरी बात कही है उस पर विचार करना है। अपीलकर्ता का कहना है कि वादी की सभी बातें जब प्रतिवादी ने मान ली है तो सामान्य क्रम में ही घोषणा दे दिया जाना चाहिए। इस संबंध में व्य० प्र० संहिता के आ० १२ नि० ६ का अभिदेश किया गया जिसमें दिया हुआ है कि इस प्रकार दावे को मान लेने पर न्यायालय वादी के पक्ष में निर्णय दे देगा। किंतु इस उपबंध को व्य० प्र० संहिता के आ० ८ नि० ५ के साथ पढ़ना चाहिए और विशेषतः उसके परंतुक (प्राविजो) के साथ जिसमें दिया हुआ है कि न्यायालय स्वीकार किए हुए तथ्यों को ऐसी स्वीकृति के अतिरिक्त भी प्रमाणित करने की माँग कर सकता है और ऐसा करना उसके विवेक पर निर्भर करता है। यह परंतुक (प्राविजो) साक्ष्य अधिनियम की धारा ५८के परंतुक के समान है जिसमें दिया हुआ है कि जो तथ्य स्वीकार कर लिए गए हैं उनके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अतः इन उपबंधों के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वादपत्र में दिए हुए तथ्य यदि स्वीकार कर लिए गए हैं तब भी न्यायालय घोषणा (डिक्लेरेशन) देने के लिये बाध्य नहीं हैं। इस प्रसंग में ऐंडर्सन के "एक्शंस फार डिक्लेरेटरी जजमेंट्स" का एक परिच्छेद महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने लिखा है कि घोषणात्मवाद के लिये यह आवश्यक है कि पक्षों के बीच झगड़ा वास्तविक हो और न्याय करने योग्य हो तथा पक्षों के हित (इंटरेस्ट) विरोधी (ऐडवर्स) हों। जब प्रतिवादी वादी की बात मान लेता है तो उस स्थिति में अधिकार की घोषणा अनुचित है और एक प्रकार से यह न्यायालय की परामर्श लेना है जो अव्यावहारिक है न कि वाद योग्य। अर्थात्—वादी की बातें मान लेने पर भी यह अनिवार्य नहीं है कि न्यायालय वादी के पक्ष में निर्णय दे ही दे; वह अन्य प्रकार से प्रमाणित करने की माँग कर सकता है। यदि रुपए की डिग्री होती तो स्वीकार (ऐडमिशन) करने पर वादी के पक्ष में निर्णय देने में न्यायालय को उतना सतर्क न रहना पड़ता जितना इस मामले में आवश्यक है। इसमें सामाजिक स्थिति (स्टेटस) की घोषणा की माँग है जो कि बहुत ही गंभीर विषय है कारण कि इस घोषणा का प्रभाव न्यायालय के सामने के पक्षों तक ही सीमित नहीं रह जायगा वरन इसका प्रभाव वादी और उत्तरवादी सं० १ और २ की संतान पर पड़ेगा। इस घोषणा का प्रभाव प्रतिवादी राजकुमार तक ही सीमित नहीं रह जायगा वरन् समस्त परिवार पर इसका प्रभाव पड़ेगा इसलिए धारा ४३ के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता है।

धारा ४३ के संबद्ध भाग इन शब्दों में हैं:—

'४३—इस अध्याय के अंतर्गत घोषणा (डिक्लेरेशन) का बंधन केवल वाद के पक्षों पर है, उन व्यक्तियों पर है जो क्रम से उनके माध्यम से दावेदार होते हैं और जहाँ कोई पक्ष न्यास धारी (ट्रस्टी) है...... ।'

अपीलकर्ता की ओर से कहना है कि इस मामले में वादी ने जो सामाजिक स्थिति की घोषणा की प्रार्थना की है उसका बंधन केवल उसपर (वादी पर) और राजकुमार पर होगा कारण कि यह प्राङ् न्याय (रेसजुडिकेटा) का नियम है इसलिए इसका बंधन केवल पक्षों पर और उनके संसर्गियों (प्रिवीज) पर होगा। उनका कहना है कि उत्तरवादी सं० १ और २ ऐसे संसर्गी (प्रिवीज़) नहीं हैं। उनका तर्क है कि धारा ४३ संशोधित रूप में प्राङ् न्याय (रेसजुडिकेटा) का रूप है और उसमें प्रयुक्त शब्द 'केवल' इस बात का प्रतीक है कि धारा ४२ के अंतर्गत घोषणा का बंधन वाद के पक्षों पर है और उन पक्षों पर है जो क्रमानुसार उनके माध्यम से दावेदार होते हैं।

राजकुमार (तृतीय उत्तरवादी) की ओर से अपील-कर्ता के कथन का समर्थन किया गया कि "उनके माध्यम से दावेदार" का वही तात्पर्य है जो कि व्य० प्र० संहिता की धारा ११ के "अंतर्गत दावेदार" का है और उन शब्दों से केवल व्यक्तिगत स्थिति (परसनल स्टेटस) की घोषणा का अभिदेश नहीं होता वरन् इसका अभिप्राय वही होता है जिसे सामान्य विधि (कामन ला) में 'संपदा संसर्गी' (प्रिवी इन स्टेट) कहा जाता है। उन्होंने 'बिगलो आन इस्टापेल' के एक स्थल को उद्धृत किया कि प्रतिष्टंभ विधि (ला आफ स्टापेल) में एक व्यक्ति दूसरे का संसर्गी (प्रिवी) तब होता है जब कि (१) प्रतिष्टंभ (इापेल) के विषय के संबंध में वह दूसरे की स्थिति (पोजीशन) का उत्तराधिकारी हो जाय, (२) दूसरे के अंतर्गत उसको धारण करे और इस बात को ध्यान में रखना है कि संसर्ग (प्रिविटी) का आधार संपत्ति है न कि वैयक्तिक सामाजिक स्थिति। संसर्गी (प्रिवी) होने के लिये यह आवश्यक है कि उसने वाद विषय में उत्तराधिकार या क्रय करके अधिकार प्राप्त किया हो या उसके अंतर्गत संपत्ति का धारण किया हो।

दूसरी ओर उत्तरवादी १ और २ की ओर से कहना है कि 'माध्यम से दावेदार' और 'के अंतर्गत दावेदार' का एक ही अर्थ नहीं होता और धारा ४३ व्य० प्र० सं० की धारा ११ के प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) के सिद्धांत की तरह नहीं है अथवा यह निर्णयजन्य प्रतिष्टंभ (स्टापेल बाई जजमेंट) की तरह भी नहीं है। उनका कहना है कि यह वाद वास्तव में उत्तरवादी सं० १ और २ पर बंधन रहने के विचार से निवेशित किया गया है—प्रतिवादी राजकुमार को बाध्य करने के लिये नहीं। वादी इसमें जब सफल हो जाती है तो उनका कहना है कि इसके बाद कभी वादी और उसके बच्चे एक ओर तथा उत्तरवादी १ और २ दूसरी ओर होकर मुकदमा लड़ें तो यह निर्णय उसमें प्रतिग्राह्य (ऐडमिसिबुल) ही नहीं होगा वरन् इसका बंधन दोनों पक्षों पर होगा कारण कि यह मान्य है कि उत्तरवादी १ और २ भी राजकुमार के माध्यम से ही दावेदार हैं।

इस संबंध में इस बात पर ध्यान देना है कि जो निर्णय निष्पादन (एक्जीक्यूशन) की कार्यवाही द्वारा लागू किए जा सकते हैं उनसे धा० ४२ के अंतर्गत की घोषणात्मक डिग्री अंतर रखती है और जिस उद्देश्य से यह अंतर है वह उपयोगी और महत्वपूर्ण है इसलिए घोषणात्मक निर्णय का महत्व और बढ़ जाता है। घोषणा-त्मक डिग्री भविष्य की मुकदमेबाजी को वर्तमान वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) हटा कर रोकती है यह स्वत्व संबंधी झगड़े को शांत करती है, यह अभिसाक्ष्य (टेस्टि-मोनी को शाश्वत बनाती है और कार्यवाही के बाहुल्य पर भी रोक रखती है।

स्वभावतः घोषणात्मक डिग्री कोई नया अधिकार नहीं प्रदान करती वरन् संपत्ति के स्वत्व (टाइटिल) और सामाजिक स्थिति (स्टेटस) के चतुर्दिक जो कुहरा छा गया रहता है उसी का यह निवारण करती है। न्यायालय जब विवादग्रस्त सामाजिक स्थिति के बारे में घोषणा करता है तो इससे अनेक अधिकारों का प्रवाह आरंभ हो जाता है और धारा ४३ के अंतर्गत उनके माध्यम से जितने लोग दावेदार होते हैं उन पर भी इसका बंधन हो जाता है। यह मूलभूत अधिकार का नियम है और प्राङ्न्याय (रेसजुडिकेटा) तथा निर्णय जन्य प्रतिष्टंभ (इस्टापेल बाई जजमेंट) से अंतर रखता है। व्य० प्र० संहिता की धारा ११ का प्राङ्न्याय वि० सा० अधिनियम की धारा ४३ से विस्तृत क्षेत्रवाला है। जैसे प्राङ्न्याय न्यायालय की सामर्थ्य पर अधिक जोर देता है किंतु धारा ४३ इस विधिक स्थिति पर जोर देती है कि यह व्यक्ति बंधक निर्णय (जजमेंट इन परसोनम) है। धारा ४३ न्यायालय की सामर्थ्य (कंपीटेंस) पर विचार नहीं करती। पहले का कोई निर्णय बाद वाले मुकदमे में उस स्थिति में भी प्राङ्न्याय हो सकता है जब कि पक्ष माध्यम से दावेदार भी न हों। उदाहरणार्थ प्रतिनिधित्व वाद (रिप्रेजेंटेटिव सूट) या भावी प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) का निर्णय का बंधन वास्तविक प्रत्यावर्ती पर भी होगा यद्यपि कि वह पक्ष न हो या पहलेवाले मुकदमें में पक्षों के माध्यम से दावेदार न हो।

अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ की ओर से कहा गया कि धारा ४३ के अंतर्गत धारा ४२ की घोषणा का बंधन पक्षों के अतिरिक्त किसी दूसरे पर तब तक नहीं होगा जब तक कि इसका संबंध किसी संपत्ति से न हो। अर्थात् धारा ४३ केवल संपदाजन्य संसर्ग (प्रिवी इन स्टेट) में लागू होती है। संसर्ग (प्रिवी) तीन प्रकार की होती है :—१—विधि के प्रवर्तन द्वारा जैसे संविदा जन्य संसर्ग (२) किसी संपत्ति में प्रमुख अधिकार के अंतर्गत किसी अधरिक (सबार्डिनेट) अधिकार के निर्माण द्वारा जैसे—भूस्वामी और कृषक, बंधकदाता और बंधकी (३) रक्त संबंध द्वारा जैसे पूर्वज और उत्तराधिकारी। यदि ऐसी बात न हो तो कुछ विचारगम्य अवस्थाओं में धारा ४३ का प्रभाव निरर्थक हो जाय। अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ की ओर से कहा गया है कि धारा ४३ केवल संपत्ति संबंधी घोषणा में लागू होती है, सामाजिक स्थिति की घोषणा में नहीं। यह बात नहीं है। विधान मंडल का ऐसा अभिप्राय नहीं था। धारा ४२ और धारा ४३ साथ साथ चलती है और इनके बनाने का विचार था कि जब ये लागू हों तो साथ ही साथ। इसीलिए सामाजिक स्थिति की घोषणा का बंधन केवल न्यायालय के समक्षवाले पक्षों पर ही नहीं होता वरन् उन व्यक्तियों पर भी होता है जो कि क्रम से उनके माध्यम से दावेदार हैं। धारा ४३ में प्रयुक्त शब्द 'केवल' यों तो इस बात का प्रतीक है कि इस प्रकार घोषणावाले निर्णय सर्वबंधक निर्णय (जजमेंट इन रेम) नहीं होते फिर भी उसी धारा के बाद वाले अंश में है कि उन पक्षों पर भी इसका बंधन है जो क्रम से उनके माध्यम से दावेदार होते हैं। "क्रम से" शब्द का प्रयोग इस बात का दूसरा प्रमाण है कि पक्षों के बीच में लड़ाई वास्तविक होनी चाहिए। यदि वास्तविक नहीं है तो न्यायिक विवेक का प्रयोग करके न्यायालय इस प्रकार की घोषणा स्वीकार करने से इनकार कर सकता है।

अतः उपर्युक्त विचारविमर्श के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है—

१—व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० के अंतर्गत पक्षों के जोड़े जाने का प्रश्न सामान्यतः न्यायालय के आरंभिक अधिक्षेत्र का प्रश्न नहीं है वरन् न्यायिक विवेक का प्रश्न है जो कि वाद विशेष की परिस्थितियों एवं तथ्यों के अनुसार प्रयुक्त होना चाहिए। किंतु कुछ स्थितियों में संहिता की धारा ११५ में जिस सीमित अर्थ में अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) का प्रयोग हुआ है उसका प्रश्न उठ सकता है।

२—संपत्ति से संबंधित मामले में पक्ष बनने के लिये यह आवश्यक है कि वाद विषय में अधिकार प्रत्यक्ष हो न कि व्यापार आदि से संबंध रखनेवाला अधिकार।

३—जहाँ वाद विषय सामाजिक स्थिति की घोषणा से संबंध रखता हो प्रत्यक्ष अधिकार होने के नियम को उपयुक्त मामलों में ढीला कर देना चाहिए ताकि विवाद का निर्वर्तन पूर्णरूपेण और प्रभावपूर्ण ढंग से हो जाय।

४—उपर्युक्त परिनियमित उपबंधों के अंतर्गत प्रतिवादी की स्वीकृति (ऐडमिशन) पर ही घोषणा देने के लिये न्यायालय बाध्य नहीं है जब कि स्पष्ट कारणों के आधार पर वह स्वीकृति के अतिरिक्त भी प्रमाण दिए जाने पर जोर देता है।

५—इस मुकदमे जैसी घोषणात्मक डिग्री का प्रभाव आगे आनेवाली संतान पर पड़ता है इसलिए वर्तमान अधिकार (एक्जिस्टिंग इंटरेस्ट) का नियम जिसे अनेक रूलिंग्स में संपत्ति के झगड़े में लागू होना कहा गया है, इसमें पूर्णरूपेण लागू नहीं होता।

६—विशिष्ट साहाय्य अधिनियम (स्पेसिफिक रिलीफ ऐक्ट) की धारा ४३ का नियम ठीक ठीक प्राङ् न्याय (रेस जुडिकेटा) जैसा नहीं है। कुछ अर्थ में यह संकीर्ण है, कुछ में विस्तृत।

इन सिद्धांतों के अनुसार वर्तमान मामले में हमलोगों का निष्कर्ष है कि नीचे के न्यायालयों ने जो उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनाने का निदेश किया उसमें वे अपने अधिकार सीमा से बाहर नहीं गए न तो यही कहा जा सकता है कि विवेक का प्रयोग समुचित नहीं था। यह विशेष अनुमति पर आया है इसलिए हम लोग नीचे के

न्यायालय के विवेक प्रयोग पर हस्तक्षेप करने योग्य यह उचित मामला नहीं समझते।

अपील तद्नुसार उत्सर्जित की जाती है।

न्यायमूर्ति जफर इमाम—

वादी ने 'खर्च-ये-पानदान' के लिये और विधिविहित विवाह की घोषणा के लिये जो वाद निवेशित किया है वह वादी और उत्तरवादी सं० ३ का व्यक्तिगत संबंध है। मुसलमान विधि (ला) के अनुसार एक मुसलमान चार विवाह तक कर सकता है और कोई इस अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकता। वादी के वाद निवेशित करने पर प्रतिवादी को दो ही उपाय काम में लाना था, या तो वह वादपत्र की बात को स्वीकार करता या उसको इनकार करता। उत्तरवादी सं० ३ ने उसे स्वीकार कर लिया, इसमें कोई गड़बड़ी न थी।

साजिश की बात कही गई है किंतु जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उत्तरवादी सं० १ और २ को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है तो इस प्रश्न का महत्व नहीं रह जाता है।

उत्तरवादी सं० १ और २ ने यह भी कहा है कि हमारे पक्ष बनने से वादमूल (काज आफ ऐक्शन) और वाद की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। ऐसी बात नहीं है। पहले के वाद में इतना ही प्रश्न विचाराधीन है कि वादी प्रतिवादी राजकुमार की विवाहिता पत्नी है कि नहीं और 'खर्च ये पानदान' को प्राप्त करने की अधिकारिणी है कि नहीं। जब उत्तरवादी सं० १ और २ भी पक्ष बन जाँयगें तो उपर्युक्त प्रश्नों के साथ साथ उत्तरवादी सं० ३ की संपदा पर उत्तराधिकार के अधिकार पर भी निर्णय देना होगा जिससे वाद मूल और वाद प्रकृति दोनों बदल जायँगी।

उत्तरवादी सं० १ और २ का कहना है कि यह निर्णय विवाह अधिक्षेत्र (मैट्रिमोनियल जुरिडिक्शन) के अंतर्गत होगा जो साक्ष्य अधिनियम की धारा ४१ के अंतर्गत सर्व बंधक निर्णय (जजमेंट इन रेम) होगा

तथा वि० सा० अधिनियम की धारा ४३ के अंतर्गत भी इसका बंधन होगा। किंतु जब साजिश का होना कहा जाता है तो ऐसी स्थिति का होना असंभव है।

उत्तरवादी सं० १ और २ ने यह मानकर प्रश्न उठाया है कि उत्तरवादी सं० ३ की संपदा पर उनका अधिकार है किंतु यह बात गलत है। मुसलमान विधि में ऐसा कोई अधिकार नहीं है। केवल उसी स्थिति में संपदा पर उनका अधिकार होगा जब कि उत्तरवादी सं० ३ की मृत्यु के बाद वे जीवित रहें और यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है केवल तभी उनके उत्तराधिकार के अधिकार का प्रश्न उठता है और वह भी जितने उत्तराधिकारी मृत्यु के समय जीवित रहेंगे उनकी संख्या पर निर्भर करेगा।

उत्तरवादी सं० १ और २ की ओर से कहा गया कि जब कभी उपर्युक्त परिस्थिति में उत्तराधिकार का प्रश्न उठा तो उस समय हम यह नहीं कह सकते कि अपील-कर्ता उत्तरवादी सं० ३ की विवाहिता पत्नी नहीं है। उनका कहना है कि धारा ४३ के अंतर्गत इस निर्णय का बंधन हम पर होगा। यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती कारण कि यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तरवादी सं० १ और २ अपीलकर्ता और उत्तरवादी सं० ३ के क्रमानुसार माध्यम से दावेदार हैं। यदि मान भी लिया जाय कि ऐसी घोषणा का बंधन उन पर होगा तो भी उनको पक्ष बनाने में कोई औचित्य नहीं है कारण कि वाद में प्रमुख विषय विवाह है न कि उत्तराधिकार। यदि उत्तरवादी सं० १ और २ की बात मान ली जाय तब तो किसी भी मुकदमे में कोई भी आकर कह सकता है कि यों तो इस समय हमारे विरुद्ध वाद-मूल (काज आफ ऐक्शन) नहीं है किंतु हमें पक्ष बनाने की अनुमति इसलिए प्रदान की जाय कि इसमें की डिग्री का बंधन प्राङ्न्याय (रेस जुडिकेटा) के आधार पर हम पर होगा।

धारा ४२ के अंतर्गत घोषणा (डिक्लेरेशन) न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है किंतु यह विवेक न्यायिक विवेक होना चाहिए। इस मामले में वादी के पक्ष में

घोषणा दी जानी चाहिए कारण कि प्रतिवादी की अभिस्वीकृति (एकनालेजमेंट) है कि विवाह हुआ है। अपीलकर्ता इस अभिस्वीकृति पर निर्भर कर सकती है क्योंकि मुसलमान विधि में अभिस्वीकृति की मान्यता है तथा इससे विवाह की वैधता की अभिधारणा होती है। यदि बाद में कभी विवाद हो तो जो लोग विवाह की वैधता को इनकार करना चाहेंगे वे इस अभिधारणा (प्रेजंप्शन) के विरुद्ध प्रमाण दे सकते हैं। इस समय घोषणा देने में कोई अन्य बात रह नहीं जाती जिससे निर्णय पूर्ण न होता हो।

आ० १ नि० १० में है कि पक्ष बनाने की अनुमति तभी देना चाहिए जब कि बिना पक्ष के आए वाद के सभी प्रश्नों का निर्वर्तन पूर्णरूपेण नहीं हो सकता है। इस मामले में जब उत्तरवादी सं० १ और २ के बिना पक्ष बने ही वाद का निर्णय पूर्णरूपेण हो सकता है तो नीचे के न्यायालय ने स्वविवेक के आधार पर यदि इन्हें पक्ष बनाने की अनुमति दिया तब भी सर्वोच्च न्यायालय इसमें हस्तक्षेप कर सकता है।

वादपत्र में कहीं नहीं है कि उत्तरवादी सं० १ और २ अपीलकर्ता की सामाजिक स्थिति से इनकार करते हैं। ऐसी बात अपीलकर्ता ने केवल उत्तरवादी सं० ३ के प्रति कहा। उत्तरवादी सं० १ और २ का इस वाद से कुछ संबंध नहीं है। यदि वादी के पक्ष में घोषणा हो जाती है तब भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यह केवल कल्पना पर निर्भर करता है कि घोषणा कर देने पर वाद में वादशीलता बढ़ेगी। न्यायालय ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। यदि उत्तरवादी सं० १ और २ को पक्ष बनने का अवसर प्रदान किया गया तो यह व्य० प्र० संहिता के आ० १ नि० १० के प्रतिकूल पड़ेगा तथा विशिष्ट साहाय्य अधिनियम की धारा ४२ के अभिप्राय के अनुसार नहीं होगा। ऐसी घोषणा मुसलमान विधि के द्वारा अनुमित भी नहीं है।

अतः मैं अपील स्वीकार करूँगा कारण कि नीचे के दोनों न्यायालयों का यह निष्कर्ष गलत है कि इस मामले में आ० १ नि० १० लागू होता है।

न्यायालय द्वारा—अपील उत्सर्जित की जाती है। परिव्यय (कास्ट्स) नीचे के न्यायालय के निर्णय पर निर्भर करेगा।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ सर्वो० न्या० ९१

(नागपुर से)

३१ मार्च १९५८

बी० पी० सिनहा, एस० जफर इमाम और के० सुब्बा राव न्यायमूर्तिगण

श्रीमती कमलावती तथा अन्य — अपीलकर्ता

वि०

शिवशंकर दयाल तथा अन्य — उत्तरवादीगण

व्यवहार अपील सं० ११४।१९५४

हिंदू विधि—विधवा—अध्यर्पण (सरेंडर) और आंशिक आत्मविलोपन (सेल्फ इफेसमेंट)

न्यायमूर्ति एस० जे० इमाम—

नागपुर उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है जिससे नीचे के न्यायालय का निर्णय अंशतः उलट दिया गया था।

मुसम्मात जोतकुँवर ने १९०६ में अपनी लड़की जीराबाई और लड़की के तीन लड़कों के पक्ष में एक हस्तांतरण विलेख (डाकूमेंट) लिखा। लड़कों के नाम मथुरा, वृंदावन और ननकइया थे। जीराबाई और उनके तीनों लड़कों का हस्तांतरण की हुई संपत्ति में प्रत्येक का ¼ हिस्सा था। ननकइया की मृत्यु हो गई।

उसके बाद उस संपत्ति पर जीराबाई और उनके दोनों लड़कों का नाम चढ़ा। इसके बाद वृंदावन और मथुरा प्रसाद दोनों मर गए। मथुरा प्रसाद अविवाहित था। वृंदावन की विधवा पत्नी केवल बच रही जिसका नाम रामदुलारी था। वृंदावन के हिस्से पर उसकी विधवा रामदुलारी का नाम चढ़ा तथा मथुरा प्रसाद के हिस्से पर जीरादेई के पति पदुमनाथ का नाम चढ़ा। अतः इस प्रकार संपत्ति तीन भागों में बँटी; १/३ पदुमनाथ को, १/३ जीरादेई को और १/३ रामदुलारी को। इसके बाद जीरादेई की भी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कई मुकदमे चले। अंत में निर्णय हुआ कि २/३ भाग पर पदुमनाथ का नाम चढ़ जाय और १/३ भाग पर रामदुलारी का। पदुमनाथ ने अपने भाग के १/२ का दान अपनी पुत्री कमलाबाई के पक्ष में कर दिया जो कि आरंभिक वाद में प्रतिवादी है।

श्रीमती जोतकुँवर के पति के भाई रामप्रसाद के पुत्र शिवशंकर दयाल ने यह वाद निवेशित किया है।

वादी का कहना है कि जोतकुँवर ने जो हस्तांतरण विलेख लिखा था वह दान (गिफ्ट) था न कि प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) के पक्ष में अध्यर्पण (सरेंडर); अतः श्रीमती जोतकुँवर के बाद हम संपत्ति के अधिकारी हुए कारण कि उनकी मृत्यु के बाद दान (गिफ्ट) लागू नहीं हो सकता।

अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने निर्णय दिया कि:—(१) श्रीमती जोतकुँवर ने अपना पूर्ण विलोप (इफेसमेंट) संपूर्ण संपदा से कर दिया है तथा (२) कमला बाई और रामदुलारी संपत्ति के प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) में थीं और इसलिए वादी का वाद कालबाधित (बार्ड बाई लिमिटेशन) है।

अन्वीक्षा न्यायालय ने वाद उत्सर्जित कर दिया।

अपील करने पर उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया। उच्च न्यायालय का विचार था कि श्रीमती जोतकुँवर ने जिस विलेख का निष्पादन किया वह रघुराई, उसके पति की संपूर्ण संपदा का अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं था। हम लोगों ने उस विलेख को देखा और अपीलकर्ता की बात सुनी। हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय का निर्णय सर्वथा ठीक है। विलेख (डाकूमेंट) को देखने से पता चलता है कि जोतकुँवर को जो संपदा उसके पति से मिली थी उन सबका उसने अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं किया। उसने ६१·५ एकड़ की सीर पर खेती करने का अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया था। ६१·५ एकड़ की भूमि जो उसने अपने लिये रखा था वह बहुत ही अधिक थी इसलिए अध्यर्पण (सरेंडर) पूर्ण नहीं है। जोतकुँवर और उनकी लड़की जीराबाई के आत्म विलोचन (सेल्फ इफेसमेंट) का कोई परिणाम तब निकलता जब कि आत्मविलोपन पूर्णरूपेण होता और रघुराई की सारी संपदा का होता। आंशिक आत्म-विलोपन का यदि ठीक अर्थ किया जाय तो यह अध्यर्पण (सरेंडर) नहीं होता। ६१·५ एकड़ का उसी शर्त पर जीराबाई और उसके तीनों पुत्रों को परवर्ती परिदान (गिफ्ट) इस मामले में कोई परिवर्तन नहीं करता क्योंकि न तो १६०६ का विलेख और न तो बादवाला परिदान (गिफ्ट) वैध अध्यर्पण होता है।

यदि वैध अध्यर्पण नहीं हुआ और रघुराई की संपदा की त्वरिताति (ऐक्सिलरेशन) नहीं हुई तो इस मामले में प्रतिकूल धारण (ऐडवर्स पोजेशन) का कोई प्रश्न नहीं पैदा होता। जोतकुँवर की मृत्यु पर ही यह संपदा निकटतम जीवित प्रत्यावर्ती (रिवर्सनर) में निहित होती है। जोतकुँवर की मृत्यु के कुछ ही महीने बाद यह वाद विवेशित कर दिया गया अतः यह अवधि बाधित नहीं है।

तदनुदार अपील उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

———

इसकी सूचना किसी समर्थ अधिकारी को दी भी नहीं जा सकती थी। अभियुक्तों ने अपनी बचत के अधिकार की सीमा का उल्लंघन नहीं किया।

इस प्रसंग में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि मारपीट में कोई पक्ष अपने उस अधिकार की रक्षा के लिये लड़ रहा है जिसका वह पहले से उपभोग कर रहा है या वह उस संपत्ति के लिये लड़ने आया है जिसे वह अपनी समझता है किंतु धारण में नहीं है या उपभोग नहीं कर रहा है। यदि स्थिति बादवाली हो तो आत्मप्रतिरक्षा का अधिकार नहीं मिल सकता किंतु पहले प्रकार की स्थिति में आत्मप्रतिरक्षा का अधिकार है।

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे की संपत्ति को उसकी भूमि पर अनधिप्रवेश करके लेना चाहता है और यह काम चोरी या आपराधिक अनधिप्रवेश का हो जाता है तब जिसका धारण है वह जबतक अनधिप्रवेश जारी है तब तक परिस्थिति के अनुकूल चोट पहुँचा करके भी रक्षा करने का अधिकारी है। ऐसी स्थिति में वह कोई अपराध नहीं करता। दंड संहिता धारा ९५ के अंतर्गत आत्मप्रतिरक्षा के सिद्धांत के अंतर्गत यह आ जाता है। किंतु दूसरी ओर जब अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) या चोर ने अपना काम कर लिया है और जिस व्यक्ति का अधिकार था उसने ऐसे काम में स्वीकृति दे दी तो जिस व्यक्ति का उस संपत्ति पर अधिकार था उसे आत्मप्रतिरक्षा (सेल्फ डिफेंस) का यह अधिकार नहीं है कि धारण (पोजेशन) प्राप्त करने के लिये वह उस चोर या अनधिप्रवेशी को चोट पहुँचावे। जो संपत्ति चोरी करके या लूट करके ले जाई जा रही हो उसे पुनः पकड़ लेने का अधिकार धारा १०५ के अंतर्गत दिया गया है क्योंकि पकड़ना या पुनःपकड़ लेना एक ही व्यवहार में आता है। किंतु उस परिस्थिति में जब कि अपराध कर दिया गया है और संपत्ति हटा ली गई है तो कुछ समय का अंतर देकर उसके स्वामी का या उसके स्वामी की ओर से पुनः पकड़ने का काम चाहे जिस आधार पर उचित ठहराया जाय किंतु वह संपत्ति की प्रतिरक्षा के अधिकार में नहीं आ सकता।

भारतीय दंड संहिता की धारा १०५ के अंतर्गत जिस प्रत्यादान (रिकवरी) की चर्चा है वह प्रतीत होता है कि तत्क्षण प्रत्यादान के लिये है या उस समय तक के लिये है जब तक कि अपराधी अपराध करने के बाद लौटकर अपने अंतिम स्थान को पहुँच न गया हो। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १९२६ लाहौर ७४, ए० आई० आर० १९४५ नागपुर २६६ हैं।

यह मारपीट जिस परिस्थिति में हुई उसमें अभियुक्तों को यह अधिकार था कि अपनी और अपनी संपत्ति की रक्षा करें परंतु अधिकार के लिये आवश्यकता से अधिक हानि न पहुँचाई जाय। भारतीय दंड संहिता की धारा १०३ के अंतर्गत संपत्ति की व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार, धारा ९९ के प्रतिबंधों के साथ होना चाहिए।

यहाँ अभियुक्तों ने आत्म प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया। विद्वान् सत्र न्यायाधीश का साक्ष्य मूल्यांकन गलत था कि यह पता नहीं चलता कि किस पक्ष ने पहले हमला किया। बहस के लिये यदि यह मान भी लिया जाय कि विद्वान् सत्र न्यायाधीश का उपर्युक्त निष्कर्ष ठीक था तब भी इस न्यायालय द्वारा प्रभु वि० सम्राट—१९४१ ए० एल० जे० ६१९ में निश्चित किए हुए सिद्धांत पर अभियुक्तों को छोड़ देना चाहिए। इसमें निर्णय हुआ था कि उस परिस्थिति में जहाँ अभियुक्त द्वारा दंड संहिता के किसी सामान्य अपवाद का आश्रय लिया जाता है और इस बात की पुष्टि में साक्ष्य दिया जाता है। किंतु इस साक्ष्य के परीक्षण पर न्यायालय यदि सकारात्मक ढंग से इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता है कि अभियुक्त का मामला सामान्य अपवाद में आता है फिर भी संपूर्ण साक्ष्य के परीक्षण के बाद यदि न्यायालय को इस बात में युक्तिसंगत संदेह रहता है कि अभियुक्त उस अपवाद के लाभ का अधिकारी है कि नहीं तो अभियुक्त को दोषमुक्ति (ऐक्युटल) का अधिकार है।

इस मामले की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा समस्त साक्ष्यों के परीक्षण के बाद हमारा निष्कर्ष है कि अभियुक्त आत्मप्रतिरक्षा के संरक्षण को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। इसलिए कोई भी अभियुक्त दं० संहिता की

धारा ३४ के साथ धारा ३०२, या धारा ३०४ या धारा ३२३ के अंतर्गत अपराधी सिद्ध नहीं हो सकता। परिणामतः राज्य की अपील सं० १७३६।१९५५ उत्सर्जित की जाती है और दो अपीलें सं० ११६०।१९५५ और १३६३।१९५५ स्वीकार की जाती है।

सिद्धनाथ राय की धारा ३०४ भाग १ और धारा ३२३ के अंतर्गत तथा रघुपति राय, राम जतन राम और बेलाल की धारा ३२३ के अंतर्गत दोषसिद्धि और दंडादेश निराकृत किया जाता है। वे जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है तथा उनकी जमानत और बंधपत्र (बांड्स) हटा दिए जाते हैं।

———

विधि पत्रिका १९८० (१९५८) इला० उच्च न्या० १६०

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू

एस० ए० सं० ३५४।१९५० फरवरी ११।१९५७

मुसम्मात महमुदुन्निसाँ — वादी अपीलकर्ता

विरुद्ध

मेहरबान हुसेन — प्रतिवादी उत्तरवादी

झाँसी के व्यवहार न्यायाधीश श्री एस० पी० राय के निर्णय दिनांक २८-११-४९ के विरुद्ध द्वितीय अपील

मुसलमान विधि—तारुण्य विकल्प (आप्शन आफ प्यूबर्टी) - विवाह निष्पत्ति (कंजूमेशन आफ मैरेज) कब होती है—यदि विवाह की निष्पत्ति नहीं हुई है तो पत्नी को विवाह विच्छेद का अधिकार है।

न्यायमूर्ति गुर्टू—

अपीलकर्ता ने एक वाद निवेशित किया था उसी की यह द्वितीय अपील है। वादी अपीलकर्ता का कहना था कि मेरे पिता ने मेरा विवाह १५ वर्ष की आयु से पहले कर दिया था और मैंने अपनी आयु के अठारहवें वर्ष से पहले ही विवाह विच्छेद कर दिया है और यह कि विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) नहीं हुई।

उसके पति का प्रतिवाद (डिफेंस) में कहना था कि वादी विवाह के समय १६ वर्ष से ऊपर थी और विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) हो चुकी है।

अन्वीक्षा न्यायालय (ट्रायल कोर्ट) का निष्कर्ष था कि वादी विवाह के समय १३½ वर्ष की थी और उसके पति की आयु ३४ या ३५ वर्ष की थी और विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) नहीं हुई और इसलिए उसे विवाह विकल्प (आप्शन आफ प्यूबर्टी) का अधिकार है।

नीचे के न्यायालय का निर्णय था कि:—

१—अन्वीक्षा न्यायालय (ट्रायल कोर्ट) ने प्रतिवादी के बारे में जो बात कही है उससे यही आता है कि उसने अवश्य ही विवाह की निष्पत्ति कर ली होगी चाहे वह लड़की की इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हुई हो।

२—विवाह के समय वादी की आयु १५ वर्ष से अधिक थी कारण कि 'निकाह' रजिस्टर में उसकी आयु १६ वर्ष लिखी है।

३—वादी अफजल हुसेन की लड़की नहीं है वरन् यह अफजल हुसेन की दूसरी स्त्री की लड़की है जो उसके पहले के पति से पैदा हुई है इसलिए उसकी आयु अवश्य ही अधिक होगी।

४—वादी और अफजल हुसेन ने वादी के जन्म के समय के विषय में सर्वथा विरोधी बातें बतलाई हैं।

५—वादी की माता का परीक्षण होना चाहिए था जो न्यायालय के सामने आकर कहती कि वादी अफजल हुसेन से ही पैदा हुई है न कि उसके पहले के पति से।

६—आयु के बारे में लड़की की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए थी।

मेरे विचार से यह निष्कर्ष गलत है कारण कि:—

१—लड़की ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से संभोग की स्वीकृति नहीं दी। इन परिस्थितियों में पति का अपनी पत्नी से संभोग करना ही पत्नी को १८ वर्ष की आयु से पहले संबंध विच्छेद करने के अधिकार को समाप्त नहीं करता। पत्नी को अपने इस

अधिकार से वंचित करने के लिये यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उसने अपनी इच्छा से संभोग करने की अनुमति दी। जब तक लड़की ने ऐसा नहीं किया है तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि विवाह की निष्पत्ति (कंजूमेशन) हुई है। विवाह की निष्पति का तात्पर्य होता है कि स्वतंत्र इच्छा के प्रयोग के बाद निष्पत्ति हो। विवाह की निष्पत्ति का अर्थ यह नहीं है कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध या बलपूर्वक संभोग किया जाय। अभिलेख पर इस बात का प्रमाण है कि लड़की के शरीर पर घावों के चिह्न थे अतः इस संबंध में नीचे के न्यायालय का यह निष्कर्ष ठीक था कि संभोग स्त्री की इच्छा के विरुद्ध हुआ।

२—'निकाह' रजिस्टर में उसकी आयु १६ वर्ष की लिखी है। इसको अफजल हुसेन (वादी के पिता) ने स्पष्ट किया है कि विवाह के समय हमने समझा था कि शारदा अधिनियम में कम से कम आयु १६ वर्ष की ही है इसीलिए मैंने १६ वर्ष लिखाया। यह संभव प्रतीत होता है। इसकी संभवना इसलिए और बढ़ जाती है कि इतनी कम आयु की लड़की का विवाह इतनी अधिक आयु के पुरुष के साथ जब हो रहा है तो लड़की का पिता स्वभावतः यह चाहेगा कि लड़की आयु अधिक बताई जाय ताकि पत्नी और पति की आयु की असमानता कुछ कम हो जाय। इसलिए लड़की की आयु अधिक नहीं प्रतीत होती।

३—अफजल हुसेन की पुत्री होने पर लिखित प्रतिवाद (रिटेन स्टेटमेंट) में कहीं आपत्ति नहीं की गई है। वह लड़की (वादी) जब साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष आई थी तो उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि "मेरी एक दूसरी बहन है जो मेरी माता की पुत्री है तथा उसके दूसरे पति से है", इससे यह स्पष्ट है कि वादी अपनी माता के पहले पति से नहीं पैदा हुई है।

४—लड़की और लड़की के पिता के कथन में जो अंतर है वह इसलिए है कि पिता लड़की के जन्म के १५ वर्ष के बाद साक्ष्य देने के लिये आया है इसलिए थोड़ा बहुत अंतर पड़ जाना अस्वाभाविक नहीं है।

यह अंतर उसके पिता के प्रति परीक्षण (क्रास एक्जाविनेशन) में स्पष्ट भी हो चुका है और इस प्रकार दोनों में कोई विरोध नहीं आता।

५—जब यह झगड़ा था ही नहीं की वादी अफजल हुसेन की लड़की है कि नहीं तो यह उसका (वादी का) कर्तव्य नहीं था कि इस संबंध में अपनी माता का साक्ष्य दिलवाती। उसकी माता का साक्षी के रूप में न आने से लड़की के विरुद्ध कोई अभिधारणा नहीं जा सकती।

६—लड़की की डाक्टरी परीक्षा की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि आयु को बतलाने के लिये यों तो डाक्टर विशेषज्ञ हैं फिर भी वे सर्वथा ठीक ठीक आयु बतलाने में असमर्थ होते हैं। अतः डाक्टरी परीक्षण न होने से वादी के विरुद्ध कोई बात नहीं निकाली जा सकती।

अतः हम वादी और उसके साक्षियों का कथन मानते हैं और प्रतिवादी तथा उसके साक्षियों की बात अस्वीकार करते हैं। इन परिस्थितियों में हमारा निष्कर्ष है कि विवाह के समय लड़की की आयु १५ वर्ष से कम थी और विधि के अभिप्राय के अनुसार जब विवाह की निष्पत्ति नहीं हुई तो मेरे विचार से वादी को सफल होना चाहिए। तद्नुसार मैं नीचे के न्यायालय की डिग्री को निराकृत करता हूँ और अन्वीक्षा न्यायालय की डिग्री को पुनर्स्थापित करता हूँ। परिव्यय (कास्ट्स) के लिये कोई आदेश नहीं होगा।

—अपील स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० १६१

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ४०२४।१६५६—

३ सितंबर १६५८

नंदकिशोर तथा अन्य — प्रार्थीगण

विरुद्ध

किराया नियंत्रण अधिकारी, कानपुर तथा अन्य—विपक्षीगण

उ० प्र० (अस्थायी) किराया नियंत्रण तथा

अधिनिष्कासन नियम (यू० पी० टेंपोररी) कंट्रोल आफ रेंट ऐंड एविक्शन रूल्स), ४—'स्वामी' (लैंडलार्ड) में धारण सहित बंधकी (मारगेजी) भी आता है।

न्यायमूर्ति धावन—

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत कानपुर के किराया नियंत्रण अधिकारी के विनियोजन (अलाटमेंट) के आदेश को अभिखंडित करने के लिये यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है। किराया नियंत्रण अधिकारी ने अपने प्रश्नगत् आदेश द्वारा यह मकान विश्वनाथ (उत्तरवादी सं० २) को दे दिया था।

प्रार्थी का कहना है कि यह मकान पहले सूरजकली का था और उसने इसका फलोपभोगी बंधक (युजुफ्रक्चुअरी मारगेज) हमारे पक्ष में कर दिया था। प्रार्थी का कहना है कि इस बंधक के आधार पर मैं जब धारण में आया तो उस समय उस मकान में एक दूसरा किरायादार रहता था। प्रार्थी नंदकिशोर उससे किराया वसूल करता रहा। कुछ समय के बाद उस किरायादार ने मकान छोड़ दिया और प्रार्थी के कहने के अनुसार उसने इसकी सूचना किराया नियंत्रण अधिकारी (रेंट कंट्रोल आफिसर) को दे दी किंतु मकान खाली होने की इस सूचना प्राप्ति के ३० दिन के भीतर उक्त अधिकारी ने इसका विनियोजन (अलाटमेंट) नहीं किया।

इसके पश्चात् १३ जून १९५६ को प्रार्थी नंदकिशोर ने किराया नियंत्रण और अधिनिष्कासन नियम के नियम चार के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करके प्रार्थी सं० २ बद्री प्रसाद को मनोनीत किया।

किराया नियंत्रण निरीक्षक ने जाँच करके प्रतिवेदन दिया कि बद्री प्रसाद की आवश्यकता वास्तविक है।

८ अगस्त १९५६ को किराया नियंत्रण अधिकारी ने एक सप्रतिबंध आदेश पारित किया जिससे मकान का कुछ भाग विश्वनाथ (उत्तरवादी सं० २) को दिया गया और कुछ के बारे में निदेश किया गया कि वह मकान मालिक के लिये छोड़ दे।

प्रार्थी ने इसका विरोध किया और जिलाधीश के यहाँ प्रतिनिवेदन किया। जिलाधीश ने किराया नियंत्रण अधिकारी को इस पर पुनः विचार करने का निदेश किया। इस पर किराया नियंत्रण अधिकारी ने अपना विचार प्रकट किया कि नंदकिशोर बंधकी (मारगेजी) है इसलिए वह किराया नियंत्रण नियम ४ का अधिकार नहीं रखता। इसी आदेश से असंतुष्ट होकर प्रार्थी ने अनु० २२६ के अंतर्गत उसके अभिखंडन के लिये प्रार्थना पत्र निवेशित किया है।

यहाँ विचाराधीन प्रश्न यही है कि बंधकी (मारगेजी) क्या नियम ४ के अनुसार "स्वामी" (लैंडलार्ड) समझा जा सकता है? "स्वामी" शब्द की परिभाषा धारा २ सी० में दी गई है कि कोई व्यक्ति जिसे निवास स्थान के लिये किरायादार द्वारा किराया देय होता है और इसमें उस व्यक्ति का अभिकर्ता, (एजेंट) प्राभिकर्ता, (अटार्नी) उत्तराधिकारी और अभिहस्तांकिती (असाइनी) भी संमिलित है।

प्रार्थी फलोपयोगी बंधकी है, मकान के धारण में है और किरायादारों से किराया वसूल करता है। अतः वह नियम ४ द्वारा 'स्वामी' को दिए हुए अधिकार का अधिकारी है। इस संबंध में किराया नियंत्रण अधिकारी का विचार गलत है।

किंतु उत्तरवादी सं० २ के विद्वान् वकील का कहना है कि बंधक विलेख की वास्तविकता पर दोनों पक्षों में झगड़ा है। शपथपत्र के कुछ परिच्छेद दिखलाए गए कि उत्तरवादी ने बंधक को वास्तविक नहीं माना है। उनका कहना है कि किराया नियंत्रण अधिकारी को इस तथ्य पर विचार करना चाहिए था किंतु ऐसा न करके उन्होंने केवल एक ही प्रश्न पर निर्णय दिया कि बंधकी के अधिकार के बल पर वह नियम ४ का लाभ नहीं उठा सकता।

दोनों पक्षों के वकील इस बात पर सहमत हैं कि तत्व पर निर्णय देने के लिये इसे प्रतिप्रेषित कर दिया जाय।

अतः मैं किराया नियंत्रण अभिकारी के आदेश को अभिखंडित करता हूँ और इसे उनके पास लौटा देता हूँ। वे इस प्रश्न का निर्णय इस आधार पर करेंगे कि फलोपभोग के लिये धारण में रहनेवाला बंधकी नियम चार के लाभ का अधिकारी है। उत्तरवादी सं० २ को अधिकार होगा कि वह वहाँ पर बंधक की वास्तविकता पर प्रश्न उठाये।

ऐसी परिस्थिति में परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १६३

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख ८३४।१९५६

३० जुलाई १९५८

श्री श्यामनारायण सिंह तथा अन्य— प्रार्थीगण

वि०

एस० डी० ओ० चुनार (मिर्जापुर जिले के गाँव पंचायत के चुनाव के लिये चुनाव न्यायाधिकरण का काम करते हुए) तथा अन्य विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम, १९४७ धारा १२ (सी०) और नियम २४-कई व्यक्तियों के चुनाव पर आपत्ति करने के लिये मिश्रित (कंपोजिट) प्रार्थनापत्र निवेशित करने की अनुमति नहीं है।

न्यायमूर्ति धावन—

प्रार्थी ने पंचायत राज अधिनियम की धारा १२ सी० के अंतर्गत चुनाव याचिका निवेशित की थी।

इस चुनाव याचिका के संशोधन के लिये प्रार्थियों ने अनुमति माँगी थी किंतु एस० डी०ओ० ने इसे अस्वीकार कर दिया। एस० डी० ओ० के इस आदेश को अभिखंडित करने के लिये उत्प्रेषण लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

शपथपत्र में कहा गया कि प्रार्थीगण निर्वाचक हैं और गाँव सभा का चुनाव १९५५ में हुआ जिसमें उत्तर वादी सं० २ सभापति चुना हुआ घोषित हुआ तथा २३ सदस्य निर्वाचित घोषित हुए। इस पर आपत्ति करने के लिये चुनार के एस० डी० ओ० के यहाँ चुनाव याचिका निवेशित की गई थी। एस० डी० ओ० यहाँ उत्तरवादी सं० १ हैं। प्रार्थियों का कहना है कि यह चुनाव याचिका पंचायत राज नियमों के नियम २४ के साथ पठित उपबंध के अंतर्गत निवेशित की गई थी। उनका कहना है कि इस पर दो आरंभिक आपत्तियाँ उठाई गईं:—

१—ऐसा मिश्रित प्रार्थनापत्र नहीं दिया जा सकता जिसमें कई चुनावों पर जैसे प्रधान और सदस्यों के चुनाव पर एक ही प्रार्थनापत्र में आपत्ति हो।

२—केवल एक ही प्रतिभूति (सेक्योरिटी) जमा की गई है।

प्रार्थियों का कहना है कि जब एस० डी० ओ० ने अपना विचार व्यक्त किया कि यह चुनाव याचिका नियमानुकूल नहीं है तो प्रार्थियों ने प्रार्थना की कि प्रधान को उत्तरवादियों में से हटाने की अनुमति दी जाय और इस प्रकार चुनाव याचिका का संशोधन हो। विद्वान एस० डी० ओ० ने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इसी के विरुद्ध प्रार्थनापत्र है।

प्रार्थी के विद्वान वकील का कहना है कि एस० डी० ओ० का यह आदेश गलत है कारण कि प्रार्थीगण ने किसी विशेष व्यक्ति के चुनाव पर आपत्ति नहीं की है वरन् समस्त चुनाव पर ही आपत्ति की गई है कि यह ठीक से नहीं हुआ। उनका कहना है कि धारा १२ सी० के अंतर्गत चुनाव याचिका किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होती वरन् सारे चुनाव के विरुद्ध होती है और चुनाव के अवैध होने के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति का चुनाव

निराकृत होता है। धारा १२ सी० की ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती।

उस धारा में है कि—"प्रधान के पद के लिये किसी "व्यक्ति" का चुनाव......।" इसको नियम २४ के साथ पढ़ना चाहिए। नि० २४ में है कि:—"उत्तरवादी का चुनाव......" इत्यादि। इस प्रकार धारा १२ (सी०) में शब्द "व्यक्ति" है और नियम २४ में शब्द 'उत्तर वादी' एकवचन में है ऐसा नहीं है कि—"उत्तरवादी या उत्तरवादियों का चुनाव"।

विद्वान् वकील ने सामान्य वाक्यांश अधिनियम (जनरल क्लाज़ेज़ ऐक्ट) की धारा १३ (२) के आधार पर कहा कि उत्तरप्रदेश के अधिनियमों में जहाँ एक वचन प्रयुक्त है वहाँ बहुवचन का अर्थ हो सकता है और बहुवचन का एकवचन। किंतु उसी में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि विचाराधीन अधिनियम के प्रसंग और विषय के अनुसार उपर्युक्त अर्थ से यदि कोई विरोधी बात आती हो तो वह लागू नहीं होगा।

गाँव सभा के चुनाव संबंधी उपबंधों से यह स्पष्ट है कि सदस्यों का चुनाव व्यक्तिगत रूप से होता है सामुहिक रूप से नहीं। प्रत्येक अभ्यर्थी (कैंडिडेट) के पक्ष में दिए हुए मतदान की गणना अलग अलग होती है, इन सबसे प्रतीत होता है कि चुनाव एक नहीं होता।

प्रार्थियों के विद्वान् वकील का कहना है कि अनाधिकार दबाव डालकर चुनाव का सारा वातावरण ही दूषित कर दिया गया था इसलिए चुनाव की सारी कार्यवाही प्रभाव-शून्य है और उसे निराकृत कर देना चाहिए। किंतु जब प्रार्थी से चुनाव याचिका की प्रतिलिपि माँगी गई कि न्यायालय उसे देखे कि दबाव किस प्रकार डाला गया था तो उसकी कोई प्रतिलिपि नहीं मिली इसलिए इस आपत्ति पर कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (रिप्रेंजेंटेशन आफ पीपुल्स ऐक्ट) के सहारे विद्वान वकील ने अपनी इस बात का समर्थन करना चाहा कि एक चुनाव याचिका में कई अभ्यर्थियों के चुनाव पर आपत्ति की जा सकती है किंतु यह बात मानी नहीं जा सकती जब तक कि यह न दिखलाया जाय कि उक्त अधिनियम और पंचायत राज अधिनियम समान हैं। पंचायत राज अधिनियम के भीतर ही इस अधिकार को ढूँढ़ना चाहिए। इसके समर्थन में ए० आई० आर० १६५४ सर्वो० न्या० २१० है कि चुनाव को अभिखंडित करने के लिये परिनियम की व्याख्या बहुत कड़ाई से करनी चाहिए।

यदि बहस के लिये मान भी लिया कि चुनाव एक होता है तब भी कठिनाई है क्योंकि प्रधान का चुनाव और सदस्यों का चुनाव एक प्रकार का नहीं होता। सदस्यों का चुनाव क्षेत्र के आधार पर होता है पर, प्रधान का चुनाव सभी क्षेत्रों को मिलाकर होता है।

नियम है कि चुनाव याचिका ५) प्रतिभूति (सेक्योरिटी) के साथ निवेशित किया जाय। यहाँ प्रार्थी ने एक से अधिक चुनाव याचिका निवेशित की परंतु केवल ५) जमा किया। परंतुक (प्राविजो) में है कि चुनाव याचिका यदि प्रतिभूति के साथ न हों तो उसे लिया नहीं जाना चाहिए। एस० डी० ओ० किसी भी समय इसे उत्सर्जित कर सकते हैं और यही एस० डी० ओ० ने किया भी।

विद्वान् वकील का इस प्रसंग में कहना है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) इसमें लागू होती है और उसके अनुसार कई वादमूल (काज आफ ऐक्शंस) एक साथ मिलाए जा सकते हैं। उक्त संहिता के अंतर्गत भी न्यायालय के समक्ष वस्तुओं से न्यायालय को संतुष्ट करना पड़ता है कि कतिपय वादमूल मिलाए जा सकते हैं। हमारे सामने कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिससे समझा जा सके कि संयुक्त (ज्वांइडर) करने के लिये यह स्थिति उपयुक्त है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के उपबंध की तरह पंचायत राज अधिनियम की धारा १२ सी० के अंतर्गत भी इसके और नियम २४ की शर्तों का पालन न करने से चुनाव याचिका का उत्सर्जन ठीक है। चुनाव याचिका में बल नहीं है और उत्सर्जित की जाती है। बहस कई दिन तक हुई इसलिए मैं ३००) परिव्यय का अनुमान करता हूँ।

चुनावयाचिका अस्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० १६५

न्यायमूर्ति उपाध्याय

एस० ए० सं० १५०९।१६५४—२७ अगस्त १६५८

भगवानदास वादी अपीलकर्ता

विरुद्ध

श्री गंगा प्रसाद उत्तरवादी

व्यवहार अपील सं० १६३।१६५३ में बनारस के अतिरिक्त व्यवहार न्यायाधीश श्री आर० एस० सिंह के निर्णय दिनांक २४ मई १६५४ के विरुद्ध द्वितीय अपील

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १६०८ धारा ३७— 'अपील के अधिक्षेत्र' (अपीलेट जुरिडिक्सन) शब्द में पुनरीक्षण अधिक्षेत्र भी संमिलित है।

न्यायमूर्ति उपाध्याय—

उच्च न्यायालय ने एक पुनरीक्षण (रिवीजन) की सुनवाई में परिव्यय (कास्ट्स) का आदेश पारित किया था उसी डिग्री के निष्पादन (एक्जीक्यूशन) के संबंध में निर्णीत ऋणी (जजमेंट डेटर) की यह अपील है।

डिग्री के निष्पादन (एक्जीक्यूशन) के संबंध में निर्णीत ऋणी की आपत्ति थी कि मुंसिफ के न्यायालय को डिग्री के निष्पादन का अधिकार नहीं है। यह आपत्ति व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ के अंतर्गत की गई थी। नीचे के दोनों न्यायालयों ने इस आपत्ति को नहीं माना।

विद्वान् वकील ने यहाँ व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ और ३७ का अभिदेश किया और कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक निर्णय ए० आई० आर० १६४४ कलकत्ता ३०१ पर निर्भर किया।

व्य० प्र० संहिता की धारा ३८ इन शब्दों में है:—

"३८—डिग्री का निष्पादन या तो जिस न्यायालय ने इसे पारित किया है उस न्यायालय द्वारा हो सकता है या उस न्यायालय द्वारा जिसमें यह निष्पादन के लिये भेजी गई हो"।

इसके पहले की धारा ३७ में "न्यायालय जिसने डिग्री पारित की है" पद की व्याख्या की गई है कि जहाँ अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत डिग्री पारित की गई है वहाँ पहलेवाला न्यायालय (कोर्ट आफ द फर्स्ट इंस्टेंस) भी इसमें संमिलित है, इत्यादि।

विद्वान् वकील का कहना है इस डिग्री को उच्च न्यायालय ने अपने व्यवहार पुनरीक्षण अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित किया है इसलिए केवल उच्च न्यायालय ही इसका निष्पादन कर सकता है। कहा गया है कि धारा ३७ का कोई लाभ नहीं है क्योंकि जिस डिग्री को उच्च न्यायालय ने अपने अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित किया है उसी का निष्पादन पहलेवाला न्यायालय (कोर्ट आफ द फर्स्ट इंस्टेंस) कर सकता है, इस मामले का निष्पादन नहीं कर सकता क्योंकि यह डिग्री पुनरीक्षण (रिवीजन) अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित की गई है।

यों तो अपील और पुनरीक्षण अधिक्षेत्र में अंतर होता है किंतु अपील के अधिक्षेत्रवाली डिग्री के निष्पादन का अधिकार अन्वीक्षा न्यायालय को क्यों दिया गया है और पुनरीक्षण की डिग्री के निष्पादन का अधिकार क्यों नहीं दिया गया इस अंतर के लिये विद्वान् वकील ने कोई कारण नहीं बतलाया।

धारा ३७ के अंतर्गत अपील के अधिक्षेत्र का विस्तृत अर्थ होता है। आक्सफोर्ड शब्दकोश में 'अपील' की परिभाषा दी गई है कि यह मुकदमें को नीचे के न्यायालय से ऊपर के न्यायालय में भेजना है ताकि पहले का निर्णय या तो उलट दिया जाय या उसमें संशोधन कर दिया जाय। उसी शब्दकोश में 'अपील के न्यायालय' की परिभाषा दी गई है कि नीचे के न्यायालयों द्वारा पहले सुनवाई किए हुए मामलों की फिर से सुनवाई करना। इसी प्रकार हार्टन के "ला लेक्सिकन" तथा स्टोरी के अपील के अधिक्षेत्र की परिभाषा से यहीं आता है कि इसका अर्थ संकुचित नहीं वरन् विस्तृत होता है और इतना विस्तृत होता है कि इसमें पुनरीक्षण अधिक्षेत्र भी आ जाता है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय का उपर्युक्त निर्णय इस

मामले के निर्वर्तन के लिये सहायता नहीं दे सकता कारण कि उसमें जो डिग्री दी गई थी वह उस प्रार्थनापत्र की अस्वीकृति में थी जिसके द्वारा प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति माँगी गई थी। वह डिग्री परिव्यय की थी। इसलिए उसमें यह निर्णय ठीक ही दिया गया था कि यह डिग्री अपील के अधिक्षेत्र के अंतर्गत पारित नहीं हुई है इसलिए अलीपुर के अवरिक न्यायाधीश (सबआर्डिनट जज) को डिग्री के निष्पादन का अधिकार नहीं है।

इस मामले के लिये उपयुक्त रूलिंग आई० एल० आर० २२ मद्रास ६८ है। पूर्ण न्यायासन के समक्ष ऐसा ही मामला सुनवाई में था और उसमें निर्णय हुआ था कि अपील के अधिक्षेत्र का अर्थ विस्तृत होता है और इसमें पुनरीक्षण की सुनवाई और निर्णय का अधिकार भी संमिलित है।

अतः नीचे के न्यायालयों का निष्कर्ष ठीक था। इस न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में पारित डिग्री के निष्पादन का अधिकार विद्वान् मुंसिफ को है।

अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १६६

मुख्य न्यायाधिपति मूथम और एस० पी० श्रीवास्तव न्यायमूर्ति

एस० सी० ए० सं० ६०।१९५७— ४ मार्च १९५८

उत्तर प्रदेश राज्य तथा अन्य— अपीलकर्तागण

वि०

मुहम्मद इब्राहीम — उत्तरवादी

भारतीय संविधान; अनुच्छेद १३२ और १३३— पुलिस अधिनियम धारा ७ - पुलिस विनियम (पुलिस रेगुलेशस) ४८९ से ४९ - पुलिस विनियम के अंतर्गत दी हुई प्रक्रिया (प्रोसीजर) का पालन आवश्यक है किंतु अनुच्छेद १३२ और १३३ के प्रमाणपत्र देने के लिये उसमें औचित्य नहीं है।

मुख्य न्यायाधिपति मूथम—

यह सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति के लिये प्रार्थनापत्र है। इस न्यायालय ने २ अप्रेल १९५७ को एक आदेश पारित किया था उसी से असंतुष्ट होकर उ० प्र० सरकार सर्वोच्च न्यायालय में अपील निवेशित करना चाहती है।

उत्तरवादी पुलिस विभाग में थानेदार था। उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार और कर्तव्यच्युत होने के संबंध में कई आरोप लगे थे। उसकी जाँच पुलिस के अधीक्षक ने की कि ५ आरोप में से चार तो पूर्णरूपेण प्रमाणित हैं और एक आंशिक प्रमाणित है। चार आरोपों के संबंध में पुलिस अधीक्षक के निष्कर्ष को पुलिस उप महानिरीक्षक (डेप्यूटी इंसपेक्टर जनरल आफ पुलिस) ने मान लिया और उत्तरवादी को पदच्युत कर दिया।

इस आदेश के विरुद्ध उत्तरवादी की पुलिस महा निरीक्षक के यहाँ अपील भी उत्सर्जित कर दी गई। तब उत्तरवादी ने राज्य सरकार के यहाँ इस आदेश के पुनरीक्षण के लिये प्रार्थनापत्र दिया किंतु कोई परिणाम न निकला।

इस न्यायालय ने कहा कि यों तो साधारणतया पुलिस के अनुशासन के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया जाता पर लेख (रिट) जारी करने का निदेश किया गया जिसके द्वारा पुलिस महानिरीक्षक का आदेश अभिखंडित कर दिया गया। यही आदेश इस प्रार्थनापत्र का विषय है।

प्रार्थियों की ओर से कहा गया कि विभागीय जांच पूर्ण रूपेण विभागीय होती है और न्यायाधिकरण को अधिकार है कि जिस किसी पर वह अपना निष्कर्ष आधारित करना चाहे कर सकता है और इसमें सुना

साक्ष्य (हीयर से इविडेंस) और वह विलेखीय साक्ष्य भी आ सकता है जिसकी वास्तविकता का स्थिरीकरण नहीं हुआ है। इसके समर्थन में १६१५ ए० सी० १२०, ए० आई० आर० १६५४ इलाहाबाद ६२६ का प्रमाण दिया गया।

उत्तरवादी की पदच्युति का आदेश और अंततोगत्वा उसका स्थिरीकरण सब पुलिस अधिनियम की धारा ७ के अंतर्गत हुआ। पुलिस अधिनियम की धारा ७ में है कि इसकी प्रक्रिया के संबंध में राज्य सरकार द्वारा समय समय पर बनाए हुए नियमों का पालन करना चाहिए। और इसमें संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश पुलिस विनियम (उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशंस) उसी धारा के अंतर्गत विभागीय अन्वीक्षा (ट्रायल) के लिये बनाए गए हैं। हम सोचते हैं कि धारा ७ के अनुसार जो दंड देने का अधिकार है वह विभागीय जाँच के समय इन नियमों के उपबंधों के पालन करने पर निर्भर करता है।

हमारा निष्कर्ष है कि ये नियम इस बात को पूर्णतया स्पष्ट करते हैं कि सुना साक्ष्य (हीयर से एविडेंस) अप्रतिग्राह्य (इनऐडमिसिबुल) है। वे विलेख जो लोक अभिलेख (पब्लिक रिकार्ड्स) की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ हैं या औपचारिक प्रकृति के हैं या जो स्वीकार कर लिए गए हैं उनको छोड़कर और सभी को यदि प्रदर्श (एक्जिबिट) बनाने का विचार हो तो उनका प्रमाणित होना आवश्यक है।

प्रश्नगत् आदेश में इस न्यायालय का कहना था कि उत्तरवादी के वे सब कार्य जिनका किया जाना न्यायाधिकरण ने सत्य माना था वह निर्णय सब अप्रतिग्राह्य साक्ष्य पर अवलंबित था और इसीलिए वह निष्कर्ष मान्य नहीं हो सकता था।

पुलिस विनियम के अंतर्गत विभागीय जाँच के समय प्रक्रिया के पालन करने का प्रश्न यों तो महत्वपूर्ण है किंतु हमें इसकी विधिक स्थिति के बारे में ऐसा कोई संदेह नहीं है जिसके कारण संविधान के अनुच्छेद १३२ या १३४ के अंतर्गत इस न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र देने में औचित्य हो। इसलिए प्रार्थनापत्र परिव्यय (कास्ट्स) के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

——

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इलाहाबाद उच्च न्या० १६७

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

आपराधिक पुनरीक्षण सं० ३४६।१६५८–जून ३ १६५८

दीपनारायण तथा अन्य— (प्रार्थीगण)
वि०
राज्य–द्वारा चिंतामणि पांडेय— विपक्षी

इलाहाबाद के अतिरिक्त जिलाधीश के आदेश दिनांक २१-१-१६५८ के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण

दंड प्रक्रिया संहिता (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) १८६८ धारा ३४४—अभियुक्त साक्षियों के परीक्षण के लिये मामले को यदि स्थगित कराना चाहता हो तो मजिस्ट्रेट परिवादी (कंप्लेनेंट) को परिव्यय (कास्ट्स) दिला सकता है।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव

कोई चिंतामणि पांडेय दीपनारायण तथा अन्य अभियुक्तों का अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धा० ३२५, ३२३ (धारा ३४ के साथ पठित) के अंतर्गत कर रहा था। अभियोजन (प्रासिक्यूशन) की ओर से साक्ष्य दिया गया और अपनी बचत में अभियुक्तगण साक्ष्य दे रहे थे। अभियुक्तों की बचत में साक्ष्य देने के लिये कई बार मामला स्थगित हुआ था और ६ नवंबर १६५७ को उन्हें अंतिम बार बतला दिया गया कि अब मुकदमे की सुनवाई स्थगित नहीं की जायगी। सुनवाई की दूसरी तिथि २० नवंबर पड़ी किंतु उस दिन इस

मामले को नहीं लिया गया। और २९ नवंबर निश्चित हुआ। उस दिन केवल एक साक्षी ने बचत (डिफेंस) में साक्ष्य दिया और अन्य साक्षियों के परीक्षण के लिये एक प्रार्थनापत्र दिया गया। प्रार्थनापत्र के अनुसार यह १० दिसंबर के लिये स्थगित कर दिया गया किंतु इस बीच भी बचत के साक्षियों को बुलाने के लिये कोई कार्यवाही नहीं की गई और जब १० दिसंबर को मुकदमे की पुकार हुई तो अभियुक्त ने पुनः स्थगित करने का प्रार्थनापत्र दिया।

विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस पर लिखा कि अभियुक्तों को अपनी बचत में साक्षियों के परीक्षण करने का अवसर कई बार दिया गया किंतु उस तिथि को एक भी साक्षी उपस्थित कराने के लिये कोई भी कार्यवाही नहीं की गई। फिर भी मजिस्ट्रेट ने उन्हें एक अवसर इस शर्त पर दिया कि वे लोग परिव्यय (कास्ट्स) का २५) परिवादी (कंप्लेनेंट) को दें।

इस आदेश के विरुद्ध अभियुक्तों ने अतिरिक्त जिलाधीश के यहाँ पुनरीक्षण निवेशित किया किंतु उन्होंने उस आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। इसलिए उन्होंने इस न्यायालय में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट का आदेश निराकृत कर दिया जाय और उन्हें बिना २५) परिव्यय दिए हुए अपनी बचत के साक्षियों को उपस्थित करने का अवसर प्रदान किया जाय।

परिवादी (कंप्लेनेंट) की ओर से संबंधित आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र दं० प्र० संहिता की धारा ५६१ ए० के अंतर्गत दिया गया है कि इस मुकदमे के निर्णय में व्यर्थ ही देर हो रही है इसलिए पुनरीक्षण का निर्णय चाहे जिस प्रकार का हो शीघ्र किया जाय।

इसमें दो प्रश्न पैदा होते हैं:—

१—परिव्यय (कास्ट्स) दिलाने का अधिकार क्या मजिस्ट्रेट को था?

२—मुकदमे की परिस्थिति विशेष को देखते हुए परिव्यय दिलानेवाले आदेश में क्या औचित्य है?

मुकदमें को स्थगित करने के लिये प्रार्थनापत्र और उसकी स्वीकृति दं० प्र० सं० की केवल धारा ३४४ के अंतर्गत ही दी जा सकती है। इस धारा के उपवाक्य (१ ए०) में हैं उपयुक्त कारण रहने पर मजिस्ट्रेट मुकदमें की सुनवाई समय समय पर स्थगित कर सकता है और यदि चाहे तो इसके लिये प्रतिबंध भी लगा सकता है। इसलिए अभियुक्तों ने यदि स्थगित करने का प्रार्थनापत्र दिया तो उसे मजिस्ट्रेट को शर्त के साथ स्वीकार करने में कोई रुकावट नहीं है जिसमें परिव्यय (कास्ट्स) का लगाना भी संमिलित है।

इस विषय पर कुछ निर्णय हुए हैं (ए० आई० आर० १९५२ नागपुर १ और ए० आई० आर० १९५७ कलकत्ता ६८३) जिसमें कहा गया है कि यों तो परिव्यय अभियुक्तों को दिलाया जा सकता है किंतु स्वतः अभियुक्तों को परिव्यय (कास्ट्स) देने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

किंतु उपर्युक्त मुकदमो की परिस्थितियाँ वर्तमान मामले से भिन्न थीं। उन मुकदमों में जब स्थगित करने के लिये अभियुक्तों की ओर से प्रार्थनापत्र दिया गया था तो उस समय अभियुक्त उपस्थित नहीं थे इसीलिए उन मुकदमों में निर्णय हुआ था कि जब अभियुक्तों की अनुपस्थिति में मुकदमें की सुनवाई नहीं हो सकती तो किसी भी रूप में मुकदमा स्थगित ही होता अस्तु अभियुक्तों को बाध्य करने का प्रश्न नहीं उठता कि वे परिवादी (कंप्लेनेंट) को परिव्यय (कास्ट्स) दें।

इस मामले में स्थगित करने के लिये जब प्रार्थनापत्र दिया गया तो अभियुक्त उपस्थित थे और चाहते थे अपने साक्षियों के परीक्षण के लिये इसे स्थगित किया जाय। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट स्थगित करने के लिये बाध्य नहीं था और अभियुक्त यदि चाहते थे कि उन्हें अवसर मिले तो मजिस्ट्रेट को यह अधिकार था कि वह जैसा उचित समझे शर्त लगावे। अतः मजिस्ट्रेट को परिव्यय (कास्ट्स) लगाने का अधिकार था।

जब १० दिसंबर के लिये मामला स्थगित हुआ था तो अभियुक्तों ने इस बात के लिये शपथपत्र निवेशित

किया है कि हमने विधा शुल्क (प्रोसेस फी) दिया है किंतु अभिलेख पर इसका कोई प्रमाण नहीं है।

परिस्थितियों को देखते हुए २५) परिव्यय (कास्ट्स) बहुत अधिक नहीं है।

विद्वान् मजिस्ट्रेट का आदेश ठीक है और उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

पुनरीक्षण अस्वीकार किया जाता है फिर भी अभियुक्तगण यदि अभी परिव्यय दे दें तो मजिस्ट्रेट साक्षियों के बुलाने की अनुमति देंगे और यदि साक्षी उपस्थित होते हैं तो उनका परीक्षण भी करेंगे।

मजिस्ट्रेट के पास अभिलेख आगे की कार्यवाही के लिये तुरत भेज दिए जाँय।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १६६

लखनऊ न्यायासन

बी० मुकर्जी और एन० मुल्ला न्यायमूर्तिगण

आपराधिक पुनरीक्षण सं० २४।१९५८—१ मई १९५८।

उत्तर प्रदेश राज्य — प्रार्थी

वि०

सत्यनारायण तथा अन्य — विपक्षी गण

लखनऊ के व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश श्री ए० सी० बंसल के आदेश दिनांक १० जनवरी १९५८ के विरुद्ध पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र

अपराधिक विधि संशोधन अधिनियम (क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट) १९५२ धारा ६ (ए) सरकार का विज्ञप्ति द्वारा व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश को एक विशेष मामले की अन्वीक्षा (ट्रायल) के लिये नियुक्त करना वैध नहीं है।

न्यायमूर्ति मुकर्जी —

श्री ए० सी० बंसल व्यवहार तथा सत्र न्यायाधीश आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम (क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट) १९५२ के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे। इसी नियुक्ति संबंधी श्री बंसल के आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र है।

राज्य सरकार ने दो विज्ञप्तियाँ जारी की थीं। सरकार की पहली विज्ञप्ति द्वारा बंसल को लखनऊ के बंदीगृह से भगे हुए मामले (सं० ५।५७ राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा १६ अन्य) की अन्वीक्षा करने के लिये विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया गया। यह मुकदमा विभिन्न अधिनियमों की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत था।

दूसरी विज्ञप्ति द्वारा उन्हें निदेश किया गया कि वे इसकी अन्वीक्षा (ट्रायल) 'माडल बंदीगृह' लखनऊ के भीतर करें।

श्री बंसल के समक्ष कुछ बंदियों ने आपत्ति उठाई कि दूसरी विज्ञप्ति सरकार के शक्ति परस्तात् (अल्ट्रावारस) है क्योंकि सरकार को यह अधिकार नहीं था कि वह उपर्युक्त मुकदमे की सुनवाई करने के संबंध में निदेश करती कि श्री बंसल उसकी सुनवाई लखनऊ के एक बंदीगृह के भीतर करें। बंदियों का कहना था कि बंदीगृह के भीतर मुकदमे की सुनवाई होने में उन्हें बहुत हानि है क्योंकि कोई भी बड़ा वकील उनकी ओर से होकर बंदीगृह के भीतर जाना चाहेगा तथा इस संबंध में उन्होंने कहा कि और भी अनेक कठिनाइयाँ हैं।

इस प्रश्न पर विद्वान् न्यायाधीश ने विचार किया और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सरकार की विज्ञप्ति दं० प्र० संहिता की धारा ९ (२) के अंतर्गत दिए हुए अधिकार से बाहर है और इसकी प्रकृति विभेदकारी है तथा संविधान के अनुच्छेद १४ के अधिकार के विरुद्ध पड़ती है। विद्वान् न्यायाधीश ने कहा कि बंदीगृह में अन्वीक्षा होने से बंदियों को बहुत ही कठिनाई है। अंत में उनका निष्कर्ष था कि प्रश्नगत् विज्ञप्ति विधि विरुद्ध तथा शक्ति परस्तात् (अल्ट्रावारस) है।

इस आदेश से असंतुष्ट होकर राज्य सरकार ने इस न्यायालय में पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र निवेशित किया है। सरकार की ओर से कहना है कि राज्य सरकार को दं० प्र० संहिता की धारा ९ (२) के अंतर्गत इस प्रकार की विज्ञप्ति जारी करने का अधिकार है, इससे कोई विभेद करण नहीं होता और बंदीगृह में सुनवाई होने से अभियुक्तों को कोई हानि नहीं है। सरकार के वकील का कहना है कि किसी अभियुक्त का यह मौलिक अधिकार (फंडामेंटल राइट) नहीं है कि उसकी अन्वीक्षा किसी स्थान विशेष पर ही हो। किंतु यह बात अभियुक्तों ने नहीं कही है। अभियुक्तों का कहना केवल यही है कि एक ही परिस्थिति में जिस प्रकार अन्य अभियुक्तों की अन्वीक्षा होती है उससे भिन्न रूप में हमारी अन्वीक्षा (ट्रायल) नहीं होनी चाहिए।

इस प्रसंग में यह बात महत्वपूर्ण है कि जब हम लोगों ने विचार करके देख लिया है कि श्री बंसल की विशेष न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति अवैध है तो जिस मामले की सुनवाई के लिये वे विशेष न्यायाधीश नियुक्त हैं उसकी सुनवाई कहाँ पर हो, इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है।

श्री बंसल की नियुक्ति जैसा हमने देख लिया है आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा ६ (१) के अंतर्गत हुई है। उक्त उपबंध का अभिप्राय है कि यदि आवश्यक हो तो विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति ऐसे "क्षेत्र या क्षेत्रों" के लिये की जा सकती है जो विज्ञप्ति में दिए जायँगे। अर्थात् विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति उपबंध के अंतर्गत विशिष्ट "क्षेत्र या क्षेत्रों" के लिये ही की जा सकती है; यह नियुक्ति किसी विशेष मुकदमे की सुनवाई के लिये या मुकदमों के किसी समूह की सुनवाई के लिये नहीं की जा सकती।

प्रश्नगत् विज्ञप्ति द्वारा श्री बंसल की नियुक्ति किसी क्षेत्र के लिये नहीं हुई थी। उनकी नियुक्ति मुकदमा सं० ५।५७ राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा १९ अन्य लोगों की ही सुनवाई के लिये हुई थी। यह मुकदमा किसी "क्षेत्र या क्षेत्रों" से अपना तनिक भी संबंध नहीं दिखलाता है और ऐसे संबंध की चर्चा विज्ञप्ति में नहीं है।

सरकार के विद्वान् वकील ने इस कमी को माना है। यह कमी हमारे विचार से विज्ञप्ति के केवल स्वरूप (फार्म) की कमी नहीं है वरन् यह न्यायालय के अधिक्षेत्र को ही समाप्त कर देती है कारण कि विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति सिवा "क्षेत्र या क्षेत्रों" के संबंध में किसी अन्य बात के लिये हो ही नहीं सकती।

पहली विज्ञप्ति द्वारा श्री बंसल की विशेष न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति अवैध है इसलिए श्री बंसल मुकदमा सं० ५।५७ की सुनवाई विशेष न्यायाधीश के पद से नहीं कर सकते। इस प्रकार जब उनकी नियुक्ति ही अवैध है तो हमारा निष्कर्ष है कि दूसरी विज्ञप्ति द्वारा जो उन्हें बंदीगृह में सुनवाई करने के लिये कहा गया था वह प्रभावशून्य है।

बंदियों के विद्वान् वकील ने विज्ञप्ति के 'वीरस' पर निर्णय देने का अनुरोध किया है किंतु यह सिद्धांत निश्चित हो चुका है कि न्यायालय किसी अधिनियम या विज्ञप्ति के 'वीरस' पर निर्णय तब तक नहीं देती जब तक कि वह, जो पक्ष सहायता (रिलीफ) चाहता है उसको प्रदान करने के लिये अत्यंत आवश्यक न हो। यहाँ केवल यही सहायता माँगी गई है कि सुनवाई बंदीगृह में न हो। हमारे विचार से उस पक्ष को यह सहायता मिल गई है। कारण कि जिस व्यक्ति को न्यायाधीश के पद से बंदीगृह में सुनवाई करनी थी वह अब हमारे उपर्युक्त निर्णय के अनुसार नहीं कर सकता।

बहस सुनने के बाद चूँकि हमारा विचार ऐसा निर्णय देने का है जो उन अभियुक्तों के विरुद्ध नहीं है जिनकी ओर से इसमें कोई वकील नहीं था या जो अभियुक्त स्वतः इसकी सुनवाई के समय उपस्थित नहीं थे इसलिए हम इनकी आवश्यकता नहीं समझते कि अभियुक्तों को बुलाया जाय और उनकी बहस सुनी जाय।

उपर्युक्त कारणों से हम यह पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र उत्सर्जित करते हैं और निदेश करते हैं कि श्री बंसल मुकदमा सं० ५।५७, राज्य वि० अब्दुल रहमान तथा अन्य जो विभिन्न अधिनियमों की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत हैं उसकी सुनवाई पहली विज्ञप्ति १३-१२-१९५७ के आधार पर नहीं करेंगे।

पुनरीक्षण उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उ० न्या० १७१

न्यायमूर्ति जे० के० टंडन

सोनपाल गुप्त — प्रार्थी

वि०

आगरा विश्वविद्यालय तथा अन्य— विपक्षीगण

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ३१०४।१६५७ दिनांक १-४-१६५८

भारतीय संविधान अनुच्छेद २२६—स्वाभाविक न्याय—प्रार्थी ने परीक्षा में अवैध साधनों का प्रयोग किया—उप कुलपति ने एकपक्षीय प्रशासकीय आदेश द्वारा उसे परीक्षा से रोक दिया—यदि उसके विरुद्ध समस्त बातों से बिना उसे अवगत कराए बयान देने को कहा गया तो यह स्वाभाविक न्याय का पालन करना नहीं हुआ।

आदेश—

प्रार्थी आगरा विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी था। वह आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० भाग १ परीक्षा १६५३-५४ में उत्तीर्ण हुआ। भाग २ की परीक्षा के लिये उसने १६५६-५७ में अध्ययन आरंभ किया। अप्रैल १६५७ में वह बी० ए० की अंतिम परीक्षा के लिये बैठा। उसकी परीक्षा सभी प्रश्न पत्रों में हुई किंतु उसका परीक्षाफल रोक लिया गया और जुलाई १६५७ में विश्वविद्यालय से उसे सूचना मिली कि उसकी परीक्षा निरसित (कैंसेल) कर दी गई है और उसे विश्वविद्यालय की १६५८ की परीक्षा से भी रोक दिया गया है क्योंकि १६५७ की परीक्षा में उसने अवैध साधनों का प्रयोग किया था।

तत्संबंधी तथ्य इस प्रकार हैं कि १६५७ की परीक्षा में वह चिट लेकर नकल करता हुआ वीक्षक (इन विजिलेटर) द्वारा पकड़ा गया और जब वीक्षक ने उसे बयान देने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। वीक्षक (इनविजिलेटर) ने उस चिट के साथ विश्वविद्यालय को इसका प्रतिवेदन दिया और सामान्य क्रम में विश्वविद्यालय ने परीक्षक से इस मामले की जाँच की। परीक्षक ने भी प्रतिवेदन दिया कुछ प्रश्नों के उत्तर नकल किए हुए प्रतीत होते हैं। परीक्षक और वीक्षक के प्रतिवेदन अन्य कागजपत्रों के साथ उपकुलपति के समक्ष रखे गए और उन्होंने निर्णय दिया कि प्रार्थी के भाग २ की परीक्षा का फल निरसित (कैंसेल) कर दिया जाय और उसे विश्वविद्यालय की १६५८ की परीक्षा से रोक दिया जाय।

वीक्षक के समक्ष बयान देने से इनकार करनेवाली बात को प्रार्थी ने स्वीकार नहीं किया है किंतु इस संबंध में विपक्षीगण की ओर से शपथपत्र निवेशित किया गया है और इसलिए हम मानते हैं कि प्रार्थी ने बयान देने से इनकार कर दिया।

प्रार्थी का कहना है कि उपकुलपति ने बिना उसकी बात सुने उसके विरुद्ध जो आदेश पारित किया है वह स्वाभाविक न्याय के विरुद्ध है इसलिए उत्प्रेषण-लेख (रिट आफ सेर्टियोरेरी) जारी करके उस आदेश को अभिखंडित किया जाय।

विश्वविद्यालय ने इस बात को नहीं माना है कि प्रार्थी को अपनी बात कहने का उचित अवसर नहीं दिया गया था। विश्वविद्यालय की ओर से कहा गया कि परीक्षा के सहायक अधीक्षक (असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट आफ एक्जामिनेशंस) ने प्रार्थी से कहा था कि वह अपना बयान दे किंतु उसने इनकार कर दिया इसलिए प्रार्थी को जो अवसर प्रदान किया गया था उसने उसका लाभ स्वयं ही नहीं उठाया।

प्रार्थी के विरुद्ध उपकुलपति ने जो आदेश दिया था वह यों तो प्रशासकीय आदेश था किंतु प्रार्थी का कहना है कि प्रशासकीय आदेश का परिणाम यदि परीक्षार्थी के प्रति बहुत ही बुरा है और इसके प्रभाव से जब प्रार्थी का भावी जीवन ही नष्ट कर हो रहा है तो प्रशासकीय आदेश देने के पहले उप कुलपति के लिए यह अनिवार्य था कि स्वाभाविक न्याय के निमित्त प्रार्थी को अपनी बात कहने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करते।

विश्वविद्यालय की ओर से इसका उत्तर यही दिया जाता है कि प्रार्थी को उपयुक्त अवसर दिया गया था और यदि उसने इसका लाभ नहीं उठाया तो इससे स्वाभाविक न्याय में कोई बाधा नहीं पड़ी।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी को अपनी बात कहने का अवसर दिया था, यह मैं मानता हूँ किंतु विश्व-विद्यालय की ओर से जो शपथपत्र निवेशित किया गया है उससे यह पता नहीं चलता कि परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी का ध्यान उसके लिखे हुए उत्तर की ओर और चिट की ओर दिलाया था कि नहीं या अन्य तथ्य को उसके समक्ष रखा था कि नहीं। इस प्रकार प्रार्थी से जो व्याख्या माँगी गई थी वह स्पष्ट नहीं है कि किस प्रकृति की थी। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि उससे बयान देने को कहा गया था पर उसने इनकार कर दिया।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने अपना प्रतिवेदन दिया, परीक्षक ने अपना प्रतिवेदन दिया और इन्हीं प्रतिवेदनों के आधार पर उप कुलपति ने प्रश्नगत् आदेश पारित किया था किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि बाद में होनेवाली इन सब कार्यवाहियों से प्रार्थी अवगत था।

इसमें संदेह नहीं कि उपकुलपति प्रश्नगत् आदेश इस तथ्य के आधार पर पारित कर सकते थे कि प्रार्थी ने बयान देने से इनकार कर दिया—पर इसमें दो कमी है। पहली यह कि पता नहीं चलता कि उससे जो व्याख्या माँगी गई थी उसकी प्रकृति क्या थी और दूसरी यह कि किसी को अपनी बात कहने का उपयुक्त अवसर प्रदान करना तभी कहा जाता है जब कि उसके विरुद्ध सभी बातें उसके समक्ष स्पष्ट रूप से रख दी गई हों। परीक्षक का प्रति-वेदन और परीक्षा के सहायक अधीक्षक के प्रतिवेदन से प्रार्थी कभी अवगत हुआ ही नहीं।

परीक्षा के सहायक अधीक्षक ने प्रार्थी को जो अव-सर प्रदान किया था वह स्वाभाविक न्याय के लिये पर्याप्त नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उपकुलपति का प्रश्नगत् आदेश एक पक्षीय (एक्सपार्टी) आदेश के समान था और चूँकि उससे स्वाभाविक न्याय नहीं हुआ इसलिए वह आदेश अनुरुण नहीं रह सकता।

अतः उपर्युक्त निष्कर्ष के आधार पर उपकुलपति का प्रश्नगत् आदेश अभिखंडित किया जाता है। परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उ० न्या० १७२

न्यायमूर्ति एस० एस० धावन

व्यवहार प्रकीर्णक लेख सं० ३३५२।१९५६

२५ अगस्त १९५८

राम सिंह तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

अतिरिक्त आयुक्त (अडिशनल कमिश्नर) मेरठ तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम १९५०, धा० १२ और १३ सहायक (असिस्टेंट) कलक्टर द्वारा पारित किसी भी आदेश की अपील हो सकती है।

न्यायमूर्ति धावन—

सहायक कलक्टर (असिस्टेंट कलक्टर) ने प्रार्थियों को भूमिधरी सनद जारी किया था। बाद में जब इस प्रश्न पर विवाद उठा तो सहायक कलक्टर ने आदेश दिया कि सनद ठीक रूप से जारी की गई है। इस आदेश के विरुद्ध अपील होने पर अतिरिक्त आयुक्त ने भूमिधरी सनद निरसित (कैंसल) कर दिया और सहायक कलक्टर के आदेश को निराकृत किया। राजस्व मंडल में अपील की गई पर वह सरसरी तौर पर उत्सर्जित कर

दी गई। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त के इसी आदेश को अभिखंडित करने के लिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

प्रार्थियों का कहना था कि हम कुछ खेतों के 'सीर' के कृषक हैं और लगान का १० गुना जमा करने के बाद हम लोगों को उन खेतों पर भूमिधरी अधिकार प्राप्त हुआ।

उत्तरवादियों ने उत्तर प्रदेश खेतिहर काश्तकार (विशेषाधिकार अवाप्ति) अधिनियम (यू० पी० ऐग्रिकल्चरल टेनेंट्स (अक्वीजिसन आफ प्रिविलेजेज) ऐक्ट १९४९ की धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के यहाँ उपर्युक्त भूमिधरी सनद को इस आधार पर निरसित (कैंसेल) करने का प्रार्थनापत्र दिया कि वह भूमि वास्तव में बाग है और धोखा देकर सनद प्राप्त की गई है।

सहायक कलक्टर ने जाँच करने के लिये एक आयोग (कमीशन) जारी किया और उसके प्रतिवेदन के आधार पर निर्णय दिया कि प्रश्नगत् भूमि बाग नहीं है तथा उसके लिये भूमिधरी सनद का जारी किया जाना ठीक है।

इस आदेश के विरुद्ध जब अतिरिक्त आयुक्त (अडिशनल कमिश्नर) के यहाँ अपील की गई तो उन्होंने निर्णय दिया कि प्रश्नगत् भूमि बाग है और इसके संबंध में सहायक कलक्टर द्वारा भूमिधरी सनद गलत जारी की गई है। उन्होंने सहायक कलक्टर का आदेश निराकृत किया और भूमिधरी सनद जो प्रार्थियों को दी गई थी उसे निरसित किया।

इसके विरुद्ध राजस्व मंडल में अपील की गई किंतु वह सरसरी तौर पर उत्सर्जित हुई। अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के अभिखंडन के लिये यह प्रार्थनापत्र निवेशित किया गया है।

प्रार्थियों के विद्वान् वकील की ओर से केवल इसी एक बात पर जोर दिया गया है कि धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के सनद को निरसित करने से इनकार करनेवाले आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित नहीं की जा सकती इसलिए अपील समर्थ नहीं थी तथा इसीलिए विद्वान् आयुक्त को प्रश्नगत् आदेश पारित करने का अधिक्षेत्र (जुरिडिक्शन) नहीं था।

ऐसा कथन मान्य नहीं हो सकता क्योंकि अधिनियम की धारा १३ (१) इन शब्दों में है :—

"१३ (१) धारा ६ की उपधारा ६ अथवा धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध आयुक्त के यहाँ अपील होगी ···।"

उपर्युक्त धारा की भाषा से यह स्पष्ट है कि सहायक कलक्टर के धारा १२ के अंतर्गत दिए गए आदेश के विरुद्ध अपील हो सकती है।

प्रार्थी के विद्वान् वकील का कहना है कि इसका तात्पर्य यह होता है कि जब सहायक कलक्टर सनद को निरसित (कैंसेल) करने का आदेश दें केवल तभी इस आदेश के विरुद्ध अपील निवेशित की जा सकती है, अन्यथा नहीं।

ऐसी बात नहीं है। यदि उपर्युक्त धारा का यही अभिप्राय होता तो उसमें के शब्द इस प्रकार होते :—

"धारा १२ के अंतर्गत सहायक कलक्टर के धारा ६ के अंतर्गत दी हुई घोषणा को निरसित करने या संशोधन करने के आदेश के विरुद्ध अपील···।" किंतु अपील का अधिकार इस प्रकार सीमित नहीं किया गया है।

चूँकि सहायक कलक्टर का अधिनियम की धारा १२ के अंतर्गत पारित आदेश धारा १३ (१) के अंतर्गत अपील करने योग्य होता है इसलिए आयुक्त को अपील की सुनवाई और तत्व पर इसके निर्वर्तन का अधिकार था।

प्रार्थनापत्र असफल होता है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित किया जाता है।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उ० न्या० १७४

प्रकीर्णक (मिसलेनियस) वाद सं० ३५६।१९५८

१८ नवंबर १९५८

श्री कामेश्वरनाथ वर्मा — प्रार्थी

वि०

वैधिकवर्ग परिषद्, उ० प्र०— विपक्षी

उ० प्र० वैधिक वर्ग परिषद् (बार कौंसिल) अधिनियम धारा ६ नि० १, परंतुक (प्राविजो) ८, 'सद्भाव से व्यवसाय किया हो' (बोनाफाइडी प्रैक्टाइज) का तात्पर्य। विधि के स्नातक (ग्रेजुएट) ने यदि जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) का काम किया है, तो उसने परंतुक ८, के अभिप्राय के अनुसार 'सद्भाव से व्यवसाय' नहीं किया।

न्यायमूर्ति राय

श्री कामेश्वरनाथ वर्मा के अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के रूप में प्रवेश पाने के संबंध में उ० प्र० वैधिक वर्ग परिषद् (बार कौंसिल) ने आपत्ति किया है जो उक्त अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत इस न्यायासन के समक्ष सुनवाई के लिये आया है।

तथ्य इस प्रकार है। श्री कामेश्वरनाथ वर्मा एल० एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद उ० प्र० सरकार के अंतर्गत जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) के पद पर नियुक्त हुए। उनका कहना है कि हमने ६ वर्ष तक सहायक जन अभियोजक का काम किया है इसलिए वैधिक वर्ग परिषद् द्वारा उक्त अधिनियम की धारा ६ के अंतर्गत बनाए गए नियमों के नियम १ के परंतुक ८ के अंतर्गत हमें अधिवक्ता के रूप में नामांकित होने का अधिकार है।

परंतुक ८ में है कि उसे प्रमाणित करना चाहिए कि उसने इलाहाबाद उच्चन्यायालय के अंतर्गत किसी एक या एक से अधिक न्यायालयों में सद्भावना से विधि व्यवसाय किया है जो तीन वर्ष से कम नहीं है। परंतुक ७ में है कि जो विधि का स्नातक नहीं है या उसने जैसा नियम में है एक वर्ष का प्रशिक्षण नहीं लिया है किंतु जो अभिवक्ता (प्लीडर) के रूप में नामांकित है और जिसने विधि व्यवसाय किया है जो १५ वर्ष से कम नहीं है तो यदि जिला न्यायाधीश ने अभिस्तावित (रेकमेंड) किया है तो वह अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के रूप में नामांकित किया जा सकता है।

परंतुक ८ का अभिप्राय है कि ऐसा व्यवसायी व्यक्ति विधिक व्यवसायी (लीगल प्रैक्टिशनर्स) अधिनियम के अंतर्गत अभिवक्ता (प्लीडर्स) के रूप में नामांकित हो और उसपर न्यायालय अनुशासन संबंधी नियंत्रण रखता हो। जन अभियोजक (पब्लिक प्रासिक्यूटर) की नियुक्ति दं० प्र० संहिता की धारा ४९२ के अंतर्गत होती है और जैसी परिभाषा संहिता की धारा ४ (आर०) में दी गई है उसके अनुसार वह अभिवक्ता (प्लीडर) में नहीं आता और न तो जन अभियोजक न्यायालय के अनुशासन संबंधी अधिक्षेत्र या नियंत्रण के अंतर्गत होता है।

जैसे किसी अधिवक्ता (ऐडवोकेट) के विरुद्ध कार्यवाही करने में उच्च न्यायालय के विवेक (डिस्क्रीशन) पर राज्य सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती उसी प्रकार जन अभियोजक के संबंध में राज्य सरकार के विवेक पर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता। दूसरे, जन अभियोजक के लिये विधि का स्नातक होना भी आवश्यक नहीं है। अधिवक्ता को नामांकित होने के पहले जिस विधिक प्रशिक्षण (लीगल ट्रेनिंग) की आवश्यकता पड़ती है उस प्रकार के प्रशिक्षणकी आवश्यकता जन अभियोजक के लिये नहीं है।

केवल इसीलिए कि वह विधि का स्नातक है उसका जन अभियोजक का काम जो वह दं० प्र० संहिता की धारा ४९३ के अंतर्गत करता है हमारे विचार से वैधिक वर्ग परिषद् अधिनियम की धारा के अंतर्गत निर्मित नियम १ के परंतुक ८ के अभिप्राय के अनुसार "सद्भावना से व्यवसाय" (बोनाफाइडी प्रैक्टिस) के समान नहीं हो सकता।

वैधिक वर्ग परिषद् की आपत्ति मान्य होती है और प्रार्थनापत्र न्यायालय नियमावली के अध्याय २४ नियम ८ के अंतर्गत अस्वीकृत समझा जायगा।

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १७५

मुकर्जी और वर्मा न्यायमूर्तिगण

आपराधिक प्रकीर्णक वाद सं० १८६२।१९५८

(१३ अक्टूबर १९५८)

श्रीमती प्रेम — प्रार्थी

वि०

जिलाधीश, मेरठ और राजपुर, देहरादून के राजकीय नारी भवन के प्रबंधक —उत्तरवादी।

अ—स्त्रियों और लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम (सप्रेशन आफ इम्मारल ट्रैफिक इन वीमेन ऐंड गर्ल्स ऐक्ट) १९५६—धारा १६ (१) की प्रकृति—मजिस्ट्रेट स्वतः पकड़ सकता है (दं० प्र० सं०, १८९८, धारा ६५)

ब—दं० प्र० सं० १८९८, धा० ५ (२)—प्रक्रिया (प्रोसीजर) के संबंध में १९५६ के उपर्युक्त अधिनियम में यदि कोई विशेष उपबंध नहीं है तो दं० प्र० संहिता के उपबंध लागू होंगे।

स—स्त्रियों और लड़कियों का अनैतिक व्यापारीय दमन अधिनियम धारा १७-मजिस्ट्रेट के जाँच करने के अधिकार में अंतरिम अभिरक्षा (कस्टडी) का भी अधिकार संमिलित है।

न्यायमूर्ति मुकर्जी—

श्रीमती प्रेम द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ के अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख (हेबियस कार्पस रिट) जारी करने की प्रार्थना की गई है।

प्रार्थी का कहना है कि मेरी आयु २४ वर्ष की है और मैं मेरठ शहर में रहकर नाचने गाने का काम करती हूँ। उसका कहना है कि २०-७-१९५८ को मेरठ की पुलिस ने मुझे पकड़ा और देहरादून के संरक्षणीय घर में भेज दिया। उसके कहने के अनुसार पुलिस ने केंद्रीय अधिनियम सं० १०४।१९५६ की धारा १६ और १७ के अंतर्गत यह कार्यवाही की किंतु उसका कहना है कि चूँकि मैं २४ वर्ष से उपर हूँ इसलिए उक्त उपबंधों के अंतर्गत नहीं आ सकती।

प्रार्थी का प्रमुख कथन है कि उसका पकड़ा जाना अवैध है क्योंकि उक्त अधिनियम के तत्संबंधी उपबंधों द्वारा नियुक्त पुलिस विशेष द्वारा वह नहीं पकड़ी गई है वरन् वह साधारण पुलिस द्वारा पकड़ी गई है।

राज्य की ओर से प्रतिशपथपत्र (काउंटर अफिडविड) मजिस्ट्रेट द्वारा निवेशित किया गया है जिससे पता चलता है कि मजिस्ट्रेट ने २० जुलाई १९५८ को उसे स्वतः पकड़ा था। मजिस्ट्रेट को कोतवाली पुलिस द्वारा सूचना मिली कि शहर के कबाड़ी बाजार गली में कुछ लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिये रखा गया है। इस पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया कि चूँकि केंद्रीय अधिनियम १०४।१९५६ के अनुसार इस जिले के लिये अभी पुलिसविशेष की नियुक्ति नहीं हुई है अतः उक्त अधिनियम की धारा १६ के अंतर्गत दिए गए अधिकार का प्रयोग मैं स्वतः करूँगा।

इस आदेश के अनुसार मजिस्ट्रेट ने सहसाक्रमण किया और वहाँ के कई कुख्यात घरों से १० लड़कियों को पकड़ा जिसमें से वर्तमान प्रार्थी भी एक थी।

मजिस्ट्रेट ने प्रार्थी को अपनी बात कहने का अवसर दिया और सुनने के बाद आदेश दिया कि यों तो प्रार्थी का कहना है कि मुझसे वेश्यावृत्ति नहीं करवाई जाती और मेरी आयु २१ वर्ष से ऊपर है किंतु स्पष्टतः यह लड़की अवयस्क (माइनर) है और कुख्यात स्थान पर रहने से उसके संबंध में वेश्यावृत्ति की अभिधारणा होती है इसलिए यह लड़की डाक्टरी परीक्षा के लिये भेज दी जाय और जब तक डाक्टरी परीक्षा नहीं हो जाती तथा जाँच पूरी नहीं हो जाती तब तक के लिये संरक्षणीय घर में रखी जाय।

डाक्टर ने प्रतिवेदन दिया कि प्रार्थी लगभग १९ वर्ष की है और इसके साथ मैथुन किया गया है। इसके बाद मजिस्ट्रेट ने आगे की जाँच के लिये इसे देहरादून के संरक्षणीय घर में भेज दिया जहाँ वह इस समय रह रही है।

मजिस्ट्रेट के शपथपत्र से यह स्पष्ट है कि प्रार्थी स्वयं मजिस्ट्रेट द्वारा पकड़ी गई जब कि मजिस्ट्रेट के साथ कुछ

पुलिस अधिकारी सहायता के लिये थे। यह भी स्पष्ट है कि जाँच होने तक प्रार्थी बंदिनी है। ये दोनों तथ्य सुसंस्थापित हैं।

प्रार्थी के विद्वान् वकील ने केवल दो आपत्तियाँ उठाई हैः—

१—केवल पुलिस विशेष ही पकड़ सकती है कोई दूसरा अधिकारी नहीं।

२—जाँच होने की अवधि तक बंदी रखना गलत है।

धारा १६ (१) के अनुसार ऐसा व्यक्ति मजिस्ट्रेट के निदेश (डाइरेक्शन) से बंदी किया जा सकता है।

मेरा निर्णय यह है कि जिस मजिस्ट्रेट को अधिकार है कि ऐसे व्यक्ति को पकड़ने के लिये पुलिस विशेष को निदेश दे उसी मजिस्ट्रेट के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि स्वतः पकड़ने का अधिकार उसे नहीं है—जो अधिकार कि दं० प्र० संहिता की धारा ६५ द्वारा मजिस्ट्रेट को प्रदान किया गया है।

केंद्रीय अधिनियम १०४।१९५६ की धारा १६(१) के अंतर्गत पकड़ने के लिये मजिस्ट्रेट को अधिपत्र (वारंट) जारी करने का अधिकार है इसलिए दं० प्र० संहिता की धारा ६५ के अंतर्गत स्वयं पकड़ने का अधिकार उसे निश्चित रूप से है। यों तो अधिनियम १०४। १९५६ थोड़ा बहुत स्वतः पूर्ण अधिनियम है फिर भी प्रक्रिया (प्रोसीजर) के संबंध में जहाँ उस अधिनियम में स्पष्ट रूप से कुछ न दिया हुआ हो वहाँ दं० प्र० संहिता की धारा ५ (२) के अनुसार दं० प्र० संहिता के उपबंध लागू होंगे।

ऐसी स्थिति में दं० प्र० सं० की धारा ५ (२) लागू होती है और धारा ६५ के अंतर्गत मजिस्ट्रेट अपने पकड़नेवाले अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार मजिस्ट्रेट द्वारा प्रार्थी का पकड़ा जाना वैध है।

दूसरी आपत्ति है कि जाँच की कार्यवाही समाप्त होने तक रोक रखना वैध नहीं है। इस विषय में उक्त अधिनियम के अंतर्गत अंतरिम अभिरक्षा (इंटरिम कस्टडी) का कोई उपबंध नहीं है फिर भी इस संबंध में यह बात महत्वपूर्ण है कि जहाँ किसी काम के करने का अधिकार दिया रहता है वहाँ उस अधिकार के अंतर्गत दूसरे वे अधिकार भी आ जाते हैं जिनका यदि प्रयोग न हो तो पहलेवाला प्रमुख कार्य संपन्न हो ही नहीं सकता।

'हैल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड' भाग ३१ (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ५०१ परिच्छेद ६४२ में तथा 'क्राफर्ड स्टेट्यूटरी कांस्ट्रक्शंस' पृष्ठ २६७ पर यही बात कही गई है। १९५८ ए० डब्ल्यू० आर० (उच्च न्यायालय) १०१ पृ० १०८ पर भी इसी बात का समर्थन है।

इस मामले में जाँच होने तक रोक रखना आवश्यक था क्योंकि इसी बीच साक्ष्य इकट्ठा किया जा सकता था और लड़की को उसी कुख्यात वातावरण में छोड़ देना उस अधिनियम के उपबंध के सर्वथा विरुद्ध होता। इस प्रकार उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर यदि मजिस्ट्रेट को जाँच करने का अधिकार दिया गया है तो उसमें आवश्यकतावश लड़की को जब तक जाँच समाप्त नहीं हो जाती तब तक के लिये रोक रखने का अधिकार संमिलित है।

हमारे विचार से प्रार्थी की अंतरिम अभिरक्षा (कस्टडी) भी वैध और उचित थी।

उपर्युक्त कारणों के आधार पर प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है किंतु परिस्थितियों को देखते हुए परिव्यय के लिये कोई आदेश नहीं दिया जाता।

अंत में आशा है कि मजिस्ट्रेट जाँच शीघ्र समाप्त करके शीघ्रातिशीघ्र प्रतिवेदन देंगे।

———

विधि पत्रिका (१९८०) १९५८ इला० उच्च न्या० ७६

न्यायमूर्ति आर० एन० गुर्टू

एस० ए० सं० २१०।१९५३–८ जनवरी १९५७

मुसम्मात सुघरा प्रतिवादी–अपीलकर्ता

विरुद्ध

फकीर मुहम्मद वादी–उत्तरवादी

कानपुर के व्यवहार (सिविल) अपील सं० ९२।

१६५२ में दिए हुए निर्णय दिनांक २४-११-१६५२ के विरुद्ध द्वितीय अपील

मुसलमान विधि —विवाह विच्छेद (डाइवोर्स) तलाकउलविद्दत—अप्रतिसंहार्यता (इरेवोकैबिलिटी) का तत्व—तलाक के संबंध में 'लीजिए' शब्द का प्रयोग विवाह विच्छेद का अप्रतिसंहार्य अभिप्राय व्यक्त करता है ।

न्यायमूर्ति गुर्तू—

अपीलकर्ता के पति ने दांपत्य अधिकार की पुनर्स्थापना के लिये एक वाद निवेशित किया था । उसी संबंध में पत्नी द्वारा यह द्वितीय अपील निवेशित की गई है ।

पति का कहना है कि श्रीमती सुघरा उसकी विवाहिता पत्नी है और विवाह होने के बाद यह उसके साथ रहती थी । उसका कहना है कि कुछ महीने हुए उसको पत्नी का पिता आया और एक समारोह का बहाना करके उसे लिवा ले गया और जब वह उसे बुलाने गया तो अपने पिता के प्रभाव में आकर आने से इनकार कर दिया ।

प्रतिवादी (डिफेंस) में कहा गया है कि वादी ने अपनी पत्नी का तलाक दे दिया है और उसके साथ निर्दयता का व्यवहार करता था ।

नीचे के न्यायालयों का निर्णय था कि वादी निर्दयता का व्यवहार नहीं करता था और तलाक देने की बात प्रमाणित नहीं हुई कारण कि उसने केवल दो बार तलाक देने की बात कही थी, तीन बार नहीं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लिये दोनों न्यायालयों ने प्रतिवादी साक्षी सुलेमान के बयान पर निर्भर किया है । सुलेमान का बयान था:—

"बसवल अदालत कहा कि वादी ने कहा था कि मैं उसको तलाक देता हूँ लीजिए—उसको तलाक देता हूँ लीजिए"

इस बात से इनकार नहीं है कि यह 'तलाक उल विद्दत' में आता है और यह तलाक केवल एक ही बार की अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) द्वारा दिया जा सकता है बशर्ते कि उससे विवाह विच्छेद का निश्चय स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो और वह "तहर" के बीच में हुआ हो । जैसे पति कह सकता है कि "मैं अप्रतिसंहार्य (इरेवोकेबुल) रूप से तलाक देता हूँ" इत्यादि । तात्पर्य है कि उसी अधिघोषणा में अप्रतिसंहार्यता का तत्व वर्तमान रहना चाहिए ।

साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उसकी पत्नी क्षय रोगों से पीड़ित थी और वह अपनी पत्नी से असंतुष्ट रहता था । ऐसी परिस्थिति में उसका कहना कि मैं तलाक देता हूँ लीजिए इस बात का द्योतक है कि वह 'लीजिए' शब्द द्वारा अप्रतिसंहार्य रूप से विवाहविच्छेद करना चाहता था । यही नहीं उसने दूसरी बार भी 'लीजिए' शब्द द्वारा अपने उपर्युक्त निश्चय की पुष्टि किया । उसका विचार यदि तलाक देने का न होता तो दूसरी बार वह 'लीजिए' शब्द न कहता वरन् इस पर पुनः विचार करता । नीचे के न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और तत्संबंधी साक्ष्य का गलत अर्थ लगाया । सुलेमान के प्रथम वाक्य का प्रभाव है कि अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) अप्रतिसंहार्य हो गई । ए० आई० आर० १६२६ पटना ८१ (पूर्णन्यायासन) में निर्णय हुआ था कि इस बात के प्रमाण का भार पति पर होता है कि जिस समय तलाक के संबंध में अधिघोषणा (प्रोनाउंसमेंट) की गई थी उस समय पत्नी 'तहर' की अवस्था में थी । पति ने यह प्रमाण नहीं दिया है । इस मामले में "तलाकउलविद्दत" की शर्तों के पालन पर विचार नहीं हुआ है और न्यायालय ने 'लीजिए' शब्द के प्रभाव पर विचार नहीं किया है ।

तदनुसार अपील स्वीकार की जाती है नीचे के दोनों न्यायालयों की डिग्री निराकृत की जाती है और वादी का वाद उत्सर्जित किया जाता है । अपना अपना परिव्यय पक्षों पर रहेगा ।

अपील स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० उच्च न्या० १७८

लखनऊ न्यायासन (बेंच)

मुल्ला और निगम न्यायमूर्तिगण आपराधिक प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० ४१७।१९५७—१२ अगस्त १९५८

दीवान दुर्गादास — प्रार्थी

वि०

श्री बी० आर० किशोर तथा अन्य— विपक्षीगण

अ—व्यवहार—वकील के बयान को मान लेने की परंपरा पर निर्भर करना सुरक्षित नहीं है—प्रत्येक तथ्य के लिये जिनपर कि न्यायालय का निर्णय निर्भर करता है शपथपत्र (अफिडविट) माँगना चाहिए।

ब—दंड संहिता, १८६० धारा १९९—पक्ष अपने वकील को जो सूचना देता है वह दांडिक कार्यवाही (पेनल प्रासीक्यूशन) का आधार नहीं हो सकता

स—न्यायालय अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) पक्ष द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर यदि वकील ने बयान दिया और वह बयान गलत पाया गया तो न्यायालय अवमान की कार्यवाही नहीं की जा सकती।

न्यायमूर्ति मुल्ला—

विपक्षियों के विरुद्ध प्रार्थी ने लेख प्रार्थनापत्र (सं० १४३।१९५७) निवेशित किया था। उसी संबंध में न्यायालय अवमान की धारा २ और ३ के अंतर्गत तीन व्यक्तियों के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दिया गया है।

तथ्य इस प्रकार हैं। दुर्गादास ने लखनऊ शहर में एक मकान खरीदा। इस मकान में एक पुलिस का अधिकारी किराया पर रहता था जिसका स्थानांतरण हो गया था। दुर्गादास ने प्रार्थनापत्र दिया कि वह मकान खाली होनेवाला है इसलिए वह हमें दिया जाय क्योंकि हमारे पास कोई मकान नहीं है और मैं अपने एक संबंधी के यहाँ ठहरा हूँ। यह प्रार्थनापत्र किराया नियंत्रण अधिकारी को दिया गया। किंतु उन्होंने दुर्गादास की बात न मानी और मकान बृजराज किशोर को विनियोजित (अलाट) किया। दुर्गादास को ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारी प्रार्थना पर न्यायिक ढंग से विचार नहीं किया गया और मनमाना आदेश दिया गया है इसलिए इस आधार पर उन्होंने लेख प्रार्थनापत्र निवेशित किया। इसके साथ साथ उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया कि बृजराज किशोर को मकान के धारण (पोजेशन) में आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह प्रार्थनापत्र विद्वान् एकाकी न्यायाधीश के समक्ष १५ जुलाई १९५७ को ११ बजे दिन विचारार्थ आया। लखनऊ के किराया नियंत्रण अधिकारी की ओर से सरकारी वकील ने बयान दिया कि हमें सूचना मिली है कि बृजराज किशोर मकान में आ चुके हैं और उनका सामान मकान के भीतर है। इस बयान पर संदेह हुआ और दुर्गादास उसी समय मकान पर गए और आकर २ बजे शपथपत्र दिया कि १ बजे तक बृजराज किशोर मकान के धारण में नहीं थे और उनका कोई सामान मकान के भीतर नहीं था और आगे उनकी प्रार्थना थी कि इन बातों की सत्यता की जाँच के लिये किसी आयुक्त (कमिश्नर) को नियुक्त किया जाय। न्यायालय ने आयुक्त की नियुक्ति की और उनको आदेश दिया कि वहाँ जाकर देखें और प्रतिवेदन दें कि उस मकान में कोई सामान है कि नहीं! आयुक्त को कहा गया कि वे ताला तोड़कर और घर में जाकर यदि कोई सामान पावें तो उसकी सूची बनावें और ताला पर मुहर करके······इत्यादि।

श्री मुहम्मद हैदर आयुक्त नियुक्त हुए थे। श्री मुहम्मद हैदर दुर्गादास के साथ मकान पर आए और इसे खुला पाया। बृजराज किशोर का सामान मकान में पाया गया और आयुक्त ने उसकी सूची बनाई। मकान के भीतर पूरन सिंह और मुहम्मद इलियास दो सिपाही थे। आयुक्त ने दोनों का बयान लिया और उस पर उसने हस्ताक्षर करने को कहा। पूरन सिंह ने तो हस्ताक्षर कर दिया परंतु मुहम्मद इलियास ने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। आयुक्त ने बयान और सूची अपने प्रतिवेदन के साथ प्रेषित किया।

दुर्गादास ने शपथपत्र निवेशित किया कि मकान में सामान २ बजे रखा गया और ११ बजे जब कि सरकारी वकील ने बयान दिया कि सामान मकान में आ चुका है

उस समय सामान नहीं था। दुर्गादास का कहना है कि न्यायालय को सूचना गलत दी गई जिससे अन्याय हुआ है। उनका कहना है कि मैंने न्यायालय से अंतःकालीन निषेधाज्ञा के लिये प्रार्थना की थी किंतु किराया नियंत्रण अधिकारी के कार्यालय के एक कर्मचारी ने अपने वकील को गलत बात बताई कि मकान धारण (पोजेशन) में आ गया है और वकील के इस बयान को मानकर न्यायालय ने प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इसका परिणाम हुआ कि बृजराज किशोर मकान में आ गए क्योंकि इस संबंध में उनको रोकने के लिये कोई आदेश नहीं था। प्रार्थी दुर्गादास का कहना है कि किराया नियंत्रण अधिकारी और उनके कर्मचारी ने न्यायालय को गलत बात बताई और इस प्रकार न्यायालय का अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) किया तथा आयुक्त के कहने पर मुहम्मद इलियास ने बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया और उसका ऐसा करना न्याय के मार्ग में बाधा पहुँचाने के समान हुआ अतः यह भी न्यायालय अवमान हुआ।

न्यायालय अवमान प्रार्थनापत्र देने पर किराया नियंत्रण अधिकारी, उनके कार्यालय का कर्मचारी जिसने वकील को सूचना दी थी तथा मुहम्मद इलियास पर नोटिस तामील की गई और वे उपस्थित हुए।

सारांश यह कि केवल दो बातों पर विचार करना है १—क्या किराया नियंत्रण कार्यालय के कर्मचारी का वकील को उपर्युक्त सूचना देना न्यायालय अवमान (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) है? २—क्या मुहम्मद इलियास का बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार करना न्यायालय अवमान है? हमारा निष्कर्ष है कि इनमें से कोई भी न्यायालय अवमान नहीं है। पहले उपर्युक्त प्रथम प्रश्न पर विचार करना है।

यदि पक्षों द्वारा अपने वकील को गलत बात बताया जाना स्वतः न्यायालय अवमान होता तो कदाचित् कोई ऐसा ही मुकदमा हो सकता है जिसमें न्यायालय अवमान न हो अन्यथा सब में होगा। न्यायालय अवमान का ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। कहा गया कि परंपरा चली आ रही है कि वकील के बयान पर न्यायालय निर्भर करता है। यह परंपरा काम में सुविधा होने के विचार से अपनाई गई है फिर भी परंपरा कितनी ही पुरानी क्यों न हो यह विधि (ला) का स्थान नहीं ले सकती। न्यायालय को अधिकार है कि शपथपत्र माँगे और निरा बयान पर निर्भर न करे। लोक सेवक (पब्लिक सर्वेंट) के बारे में समझा जाता है कि वे केवल विधि (ला) का पालन करना चाहते हैं, किसी पक्ष की हार जीत में दिलचस्पी नहीं रखते इसलिए उनके पक्ष में अभिधारणा करके न्यायालय आगे बढ़ता है। किंतु इधर के कुछ मुकदमों से यह अनुभव प्राप्त हुआ है कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि लोकसेवक लोग दिलचस्पी नहीं रखते। इसलिए न्यायालय शपथपत्र में दी हुई बातों की सत्यता पर संदेह कर सकता है और उनके लिये और प्रमाण की माँग कर सकता है। परिस्थिति के अनुसार न्यायालय को यह भी आवश्यक प्रतीत हो सकता है कि जो लोग शपथ-पत्र में शपथ के साथ बयान करते हैं उनका न्यायालय के समक्ष साक्षी रूप में परीक्षण और प्रतिपरीक्षण (क्रास-एक्जामिनेशन) किया जाय। विधि के अनुसार जो गलत शपथपत्र देता है उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का नियम बना हुआ है किंतु जो अपने वकील को गलत बात बताता है उसके लिये उपाय नहीं है। यह इस बात का द्योतक है कि विधि के नियम के अनुसार ऐसे बयान को साक्ष्य (एविडेंस) रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। सुविधा के अनुसार न्यायालय यदि ऐसे बयान पर निर्भर करे और यह परंपरागत हो तब भी यह परंपरा ही है और किसी व्यक्ति पर न्यायालय अवमान की कार्यवाही परंपरा तोड़ने के संबंध में नहीं की जा सकती क्योंकि परंपरा से वैधिक अनिवार्यता नहीं आती और इसका बंधन पक्षों पर नहीं होता। न्यायालय को ऐसा बयान कार्यान्वित नहीं करना चाहिए और यदि कार्यान्वित करता है तो इसके गलत प्रमाणित होने पर बयान देने वाले के विरुद्ध मुकदमा नहीं चल सकता। इस मुकदमे में कर्मचारी ने यदि शपथपत्र दिया होता तो बात दूसरी होती। तब यह प्रश्न न उठता कि दं. सं. की धा. १९९ के अंतर्गत कार्यवाही की जाय कि नहीं। किसी पक्ष का अपने वकील को सूचना देना शपथ पर नहीं होता और

धारा १६२ के अंतर्गत वह साक्ष्य का कूटयोजन (फैब्रिकेशन आफ इविडेंस) भी नहीं होता इसलिए उसका दांडिक अभियोजन (पेनल प्रासीक्यूशन) नहीं हो सकता। इस मामले में विचार करना है कि परंपरा का पालन किया जाय या नहीं। हमारा अनुभव है कि ऐसी परंपरा पर निर्भर करना ठीक नहीं है और प्रत्येक तथ्य के लिये शपथपत्र की माँग करनी चाहिए जिसका प्रभाव निर्णय पर पड़ने की संभावना हो। अतः मेरे विचार से ऐसा बयान यदि गलत भी हो तब भी न्यायालय अवमान की कार्यवाही नहीं की जा सकती।

किंतु इस मामले में किराया नियंत्रण कार्यालय के कर्मचारी की सद्भावना पर आपत्ति नहीं की जा सकती। हो सकता है कि लापरवाही से उसने बयान दे दिया हो। इस बात की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है कि उसने जानबूझकर अपने वकील को गलत बात बतलाई। मकान बृजराज किशोर को दिया गया। आयुक्त के पहुँचने पर उनका सामान वहाँ था। प्रश्न केवल यह है कि सामान वहाँ कब पहुँचा। दुर्गादास का कहना है कि वकील ने जब ११ बजे बयान दिया उस समय वहाँ कर सामान नहीं था, सामान दो बजे आया। किंतु दुर्गादास ने इस बात का प्रमाण नहीं दिया कि उसे कैसे पता चला कि ११ बजे सामान नहीं था। मकान की ताली आदि की कहीं चर्चा नहीं है। हो सकता है कि कुछ सामान मकान में कहीं रखा रहा हो क्योंकि पता चलता है कि सभी घरेलू सामान थे और यह संभव नहीं है कि २ बजे के बाद सब सामान एक ही ट्रक में लाकर रख दिए गए हों। दुर्गादास ने उपर्युक्त बातों के सविस्तर वर्णन के लिये अलग शपथपत्र निवेशित करने के लिये अनुमति माँगा और अनुमति दी भी गई पर उसने शपथपत्र निवेशित नहीं किया। वह उपस्थित भी नहीं है। अतः वकील का ११ बजे बयान देना कि बृजराज किशोर का सामान मकान में है—दुर्गादास के शपथपत्र द्वारा गलत प्रमाणित नहीं होता।

दूसरे प्रश्न के बारे में प्रार्थनापत्र गलत दिया गया है। विद्वान् न्यायाधीश ने अपने आदेश में यह स्पष्ट कर दिया था कि आयुक्त (कमिश्नर) को क्या क्या काम करना है। आयुक्त को कहा गया था कि यदि आवश्यकता पड़े तो ताला तोड़कर मकान के भीतर के सामानों की सूची बना लें। आयुक्त ने इस अधिकार से परे जाकर उत्साह दिखाया और जो बयान लिया वह काम न्यायालय के प्रतिनिधि के रूप में नहीं किया वरन् वे एक हितबद्ध साक्षी हो गए। इस प्रकार मुहम्मद इलियास ने यदि बयान पर हस्ताक्षर नहीं किया तो इसका अर्थ न्यायालय अवसान (कंटेम्प्ट आफ कोर्ट) नहीं हुआ।

उपर्युक्त कारणों से प्रार्थनापत्र उत्सर्जित किया जाता है और जारी की हुई नोटिसें हटा ली जाती हैं।

प्रार्थनापत्र उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० उच्च न्या० १८०

न्यायमूर्ति ए० पी० श्रीवास्तव

व्यवहार पुनरीक्षण सं० २१६।१६५१—२५ जनवरी १६५७

श्रीमती कपूरी देवी उपनाम कपुरा देवी तथा अन्य—
प्रतिवादी—प्रार्थी

वि०

श्रीमती रुक्मणी देवी — वादी विपक्षी

मुरादाबाद के लघुवाद न्यायालय (स्मालकाज कोर्ट) के न्यायाधीश के आदेश दिनांक १—२—५१ के विरुद्ध व्यवहार पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र सं० २१६।१६५१

अ—प्रांतीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम (प्राविंशियल स्माल काज कोर्ट्स ऐक्ट) द्वितीय अनुसूची-पद (आइटम) ३८—'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) शब्द का अर्थ—इच्छापत्र (विल) में मासिक भत्ता (अलावेंस) दिए जाने की चर्चा—यह भरण पोषण के अर्थ में आता है इसलिए लघुवाद न्यायालय को सुनवाई का अधिकार नहीं है।

ब—लघुवाद न्यायालय अधिनियम (स्माल काज कोर्ट ऐक्ट) धारा २५ और स्वविवेक (डिस्क्रीशन) का प्रयोग।

न्यायमूर्ति श्रीवास्तव—

वादी रुक्मणी देवी शांतिप्रसाद की माता हैं। शांतिप्रसाद ने एक इच्छापत्र द्वारा निदेश दिया कि हमारी मोटर लारी के व्यापार की आय से प्रबंधकारी संचालक २० रु० प्रतिमास हमारी माता को दिया करेंगे ताकि उसका भरणपोषण हो सके।

वादी का कहना है कि प्रबंधकारी संचालक ने कुछ समय तक रुपया दिया किंतु संचालक और प्रतिवादी में झगड़ा हुआ और संचालक ने काम छोड़ दिया तथा प्रतिवादी ने स्वयं व्यापार का कार्यभार सँभाला। जब से उसने कार्यभार सँभाला तब से उपर्युक्त भत्ता देना बंद कर दिया और इसलिए वादी ने ३२० रु० बकाया तथा १३ रु० व्याज के संबंध में वाद निवेशित किया।

प्रतिवादी प्रार्थी ने इस वाद का विरोध कई आधार पर किया। एक यह कि मुरादाबाद न्यायालय को इस मुकदमे को सुनवाई का अधिकार नहीं है कारण कि वाद-मूल का कोई भाग मुरादाबाद न्यायालय के अधिक्षेत्र में में नहीं पैदा हुआ था और लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार नहीं है क्योंकि यह लघुवाद न्यायालय अधिनियम की द्वितीय अनुसूची पद ३८ में आता है।

लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश ने पहली आपत्ति को इस आधार पर अमान्य कर दिया कि इच्छापत्र (विल) में लिखा हुआ है कि यह रुपया मेरी माता को उस स्थान पर दिया जाय जहाँ वह रहती हो और चूँकि वादी इस समय मुरादाबाद में रहती है इसलिए मुरादाबाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है। विद्वान् न्यायाधीश ने दूसरी आपत्ति को भी इस आधार पर अमान्य कर दिया कि यह 'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) शीर्षक के अंतर्गत नहीं आता इसलिए यह द्वितीय अनुसूची पद सं० ३८ में नहीं है और लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है। उन्होंने अन्य आधारों पर वादी के पक्ष में निर्णय दिया और वाद में डिग्री दे दी।

प्रतिवादीगण इस न्यायालय में पुनरीक्षण के लिये आए हैं और यहाँ भी उपर्युक्त दो आधारों पर निर्भर किया है।

पहले विषय पर कि मुरादाबाद के न्यायालय को सुनवाई का अधिकार है कि नहीं कोई निर्णय देने की आवश्यकता नहीं है कारण कि धारा २१ व्य० प्र० संहिता के अंतर्गत दिया गया है कि यदि इस प्रकार की आपत्ति अपील या पुनरीक्षण न्यायालय में उठाई जाय तो इसे तब तक नहीं मानना चाहिए जब तक कि यह प्रमाणित न हो जाय कि यह नीचे के न्यायालय में उठाई गई थी और उसके न माने जाने के परिणामस्वरूप प्रार्थी पर अन्याय हुआ है। इस मामले में इतना तो निश्चय है कि यह आपत्ति नीचे के न्यायालय में उठाई गई थी किंतु इसके मान्य न होने से यह पता नहीं चलता कि प्रार्थी पर कोई अन्याय हुआ है। ऐसी अवस्था में वाद निवेशित करने के स्थान के विषय में पहली आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

दूसरी आपत्ति प्रमुख है। अनुसूची २ पद ३८ में है कि भरण पोषण के संबंध में मुकदमों की सुनवाई लघुवाद न्यायालय (स्माल काज कोर्ट) नहीं कर सकता। यहाँ प्रार्थी का कहना है कि यह मुकदमा भरणपोषण के संबंध में बकाया धन की वसूली के लिये है। विपक्षी का कहना है कि यह मुकदमा भरणपोषण के संबंध में नहीं है वरन् शांतिप्रसाद ने अपनी इच्छापत्र में जो भत्ता (अलावेंस) दिए जाने का निदेश किया था उसी के संबंध में बकाया धन की वसूली के लिये है।

आक्सफोर्ड शब्दकोश में 'भरण पोषण' (मेंटेनेंस) का अर्थ है जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों का दिया जाना या जीवन निर्वाह······। इस अर्थ में यह रुपया वादी के भरण पोषण (मेंटेनेंस) के लिये दिया गया था। वादी ने भी अपने वादपत्र में कहा है कि यह भत्ता हमारे भरण पोषण के लिये दिया गया था। कहा गया कि शांतिप्रसाद परिवार से अलग रहते थे

और जो संपत्ति उन्होंने दिया वह उनकी निजी पैदा की हुई संपत्ति थी इसलिए उस संपत्ति से अपनी माता के भरणपोषण का बंधन उन पर नहीं था। इन बातों का कोई महत्त्व नहीं दीख पड़ता। शांति प्रसाद को अपनी माता के भरण पोषण की आवश्यकता पड़ी और उन्होंने इस संबंध में उपाय किया। यदि इसे भरणपोषण के लिये न माना जाय तो दूसरा और कौन 'भरणपोषण' हो सकता है। निश्चय ही यह भत्ता (अलावेंस) था पर यह भरण पोषण (मेंटेनेंस) के लिये भत्ता था। अतः यह मुकदमा भरणपोषण के लिये था।

मेरे इस विचार के समर्थन में आई० एल० आर० १५ कलकत्ता १६४ और आई० एल० आर० ४० इलाहाबाद ५२ हैं।

इस कथन के समर्थन में कि यह मामला पद ३८ के अंतर्गत नहीं आता है विपक्षी के विद्वान् वकील ने निम्नलिखित निर्णयों पर निर्भर किया है—१८६० ए० डब्ल्यू० एन० २०१, २ ए० एल० जे० ६६७, २२ आई० सी० ३६, १३ एम० एल० जे० आर० ४७१। विचार करने पर ये आता है कि उपर्युक्त मुकदमों और इस मामले के तथ्यों में अंतर था।

१३ एम० एल० जे० ४७१ में मुकदमा भरणपोषण के लिये था ही नहीं। इसमें एक संविद् (अग्रीमेंट) के आधार पर कुछ धान देना तय हुआ था। इस धान के बकाया को वसूल करने के लिये जो मुकदमा था उसमें निर्णय हुआ कि यह भत्ता है जो भरणपोषण के भत्ते से भिन्न है। इसको वार्षिकी (ऐन्यूटी) की प्रकृति का कहा गया था। २२ आई० सी० ३६ में ३ भाइयों पर माता के भरणपोषण का बंधन था। उन्होंने बँटवारा करके अपने में संपत्ति बाँट लिया। प्रतिवादी के पिता के द्वारा वादी के पिता को प्रतिवर्ष कुछ धान देना तय हुआ था ताकि वादी का पिता माता के भरण पोषण का प्रबंध करे। कुछ समय तक धान नहीं दिया गया और उसकी वसूली के लिये जब मुकदमा चला तब उसमें निर्णय हुआ था कि यह भरणपोषण से संबंध नहीं रखता इसलिए लघुवाद न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार है।

इस रूलिंग में मुकदमा भरणपोषण के बकाया के लिये नहीं था वरन् किसी माता के भरणपोषण के लिये जो धन खर्च किया गया है उस संबंध में कुछ बकाया रह गए धान की वसूली के लिये था। २ ए० एल० जे० ६६७ में श्रीमती देवकी ने कुछ खेतों के संबंध में दाखिल खारिज का प्रार्थनापत्र दिया। उसमें समझौता हुआ कि यदि वह दाखिल खारिज का प्रार्थनापत्र हटा ले तो उसे ३० रु० प्रतिवर्ष दिया जायगा। श्रीमती देवकी के मरने पर वादियों ने जब बकाया धन की वसूली के लिये मुकदमा चलाया तो उसमें निर्णय हुआ था कि एक तो स्वयं वादियों ने इसे वादपत्र में भरणपोषण नहीं माना है और दूसरे समझौते में भरणपोषण की चर्चा नहीं है। इसलिए यह भरणपोषण नहीं था। १८६० ए० डब्ल्यू० एन० २०१ में उसे पंचनिर्णय (अवार्ड) माना गया था, भरणपोषण नहीं। इसमें से कोई भी रूलिंग विपक्षी की बात का समर्थन नहीं करती।

हमारे विचार से इस मामले की सुनवाई लघुवाद न्यायालय नहीं कर सकता था। यह लघुवाद न्यायालय अधिनियम की अनुसूची २ पद सं० ३८ में आता है इसलिये लघुवाद न्यायालय के अधिक्षेत्र के बाहर है।

अंत में कहा गया कि लघुवाद न्यायालय अधिनियम की धारा २५ के अंतर्गतवाला अधिकार विवेक पर निर्भर करता है और चूँकि डिग्री के बाद बहुत समय बीत चुका है इसलिए इस न्यायालय को प्रार्थियों के पक्ष में विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किंतु जब अधिक्षेत्र का प्रश्न आरंभिक न्यायालय में ही उठाया गया और उस पर निर्णय गलत दिया गया तो कोई कारण नहीं है कि गलत निर्णय को अक्षुण्ण रखा जाय।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र परिव्यय (कास्ट्स) के साथ स्वीकार किया जाता है और लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश को निदेश दिया जाता है कि वे वादपत्र वादी को उचित न्यायालय में निवेशित करने के लिये लौटा दें।

पुनरीक्षण स्वीकृत

———

द्वितीय अपील असफल होती है और यह परिव्यय तथा वकील के २० रु० शुल्क के साथ उत्सर्जित की जाती है।

———

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ६५

(उच्च न्यायालय)

(लखनऊ न्यायासन)

देसाई और निगम न्यायमूर्तिगण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २२६ और २२७ के अंतर्गत व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र (ओ० जे०) सं० १७६।१६५६

६ मई १६५८

गोविंद प्रसाद तथा अन्य — प्रार्थीगण

वि०

शिवकुमार तथा अन्य — विपक्षीगण

उ० प्र० पंचायत राज अधिनियम १६४७, धा० २ (उ० प्र० अधिनियम १६।१६५७ से संबद्ध)— अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति संशोधन अधिनियम १६५७ द्वारा वैध नहीं बनाई जा सकती।

न्यायमूर्ति निगम—

गोविंद प्रसाद तथा १० व्यक्तियों ने यह उत्प्रेषण (सेर्टियोरेरी) लेख प्रार्थनापत्र दिया है कि विपक्षी सं० २ का दिनांक २३ जून, १६५६ का आदेश निराकृत किया जाय जिसे उन्होंने चुनाव याचिका सं० ४१।२७ में पारित किया था।

प्रार्थियों का कहना है कि हम लोग गाँव सभा इमलिया जिला सीतापुर के निर्वाचक हैं और १६ दिसंबर के चुनाव में विपक्षी सं० १ निर्वाचित घोषित हुआ जब कि उसकी आयु ३० वर्ष से कम थी। उसकी आयु के संबंध में नाम निर्देशन के अनुवीक्षण के समय ही आपत्ति की गई थी किंतु यह सरसरी तौर पर अस्वीकार कर दी गई। प्रार्थियों का कहना है कि हम लोगों ने एस० डी० ओ० के यहाँ चुनावयाचिका निवेशित किया था किंतु वह उत्सर्जित कर दी गई।

इस प्रार्थनापत्र में प्रार्थियों का कहना है कि निष्कर्ष गलत है और अतिरिक्त एस० डी० ओ० को चुनाव याचिका के निर्णय का अधिकार नहीं था।

यह मामला विद्वान् एकाकी न्यायाधीश माननीय टंडन के समक्ष सुनवाई के लिये आया। माननीय न्यायमूर्ति सिंह ने ऐसे ही मामले में एक निर्णय दिया था। उससे असहमत होने पर न्यायमूर्ति टंडन ने इसे न्यायासन को अभिदेश कर दिया है।

हमारे समक्ष दोनों पक्षों के विद्वान् वकीलों ने बहस की और इस संबंध में दो निर्णयों का अभिदेश किया।

व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० २१७।६५६ में विद्वान् एकाकी न्यायाधीश का विचार था कि पंचायत राज अधिनियम में उ० प्र० अधिनियम १६५७ द्वारा जो परिवर्तन हुआ उसमें कहा गया कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति या नामोद्देशन उपयुक्त प्राधिकरण द्वारा होगा किंतु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि उपयुक्त प्राधिकरण कौन सा है। उपयुक्त प्राधिकरण का स्पष्टीकरण न होने से अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति ठीक नहीं है और उन्हें चुनावयाचिका की सुनवाई का अधिकार नहीं है। यों तो अतिरिक्त जिलाधीश, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश आदि की नियुक्ति का विधान है किंतु इस प्रकार का कोई उपबंध अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति के लिये नहीं है। विद्वान एकाकी न्यायाधीश का निष्कर्ष था कि वर्तमान लेख प्रार्थनापत्र का जहाँ तक संबंध है संशोधन का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यही निर्णय व्यवहार प्रकीर्णक प्रार्थनापत्र सं० १६१। १६५६ में भी हुआ था।

माननीय न्यायमूर्ति टंडन का विचार यह था कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० अपने क्षेत्र में दूसरा एस० डी० ओ० है और उ० प्र० सामान्य वाक्यांश अधिनियम १६०४ में है कि जब प्रसंगवश या विषयानुसार कोई अन्य बात नहीं आती तो एकवचन के शब्दों का अर्थ बहुवचन होगा; अतः सरकार या अन्य प्राधिकरण जैसे एस० डी० ओ० की नियुक्ति करती है उसी प्रकार यह एक से अधिक एस० डी० ओ० की भी नियुक्ति कर

सकती है। और इस प्रकार दूसरे एस० डी० ओ० अतिरिक्त एस० डी० ओ० के नाम से पुकारे जा सकते हैं।

एस० डी० ओ० के लिये १६५७ ए० एल० जे० ३७६ में कहा गया है कि वह सहायक कलक्टर प्रथम श्रेणी का और एक प्रभाग (सब डिविजन) का अधिकारी होता है। एस० डी० ओ० की इस व्याख्या को उभय पक्षों ने स्वीकार किया है। यहाँ एकमात्र विचाराधीन प्रश्न यही है कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० क्या दूसरा एस० डी० ओ० होता है या वह एस० डी० ओ० से भिन्न कोई ऐसा अधिकारी है जिसके कार्य करने के पहले उसकी नियुक्ति आदि के विषय में विधि (ला) में कोई उपबंध होना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि अतिरिक्त (अडिशनल) अधिकारी गण केवल उन्हीं मामलों में अपने अधिक्षेत्र का प्रयोग करते हैं जो उन्हें भेजे जाते हैं। ऐसा सुविधा के विचार से किया जाता है। यदि दो अधिकारी सहवर्ती अधिक्षेत्र (कांकरेंट जुरिडिक्शन) के हों तो मुकदमा लड़नेवाला जिस न्यायालय में चाहे उसे निवेशित कर सकता है। ऐसी स्थिति में एक ही मामले में दो विरोधी निर्णय हो सकते हैं और इस प्रकार बहुत ही गड़बड़ी होने की संभावना है। यही कारण है कि अतिरिक्त अधिकारी को मुख्य अधिकारी के समस्त अधिकारों को नहीं दिया जाता वरन् उन्हें वही काम करना पड़ता है जो किसी विशेष या सामान्य आदेश द्वारा उन्हें दिया जाय। हमें प्रतीत होता है कि जब राज्य सरकार ने अतिरिक्त एस० डी० ओ० को नियुक्त करने का विचार किया तो उसने समकक्ष अधिकार देने की बात नहीं सोची थी वरन् इन्हें सीमित अधिकार देने का विचार था कि ये लोग उन्हीं मामलों का निपटारा करें जो कि इन्हें अभिदेश किया जाय या भेजा जाय। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारा निष्कर्ष है कि अतिरिक्त एस० डी० ओ० ठीक ठीक दूसरा एस० डी० ओ० नहीं है इसलिए अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति का अधिकार एस० डी० ओ० की नियुक्ति में संमिलित नहीं है।

अतः न्यायमूर्ति सिंह के विचार से मैं पूर्णरूपेण सहमत हूँ कि अधिनियम १६।१६५७ द्वारा पंचायत राज अधिनियम का संशोधन निष्फल है और अतिरिक्त एस० डी० ओ० की नियुक्ति को किसी प्रकार वैध नहीं कर सकता कारण कि ऐसी नियुक्ति आदि के लिये किसी प्राधिकरण (अथारिटी) का निर्धारण नहीं किया गया है।

तद्नुसार हम इस प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हैं और विद्वान् अतिरिक्त एस० डी० ओ० के प्रश्नगत् आदेश को निराकृत करते हैं। चुनाव याचिका अभी भी विचाराधीन समझी जायगी और विधि के अनुसार उसका निर्वर्तन किया जायगा। प्रार्थीगण को परिव्यय का अधिकार होगा।

प्रार्थनापत्र स्वीकृत

विधि पत्रिका (१८८०) १६५८ इला० (राजस्व) ६६

एस० एन० मित्रा और आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य

कुर्मली, शामली, मुजफ्फर नगर

एस० ए० सं० ७८।५४–५५—१५ अक्टूबर १६५८

रामरेख — अपीलकर्ता

विरुद्ध

चुन्नीलाल — उत्तरवादी

मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक १३–१०–५४ के विरुद्ध द्वितीय अपील।

उ० प्र० भू धारण (टेनेंसी) अधिनियम; १६३६ धारा १८०— चकबंदी की कार्यवाही के समय निर्णय हुआ कि प्रतिवादी 'सीरदार' है—इस पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी—राजस्व मंडल में इस प्रश्न को फिर नहीं उठाया जा सकता—प्रतिवादियों का अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) अनधिप्रवेशी ट्रेसपासर) के आधार पर नहीं किया जा सकता।

आर० के० सिंह न्यायिक सदस्य—

चुन्नीलाल तथा अन्य लोगों ने रामरेख आदि के विरुद्ध उ० प्र० भू धारण (टेनेंसी) अधिनियम की

धारा १८० के अंतर्गत वाद निवेशित किया था। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने एक खेत के संबंध में वाद का उपशमन (अबेटमेंट) कर दिया और इसके अतिरिक्त सभी खेतों के लिये वादी के पक्ष में डिग्री दे दी। अपील करने पर मेरठ के अतिरिक्त आयुक्त ने इसी निर्णय को माना और अपील उत्सर्जित कर दिया। इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील निवेशित की गई है।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि चकबंदी के समय प्रतिवादी अपीलकर्ता विवादग्रस्त भूमि का सीरदार घोषित हो चुका है इसलिए अपील स्वीकार की जानी चाहिए। यह बात ठीक प्रतीत होती है। चकबंदी के समय वादी ने अपीलकर्ता के सीरदार घोषित करनेवाली कार्यवाही में कोई आपत्ति नहीं किया इसलिये वहाँ अब वह आपत्ति नहीं कर सकता। यह सिद्धांत अब निश्चित हो चुका है कि अपील के निर्णय के समय विधि के परिवर्तन या नवीन विधि के अस्तित्व पर ध्यान रखना चाहिए और इसलिए चकबंदी अधिनियम के उपबंधों की अवहेलना नहीं की जा सकती। चकबंदी के समय की कार्यवाही में उत्तरवादियों ने कोई आपत्ति नहीं की इसलिए प्रतिष्टंभ (इस्टापेल) विधि के आधार पर अब वे इस प्रश्न को पुनः नहीं उठा सकते।

अतः उपर्युक्त तथ्य के आधार पर हमारा निर्णय होगा कि प्रतिवादी विवादग्रस्त खेतों का सीरदार है इसलिए उ० प्र० भूधारण अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत अनधिप्रवेशी (ट्रेसपासर) के आधार पर उसका अधिनिष्कासन नहीं हो सकता। अतः अपने विद्वान् सहयोगी की सहमति के अधीन मैं इस अपील को स्वीकार करूँगा, नीचे के दोनों न्यायालयों के आदेश और डिग्री को निराकृत करूँगा तथा वादी के वाद को उत्सर्जित करूँगा। परिव्यय पक्षों पर होगा।

न्यायिक सदस्य मित्रा—मैं सहमत हूँ।

अपील स्वीकृत

———

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६७

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा

हरपाल, सौदित, हरदोई

कामताप्रसाद तथा अन्य— अपीलकर्तागण

वि०

भूधर तथा अन्य— उत्तरवादी गण

लखनऊ प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत एक मुकदमें में दिनांक ३१–१०–५६ को दिए हुए आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील

अ—उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १९५०, धारा १५७—अनर्हता (डिस एबिलिटी) की समाप्ति—यह आवश्यक नहीं है कि अक्षम (डिसेबुल) व्यक्ति अनर्हता की समाप्ति के दिन जीवित रहे।

ब—उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम, १९५० धारा २०२ (एफ०) १—और २—असामी के अधिनिष्कासन के संबंध में अक्षम व्यक्ति का अधिकार

न्यायिक सदस्य मित्रा—

ये चार अपीलें लखनऊ के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध निवेशित की गई हैं।

दो अपीलें उन मुकदमों से आई हैं जिन्हें कामताप्रसाद और मुक्ताप्रसाद वादियों ने जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ के अंतर्गत यह कहकर निवेशित किया था कि हम लोग प्रश्नगत् खेतों के वंशानुगत कृषक श्रीमती बिटोली के लड़की के लड़के हैं इसलिए हम लोग इसके सीरदार हुए तथा प्रतिवादीगण श्रीमती बिटोली के शिकमी काश्तकार थे इसलिए वे इसके असामी हुए।

प्रतिवादी भूधर ने इस कथन का विरोध किया और कहा कि :—

१—हम खेतों के सीरदार हैं क्योंकि खेत को श्रीमती बिटोली के पति ने हमें दिया था।

२—यह कि वादियों का इस खेत पर कोई अधिकार नहीं है।

३—यह कि श्रीमती बिटोली के मरे ४।५ वर्ष हुए इसलिए यह काल बाधित (बार्ड बाई लिमिटेशन) है।

अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने निर्णय दिया कि:—

१—वादियों को वाद निवेशित करने का अधिकार था।

२—प्रतिवादी भूधर सीरदार नहीं है।

३—मुकदमा अवधि (लिमिटेशन) के भीतर निवेशित किया गया है और

४—प्रतिवादीगण असामी हैं इसलिए उनका अधिनिष्कासन हो सकता है। अन्वीक्षा (ट्रायल) न्यायालय ने वाद में डिग्री दे दी।

शेष दोनों अपीलों में भी वादियों ने उपर्युक्त आधार पर वाद निवेशित किया था और प्रतिवादीगण ने उपर्युक्त आधार पर प्रतिवाद सिवा इसके कि इसमें प्रतिवादियों ने अपने को खेतों का अधिवासी होना कहा था।

अन्वीक्षा न्यायालय ने उपर्युक्त प्रकार से निर्णय दिया था और प्रतिवादियों को असामी माना था, अधिवासी नहीं।

विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने आदेश को निराकृत किया था और अपील स्वीकार की थी।

दोनों पक्षों के वकीलों की बहस सुना।

वादी अपील कर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि:—

नीचे के अपील न्यायालय का कहना था कि श्रीमती बिटोली ३१-१-१९५२ को मरी थी और मुकदमा अगस्त १९५५ और जनवरी १९५६ में निवेशित किए गए थे इसलिए यह अवधि बाधित है कारण कि निहित होने की तिथि (डेट आफ वेस्टिंग) से ३ वर्ष के बाद निवेशित हुए। विद्वान् वकील का कहना है कि बात ऐसी नहीं है। उनका कहना है कि वास्तव में यह मुकदमा उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२ एफ० (१) के अंतर्गत निवेशित किया गया है क्योंकि भूस्वामी की इच्छा स्वयं खेती करने की है। विद्वान् वकील का कहना है कि अनर्हता की समाप्ति का संबंध उसी व्यक्ति से होना चाहिए और चूँकि श्रीमती बिटोली की मृत्यु हो गई है इसलिए अनर्हता (डिसएबिलिटी) की समाप्ति का प्रश्न नहीं उठता। उनका कहना है कि वादी अपीलकर्तागण अक्षम नहीं हैं। विद्वान् वकील ने धारा २०४ का अभिदेश किया और दिखलाया कि उसके अंतर्गत केवल वही व्यक्ति सीरदार होता है जो धारा २१ के ए०, बी०, सी० या डी० के अंतर्गत असामी रहा हो और जिसके विरुद्ध निर्धारित अवधि के भीतर मुकदमा निवेशित न गया हो या मुकदमें की डिग्री का निष्पादन समय के भीतर न किया गया हो। विद्वान् वकील ने कहा कि ये उपबंध वर्तमान मुकदमे में लागू नहीं होते। विद्वान् वकील ने कहा कि यहाँ प्रमुख विचारणीय प्रश्न केवल यही है कि अनर्हता की समाप्ति भू स्वामी (लैंड-होल्डर) के संबंध में हुई है या इसकी समाप्ति मृतक के उत्तराधिकारी के संबंध में हुई है? उनका कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का यह निर्णय गलत है कि मुकदमा कालबाधित है।

प्रतिवादी उत्तरवादीगण के विद्वान् वकील का कहना है कि वाद पत्र में इस बात की कहीं चर्चा नहीं है कि मुकदमा धारा २०२ (एफ०) (१) अंतर्गत निवेशित किया गया है या धारा २०२ (एफ० २) के अंतर्गत। विद्वान् वकील का कहना है कि यदि श्रीमती बिटोली जीवित रहती और और उसकी अनर्हता किसी प्रकार समाप्त हो गई रहती तो यह निश्चय ही काल बाधित होता किंतु श्रीमती बिटोली की मृत्यु हो गई और जो उसके उत्तराधिकारी आए वे अक्षम (डिसेबल) नहीं थे और इसीलिए कहा जाता है कि मुकदमा कालबाधित नहीं है। विद्वान् वकील ने कहा कि यह बात विचित्र है कि भूस्वामी पर तो इन सब का बंधन होता पर उसके उत्तराधिकारी पर इसका कोई बंधन न हो। उ० प्र० भू धारण अधिनियम की धारा ३ (१) में है कि किसी अधिकार, स्वत्व (टाइटिल) और हित (इंटरेस्ट) के धारण करनेवालों में उसके उत्तराधिकारी भी समझे जाते हैं। विद्वान् वकील का कहना है कि विधि का यह विचित्र अर्थ होगा कि अवधि (लिमिटेशन) भूस्वामी की इच्छामात्र पर निर्भर करेगा कि जब अनर्हता

समाप्त हो गई है तो उसकी इच्छा इसको अपनी अपनी निजी खेती के अंतर्गत लाने की है। विद्वान् वकील का कहना है कि यह कथन माना नहीं जा सकता कि चूँकि भूस्वामी स्वयं खेती करना चाहता है इसलिए धारा २०२ एफ० (१) के अंतर्गत कोई अवधि (लिमिटेशन) लागू नहीं होगी। विद्वान् वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय का निर्णय ठीक था और इसलिए इस न्यायालय द्वारा भी अपील उत्सर्जित की जानी चाहिए।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि श्रीमती बिटोली एक अक्षम व्यक्ति थीं और उसकी मृत्यु ३१-१-१९५२ को हुई। यदि वह जीवित होती तो प्रतिवादी उत्तरवादी धारा २१ (१) एच० के अंतर्गत असामी होते; उसकी मृत्यु होने से उ० प्र० जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा १५७ के अंतर्गत उसकी अनर्हता (डिसएबिलिटी) समाप्त हो गई। इसलिए अवधि का प्रारंभण १-७-१९५२ से हो जायगा और इस तिथि से तीन वर्ष की समाप्ति ३०-६-१९५५ को हो जायगी। ये मुकदमे अगस्त १९५५ और जनवरी १९५६ में निवेशित किए गए इसलिए अवधि (लिमिटेशन) से बाधित हैं।

धारा १५७ के अंतर्गत जिस अनर्हता (डिसएबिलिटी) समाप्ति की चर्चा की गई है वह तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इस प्रकार विधवा के पुनर्विवाह द्वारा, अवयस्क के वयस्क होने पर, पागल या मूढ़ के सचेतन होने पर या मूढ़ता समाप्त होने पर अनर्हता (डिसएबिलिटी) समाप्त होती है। यह अनर्हता इन व्यक्तियों की मृत्यु से भी समाप्त हो जाती है बशर्ते कि उनके उत्तराधिकारीगण अक्षम (डिसएबुल) न हों।

जिस दिन अनर्हता समाप्त होती है उस दिन उस व्यक्ति का जीवित रहना आवश्यक नहीं है। इस मामले में श्रीमती बिटोली की मृत्यु से अनर्हता (डिस ए बिलिटी) समाप्त हुई है।

अगला प्रश्न है कि अक्षम व्यक्ति क्या अपनी इच्छानुसार धारा २०२ एफ(१) में या २०२ एफ०(२) में वाद निवेशित कर सकता है? यदि अनर्हता समाप्त हो चुकी है तो विधि द्वारा उसे अधिकार दिया गया है कि असामी के अधिनिष्कासन के लिये अनर्हता समाप्ति के तीन वर्ष के भीतर वाद निवेशित कर दे नहीं तो धारा २०४ के अंतर्गत असामी को सीरदार का अधिकार प्राप्त हो जायगा। यदि अनर्हता (डिस ए बिलिटी) समाप्त नहीं हुई है तब भी अक्षम व्यक्ति यह कहकर वाद निवेशित कर सकता है कि मैं उस खेत में स्वयं खेती करना चाहता हूँ।

नीचे के अपील के न्यायालय ने वाद का उत्सर्जन ठीक किया है।

ये सभी अपीलें असफल होती हैं और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती हैं।

अपीलें उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ६६

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा

नियामतपुर टप्पा दुबसलिया अमोधा, हरैया, बस्ती
एस० ए० सं० ६६ (जेड) ५६-५७-५ अगस्त १९५८

सल्तंती— अपीलकर्ता
वि०
विमलधर दूबे उत्तरवादी

गोरखपुर प्रभाग के अतिरिक्त आयुक्त के जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२।२०६ के अंतर्गत दिए गए आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील

व्यवहार प्रक्रिया संहिता १९०८ आ० ३ नि० ४—वकालतनामा में वकील का नाम नहीं था—वकील ने वकालतनामा स्वीकार किया और अपील के स्मृति-पत्र पर हस्ताक्षर किया—अपील का स्मृतिपत्र उचित

रूप से नहीं दिया गया इसलिए वह अस्वीकार किए जाने योग्य है ।

न्यायिक सदस्य मित्रा—

जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा २०२।२०६ के अंतर्गत मुकदमों की अपील में गोरखपुर के अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध द्वितीय अपील ।

प्रतिवादी उत्तरवादी के विद्वान् वकील ने एक आरंभिक आपत्ति उठाई है कि यह अपील श्री रामअवध मिश्र के हस्ताक्षर से निवेशित की गई है किंतु श्रीराम-अवध मिश्र इसके लिये विधिवत् अधिकृत नहीं थे कारण कि वकालतनामा में उनका नाम नहीं है । विद्वान् वकील का कहना है कि श्री रामअवध मिश्र की नियुक्ति व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आ० ३ नि० ४ के उपबंधों के अनुसार नहीं हुई है। इस संबंध में विद्वान् वकील ने १६५७ ए. एल. जे० (रेवेन्यू) ६६ का अभिदेश किया कि यों तो इसमें निर्णय हुआ था कि वकालतनामा में यदि वकील का नाम छूट जाय तो आ० ३ नि० ४ के उपबंधों के अनुसार वे अपने वादार्थी (क्लाएंट) की ओर से काम करने में असमर्थ नहीं होते किंतु उसमें और इस मामले में अंतर यह है कि उसमें अपीलकर्ता ने स्वयं अपील के स्मृतिपत्र (मेमोरेंडम) पर हस्ताक्षर किया था; यहाँ अपील के स्मृतिपत्र पर केवल अपीलकर्ता के वकील का हस्ताक्षर है । इसीलिये उपर्युक्त रूलिंग में निर्णय हुआ था कि वकालतनामा में वकील का नाम न रहने पर भी अपील का स्मृतिपत्र वैध है क्यों कि अपीलकर्ता का हस्ताक्षर उस पर था । यहाँ स्मृतिपत्र पर एकमात्र वकील का हस्ताक्षर है जो अपील निवेशित करने के लिये अधिकृत नहीं थे ।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि वकालतनामा में नाम केवल दृष्टि से ओझल हो जाने के कारण नहीं रहा और यह कि मैंने अपने वादार्थी (क्लाएंट) से पूरा शुल्क ले लिया है इस-लिए मैं ही उसका अधिकृत वकील हूँ । उन्होंने १६३७ आर० डी० ५ का अभिदेश किया कि यदि वादार्थी ने किसी वकील से काम लेने का पूरा निश्चय कर लिया है तो तत्संबंधी औपचारिक (फार्मल) त्रुटियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । ए० आई० आर० १६३४ इलाहाबाद ८१० में निर्णय हुआ था कि यदि लिखावट की गलती से वकील का नाम वकालतनामा में नहीं लिखा गया और जब यह निश्चित है कि उसी वकील को नियुक्त करने का विचार था और वकील ने वकालतनामा स्वीकार करके वादपत्र निवेशित किया तो न्यायालय वकालतनामा को ठीक कर सकता है और वादपत्र का निवेशित किया जाना ठीक है ।

इस मामले में यदि वकालतनामा में किसी वकील का नाम नहीं लिखा गया तो यह नहीं कहा जा सकता कि श्री रामअवध मिश्र विधि अनुकूल अधिकृत वकील हैं। वकील ने यों तो शपथपत्र निवेशित किया है कि हमने वादार्थी (क्लाएंट) से पूरा पारिश्रमिक प्राप्त कर लिया है और वकालतनामा में नाम दृष्टि से ओझल मात्र होने से छूट गया किंतु इन सब बातों पर निर्भर करना कठिन है । १६५७ ए० एल० जे० (रेवेन्यू) ६६ में अपील कर्ता ने अपील के स्मृतिपत्र पर हस्ताक्षर किया था इस-लिये अपील ठीक ढंग से निवेशित की गई थी यद्यपि वकील का नाम वकालतनामा में नहीं था । यहाँ श्री राम अवध मिश्र का ही केवल नाम है । उन्होंने इस विषय पर अनेक प्रमाण दिया है जिससे प्रतीत होता है न्याया-लय ऐसे मामलों में कड़ाई नहीं करता था किंतु इसी का परिणाम यह है कि न्यायालयों में भ्रष्टाचार बढ़ा और कई बार यह देखा गया है कि वकीलों ने पक्षों की ओर से होकर समझौता किया किंतु बाद में चलकर उस समझौता पर जब आपत्ति उठाई गई तो देखा यह गया कि वकील पक्षों द्वारा समझौता करने के लिये अधिकृत ही नहीं थे। इसलिए यह देखना आवश्यक है कि वकील को अधिकृत करने के लिये वकालतनामा ठीक से लिखा गया है कि नहीं । इस मामले में ऐसा नहीं किया गया है । अतः हमारा निर्णय है कि श्री राम अवध मिश्र को अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित होने और अपील के स्मृतिपत्र पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं था । इस-

लिए अपील ठीक से निवेशित नहीं की गई और अस्वीकार की जाने योग्य है।

यह अपील असफल होती है और परिव्यय के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

विधि पत्रिका (१८८०) १९५८ इला० (राजस्व) ७१

एस० एन० मित्रा, न्यायिक सदस्य (राजस्वमंडल)

शेखपुर, विधुना, इटावा

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश दिनांक ५ सितंबर १९५७ के विरुद्ध द्वितीय अपील (प्रार्थनापत्र सं० ४३।१९५७-५८)

३० अगस्त १९५८

गुरु दयाल — अपीलकर्ता

वि०

बुद्धू — उत्तरवादी

(अ) उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमि सुधार अधिनियम, १।१९५१, धारा ३३१ (३) एवं नियमावली १९५२ नि० ३३९ (२)—नि० ३३९ (१) और व्य० प्र० संहिता की अपील में प्रयोज्यता — अपील यदि अवधि के भीतर निवेशित की गई किंतु डिग्री की प्रतिलिपि यदि अवधि के बाद निवेशित की गई तब भी अपील अवधि (लिमिटेशन) के भीतर है।

(ब) उ० प्र० जमींदारी विनाश तथा भूमिसुधार अधिनियम १, १९५१ धा० २३२, २४० जी०—१३५६ फ० में यदि उस व्यक्ति का नाम है और धारण (पोजेशन) में भी है तो उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त है—यह अधिकार निश्चित तिथि (अप्वाइंटेड डेट) (३० अक्टूबर १९५४) को अक्षुण्ण था यद्यपि उसका अधिनिष्कासन हो गया था और उक्त तिथि को वह धारण में नहीं था—उसे सीरदारी अधिकार प्राप्त हो जाता है।

न्यायिक सदस्य एस० एन० मित्रा —

इलाहाबाद के अतिरिक्त आयुक्त के आदेश के विरुद्ध यह द्वितीय अपील है।

गुरुदयाल ने धारा २४० जी० के अंतर्गत आपत्ति निवेशित किया कि हम और बदले उस खेत के सीरदार हैं और धारण (पोजेशन) में हैं। उन्होंने कहा कि हमने विपक्षी बुद्धू का अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) उ० प्र० भूधारण (टेनेंसी) अधिनियम की धारा १८० के अंतर्गत कर दिया और ५ अप्रैल १९५० में जब दखल लिया तब से लगातार हम उस खेत के धारण में चले आ रहे हैं लेकिन बुद्धू का नाम गलती से कागजों में चला आ रहा था और उसी से वह अधिवासी और बाद में सीरदार हो गया जब कि उस खेत पर न तो उसका अधिकार था और न स्वत्व (टाइटिल)।

बुद्धू का कहना है कि हमारा अधिनिष्कासन (एजेक्टमेंट) कभी हुआ ही नहीं और लगातार धारण (पोजेशन) में रहने से हमें अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो गया।

अन्वीक्षा न्यायालय ने निर्णय दिया कि—

(१) विपक्षी बुद्धू का ३० अक्टूबर १९५४ को उस खेत पर न अधिकार था और न स्वत्व और—

२—प्रार्थी धारण में थे। अतः आपत्ति स्वीकार कर ली गई कि इसमें धारा २४० ए० लागू नहीं होती और यह कि कोई प्रतिकर (कंपेंसेशन) देय नहीं है। विद्वान् अतिरिक्त आयुक्त ने यह आदेश निराकृत कर दिया और अपील स्वीकार की।

अपीलकर्ता के विद्वान् वकील का कहना है कि नीचे के अपील के न्यायालय में अपील अवधि (लिमिटेशन)

के बाद निवेशित हुई इसलिए उस न्यायालय को इसकी सुनवाई का अधिकार ही नहीं था। कहा गया कि अपील तो समय के भीतर की गई परंतु डिग्री की प्रतिलिपि ३० दिन की अवधि के बाद दी गई इसलिए अपील कालबाधित थी। विद्वान् वकील ने कहा कि ज० विनाश नियमावली के नियम ३३६ (२) के अनुसार जिस आदेश या डिग्री के विरुद्ध अपील की जानेवाली है उसके पारित होने के ३० दिन के भीतर अपील हो जानी चाहिए।

उत्तरवादी के विद्वान् वकील का कहना है कि यों तो व्यवहार प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसीजर कोड) के अनुसार अपील डिग्री के विरुद्ध की जाती है और धारा ३४१ के अनुसार व्य० प्र० संहिता के उपबंध ऐसे मामले में लागू होते हैं परंतु उसी धारा ३४१ में कह दिया गया है कि जमींदारी विनाश अधिनियम में जब कोई स्पष्ट उपबंध न हो तभी व्य० प्र० संहिता लागू होती है अन्यथा नहीं। विद्वान् वकील का कहना है कि जमींदारी विनाश अधिनियम की धारा ३३१ (२) के अनुसार अपील "अंतिम आदेश" (फाइनल आर्डर) के विरुद्ध होती है। उनका कहना है कि इस मुकदमे में अपील 'अंतिम आदेश' के विरुद्ध हुई थी इसलिए अपील के लिये डिग्री की प्रतिलिपि की कोई आवश्यकता नहीं थी। नीचे के न्यायालय में जब विवाद उठा कि डिग्री भी अपील के साथ रहनी चाहिए थी तो उत्तरवादी ने डिग्री की प्रतिलिपि भी दी और इस प्रकार अपील कालबाधित नहीं थी।

यह निश्चित है कि ज० वि० अधिनियम में अपील अंतिम आदेश के विरुद्ध होती है इसलिए डिग्री की प्रतिलिपि की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए अपील समय के भीतर निवेशित की गई थी। नियम ३३६(२) में 'डिग्री' या 'आदेश' के विरुद्ध अपील का नियम है, जब कि धारा ३३१ (३) में 'अंतिम आदेश' का है ऐसी अवस्था में अधिनियम के अंतर्गतवाले विशिष्ट उपबंध लागू होंगे, नियमावली के उपबंध नहीं।

व्य० प्र० संहिता के उपबंधों के लागू होने की बात का उत्तर धारा ३४१ और धारा ३३१ (३) को एक साथ पढ़ने से मिल जाता है। धारा ३३१ (३) में स्पष्ट रूप से दिए गए मामलों में धारा ३४१ के अनुसार व्य० प्र० संहिता लागू नहीं होती। इस प्रकार अपीलकर्ता के विद्वान् वकील की आपत्तियाँ अमान्य होती हैं।

यहाँ दूसरा प्रमुख प्रश्न है कि निश्चित तिथि (एप्वाइंटेड डेट) (३० अक्टूबर १९५४) को उत्तरवादी को क्या सीरदारी अधिकार प्राप्त हो चुका था? यह मान्य है कि उत्तरवादी १३५६ फ० में अभिलिखित अध्यासी (रेकार्डेड आकूपैंट) और धारण में भी था! इसलिए उसे अधिवासी का अधिकार प्राप्त हो गया। यद्यपि उत्तरवादी का अधिनिष्कासन हो चुका था और वह धारण में नहीं था फिर भी निश्चित तिथि (अप्वाइंटेड डेट) को उसका यह अधिकार अक्षुण्ण था। इसलिए नीचे के न्यायालय का निर्णय ठीक था कि उत्तरवादी सीरदार हो चुका है। धारा० २४० जी० के अंतर्गत आपत्ति अस्वीकार होनी चाहिए।

यह द्वितीय अपील असफल होती है और परिव्यय तथा वकील के २० रु० पारिश्रमिक के साथ उत्सर्जित की जाती है।

अपील उत्सर्जित

Hand	१–हाथ २–हस्ताक्षर ३–लेख ४–हस्तलेख
by show of hands	हाथ उठाकर
give one's hand to	सगाई
to set one's hands	हस्ताक्षर करना
Hand bill	परचा
Handcuffs	हथकड़ी
Hand delivery	हाथ से भेजना, हस्तप्रदान
Handle	प्रबंध करना, नियंत्रण करना, प्रतिपादन करना, व्यवहार करना, पकड़ना
Hand list	संक्षिप्त सूची
„ over	सौंपना
„ receipt	हस्तप्राप्ति
Handsome	यथोचित, यथेष्ट
„ present	यथेष्ट पुरस्कार
Hand to hand fight	हाथों हाथ लड़ाई
„ writing	हस्तलेख, लिखाई
Handy	सुविधाजनक, काम का
Hang	लटकाना, फाँसी देना
Happen	होना, घटना, संयोग से होना
Happening	घटना
Harass	उत्पीडन, उत्पीडन करना
Harassed	उत्पीडित
Harassing	उत्पीडक
Harbour	पत्तन, आश्रय, (क्रि०) आश्रय देना, रखना
Hard	कठोर, तीव्र
„ and fast rule	दृढ़ और कठोर नियम
„ currency	दुर्लभ मुद्रा
„ times	कठिन समय, दुःसमय, बुरे दिन
Harm	अपकार
Indemnity	क्षति पूर्ति
Harsh punishment	कठोर दंड
„ treatment	रूक्ष व्यवहार, रूखा व्यवहार
„ word	कठोर शब्द
Hate	घृणा, घृणा करना
Hatred	घृणा
Have done with	समाप्त करना

Have effect	प्रभावी होना
,, recourse to	सहारा लेना
,, retrospective effect	अतीत प्रभावी होना
,, the force of law	विधिसम प्रभावी होना
Having regard to the circumstances of the case	प्रकरण की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर
Having the force of	समप्रभावी
Head	प्रमुख, मुख्य
,, assistant	मुख्य सहायक
,, clerk	मुख्य लिपिक
Heading	शीर्षक, शीर्ष
Headline	शीर्षक पंक्ति, शीर्षक
Headman	मुखिया, ग्रामणी
Head member of the family	कर्ता
,, of a family	कर्ता
,, ,, an office	कार्यालय प्रमुख
,, ,, a university	कुलपति
,, ,, department	विभाग अध्यक्ष
Heads of charge	दोषारोप शीर्षक
Hear and determine	सुनना और निश्चय करना
Heard ,, finally decided	सुना और अंतिम रूप से विनिश्चित
Hearing	सुनवाई
,, of the suit	वाद की सुनवाई
Hearsay	जनश्रुति
,, evidence	सुना साक्ष्य
Heed	मनोयोग, ध्यान
Heedless	असावधान, असतर्क
Height	ऊँचाई
Heinous	गर्हित, जघन्य, क्रूर
,, offence	जघन्य अपराध
,, organised crime	जघन्य संघटित अपराध
Heir	दायाद
Heir apparent	१—प्रत्यक्ष दायाद २—युवराज
,, at law	वैधिक दायाद
,, by custom	रूढ्यनुसार दायाद
,, ,, devise	इच्छापत्र से दायाद

Heiress — दायादा
Heir general — सामान्य दायाद
Heirlooms — कुलागत वस्तुएँ
Heir of provision — (किसी विलेख के उपबंध विशेष द्वारा जो दायाद के रूप में उत्तराधिकारी होता है) उपबंध से दायाद
„ „ the body — आत्मज दायाद
„ „ „ line — वंशानुक्रमिक दायाद
„ presumptive — संभावी दायाद
Heirs, executors, administrators and representatives — दायाद, निष्पादक, प्रवंधक और प्रतिनिधि
Heirship — दायादता
„ certificate — दायादता प्रमाणपत्र
Held — धृत
„ in trust — न्यास धृत
Help — सहायता, साहाय्य
Herbage — हरा चारा, घासपात, चारण सुविधा
Herd — समुदाय, झुंड
Hereafter — एतत्पश्चात्
Here and there — इधर उधर
Hereby — एतद्द्वारा, इसके द्वारा
„ acknowledged — इसके द्वारा अभिस्वीकृत
„ empowered — एतद्द्वारा अधिकृत
„ enacted — एतद्द्वारा अधिनियमित
Hereditament — दायाप्ति
Hereditary — पित्रागत, पैत्रिक
„ character — पित्रागत लक्षण, पित्रागत गुण
„ claim — पित्रागत अभ्यर्थना
„ constitution — पित्रागत लक्षण
„ disease — परंपरागत रोग
„ lease — पैत्रिक पट्टा
„ office — पित्रागत पद
Hereditary right to cultivate — खेती करने का पित्रागत अधिकार
„ succession — पित्रागत उत्तराधिकार
„ tenure — पित्रागत भूधृति
„ title — पित्रागत उपाधि
„ village offices — पित्रागत ग्रामपद

Hereditas	दाय
Heredity	पित्रागति
Herein	इसमें, अत्र, इह
Hereinafter	अत्र पश्चात्, इह पश्चात्
„ appearing	अत्र पश्चात् उल्लिखित, इसमें आगे दिए हुए
„ named	अत्र पश्चात् नामांकित
„ provided	अत्र पश्चात् उपबंधित, इसमें आगे उपबंधित
„ referred to as	अत्र पश्चात् इस प्रकार निर्दिष्ट
Hereinbefore	अत्र पूर्व इसमें पहले
„ contained	अत्र पूर्व अंतर्विष्ट
„ defined	अत्र पूर्व परिभाषित, इसमें पहले परिभाषा दी गई है
Hereinunder	इसमें नीचे, अत्राध
Heretofore	अद्य पर्यंत
Hereunder	एतद्धीन, नीचे
Hereunto	इस पर
Herewith	एतत्सह, इसके साथ
Heretable	दाययोग्य, पित्रागम्य
„ and transferable	दाययोग्य और हस्तांतरणीय संपत्ति
„ rights	दाय योग्य अधिकार
Heritage	पित्रार्जित, पैत्रिक संपत्ति
Her Majesty	महामहिम सम्राज्ञी
His Majesty	महामहिम सम्राट्
Hesitation	हिचकिचाहट
Hidden	गुप्त, अदृष्ट, छिपा हुआ
Hierarchy	उच्चोच्च परंपरा
High	उच्च, ऊँचा
„ authorities	उच्च प्राधिकारी
Highborn	कुलीन
High civil authorities	उच्च असैनिक प्राधिकारी
„ Commissioner for India	भारतीय उच्चायुक्त
„ contracting parties	उच्च संविदाकारी पक्ष
„ Court	उच्च न्यायालय
„ „ decisions	उच्च न्यायालय के विनिश्चय
„ „ of Judicature	उच्च न्यायालय
„ „ on their original sides	उच्च न्यायालय अपने मूलाधिकार पर
High crimes and misdemeanors	महापराध और उपापराध

Higher	उच्चतर
,, class	उच्च श्रेणी
Highest	परम, उच्चतम, सर्वोच्च
,, bid	ऊँची से ऊँची बोली
,, bidder	सबसे ऊँची बोली बोलनेवाला
High functionary of a state	उच्चाधिकारी
,, handed method	अत्याचारी रीति
,, power committee	उच्चशक्ति समिति
,, seas	महा समुद्र, बाह्य समुद्र
,, treason	राजाभिद्रोह, घोर अभिद्रोह
Highway Act	राजपथ अधिनियम
Hindrance	बाधा, अड़चन
Hindu law	हिंदू विधि
,, male	हिंदू पुरुष
,, religious institution	हिंदुओं की धर्म संस्था
,, undivided family	हिंदू अविभक्त परिवार
Hint	संकेत
Hintenland	पृष्ठ देश
Hire	भाड़ा, भाड़े पर लेना
,, and purchase	क्रयावक्रय, भाड़े पर और मोल लेना
,, charge	भाड़ा
Hirer	अवक्रेता
Hiring agreement	अवक्रय संविद्
His Excellency	परम श्रेष्ठ
,, Highness	महाराज
,, Majesty in Council	परिषत् स्थित सम्राट
,, Majesty's Service	समाट् सेवा
Hiss	सीत्कार
Hold	(१) धारण करना, रखना, लेना (२) ग्रहण करना
an enquiry	जाँच करना
,, office	पद धारण करना
He, brief for	अधिवचन करना, प्रतिवाद करना
court	न्यायाधिवेशन करना
,, election	निर्वाचन कराना
,, der	धारी, धारण करनेवाला
,, for the timebeing	तत्समय धारी

Holder for value	समूल्य धारी
„ in due course	यथोचित धारी
„ of a bill	विपत्रधारी
„ „ a life interest	आजीवन हितधारी
„ „ an estate	संपदाधारी
„ „ a public office	लोकपद धारी
„ „ land	भूमिधारी, भूमि का धारी
„ „ Mitakshra certificate	मिताक्षरा प्रमाणपत्र का धारी
„ „ a power	शक्तिधारी
„ „ promissory note and transferee of the same	वचनपत्र धारी और उसका हस्तांतरिती
Holder's duly constituted attorney	धारी का यथाविधि निर्धारित प्राभिकर्ता
Holding	खाता, जोत
„ an office of profit	लाभ पद धारी
Hold office for life	आजीवन पद धारण करना
„ or acquire immoveable property	अचल संपत्ति धारण अथवा अवाप्त करना
„ over	१—आस्थगित करना २—अवधि से परे धारण करना, अतिधारण
„ possession	धारण में रखना
„ up	रोकना
Holiday	पर्वावकाश, पर्व दिन, छुट्टी
Holidays and vacations	पर्वावकाश और दीर्घावकाश
Holiness	पूज्यपाद
Homage	१—श्रद्धांजलि २—वश्यतास्वीकृति
Home	गृह, घर २—स्वदेश ३—[illegible] आंतरिक
„ rule	स्वराज, स्वराज्य
„ „ league	स्वराज्य संघ
„ science	गृह विज्ञान
Homestead	१—गृह स्थान २—वास भूमि
„ farm	वास भूमि प्रक्षेत्र
„ law	वास भूमि विधि
„ right	वास भूमि अधिकार
Home trade	स्वदेशीय व्यापार
Homicidal	मानव हत्या
„ mania	मानव हत्योन्माद
Homicide	मानव हत्या

Homicide by misadventure	आकस्मिक मानव हत्या
„ in self defence	आत्मरक्षार्थ मानव हत्या
Hon'ble Chief Justice	माननीय मुख्य न्यायाधिपति
„ justice	माननीय न्यायाधिपति
Honest	सत्य, सच्चा, निष्कपट
„ belief	सच्चा विश्वास
„ claim	सत्य अध्यर्थना
„ opinion	सच्चा अभिमत
Honesty	सत्यता, सच्चाई
Honorary	मानसेवी, मानित, अवैतनिक
„ advisor	मानसेवी मंत्रणाकार
„ commission	अवैतनिक आयोग
„ degree	मानोपाधि
„ duty	मानसेवी कर्तव्य
„ functions	अवैतनिक कृत्य
„ member	मानसेवी सदस्य
„ officer	मानसेवी अधिकारी
„ post	मानसेवा पद
„ rank	मानसेवी पदस्थिति
„ staff	मानसेवी कर्मचारी
Honour	आदर, संमान
„ a bill	विपत्र आदरण
Honourably acquitted	संमान पूर्वक अभिमुक्त, निष्कलंक मुक्त
„ bound	मानबद्ध
Honoured	आदृत
Honours	प्रावीण्य
„ certificate	प्रावीण्य प्रमाणपत्र
Hiss degree	प्रावीण्य उपाधि
Ho pital	चिकित्सालय
ospitality	आतिथ्य
I ost	आतिथेय
ostile	१—शत्रुता पूर्ण २—विरोधी ३—प्रतिकूल
„ possession	प्रतिकूल धारण
„ witness	प्रतिकूल साक्षी
ostilities	शत्रुता, विग्रह, विरोध भाव

Hotchpot	(बराबर बराबर बाँटने के विचार से संपत्ति का ए रखना), संमिश्रण
Hotel	आवास गृह, विश्रांति गृह
„ bill	आवास गृह देयक
Hours	समय, काल
„ of attendance	उपस्थिति समय
„ „ business	कार्य काल, कार्य समय
House	गृह, घर २—(विधान मंडल) सदन ३—सभा
„ allowance	घर भत्ता
„ bill	सदन विधेयक २—स्वकीय विपत्र
„ bote	(किसान के घर की मरम्मत के लिये स्वीकृत ल गृह काष्ठ निस्तार
„ breaker	सेंध मार, सेंध लगानेवाला
„ breaking	सेंध लगाना
„ by night	रात को सेंध लगाना
Household	गृहस्थी, परिवार, घरेलू
„ of commons	लोक सदन
„ „ ill fame	वेश्यागृह, चकला
„ „ Legislature	विधान मंडल
„ „ Lords	श्रीपति सदन
„ „ parliament	संसत् सदन
„ „ People	लोक सभा
„ „ prostitution	वेश्यालय
„ „ refuse	सुधारावास
„ rent	घर का भाड़ा
„ tax	गृह कर
„ to let	घर भाड़े पर देना है
„ trespass	गृह अनधिप्रवेश
Housing	गृह प्रबंध
How	कैसे, किस प्रकार
However	तथापि, कितना ही, कुछ भी हो
Human	मानवीय
Humane	दयामय, मानवोचित
Humanity	मानव जाति, मानवता
Human law	मनुष्य विधि
Humility	नम्रता